गोरा

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गोरा

गोरा

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक
सच्चिदानन्द वात्स्यायन



साहित्य अकादेमी

Gora : Hindi translation by Sachchidanand Vatsyayan of Rabindranath Tagore's Bengali novel. Sahitya Akademi, New Delhi

Book fair 1986, Agt
Rs. 30/-

विश्व-भारती के सौजन्य से प्रकाशित

मुद्रक :
जे० के० ऑफ़सेट प्रिन्टर्स,
दिल्ली-११०००६

मूल्य : तीस रुपये

१

सावन महीने का सवेरा है, बदली छट जाने से निखरी हुई धूप से कलकत्ता का आकाश भर गया है। सड़कों पर घोड़ा-गाड़ियाँ अविराम दौड़ रही हैं, फेरी वाले अविश्राम पुकार रहे हैं, जिन्हें दफ़्तर, कालेज और अदालत जाना है उनके लिए घर-घर मछली-तरकारी तैयार की जा रही है और रसोईघरों से अंगीठी जलाने का धुआँ उठ रहा है। किन्तु फिर भी इस इतने बड़े, कठिन-हृदय, काम-काजी शहर कलकत्ता की सैकड़ों सड़कों-गलियों के भीतर सोने की आलोक-धारा आज मानो एक अपूर्व यौवन का प्रवाह लिये बह निकली है।

ऐसे दिन फ़ुरसत के समय विनयभूषण अपने घर की दूसरी मंज़िल के बरामदे में अकेला खड़ा नीचे राह चलने वालों की चलाचली देख रहा था। उसकी कालेज की पढ़ाई बहुत दिन हुए पूरी हो गई थी, पर संसारी जीवन में अभी उसका प्रवेश नहीं हुआ था, ऐसी ही विनय की अवस्था थी। सभा-समितियों के संचालन और समाचार-पत्रों में लिखने की ओर उसने मन लगाया था, किन्तु उसका मन पूरा रम गया हो, ऐसा नहीं था। तभी आज सवेरे क्या किया जाय यह सोच न पाने से उसका मन चंचल हो उठा था। पड़ोस के घर की छत पर तीन-चार कौए न जाने क्या लिये काँव-काँव कर रहे थे, और उसके बरामदे के एक कोने में घोंसला बनाने में व्यस्त चिड़ियों का जोड़ा चहचहाकर एक-दूसरे को बढ़ावा दे रहा था -- ऐसे ही कई अनेक अस्फुट स्वर विनय के मन में एक अस्पष्ट भावावेग जगा रहे थे।

पास की एक दूकान के सामने गुदड़ी पहने हुए एक बाउल खड़ा होकर गाने लगा :

खाँचार भितर अचिन पाखि कमने आसे याय
धरते पारले मनोबेड़ि दितेम पाखिर पाय।

विनय का मन हुआ, बाउल को बुलाकर अचीन्हे पाखी का यह गान लिख ले। किन्तु जैसे बड़े तड़के जाड़ा लगते रहने पर भी खींचकर चादर ओढ़ लेने का उद्यम नहीं रहता, वैसे ही एक आलस्य के कारण न तो बाउल को बुलाया

गया, न गान ही लिखा गया; केवल अचीन्हे पाखी का वह सुर मन में गूँजता रह गया।

अचानक उसके घर के ठीक सामने ही एक बग्घी एक घोडागाड़ी से टकराकर उसका एक पहिया तोड़ती हुई, बिना मुड़कर देखे भी तेज़ी से आगे निकल गई। घोड़ागाड़ी उलटी तो नहीं, पर एक ओर को लुढ़क गई।

विनय ने तेज़ी से सड़क पर आकर देखा, गाड़ी से सत्रह-अठारह वर्ष की एक लड़की उतर पड़ी है और वह भीतर से एक अधेड़ वय के भद्र-पुरुष को उतारने का उपक्रम कर रही है।

विनय ने सहारा देकर भद्र-पुरुष को उतारा और उनके चेहरे का रंग उड़ा हुआ देखकर पूछा, "चोट तो नहीं आई ?"

"नहीं-नहीं, कुछ नहीं हुआ," कहते हुए उन्होंने हँसने का प्रयत्न किया, पर वह हँसी तभी विलीन हो गई और वह मूर्च्छित होते-से जान पड़े। विनय ने उन्हें थाम लिया और घबराई हुई लड़की से कहा, "यह सामने ही मेरा घर है, भीतर चलिए !"

वृद्ध को बिछौने पर लिटा दिया गया। लड़की ने एक बार चारों ओर देखा; कमरे के कोने में सुराही रखी थी—उसने जल्दी से सुराही से गिलास में पानी उँड़েलकर वृद्ध के मुँह पर छींटे दिये और आँचल से पंखा झलती हुई विनय से बोली, "किसी डॉक्टर को न बुला लिया जाय ?"

डॉक्टर पास ही रहते थे; विनय ने उन्हें बुलाने के लिए बैरे को भेज दिया। कमरे में एक ओर मेज़ पर एक आईना, तेल की शीशी और बाल सँवारने का सामान रखा था, विनय लड़की के पीछे खड़ा स्तब्ध भाव से आईने की ओर देखता रहा।

विनय बचपन से ही कलकत्ता में घर ही पर पढ़ता-लिखता रहा है। संसार से उसका जो कुछ परिचय है वह सब पुस्तकों के द्वारा ही है। पराई भद्र स्त्रियों से उसका कभी कोई परिचय नहीं हुआ।

आईने की ओर टकटकी लगाये हुए ही उसने देखा, जिस चेहरे की परछाईं उसमें पड़ रही है वह कितना सुन्दर है। चेहरे की प्रत्येक रेखा को अलग करके पहचान सकता अनुभव उसकी आँखों को नहीं था। केवल उद्विग्न स्नेह से झुके हुए तरुण चेहरे की कोमलता-मंडित उज्ज्वल कांति, सृष्टि के एक नये सद्यःप्रकाशित विस्मय-सी विनय की आँखों में बस गई।

थोड़ी देर बाद ही वृद्ध ने धीरे-धीरे आँखें खोलते हुए, 'माँ' कहकर लम्बी साँस ली। लड़की की आँखें डबडबा आईं। वृद्ध के मुँह के निकट मुँह लाकर झुकते

हुए उसने आर्द्र स्वर से पूछा, "बाबा, कहाँ चोट लगी है ?"

"यह मैं कहाँ आ गया ?" कहते हुए उठ बैठने का प्रयत्न करते हुए वृद्ध के सामने आकर विनय ने कहा, "उठिए नहीं··· आराम से लेटे रहिए, डॉक्टर आ रहा है।"

तब सारी बात उन्हें याद आ गई और उन्होंने कहा, "सिर में यहाँ थोड़ा दर्द है...ज्यादा कुछ नहीं है।"

इतने में जूते चरमराते हुए डॉक्टर भी आ पहुँचे। उन्होंने भी कहा, "ऐसी कोई बात नही है।" गर्म दूध में थोड़ी ब्रांडी मिलाकर देने का आदेश देकर डॉक्टर चलने लगे, तो वृद्ध बड़े परेशान-से होकर उठने लगे। लड़की ने उनके मन की बात समझकर कहा, "बाबा, आप क्यों परेशान होते है— डॉक्टर की फीस और दवा के दाम घर से भेज दिए जायँगे।" बात कहकर उसने विनय की ओर देखा।

कैसी आश्चर्यमयी आँखें ! वे आँखें बड़ी है कि छोटी, काली कि भूरी, मानो यह प्रश्न ही मन में नहीं उठता --पहली नजर में ही जान पड़ता है, इन आँखों में एक असंदिग्ध प्रभाव है। उनमें संकोच नहीं है, द्विधा नहीं है, एक स्थिर शक्ति से वे भरी हैं।

विनय ने कहना चाहा, "फीस बहुत ही मामूली है···उसके लिए···उसकी आप···वह मैं···"

लड़की की आँखें उसी पर टिकी थीं, इसलिए वह अपनी बात ठीक से पूरी नही कह पाया। किन्तु फीस के पैसे उसे लेने ही होंगे, इस बारे में कोई संशय उसे नहीं रहा।

वृद्ध ने कहा, "देखिए, मेरे लिए ब्रांडी की जरूरत नहीं है···।"

कन्या ने उन्हे टोकते हुए कहा, "क्यों बाबा, डॉक्टर साहब कह जो गये हैं।"

वृद्ध बोले, "डॉक्टर लोग तो ऐसा कहते ही रहते हैं। वह केवल उनकी एक बुरी आदत है। मुझे जो थोड़ी-सी कमजोरी जान पड़ती है। गरम दूध से ही ठीक हो जायगी।"

दूध पीकर कुछ संभलकर वृद्ध ने विनय से कहा, "अब हम लोग चलें। आपको बड़ा कष्ट दिया।"

कन्या ने विनय की ओर देखकर कहा, "ज़रा एक गाड़ी··"

वृद्ध ने सकुचाते हुए कहा, "फिर क्यों उन्हें कहती हो ? हमारा घर तो पास है, इतना तो पैदल चले जायँगे।"

लड़की ने कहा, "नहीं बाबा; ऐसा नहीं हो सकता।"

वृद्ध ने उसकी बात का खंडन नहीं किया, और विनय स्वयं जाकर घोड़ा-गाड़ी बुला लाया। गाड़ी पर पर सवार होने से पहले वृद्ध ने उससे पूछा, "आपका नाम क्या है ?"

"मेरा नाम है विनयभूषण चट्टोपाध्याय।"

वृद्ध बोले, "मेरा नाम है परेशचन्द्र भट्टाचार्य। पास ही ७८ नम्बर के मकान में रहता हूँ। कभी फ़ुरसत होने पर हम लोगों के यहाँ आयें तो हमें बड़ी ख़ुशी होगी।"

कन्या ने आँखें विनय के चेहरे की ओर उठाकर इस अनुरोध का नीरव समर्थन किया।

विनय तभी उसी गाड़ी में उनके घर जाने को प्रस्तुत था, किन्तु वह ठीक शिष्टाचार होगा या नहीं, सोच न पाकर खड़ा रह गया। गाड़ी चलने पर लड़की ने विनय को एक छोटा-सा नमस्कार किया। इस नमस्कार के लिए विनय बिलकुल तैयार नहीं था, इसलिए हतबुद्धि-सा होकर वह प्रति-नमस्कार भी नहीं कर सका। घर के भीतर आकर अपनी इतनी-सी चूक के लिए वह बार-बार अपने को धिक्कारने लगा। विनय इन लोगों से साक्षात् से लेकर विदा होने तक के अपने आचरण की आलोचना करके देखने लगा - उसे लगा, शुरू से अन्त तक उसके सारे व्यवहार में असभ्यता झलकती रही है। कौन-कौन-से समय क्या-क्या करना उचित था, क्या कहना उचित था, इसीको लेकर वह मन-ही-मन व्यर्थ उधेड़-बुन करने लगा। कमरे में लौटकर उसने देखा, जिस रूमाल से लड़की ने अपने पिता का मुँह पोंछा था वह रूमाल बिस्तर पर पड़ा रह गया है। उसने लपककर उसे उठा लिया। बाउल के गान के सुर उसके मन में गूंज उठे :

खाँचार भितर अचिन् पाखि कमने आसे याय।

दिन और चढ़ आया था। बरसात की धूप तेज़ हो उठी थी। गाड़ियों की धारा दफ्तरों की ओर और तेज़ी से दौड़ने लगी थी। विनय का मन उसके दिन के किसी काम में नहीं लगा। ऐसे अपूर्व आनन्द के साथ ऐसी घनी वेदना का बोध अपने जीवन में उसे कभी नहीं हुआ था। उसका क्षुद्र घर और उसके आस-पास का कुत्सित कलकत्ता मायापुरी-सा हो उठा था। जिस राज्य में असम्भव सम्भव हो जाता है, असाध्य सिद्ध होता है, जिसमें रूपातीत रूप लेकर सामने दिखाई देता है, मानो ऐसे ही किसी नियम-विहीन राज्य में विनय घूम रहा था। बरसात की सबेरे की धूप की दीप्त आभा उसके मन में बस गई थी, उसके रक्त में बह रही थी, उसके अन्तःकरण के सम्मुख एक ज्योतिर्मयी यवनिका-सी छाकर दैनिक जीवन की सारी तुच्छता को बिलकुल ओझल कर गई थी। विनय का मन हो रहा

था कि अपनी परिपूर्णता को किसी अचरज-भरे रूप में प्रकाशित कर दे, किन्तु उसका कोई उपाय न पाकर उसका चित्त पीड़ित हो उठा था। उसने अपना परिचय बहुत ही सामान्य लोगों-जैसा ही दिया--अत्यन्त तुच्छ घर. इधर-उधर बिखरा हुआ सामान, बिछौना भी साफ नहीं; किसी-किसी दिन अपने कमरे में वह गुलदस्ता-भर फूल सजाकर रखता है किन्तु दुर्भाग्य से उस दिन कमरे में फूल की एक पंखुड़ी भी नहीं थी। सभी कहते है कि सभाओं में विनय जैसी ज़बानी ही सुन्दर वक्तृता दे देता है, उससे एक दिन बहुत बड़ा वक्ता हो जायगा, किन्तु उस दिन उसने ऐसी एक भी बात नहीं कही जिससे उसकी बुद्धि का कुछ भी प्रमाण मिले। उसे बार-बार केवल यही सूझता कि यदि कही ऐसा हो सकता, कि 'जब वह बड़ी गाड़ी से टकराने जा रही थी, उस समय बिजली की तेज़ी से सड़क के बीच पहुँचकर मैं अनायास उन मुँहजोर घोड़ों की जोड़ी की लगाम पकड़कर उन्हें रोक देता।' अपने उस काल्पनिक विक्रम की छवि जब उसके मन में मूर्त्त हो उठी, तब एक बार आईने के सामने जाकर अपना चेहरा निहारे बिना उससे नहीं रहा गया।

तभी उसने देखा, सात-आठ बरस का एक लड़का सड़क पर खड़ा उसके घर का नम्बर देख रहा है। विनय ने ऊपर से ही पुकारा, "यही है, ठीक यही घर है।" लड़का उसीके घर का नम्बर ढूंढ रहा है, इस बारे में उसे ज़रा भी सन्देह नहीं था। सीढ़ियों पर चट्टियाँ फटकारता हुआ विनय तेज़ी से नीचे उतर गया। बड़े आग्रह से लड़के को कमरे में लाकर उसके चेहरे की ओर ताकने लगा। वह बोला, "दीदी ने मुझे भेजा है।" कहते हुए उसने विनयभूषण के हाथ में एक पत्र दिया।

विनय ने चिट्ठी लेकर पहले लिफ़ाफ़ा बाहर से देखा। लड़कियों के हाथ की लिखावट में उसका नाम लिखा हुआ था। भीतर चिट्ठी-पत्री कुछ नहीं थी, केवल कुछ रुपये थे।

लड़का जाने को हुआ तो विनय ने किसी तरह उसे छोड़ा ही नहीं। उसका कन्धा पकड़कर उसे दूसरी मंजिल में ले गया।

लड़के का रंग उसकी बहन से अधिक साँवला था, किन्तु चेहरे की बनावट कुछ मिलती थी। उसे देखकर विनय के मन में गहरे स्नेह और आनन्द का उदय हुआ।

लड़का काफी तेज था। कमरे में घुसते ही दीवार पर लगा हुआ चित्र देखकर बोला, "यह किसकी तसवीर है?"

विनय ने कहा, "मेरे एक बन्धु की है।"

लड़के ने फिर पूछा, "बन्धु की तसवीर ? कौन हैं आपके बन्धु ?"

विनय ने हँसकर उत्तर दिया, "तुम उन्हें नहीं जानते। मेरे बन्धु गौरमोहन। उन्हें मैं गोरा कहकर पुकारता हूँ। हम लोग बचपन से साथ पढ़े हैं।"

"अब भी पढ़ते हैं ?"

"नहीं, अब और नहीं पढ़ते।"

"आपकी स-ऽ-ब पढ़ाई हो गई है ?"

विनय इस छोटे लड़के के सामने भी गर्व करने का लोभ संवरण न कर सका। बोला, "हाँ, सब पढ़ाई हो चुकी।"

लड़के ने विस्मित होकर एक लम्बी साँस ली। वह मानो सोच रहा था, 'वह भी इतनी विद्या कितने दिन में पूरी कर पायगा ?'

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय।"

विनय ने अचम्भे से पूछा, "मुखोपाध्याय ?"

फिर थोड़ा-थोड़ा करके परिचय प्राप्त हुआ। परेश बाबू इनके पिता नहीं है, उन्होंने इन दोनों भाई-बहन को बचपन से पाला-पोसा है। दीदी का नाम पहले राधारानी था; परेश बाबू की स्त्री ने बदलकर 'सुचरिता' नाम रखा है।

देखते-देखते सतीश विनय के साथ खूब घुल-मिल गया। जब वह घर जाने को उठा तब विनय ने पूछा, "अकेले चले जाओगे ?"

उसने गर्व से कहा, "मैं तो अकेला ही जाता हूँ।"

विनय ने कहा, "चलो, मैं तुम्हें पहुँचा आता हूँ।"

अपनी शक्ति पर विनय का यह अविश्वास देखकर उसने खिन्न होकर कहा, "क्यों, मैं तो अकेला जा सकता हूँ।" अपने अकेले आने-जाने के अनेक विस्मयकारी दृष्टान्त उसने दे डाले। फिर भी विनय उसके घर के द्वार तक उसके साथ क्यों गया, इसका ठीक कारण बालक किसी तरह नहीं समझ सका।

वहाँ पहुँचकर सतीश ने पूछा, "अब आप भीतर नहीं आयेंगे ?"

विनय ने अपने मन का दमन करते हुए कहा, "फिर किसी दिन आऊँगा।"

घर लौटकर विनय जेब से वही पता लिखा हुआ लिफ़ाफ़ा निकालकर बड़ी देर तक देखता रहा। प्रत्येक अक्षर की रेखाएं और बनावट उसे याद हो आई। फिर रुपयों समेत वह लिफ़ाफ़ा उसने जतन के बक्स में रख दिया। ये कुछ रुपये कभी हाथ तंग होने पर भी खर्च किये जायेंगे, इसकी मानो कोई सम्भावना नहीं रही।

२

वर्षा की संध्या में आकाश का अंधकार मानो भीगकर भारी हो गया है। रंगहीन, वैचित्र्यहीन बादलों के शब्दहीन दबाव के नीचे कलकत्ता शहर मानो एक बहुत बड़े उदास कुत्ते की तरह पूंछ के नीचे मुंह छिपा कुण्डली बांधकर चुपचाप पड़ा हुआ है। पिछली सांझ से ही बूंद-बूंद वर्षा होती रही है; इस वर्षा मे खिड़की की धूल कीचड़ बन गई है, किन्तु कीचड़ को धो डालने या बहा ले जाने लायक पानी नहीं हुआ। आज तीसरे पहर चार बजे से बारिश बन्द है, लेकिन घटा के लक्षण अच्छे नहीं हैं। आसन्न वर्षा की आशंका से भरी हुई सांझ की उस वेला में, जब मन न सूने कमरे में टिकता है, न बाहर आसरा पाता है, एक तिमंज़िले मकान की सीली हुई छत पर दो जने बेंत के मूढ़ों पर बैठे है।

बचपन में ये दोनों बंधु स्कूल से लौटकर इसी छत पर दौड़-दौड़कर खेले हैं; परीक्षा से पहले दोनों चिल्ला-चिल्लाकर पाठ रटते हुए पागलों की तरह तेज़ी से चक्कर काटते हुए इसी छत पर घूमे हैं; गर्मियों में कालिज से लौटकर शाम को इसी छत पर भोजन करके तर्क करने में ऐसे खो गए हैं कि रात के दो बज गए हैं, और जब सबेरे की धूप ने उनके चेहरे पर बहस करके उन्हें जगाया है तब उन्होंने चौंककर जाना है कि दोनों वहीं चटाई पर पड़े-पड़े ही सो गए थे। कालेज की परीक्षाएँ जब कोई और बाक़ी न रहीं, तब से इसी छत पर प्रतिमास एक बार 'हिन्दू हितैषी सभा' का अधिवेशन होता रहा है, इन दोनों बन्धुओं में एक उसका सभापति है, और दूसरा उसका सेक्रेटरी।

सभापति का नाम है गौरमोहन। उसे जान-पहचान के लोग 'गोरा' कहकर बुलाते है। वह मानो बेतहाशा बढ़ता हुआ आस-पास के लोगों से ऊपर उठ गया है। उसके कालेज के पंडित जी उसे 'रजत-गिरि' कहकर पुकारते थे। उसकी देह का रंग कुछ बहुत ही उग्र रूप से चिट्टा था, उसे स्निग्ध करने वाली तनिक-सी संगत भी उसमें नहीं थी। प्राय: छह फुट लम्बा डील, चौड़ी काठी, मानो बाघ के पंजे की तरह, गले का स्वर ऐसा भारी और गंभीर कि हठात् सुनने पर लोग चौंककर पूछ बैठते है, यह क्या है? उसके चेहरे की गठन भी अनावश्यक रूप से बड़ी और अतिरिक्त कठोर है; गाल और ठोड़ी का उभार मानो दुर्ग-द्वार की दृढ़ अर्गला की भाँति, आँखों के ऊपर भौंहें मानो हैं ही नहीं और वहाँ से माथा कानों की ओर फैलता चला गया है। ओठ पतले और दबे हुए; उनके ऊपर नाक मानो खांडे की तरह उठी हुई है। आँखें छोटी किन्तु तीक्ष्ण, उनकी दृष्टि मानो तीर

की धार की तरह दूर अदृश्य में अपना लक्ष्य ताक रही हो, किन्तु क्षण-भर में ही लौटकर पास की चीज पर भी बिजली की-सी चोट कर सकती हो। देखने पर गौरमोहन को सुन्दर नहीं कहा जा सकता, किन्तु उसे देखे बिना रहा भी नहीं जा सकता --लोगों के बीच भी दृष्टि बरबस उसकी ओर खिंच जाती है।

और उसका मित्र विनय साधारण बंगाली पढ़े-लिखे भद्रजन की भाँति नम्र किन्तु उज्ज्वल, स्वभाव की सुकुमारता और बुद्धि की प्रखरता के मेल ने उसके चेहरे को एक विशेष कान्ति दे दी है। कालेज में वह बराबर अच्छे नम्बर और वृत्ति पाता रहा है; गोरा किसी तरह भी उसके साथ नहीं चल सका। पाठ्य विषयों की ओर गोरा की वैसी रुचि ही नहीं रही; विनय की भाँति वह बात को न तो जल्दी समझ सकता था, न स्मरण रख पाता था। विनय मानो उसका वाहन बनकर उसे अपने पीछे-पीछे कालेज की कई परीक्षाओं से पार खींचता लाया है।

गोरा कह रहा था, "जो कहता हूँ, सुनो! अविनाश जो ब्राह्मण लोगों की बुराई कर रहा था उससे यही जान पड़ता है कि वह ठीक, स्वस्थ, स्वाभाविक अवस्था में है। इस पर तुम अचानक ऐसे क्यों बिगड़ उठे?"

"क्या अजब बात है! उस बारे में कोई सवाल भी हो सकता है, मैं तो सोच ही नहीं सकता था।"

"ऐसा है तो तुम्हारे ही मन में कहीं खोट है। लोगों का एक दल समाज के बन्धन तोड़कर हर बात में उलटा चलने लगे, और समाज के लोग अविचलित भाव से उनकी बातों पर सुविचार करते रहें, यह स्वाभाविक नियम नहीं है। समाज के लोग उनको गलत समझेंगे ही। वह जो सीधा करेंगे इनकी नजरों में वह टेढ़ा दिखेगा ही, उनका भला इनके निकट बुरा होगा ही और ऐसा होना उचित भी है। मनमाने ढंग से समाज तोड़कर निकल जाने की जो-जो सजाएँ हैं, यह भी उनमें से एक है।"

विनय—"जो स्वाभाविक है वही अच्छा भी है, यह तो नहीं कहा जा सकता।"

गोरा ने कुछ गरम होकर कहा, "हमें अच्छे से मतलब नहीं है। दुनिया में अच्छे दो-चार जने रहें तो रहें; पर बाकी सब स्वाभाविक ही रहें तो बहुत है। जिन्हें ब्राह्म बनकर बहादुरी दिखाने का शौक है, अब्राह्म लोग उनके सब कार्यों को उलटा समझकर उनकी निन्दा करें, इतना कष्ट उन्हें सहना ही होगा। वे स्वयं भी छाती फुलाकर इतराते फिरें, और उनके विरोधी भी पीछे-पीछे वाह-वाह करते चलें, ऐसा दुनिया में नहीं होता। होता भी तो दुनिया का कुछ भला न

होता।"

"मैं दल की निन्दा की बात नहीं कहता। व्यक्तिगत…"

"दल की निन्दा कोई निन्दा थोड़े ही है? वह तो अपनी-अपनी राय की बात है। निन्दा तो व्यक्तिगत ही हो सकती है। अच्छा, साधु महाराज, आपने क्या कभी निन्दा नहीं की?"

"की है। बहुत की है। पर उसके लिए मैं लज्जित हूँ।"

गोरा ने दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधते हुए कहा, "नहीं, विनय, यह नहीं हो सकता, किसी तरह नहीं हो सकता।"

विनय थोड़ी देर चुप रहा। फिर बोला, "क्यों, क्या हुआ? तुम्हें डर किस बात का है?"

गोरा "मैं साफ देख रहा हूँ, तुम अपने को कमजोर बना रहे हो!"

विनय ने थोड़ा उत्तेजित होते हुए कहा, "कमज़ोर! तुम जानते हो, मैं चाहूँ तो अभी उनके घर जा सकता हूँ…उन्होंने मुझे निमन्त्रित भी किया है…पर मैं गया नहीं।

गोरा "हाँ; पर तुम गये नहीं, इसी बात को तुम किसी तरह भूल नहीं पा रहे हो! दिन-रात यही सोचते हो कि 'मैं गया नहीं, मैं उनके घर गया नहीं'… इससे तो हो आना ही अच्छा है।"

विनय –"तो क्या तुम जाने को कह रहे हो?"

गोरा ने घुटने पर हाथ पटकते हुए कहा, "नहीं, मैं जाने को नहीं कहता। मैं तुम्हे यही सीख दे रहा हूं कि जिस दिन तुम जाओगे उस दिन बिलकुल पूरे चले जाओगे। अगले दिन से उनके घर खाना-पीना शुरू कर दोगे और ब्राह्म-समाज के खाते में नाम लिखाकर एकदम दिग्विजयी प्रचारक हो जाओगे!"

विनय -"क्या बात करते हो! और उससे आगे?"

गोरा "उससे आगे? मरने से बड़ी और क्या दुर्गति होगी? ब्राह्मण के लड़के होकर तुम चमारों में जाकर मरोगे, आचार-विचार कुछ नहीं रहेगा। बिना कम्पास की नाव की तरह तुम्हारा पूरब-पश्चिम का ज्ञान लुप्त हो जायगा…तब तुम्हें लगेगा कि जहाज को बन्दरगाह पर लाना ही कुसंस्कार है, संकीर्णता है…केवल बे-मतलब बहते रहना ही वास्तव में जहाज चलाना है। किन्तु यह सब फ़िज़ूल की बक-झक करने का धीरज मुझमें नहीं है…मैं कहता हूँ, तुम जाओ! अधःपतन के गड्ढे की ओर पाँव बढ़ाकर खड़े-खड़े हमें भी क्यों डरा रहे हो!"

विनय हँस पड़ा। बोला, "डॉक्टर के उम्मीद छोड़ देने से ही तो रोगी हमेशा

मर नहीं जाता। मुझे तो मौत सामने खड़ी होने के कोई लक्षण नहीं दीखते।"

गोरा—"नहीं दीखते ?"

विनय—"नहीं।"

गोरा—"गाड़ी छूटती नहीं जान पड़ती ?"

विनय—"नहीं, बहुत अच्छी चल रही है।"

गोरा—"ऐसा नहीं लगता कि अगर परोसने वाला हाथ सुन्दर हो तो म्लेच्छ का अन्न भी देवता का भोग हो जाता है ?"

विनय अत्यन्त संकुचित हो उठा। बोला, "बस, अब चुप हो जाओ !"

गोरा—"क्यों, इसमें किसी के अपमान की तो कोई बात नहीं है। वह सुन्दर हाथ कोई असूर्यम्पश्य तो है नहीं। जिस पवित्र कर-पल्लव का पराये पुरुषों के साथ शेकहैण्ड भी चलता है, उसका उल्लेख भी तुम्हें सहन नहीं होता, 'तदानाशंसे मरणाय संजय' !"

विनय—"देखो गोरा, मैं स्त्री-जाति में श्रद्धा रखता हूँ। हमारे शास्त्रों में भी······"

गोरा—"स्त्री-जाति में जैसी श्रद्धा रखते हो, उसके लिए शास्त्रों की दुहाई मत दो ! उसको श्रद्धा नहीं कहते। जो कहते हैं वह ज़बान पर लाऊँगा तो मारने दौड़ोगे।"

विनय—"यह तुम्हारी ज़्यादती है।"

गोरा—"शास्त्र स्त्रियों के बारे में कहते है, 'पूजार्हा गृहदीप्तयः'। वे पूजा की पात्र हैं, क्योंकि गृह को दीप्ति देती हैं। विलायती विधान में उनको जो मान इसलिए दिया जाता है कि वे पुरुषों के हृदय को दीप्त कर देती हैं, उसे पूजा न कहना ही अच्छा है।"

विनय—"कहीं-कहीं कुछ विकृति देखी जाती है, इसीसे क्या एक बड़े भाव पर ऐसे छींटे कसना उचित है ?"

गोरा ने अधीर होकर कहा, "विनू, अब जब तुम्हारी सोचने-विचारने की बुद्धि नष्ट हो गई है तब मेरी बात मान ही लो ! मैं कहता हूँ, विलायती शास्त्र में स्त्री-जाति के बारे में जो सब बड़ी-बड़ी बातें है, उनकी जड़ में है वासना। स्त्री-जाति की पूजा करने का स्थान है माता का पद, सती-लक्ष्मी गृहिणी का आसन ···वहाँ से उन्हें हटाकर उनका जो स्तव-गान किया जाता है उसमें अपमान छिपा हुआ है। जिस कारण से तुम्हारा मन पतंगे-सा परेश बाबू के घर के आस-पास चक्कर काट रहा है, अंग्रेज़ी मे उसे कहते होंगे 'लव'···किन्तु अंग्रेज की नक़ल में इसी लव के व्यापार को ही संसार का एक चरम पुरुषार्थ मानकर उसकी उपासना

करने बैठ जाने का बन्दरपन कहीं तुम पर भी न सवार हो जाय !"

विनय ने चाबुक खाये हुए घोड़े की तरह तिलमिलाकर कहा, "ओह, गोरा ! रहने दो, बहुत हो गया।"

गोरा -- "कहाँ बहुत हुआ ? कुछ भी नहीं हुआ। स्त्री और पुरुष को उनकी अपनी-अपनी जगह सहज भाव से देखना हमने नहीं सीखा, तभी तो बहुत-सी कविताई उन पर मढ़ दी है।"

विनय ने कहा, "अच्छा, माना कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध जहाँ रहकर सहज हो सकना, हम प्रवृत्ति की झोंक में पडकर उससे आगे बढ़ जाते हैं, और इस तरह उसे झूठा कर देते हैं। किन्तु यह अपराध क्या विदेश का ही है ? इस सम्बन्ध में अंग्रेज़ की कविताई अगर झूठी है, तो हम जो हमेशा 'कामिनी-कांचन-त्याग' को लेकर बड़ी-बड़ी बातें करते रहते हैं, वे भी तो झूठ हैं ? मनुष्य की प्रकृति जिन चीज़ों मे सहज ही अपने को भुला देती है, उनसे मनुष्य को बचाने के लिए कोई प्रेम के सौंदर्य-अश को ही कवित्व के सहारे उज्ज्वल कर देता है और उसकी बुराइयों को लज्जित करता है; और कोई उसकी बुराइयों को ही बड़ी करके दिखाता है और 'कामिनी-कांचन-त्याग' का फतवा दे देता है। दोनों केवल दो तरह के लोगों की दो तरह की प्रणालियाँ है; एक की बुराई करके दूसरे के साथ रियायत करना ठीक नहीं है।"

गोरा "नही, मैंने तुम्हें गलत समझा। तुम्हारी हालत अभी इतनी खराब नहीं हुई ! अभी अगर तुम्हारे दिमाग़ मे फिलासफ़ी भर रही है, तब तो तुम निर्भय होकर 'लव' कर सकते हो ! किन्तु समय रहते ही संभल जाना, तुम्हारे हितैषी मित्र का यही अनुरोध है।"

विनय ने व्यस्त भाव से कहा, "अरे, तुम क्या पागल हुए हो ? मैं, और लव ! लेकिन इतना तो मैं स्वीकार करता हूँ कि परेश बाबू वगैरा को जितना मैंने देखा है, और उन लोगो के बारे में जो कुछ सुना है, उससे उनके प्रति मुझे काफ़ी श्रद्धा हो गई है। मै समझता हूँ इसीसे यह जानने का आकर्षण भी मुझमें जागा होगा कि घर के भीतर उनकी जीवन-यात्रा कैसी चलती है।"

गोरा-- "ठीक है। उस आकर्षण से ही बचकर चलना होगा। उन लोगों के जीवन-वृत्तान्त का अध्याय अनुसंधान के बिना ही रह गया सही, तो क्या ? वे लोग ठहरे शिकारी जीव; उनकी भीतरी बातें जानने चलने पर इतने गहरे जाना पड़ेगा कि अंत में तुम्हारी चुटिया भी नहीं दिखाई देगी !"

विनय--"तुममें यही एक दोष है। तुम समझते हो जो कुछ शक्ति है ईश्वर ने अकेले तुम्ही को दी है, और हम सब बिलकुज दुर्बल प्राणी है।"

यह बात गोरा को मानो बिलकुल नई मालूम हुई। उत्साह से विनय की पीठ ठोकता हुआ वह बोला, "ठीक कहते हो···यही मेरा दोष है···बहुत बड़ा दोष !"

"ओफ़ ! उससे भी बड़ा तुम्हारा एक दोष है। किसकी रीढ़ कितनी चोट सह सकती है, इसका ज़रा भी अन्दाज़ तुम्हें नहीं है !"

इसी समय गोरा के सौतेले बड़े भाई महिम, अपने भारी-भरकम शरीर को ठेलकर ऊपर लाने के श्रम से हाँफते-हाँफते आकर बोले, "गोरा !"

गोरा जल्दी से कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला, "जी !"

महिम—"यही देखने आया था कि कहीं बरसात की घटा हमारी छत पर ही तो नहीं उतर आई गरजने के लिए ! आज मामला क्या है ? इस बीच अंग्रेज़ को सागर आधा पार करा दिया क्या ? यों अंग्रेज़ का तो खास नुकसान हुआ नहीं जान पड़ता, सिर्फ़ जो निचली मंज़िल में सिर पकड़कर बैठे हैं उन्हींको शेर की दहाड़ से थोड़ी तकलीफ़ हो रही है।" यह कहकर महिम लौटकर नीचे चले गए।

गोरा लज्जित होकर खड़ा रहा। लज्जा के साथ-साथ उसके भीतर गुस्सा भी सुलगने लगा, किन्तु वह अपने ऊपर या किसी और पर, यह नहीं कहा जा सकता। थोड़ी देर बाद वह धीरे-धीरे मानो अपने ही से कहने लगा, "सभी बातों में जितना चाहिए उससे कहीं ज़्यादा ज़ोर मैं अपनी बात पर देता हूँ। दूसरे के लिए वह असह्य होगा इसका मुझे ध्यान नहीं रहता।"

विनय ने गौरमोहन के पास आकर स्नेह से उसका हाथ थाम लिया।

गोरा और विनय छत से उतरने की तैयारी कर रहे थे कि गोरा की माँ ऊपर आ गईं। विनय ने उनके पैरों की धूल लेकर प्रणाम किया।

गोरा की माँ आनन्दमयी देखने में गोरा की माँ नहीं जान पड़तीं। वह बहुत ही दुबली-पतली और संयत हैं। बाल यदि कुछ-कुछ पके भी हों तो बाहर से पता नहीं लगता; अचानक देखने पर यही जान पड़ता है कि उनकी उम्र चालीस से कम ही होगी। चेहरे की काट अत्यन्त सुकुमार; नाक, ओठ, ठोड़ी और ललाट

की रेखाएँ सभी मानो बड़े यत्न से उकेरी हुई; शरीर का प्रत्येक अवयव नपा-तुला; चेहरे पर सर्वदा एक साफ-सुथरी और तेजस्वी बुद्धि का भाव झलकता रहता है। श्याम-वर्ण रंग, जिसका गोरा के रंग से कोई भी मेल नहीं है। उनको देखते ही एक बात की ओर हर किसी का ध्यान जाता है—कि वह साड़ी के साथ कमीज़ पहने रहती हैं। हम जिस समय की बात कर रहे है उन दिनों यद्यपि नव्य समाज में स्त्रियों में शमीज़ या ऊपर के कपड़े पहनने का चलन शुरू हो गया था तथापि अच्छी गृहिणियाँ इसे निरा खिस्तानीपन कहकर इसकी अवज्ञा करती थीं। आनन्दमयी के स्वामी, कृष्णदयाल बाबू कमिसरियट में काम करते थे; आनन्दमयी जवानी से ही उनके साथ पश्चिम में रही थीं। इसीलिए यह संस्कार उनके मन पर नहीं पड़ा था कि अच्छी तरह बदन ढकना, या ऐसे कपड़े पहनना लज्जा की या हँसी की बात है। घर-बार माँज-घिसकर, धो-पोंछकर रांधन्-बामन, सिलाई-कढ़ाई और हिसाब-गिनती करके, कपड़े फटककर और धूप दिखाकर, अड़ोस-पड़ोस की खबर लेकर भी उनका समय चुकता ही नहीं। अस्वस्थ होने पर भी वह शरीर से किसी तरह की रियायत नही बरततीं; कहती है, "बीमारी से तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा, लेकिन काम पूरा किये बिना कैसे चलेगा?"

ऊपर आकर गोरा की माँ बोली, "गोरा की आवाज जब नीचे सुनाई पड़ती है तो मैं फ़ौरन समझ जाती हूँ कि जरूर विनू आया होगा। कई दिन से घर में बिलकुल शान्ति थी। क्या हुआ था, बेटा, तू इतने दिन आया क्यों नहीं? कुछ बीमार-वीमार तो नहीं रहा?"

विनय ने सकुचाते हुए कहा, "नही माँ, बीमार नही···लेकिन यह आँधी-पानी···"

गोरा बोला, "क्यों नही! इसके बाद जब बरसात चली जायगी तब विनय बाबू कहेंगे, बड़ी धूप पड़ रही है! देवता को दोष देने से देवता कोई सफाई तो दे नही सकते। मन का असली भेद तो अन्तर्यामी ही जानते है।"

विनय बोला, "क्या फ़िज़ूल बकते हो, गोरा?"

आनन्दमयी बोली, "सच तो है, बेटा, ऐसे नहीं कहा करते। मनुष्य का मन कभी ठीक रहता है, कभी नही रहता···सब दिन एक समान थोड़े ही होते हैं? इसको लेकर उलझने से और उत्पात खड़ा होता है। चल विनू, मेरे कमरे में चल, तेरे लिए कुछ परोसकर आई हूँ।"

गोरा ने जोर से सिर हिलाकर कहा, "नहीं, माँ, यह नहीं होने का। तुम्हारे कमरे में विनय को नहीं खाने दूँगा।"

आनन्दमयी—"वाह, रे ! क्यों रे, तुझे तो मैंने कभी खाने को नहीं कहा··· इधर तेरे पिता भी भयंकर शुद्धाचारी हो गए है, स्वपाक छोड़कर कुछ खाते नहीं। विनू मेरा अच्छा लड़का है, तेरी तरह कट्टर नही है···तू उसे जबरदस्ती बाँधकर रखना चाहता है ?"

गोरा—"बिलकुल ठीक ! मैं उसे बाँधकर ही रखूँगा। जब तक तुम उस खि्रस्तान नौकरानी लछमिया को छुट्टी नही दे देतीं तब तक तुम्हारे कमरे में खाना नहीं हो सकेगा !"

आनन्दमयी—"अरे, गोरा, ऐसी बात तुझे जबान पर नही लानी चाहिए। हमेशा से तू उसके हाथ का खाता रहा है; उसीने तुझे बचपन से पाल-पोसकर बड़ा किया है। अभी उस दिन तक उसके हाथ की तैयार चटनी के बिना तुझे खाना नही रुचता था। बचपन में जब तुझे माता निकली थी तब लछमिया ने ही तेरी जैसी सेवा करके तुझे बचाया, मैं कभी नही भूल सकूँगी।"

गोरा—"उसे पेनशन दे दो, जमीन खरीद दो, घर बनवा दो, जो चाहो कर दो···किंतु उसे और रखा नही जा सकता, माँ !"

आनन्दमयी—"गोरा, तू समझता है, पैसा देकर ही सब ऋण चुकाये जा सकते है ! वह जमीन भी नही चाहती, घर भी नही चाहती, तुझे नही देख पायगी तो मर जायगी।"

गोरा—"तब तुम्हारी मर्जी। उसे रखे रहो ! पर विनू तुम्हारे कमरे में नही खा सकेगा। जो नियम है वह मानना ही होगा, उससे इधर-उधर किसी तरह नही हो सकता। माँ, तुम इतने बड़े अध्यापक के वंश की हो, तुम जो आचार का पालन नही करती यह···"

आनन्दमयी—"अरे, तेरी माँ पहले आचार मानकर ही चलती थी; इसीके लिए उसे कितने आँसू बहाने पड़े···तब तू कहाँ था ? रोज शिव की प्रतिष्ठा करके पूजा करने बैठती थी और तेरे पिता उठाकर सब फेंक देते थे ! उन दिनों अपरिचित ब्राह्मण के हाथ का खाते भी मुझे घृणा होती थी। उन दिनों रेल ज्यादा दूर तक नही थी। बैलगाड़ी में, डाकगाड़ी में, पालकी में, ऊँट की सवारी में कितने दिन मैंने उपवास में काटे ! तुम्हारे पिता क्या सहज ही मेरा आचार भंग कर सके ? वह सब जगह स्त्री को साथ लेकर घूमते-फिरते थे, इसीलिए उनके साहब-अफसर उनसे खुश थे, इसीलिए उनकी तनख्वाह भी बढ़ती गई···इसीलिए उन्हें बहुत दिनों तक एक ही जगह रहने दिया जाता, कोई बदली करना न चाहता। अब तो बुढ़ापे में नौकरी से छुट्टी पाकर बहुत-सा पैसा जमा करके वह सहसा बड़े शुचि हो उठे है। किन्तु मुझसे वह नहीं होगा। मेरे सात पीढ़ी के संस्कार एक-एक

करके उखाड़ फेंके गए···अब क्या कह देने से ही फिर जम जायेंगे ?"

गोरा —"अच्छा, पिछली पीढ़ियों की बात तो छोड़ो···वे लोग तो आपत्ति करने आने वाले नहीं, किन्तु हम लोगों की खातिर तुम्हें कुछ बातें मानकर ही चलना होगा। शास्त्रों का मान नहीं रखतीं तो न सही, स्नेह का मान तो रखना होगा।"

आनन्दमयी—"अरे मुझे इतना क्या समझा रहा है ? मेरे मन में क्या होता है वह मैं ही जानती हूँ। मेरे कारण यदि स्वामी और पुत्र को पद-पद पर बाधा ही होने लगी तो मुझे क्या सुख मिलेगा ? किन्तु तुझे गोद लेते ही मैंने आचार को बहा दिया था, यह तू जानता है ? छोटे शिशु को छाती से लगाकर ही समझ में आता है कि दुनिया में जात लेकर कोई नहीं जन्मता। जिस दिन यह बात समझ में आ गई, उसी दिन से मैंने निश्चित रूप से जान लिया कि यदि मैं खिस्तान कहकर या छोटी जात कहकर किसी से घृणा करूँगी तो ईश्वर तुझे भी मुझसे छीन लेंगे। तू मेरी गोद भरकर मेरे घर में प्रकाश किये रह, तो मैं दुनिया की किसी भी जाति के लोगों के हाथ का पानी पी लूँगी।"

आज आनन्दमयी की बात सुनकर विनय के मन में हठात् एक अस्पष्ट सन्देह का आभास हुआ। उसने एक बार आनन्दमयी के और एक बार गोरा के मुँह की ओर देखा; किन्तु फिर फौरन ही तर्क का भाव मन से निकाल दिया।

गोरा ने कहा, "माँ, तुम्हारी दलील ठीक समझ में नहीं आई। जो लोग आचार-विचार करते हैं और शास्त्र मानकर चलते हैं उनके घर में भी तो बच्चे बने रहते हैं। ईश्वर तुम्हारे लिए ही अलग कानून बनायेंगे, ऐसी बात तुम्हारे मन में क्यों आई ?"

आनन्दमयी—"जिसने तुम्हें मुझे दिया उसीने ऐसी बुद्धि भी दी, इसका मैं क्या करूँ ? इसमें मेरा कोई वश नहीं है। किन्तु पगले, तेरा पागलपन देखकर मैं हँसूँ कि रोऊं, कुछ समझ में नहीं आता। खैर, वह सब बात रहने दो ! तो विनय मेरे कमरे में नहीं खायगा ?"

गोरा—"उसे तो मौका मिलने की देर है···अभी दौड़ेगा। वह जो ब्राह्मण का लड़का है दो कौर मिठाई के देकर उसे यह बात भुला देने से नहीं चलेगा। उसे बहुत त्याग करना होगा, प्रवृत्ति को दबाना होगा तभी वह अपने जन्म के गौरव की रक्षा कर सकेगा। लेकिन माँ, तुम बुरा मत मानना··· मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ।"

आनन्दमयी—"बुरा क्यों मानूंगी ? तू जो कर रहा है जानकर नहीं कर रहा है, यह मैं तुझे बताये देती हूँ। मेरे मन में यही दुःख रह गया कि तुझे मैंने आदमी तो बनाया पर··· खैर, छोड़ इसे। तू जिसे धर्म कहता फिरता है उसे मैं नहीं मान

सकूँगी। तू मेरे कमरे में मेरे हाथ का नहीं खायगा, न सही···किन्तु तुझे दोनों बेला देखती रह सकूँ यही मेरी कामना है ··विनय बेटा, तुम ऐसे उदास न होओ ···तुम्हारा मन कोमल है, तुम सोच रहे हो कि मुझे चोट पहुँची, लेकिन वह कुछ नहीं है, बेटा ! फिर किसी दिन न्यौता देकर किसी अच्छे ब्राह्मण के हाथ से ही तुम्हें खिलवा दूंगी···उसमें बात कौन-सी है ! मैं ही ढीठ हूँ, लछमिया के हाथ का पानी पीऊँगी, यह मैं सभी से कहे देती हूँ।"

गोरा की माँ नीचे चली गई। विनय कुछ देर चुप खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे बोला, "गोरा, यह तो कुछ ज्यादती हो रही है।"

गोरा—"किसकी ज्यादती ?"

विनय—"तुम्हारी।"

गोरा—"रत्ती-भर भी ज्यादती नहीं है। जिसकी जो सीमा है उसे ठीक मानता हुआ ही मैं चलना चाहता हूँ। छुआछूत के मामले में सुई की नोक-भर हटने से भी अन्त में कुछ बाकी नहीं रहेगा।"

विनय-"किन्तु माँ जो है।"

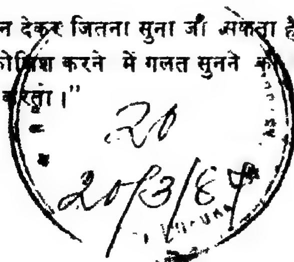
गोरा—"माँ किसे कहते है यह मैं जानता हूं। उसे मुझे याद दिलाने की जरूरत नहीं है। मेरी माँ-जैसी माँएँ कितनी होंगी ! किन्तु आचार को न मानना शुरू करूँ तो शायद एक दिन माँ को भी नहीं मानूँगा। देखो, विनय, एक बात तुम्हें कहता हूँ, याद रखो ! हृदय बड़ी उत्तम चीज है, किन्तु सबसे उत्तम नहीं है।"

थोड़ी देर बाद कुछ झिझकता हुआ विनय बोला, "देखो गोरा, आज माँ की बात सुनकर मेरे मन में एक हलचल-सी मच गई है। मुझे लगता है माँ के मन में कोई एक बात है जो वह हमें समझा नहीं पा रही है, इसीसे कष्ट पा रही है।"

गोरा ने अधीर होकर कहा, "अरे विनय, कल्पना को इतनी ढील मत दो··· इससे केवल समय नष्ट होता है, और कुछ हाथ नहीं आता।"

विनय—"तुम दुनिया की किसी चीज़ की ओर कभी अच्छी तरह देखते ही नहीं; तभी जो तुम्हारी नजर नहीं पड़ता उसीको तुम कल्पना कहकर उड़ा देना चाहते हो ! किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ, मैंने कई बार देखा है, माँ मानो किसी एक बात को लेकर सोच रही है···किसी बात को ठीक सुलझा नहीं पा रही है, और इसीलिए उनके मन में एक दुःख है। गोरा, तुम्हें उनकी बात जरा कान देकर सुननी चाहिए।"

गोरा—"कान देकर जितना सुना जा सकता है उतना तो सुनता हूँ। उससे अधिक सुनने की कोशिश करने में गलत सुनने की आशंका रहती है। इसलिए उसकी चेष्टा नहीं करता।"



४

सिद्धान्त के रूप में कोई बात जैसे मानी जाती है, मनुष्यों पर प्रयोग करते उसे सदैव उसी निश्चित भाव से नहीं माना जा सकता। कम-से-कम विनय-जैसे लोगों के लिए यह सम्भव नहीं है। विनय की हृदय-वृत्ति बहुत प्रबल है। इसीलिए बहस के समय वह एक सिद्धान्त का बड़े जोर-शोर से समर्थन करता है, किन्तु व्यवहार के समय मनुष्य को सिद्धान्त से ऊपर माने बिना नहीं रह सकता। यहाँ तक कि गोरा द्वारा प्रचारित जो सिद्धान्त भी उसने स्वीकार किये हैं उनमें से कितने स्वयं सिद्धान्त के कारण और कितने गोरा के प्रति अपने एकान्त स्नेह के दबाव से, यह कहना कठिन है।

गोरा के घर से निकलकर अपने घर लौटते समय बरसाती साँझ में वह कीचड़ से बचता हुआ धीरे-धीरे चला जा रहा था, तब उसके मन में सिद्धान्त और मनुष्य के बीच एक द्वन्द्व छिड़ा हुआ था।

आजकल के जमाने में तरह-तरह के प्रकट और गोपन आघातों से आत्मरक्षा करने के लिए समाज को खान-पान और छुआछूत के सभी मामलों में विशेष रूप से सतर्क होना होगा, इस सिद्धान्त को विनय ने गोरा के मुँह से सुनकर सहज ही स्वीकार कर लिया है और इसे लेकर विरोधियों के साथ गरमा-गरम बहस भी की है। वह कहता रहा है, किले को चारों ओर से घेर कर जब शत्रु आक्रमण कर रहा हो तब उस किले के प्रत्येक गली-घाट, द्वार-झरोखे, प्रत्येक छिद्र को बन्द करके प्राण-पण से उसकी रक्षा करने को उदारता की कमी नहीं कहा जा सकता।

किन्तु आज जो गोरा ने आनन्दमयी के कमरे में उसके खाने का निषेध कर दिया, इसका आघात उसे भीतर-ही-भीतर सालने लगा।

विनय के पिता नहीं थे। माँ भी बचपन में छोड़ गई थी। गाँव में चाचा हैं, पढ़ाई के लिए विनय बचपन से ही कलकत्ता के घर में अकेला रहता हुआ बड़ा हुआ है। गोरा के साथ दोस्ती के कारण विनय ने जब से आनन्दमयी को जाना है, उसी दिन से वह उन्हींको माँ कहता आया है। कितनी बार उनके यहाँ जाकर उसने छीना-झपटी और उत्पात करते हुए खाया है; खाना परोसने-बाँटने में आनन्दमयी गोरा के साथ पक्षपात करती हैं, ऐसा उलाहना देकर कितनी बार उसने झूठ-मूठ ईर्ष्या प्रकट की है। दो-चार दिन विनय के न आने से ही आनन्द-मयी कितनी बेकल हो उठती है, विनय को पास बिठाकर खिलाने की आशा में ही कितनी बार उनकी सभा की बैठक टूटने की उत्सुक प्रतीक्षा करती हुई बैठी रहती

हैं, यह सब विनय जानता है। वही विनय आज सामाजिक घृणा के कारण आनन्दमयी के कमरे में कुछ न खा सकेगा, इसे क्या आनन्दमयी सह सकेंगी···या विनय भी सहेगा ?

'अब से अच्छे बाम्हन के हाथ का ही मुझे खिलायेंगी, अपने हाथ का अन्न कभी नहीं खिलायेंगी···' यह बात माँ हँसकर ही कह गईं, किन्तु यह तो मर्मान्तक व्यथा की बात है। इसी बात को लेकर उधेड़-बुन करता हुआ विनय किसी तरह घर पहुँचा।

सूने कमरे में अँधेरा हो रहा था। चारों ओर कागज और किताबें अस्तव्यस्त बिखरी थीं। दियासलाई जलाकर विनय ने तेल का दीया जलाया···दीवट पर बैरा की कारीगरी के अनेक चिह्न थे। लिखने की मेज़ पर जो सफेद चादर ढकी हुई थी उस पर कई जगह स्याही और तेल के दाग थे। कमरे में आज मानो उसके प्राण सहसा छटपटा उठे। लोगों के संग और स्नेह का अभाव उसकी छाती पर बोझ-सा जान पड़ने लगा। देश का उद्धार, समाज की रक्षा इत्यादि सब कर्त्तव्यों को वह किसी तरह भी स्पष्ट और सत्य करकेअपने सामने नहीं खड़ा कर सका··· इनसे भी कहीं अधिक सत्य वह अचीन्हा पाखी है जो एक दिन सावन के उजले सुन्दर प्रभात में पिंजरे के पास तक आकर पिंजरा छोड़कर चला गया है। किन्तु उस अचीन्हे पाखी की बात को विनय किसी तरह भी मन में स्थान नहीं देगा, किसी तरह नहीं। इसीलिए, मन को सहारा देने के लिए, आनन्दमयी के जिस कमरे से गोरा ने उसे लौटा दिया, उसी कमरे की छवि वह मन पर आँकने लगा।

साफ-सुथरा पच्चीकारी का फ़र्श मानो झक-झक कर रहा है; एक ओर तख्त-पोश पर सफेद राजहंस के पंख-सा कोमल निर्मल बिछौना बिछा है, उसके पास ही एक छोटी चौकी पर रेंड़ी के तेल की ढिबरी अब तक जला दी गई होगी; माँ निश्चय ही रंग-बिरंगे धागे लिये बत्ती के पास नीचे झुककर कन्था काढ़ रही होंगी। लछमिया नीचे फ़र्श पर बैठी अपने बेढब उच्चारण वाली बंगला में अनर्गल बोलती जा रही होगी, और माँ उसका अधिकांश अनसुना करती जा रही होंगी। माँ के मन को जब भी कोई चोट पहुँचती है वह कढ़ाई लेकर बैठ जाती हैं। विनय अपनी मन की आँखों को उनके उसी काम में लगे स्तब्ध चेहरे पर स्थिर करने लगा। वह मन-ही-मन बोला, 'इसी चेहरे की स्नेह-दीप्ति मेरे मन की सारी उलझन से मेरी रक्षा करे···यही चेहरा मेरी मातृभूमि की प्रतिमा हो जाय, मुझे कर्त्तव्य की प्रेरणा दे और कर्तव्य-पथ पर दृढ़ रखे···' मन-ही-मन उसने एक बार 'माँ' कहकर उन्हें पुकारा और कहा, 'तुम्हारा अन्न मेरे लिए अमृत नहीं है, यह बात मैं किसी भी शास्त्र के प्रमाण से कभी नहीं मानूँगा।···'

निस्तब्ध कमरे में दीवार घड़ी की टिक्-टिक् गूंजने लगी; कमरा विनय के लिए असह्य हो उठा। दीवट के पास दीवार पर एक छिपकली पतंगों की ओर लपक रही थी, कुछ देर उसकी ओर देखते-देखते विनय उठ खड़ा हुआ और छाता उठाकर बाहर निकल पड़ा।

वह क्या करने जा रहा है, यह उसके मन में स्पष्ट नहीं था। शायद आनन्दमयी के पास ही लौट जायगा, कुछ ऐसा ही उसका अभिप्राय था। किन्तु न जाने कैसे एक विचार उसके मन में आ गया 'आज रविवार है, आज ब्राह्म-सभा में केशव बाबू का व्याख्यान सुना जाय।' यह बात मन में आते ही द्विधा छोड़कर विनय तेज़ी से चलने लगा। व्याख्यान सुनने का समय और अधिक नहीं बचा है, यह वह जानता था, फिर भी उसका संकल्प विचलित नहीं हुआ।

स्थान पर पहुँचकर उसने देखा, उपासक लोग उठकर बाहर आ रहे हैं। छाता लगाये-लगाये वह एक ओर हटकर कोने में खड़ा हो गया। ठीक उसी समय मंदिर से परेश बाबू शान्त और प्रसन्न मुद्रा लिये बाहर निकले। उनके साथ उनके चार-पाँच परिजन भी थे; विनय ने उनमें से केवल एक के तरुण मुख को सड़क के गैस-लैम्प के आलोक में क्षण-भर के लिए देखा, फिर गाड़ी के पहियों के शब्द के साथ सारा दृश्य अन्धकार के महासमुद्र में बुलबुले-सा विलीन हो गया।

विनय ने अंग्रेजी नावेल बहुत पढ़ रखे थे, किंतु उसका बंगाली भद्र परिवार का संस्कार कहाँ जाता? इस तरह उत्सुक मन लेकर किसी स्त्री को देखने की चेष्टा करना उस स्त्री के लिए अपमानकर है और अपने लिए गर्हित, इस बात को वह किसी भी तर्क के सहारे मन से न निकाल सका। इसी से विनय के मन में आनन्द के साथ-साथ एक ग्लानि का भी उदय हुआ। उसे लगा कि उसका कुछ पतन हो रहा है। यद्यपि इसी बात को लेकर गोरा से उसकी बहस हो चुकी थी, फिर भी जहाँ सामाजिक अधिकार नहीं है वहाँ किसी स्त्री की ओर प्रेम की आँखों से देखना उसके सारे जीवन के संस्कार के विरुद्ध था।

विनय का आगे गोरा के घर जाना नहीं हुआ। मन-ही-मन अनेक उलटफेर करता हुआ वह घर लौट आया। अगले दिन तीसरे पहर घर से निकलकर घूमता-फिरता अन्त में जब वह गोरा के घर के सामने पहुँचा, तब वर्षा का लम्बा दिन बीत चुका था और सन्ध्या का अन्धकार घना हो रहा था। गोरा बत्ती जलाकर लिखने बैठ गया था।

कागज़ की ओर से आँखें उठाये बिना ही गोरा ने कहा, "क्यों जी, विनय, हवा किधर की बह रही है?"

विनय ने उसकी बात अनसुनी करते हुए कहा, "गोरा, तुमसे एक बात पूछता

हूँ। भारतवर्ष क्या तुम्हारे निकट खूब सत्य है—खूब स्पष्ट है ? तुम तो दिन-रात उसका ध्यान करते हो—किंतु कैसे ध्यान करते हो ?"

लिखना छोड़कर गोरा कुछ देर अपनी तीखी दृष्टि से विनय के चेहरे की ओर देखता रहा। फिर कलम रखकर कुर्सी को पीछे की ओर झुकाता हुआ बोला, "जहाज़ का कप्तान जब समुद्र पार कर रहा हो तब जैसे खाते-पीते, सोते-जागते सागर-पार के बन्दरगाह पर उसका ध्यान रहता है, वैसे ही मैं भारतवर्ष का ध्यान रखता हूँ।"

विनय—"और तुम्हारा यह भारतवर्ष है कहाँ ?"

गोरा ने छाती पर हाथ रखकर कहा, "मेरा यहाँ का कम्पास दिन-रात जिधर सुई किये रहता है वहीं; तुम्हारी मार्शमैन साहब की 'हिस्टरी आफ़ इण्डिया' में नहीं !"

विनय—"वह सुई जिधर को रहती है उधर कुछ है भी ?"

गोरा ने उत्तेजित होकर कहा, "है कैसे नही ? मैं राह भूल सकता हूँ, मैं डूब सकता हूँ...किन्तु मेरी उस लक्ष्मी का बन्दरगाह फिर भी है। वही मेरा पूर्ण-स्वरूप भारतवर्ष है...धन से पूर्ण, ज्ञान से पूर्ण, धर्म से पूर्ण। वह भारतवर्ष कहीं नही है. और है केवल यही चारों ओर फैला हुआ झूठ – यह तुम्हारा कलकत्ता शहर, ये दफ्तर, यह अदालत, ये कुछ-एक ईंट-पत्थर के बुलबुले ? छी: छी: !"

बात कहकर गोरा कुछ देर एकटक विनय के चेहरे की ओर देखता रहा। विनय उत्तर न देकर सोचता रहा। गोरा ने फिर कहा, "यह जहाँ हम पढ़ते-सुनते हैं, नौकरी की उम्मीदवारी में घूमते-फिरते है, दस से पाँच तक की भूत की बेगार की तरह क्या जाने क्या करते रहते है, इसका कोई ठिकाना नहीं है। इस जादू के झूठे भारतवर्ष को ही हम सच मान बैठे है, इसीलिए पच्चीस कोटि लोग झूठे मान को मान, झूठे कर्म को कर्म समझकर दिन-रात पागलों-से भटक रहे हैं। इस मरीचिका के भीतर से किसी भी कोशिश से क्या हम छुटकारा पा सकते है ? इसीलिए हम रोज़ सूख-सूखकर मरते जा रहे है। एक सच्चा भारतवर्ष है, परिपूर्ण भारतवर्ष; उसी पर कायम हुए बिना हम लोग न बुद्धि से, न हृदय से सच्चा प्राण-रस खींच सकेंगे। इसीलिए कहता हूँ, और सब भूलकर ख़िताब की विद्या, किताब की माया, नोच-खसोट के प्रलोभन—सबकी पुकार अनसुनी करके उसी बन्दर की ओर जहाज़ को ले जाना होगा; फिर डूबें, मरें तो मरें। यों ही मैं भारतवर्ष की सच्ची मूर्ति, पूर्ण मूर्ति को नहीं भूल सकता !"

विनय—"यह सब केवल जोश की बात तो नहीं है ? तुम सच कह रहे हो ?"

गोरा ने बादल की तरह गरजकर कहा, "सच कह रहा हूँ।"



विनय---"और जो तुम्हारी तरह नहीं देख सकते..."

गोरा ने मुट्ठियाँ बाँधते हुए कहा, "उन्हें दिखलाना होगा। यही तो हम लोगों का काम है। सचाई की छवि स्पष्ट न देख पाने से लोग न जाने कौन-सी परछाईं के सम्मुख आत्म-समर्पण कर देंगे। भारतवर्ष की सर्वांगीण मूर्ति सबके सामने खड़ी कर दो---तब लोग पागल हो उठेंगे; तब घर-घर चन्दा माँगते हुए नहीं फिरना पड़ेगा। जान देने के लिए लोग खुद एक-दूसरे को ठेलते हुए आगे आयेंगे।"

विनय---"या तो मुझे भी और बीसियों लोगों की तरह बहते चले जाने दो, या मुझे भी वही मूर्ति दिखलाओ!"

गोरा---"साधना करो। मन में विश्वास हो तो कठोर साधना में ही सुख मिलेगा। हमारे शौकिया पैट्रियट लोगों में सच्चा विश्वास नहीं है, तभी वे न अपने, न दूसरों के सामने कोई जोरदार दावा कर पाते हैं। स्वयं कुबेर भी अगर उन्हें वर देने आते तो वे शायद लाट-साहब के चपरासी की गिलटदार पेटी से अधिक कुछ माँगने का साहस न कर पाते। उनमें विश्वास नहीं है, इसीलिए कोई आशा भी नहीं है।"

विनय---"गोरा, सबकी प्रकृति समान नहीं होती। तुमने अपना विश्वास अपने भीतर से पाया है, और अपनी ताकत के सहारे खड़े हो सकते हो, इसीलिए दूसरों की अवस्था तुम ठीक समझ ही नहीं सकते। मैं कहता हूँ तुम मुझे चाहे जिस एक काम में लगा दो, दिन-रात मुझसे कसकर काम लो। नहीं तो जितनी देर मैं तुम्हारे पास रहता हूँ, उतनी देर तो जान पड़ता है कि मैंने कुछ पाया; पर दूर हटते ही ऐसा कुछ नहीं पाता जिसे मुट्ठी की पकड़ में रख सकूं।"

गोरा---"काम की बात कहते हो? इस वक्त हमारा एकमात्र काम यह है कि जो कुछ स्वदेश का है उसके प्रति बिना संकोच, बिना संशय, सम्पूर्ण श्रद्धा प्रकट करके देश के अविश्वासियों में भी उसी श्रद्धा का संचार कर दें। देश के मामले में शर्मिन्दा हो-होकर हमने अपने मन को गुलामी के विष से दुर्बल कर दिया है; हममें से प्रत्येक अपने उदाहरण से इसका प्रतिकार करे तभी हमें काम करने का क्षेत्र मिलेगा। अभी हम जो भी काम करना चाहेंगे, वह केवल इतिहास की स्कूली किताब लेकर दूसरों की नकल करना हो जायगा। उस झूठे काम में क्या हम कभी भी सचाई से अपना पूरा मन-प्राण दे सकेंगे? उससे तो केवल अपने को और हीन ही कर देंगे।"

इसी समय हाथ में हुक्का लिये मृदु-मन्द अलस भाव से महिम ने कमरे में

प्रवेश किया। यह समय महिम के दफ्तर से लौटकर, जल-पान करके पान का एक बीड़ा मुँह में और छः-एक बीड़े डिबिया में रखकर, सड़क के किनारे बैठकर हुक्का पीने का था। और थोड़ी देर बाद ही एक-एक करके पड़ोस के यार-दोस्त आ जुटेंगे, तब ड्योढ़ी से लगे हुए कमरे में ताश का खेल जमेगा।

भाई के कमरे में आते ही गोरा कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। महिम ने हुक्के में कश लगाते-लगाते कहा, "भारत के उद्धार के लिए परेशान हो, पहले भाई का उद्धार तो करो!"

गोरा महिम के चेहरे की ओर देखता रहा। महिम बोले, "हमारे दफ्तर में जो नया बाबू आया है—लकड़बग्घे जैसा चेहरा है—वह बहुत ही पाजी है। बाबुओं को बैबून कहता है; किसी की माँ भी मर जाय तो भी छुट्टी देना नहीं चाहता; कहता है, 'बहाना है।' किसी भी बंगाली को किसी महीने में पूरी तनख्वाह नहीं मिलती—जुर्माना करता रहता है। अखबार में उसके बारे में एक चिट्ठी छपी थी; बेटा समझता है कि मेरा ही काम है। खैर, बिलकुल झूठ तो नहीं समझता। इसलिए अब अपने नाम से उसका एक कड़ा प्रतिवाद छपाये बिना टिकने नहीं देगा। तुम लोग तो यूनिवर्सिटी के सागर-मन्थन से मिले हुए दो रत्न हो; जरा यह चिट्ठी अच्छी तरह लिख देनी होगी। जहाँ-तहाँ उसमें 'ईवन-हैंडेड जस्टिस, नेवर-फेलिंग जेनेरासिटी, काइण्ड कर्टियसनेस' इत्यादि-इत्यादि फ़िकरे जड़ देने होंगे।"

गोरा चुप हो गया। विनय ने हँसकर कहा, "दादा, एक ही साँस में इतने सारे झूठ चला देंगे?"

महिम- "शठे शाठ्यं समाचरेत्। बहुत दिनों तक उनकी संगत में रहा हूँ, सब-कुछ मेरा जाना हुआ है। वे लोग जिस ढंग से झूठी बातें चला सकते हैं उसकी तारीफ़ करनी पड़ती है। जरूरत पड़ने पर कुछ भी उनसे परे नहीं है। उनमें से एक झूठ बोले तो और सब गीदड़ों की तरह एक ही सुर में 'हुक्का हुआ' चिल्ला उठते हैं। हमारी तरह एक को फँसाकर दूसरा वाह-वाही पाना नहीं चाहता। यह निश्चय मानो, उनको धोखा देने में कोई पाप नहीं है—हाँ, पकड़ा न जाय, बस।"

बात कहकर महिम ही-ही करते हुए खींच-खींचकर हँसने लगे। विनय से भी हँसे बिना नहीं रहा गया।

महिम बोले, "तुम लोग उनके सामने सच बात कहकर उन्हें शर्मिन्दा करना चाहते हो। भगवान् ने तुम्हें ऐसी अक्ल न दी होती तो देश की ऐसी हालत क्यों

होती ! इतना तो समझना चाहिए कि जिसके पास ताकत है, वह अगर सेंध भी लगा रहा हो तो बहादुरी दिखाकर उसे पकड़वाने जाने पर वह झेंपकर सिर नहीं झुकाता, बल्कि उल्टे चिमटा उठाकर परमसाधु की भाँति हुंकारकर मारने आता है। बताओ यह सच है कि नहीं ?'

विनय "यह तो ठीक है।"

महिम "उससे भी बड़े झूठ की घानी से बिना पैसे का जो तेल मिलता है वह एक-आध छटाँक उसके पैरों पर चुपड़कर यदि कहें, 'साधू महाराज, बाबा परमहंस जी ! दया करके अपनी झोली जरा झाड़ दीजिए···उसकी धूल पाकर भी हम तर जायँगे.' तो शायद अपने ही घर के माल का कम-से-कम एक हिस्सा फिर अपने हाथ आ सकता है, और साथ ही शान्ति-भंग की भी आशंका नहीं रहती। सोचकर देखो तो इसी को ही कहते है पैट्रियटिज़्म। किन्तु मेरा भैया बिगड़ रहा है। हिन्दू होने के नाते वह मुझे बड़े भाई की तरह बहुत मानता है; उसके सामने आज मेरी बात ठीक बड़े भाई की-सी नहीं हुई। लेकिन भई, क्या किया जाय ! झूठी बात के बारे में भी तो सच्ची बात कहनी होगी ! विनय, वह लेख लेकिन मुझे जरूर चाहिए। रुको···मैंने कुछ नोट लिख रखे है, वह ले आऊँ।"

महिम कश लगाते-लगाते बाहर चले गए। गोरा ने विनय से कहा, "विनू, तुम दादा के कमरे में जाकर उन्हें बहलाओ। मै जरा यह लेख पूरा कर लूँ।"

५

'सुनते हो ? तुम्हारे पूजा-घर में नहीं आ रही, घबराओ नहीं; आह्निक पूरा करके ज़रा उस कमरे में आना···तुमसे बात करनी है। दो नये संन्यासी आये हैं तो अब कुछ देर तक तुमसे भेंट नहीं हो सकेगी, यह मैं जान गई। इसीलिए कहने आई थी। भूल नहीं जाना, ज़रूर आना !"

आनन्दमयी बात कहकर फिर घर-गृहस्थी के काम संभालने लौट गईं।

कृष्णदयाल बाबू साँवले रंग के दोहरे बदन के व्यक्ति हैं। कद अधिक लम्बा नहीं। चेहरे में दो बड़ी-बड़ी आँखें ही नजर आती हैं, बाकी समूचा चेहरा खिचड़ी रंग की दाढ़ी-मूँछों से ढका हुआ है। हमेशा गेरुए रंग के रेशमी कपड़े पहने रहते हैं; पैरों में खड़ाऊँ, हाथ के निकट ही पीतल का कमण्डल रहता है। सामने की ओर

टाँट दीखने लगी है, बाकी लम्बे-लम्बे बाल सिर के ऊपर एक बड़ी-सी गाँठ मे बँधे रहते हैं।

एक समय पश्चिम में रहते हुए वह पलटनिया गोरों के साथ हिल-मिलकर मांस-मदिरा सभी कुछ खाते-पीते रहे। उन दिनों देश के पुजारी-पुरोहित, वैष्णव-संन्यासी या इसी श्रेणी के लोगों से उलझकर उनका अपमान करने को भी वह पौरुष समझते थे; अब ऐसी कोई बात ही नहीं होगी जिसे वह मानने को तैयार न हों। नये संन्यासी को देखते ही साधना की नई विधि सीखने के लिए उसके पास धरना देकर बैठ जायँगे; मुक्ति के निगूढ़ पथ और योग की निगूढ़ प्रणालियों के लिए उनमें अपार रुचि है। तान्त्रिक साधना का अभ्यास करने के विचार से वह कुछ दिन उपदेश लेते रहे थे कि इस बीच किसी बौद्ध पुरोहित की खबर पाकर उनका मन फिर चंचल हो उठा है।

उनकी पहली स्त्री एक पुत्र को जन्म देकर मरीं, तब उनकी उम्र कोई तेईस बरस की थी। लड़के को ही माँ की मृत्यु का कारण मान, उस पर क्रोध करके उसे ससुराल में छोड़कर कृष्णदयाल वैराग्य की झोंक में पश्चिम चले गए थे; वहाँ छ: महीने के अन्दर ही काशीवासी सार्वभौम महाशय की पितृहीना नातिन आनन्दमयी से उन्होंने विवाह कर लिया।

पश्चिम में ही कृष्णदयाल ने नौकरी की खोज की और तरह-तरह के उपाय करके सरकारी नौकर-चाकरों में अपनी धाक जमा ली। इधर सार्वभौम महाशय की मृत्यु हो गई; कोई दूसरा अभिभावक न होने से उन्हें पत्नी के साथ ही रखना पड़ा। इसी बीच जब सिपाही-विद्रोह हुआ तब कौशल से दो-एक ऊँचे अंग्रेज अफसरों की जान बचाकर उन्होंने यश के साथ-साथ जागीर पाई। विद्रोह के कुछ दिन बाद ही नौकरी छोड़ दी और नवजात गोरा को लेकर कुछ दिन काशी में ही रहते रहे। गोरा जब पाँच-एक बरस का हुआ तब कृष्णदयाल कलकत्ता आ गए। बड़े लड़के महिम को उसके मामा के यहाँ से लाकर उन्होंने अपने पास रखा और पाल-पोसकर बड़ा किया। अब पिता के जान-पहचान वालों के अनुग्रह से महिम सरकारी खजाने में नौकरी कर रहा है और तरक्की पा रहा है।

गोरा बचपन से ही मुहल्ले के और स्कूल के बच्चों का सरदार रहा है। मास्टरों और पंडितों का जीवन दूभर कर देना ही उसका प्रधान काम और मनोरंजन रहा। कुछ बड़े होते ही वह विद्यार्थियों के क्लब में 'स्वाधीनता-विहीन कौन कौन जीना चाहेगा?' और 'बीस कोटि जनता का घर है' गाकर और अंग्रेजी में भाषण देकर छोटे विद्रोहियों का सेनापति बन बैठा। अन्त में जब छात्र-सभा के अंडे के छिलके में से निकलकर वह वयस्कों की सभा में भी बाँग देने लगा, तब

यह कृष्णदयाल बाबू के लिए मानो बड़े कौतुक का विषय हो गया।

देखते-देखते बाहर के लोगों में गोरा की धाक जम गई; किन्तु घर में किसी ने उसे विशेष मान नहीं दिया। महिम तब नौकरी करने लगे थे; वह गोरा को कभी 'पैट्रियट बड़े भैया' और कभी 'हरीश मुकर्जी द सैकिंड' कहकर तरह-तरह से चिढ़ाकर उसका दमन करने का प्रयत्न करते। बीच-बीच में बड़े भाई के साथ गोरा की हाथा-पाई होते-होते रह जाती। गोरा के अंग्रेज-विद्वेष से आनन्दमयी मन-ही-मन बहुत उद्विग्न होती, और अनेक प्रकार से उसे शान्त करने की चेष्टा करती, पर सब बेकार। गोरा राह चलते कोई मौका देखकर किसी अंग्रेज़ से मार-पीट करके अपने को धन्य मानता।

इधर केशव बाबू की वक्तृताओं से मुग्ध होकर गोरा ब्राह्म-समाज की ओर विशेष आकृष्ट हुआ; उधर ठीक उसी समय कृष्णदयाल घोर रूप से आचार-निष्ठ हो उठे। यहाँ तक कि गोरा के उनके कमरे में जाने से भी वह बेचैन हो उठते। उन्होंने दो-तीन कमरों का मानो अपना स्वतन्त्र महल बना लिया; घर के उतने अंश के द्वार पर उन्होंने 'साधनाश्रम' नाम की लकड़ी की तख्ती लटका दी।

पिता के इन कारनामों के प्रति गोरा का मन विद्रोही हो उठा। 'ये सब फ़िजूल की बातें मैं नहीं सह सकता···ये मेरी आँखों में चुभती है,' यह घोषित करके गोरा पिता से सभी सम्बन्ध तोड़कर बिलकुल अलग हो जाने की बात सोचने लगा था, पर आनन्दमयी ने उसे किसी तरह समझा-बुझाकर रोक लिया था। पिता के पास जिन सब ब्राह्मण-पंडितों का आना-जाना होता रहता था, गोरा अवसर मिलते ही उनके साथ बहस छेड़ देता था। बल्कि उसे बहस न कहकर घूंसा दिखाना ही कहना ठीक होगा। उसमें से अनेकों का पांडित्य बहुत साधारण, और अर्थ-लोभ असीम होता था; गोरा को वे हरा नहीं सकते थे बल्कि उससे ऐसे घबराते थे मानो वह बाघ हो। इन सबमें केवल हरचन्द्र विद्यावागीश के प्रति गोरा के मन में श्रद्धा थी। कृष्णदयाल ने विद्यावागीश को वेदान्त-चर्चा करने के के लिए नियुक्त किया था। उनसे पहली ही बार उद्धत भाव से लड़ाई करने जाकर गोरा ने देखा कि उनसे लड़ाई चल ही नही सकती। केवल यह बात नही थी कि वह विद्वान् थे; उनमें एक अत्यन्त आश्चर्यजनक उदारता भी थी। केवल संस्कृत ऐसी तेज़ और साथ-साथ प्रशस्त बुद्धि किसी की हो सकती है, गोरा इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। विद्यावागीश के स्वभाव में क्षमा और शान्ति से पूर्ण एक ऐसा अविचल धैर्य और गम्भीरता थी कि उनके सामने स्वयं अपने को संयत न करना गोरा के लिए असम्भव था। गोरा ने हरचन्द्र से वेदान्त-दर्शन

पढ़ना आरम्भ किया। कोई काम अधूरे ढंग से करना गोरा के स्वभाव में ही नहीं है, अत: वह दर्शन की आलोचना में बिलकुल डूब गया।

संयोग से इन्हीं दिनों एक अंग्रेज मिशनरी ने किसी अखबार में हिन्दू-शास्त्र और समाज पर आक्रमण करते हुए देश के लोगों को तर्क-युद्ध की चुनौती दी। गोरा तो एकदम आग-बबूला हो गया। यद्यपि वह स्वयं मौका मिलने पर शास्त्र और लोकाचार की निन्दा करके विरोधी मत के लोगों को जितनी हो सके पीड़ा पहुँचाता रहता था, तथापि हिन्दू-समाज के प्रति एक विदेशी की अवहेलना मानो उसे बर्छी-सी चुभ गई।

गोरा ने अखबार में लड़ाई छेड़ दी। दूसरे पक्ष ने हिन्दू-समाज मे जितने दोष दिखाये थे गोरा ने उनमें से कोई भी तनिक-सा भी स्वीकार नहीं किया। दोनों पक्षों से लम्बी चिट्ठी-पत्री के बाद सम्पादक ने घोषित किया कि 'इस विषय में और वाद-विवाद प्रकाशित नहीं किया जायगा।'

किन्तु गोरा को तब तक गुस्सा चढ़ गया था। उसने 'हिन्दुइज़्म' नाम देकर अंग्रेजी में एक पुस्तक लिखना आरम्भ कर दिया, जिसमें वह अपनी योग्यता के अनुसार सभी युक्तियों और शास्त्रों से हिन्दू-धर्म और समाज की अनिन्द्य श्रेष्ठता के प्रमाण खोजकर संग्रह करने में जुट गया।

इस प्रकार मिशनरी के साथ झगड़ा करने जाकर गोरा धीरे-धीरे अपनी ही वकालत में स्वयं हार गया। उसने कहा, 'हम अपने देश को विदेशी की अदालत में अभियुक्त की तरह खड़ा करके विदेशी कानून के अधीन उसका विचार क्यों होने दें? विलायत के आदर्श से एक-एक बात मिलाकर हम न लज्जित होंगे, न गौरव ही मानेंगे। जिस देश में जन्मे हैं, उस देश के आचार, विश्वास, शास्त्र या समाज के लिए दूसरों के या स्वयं अपने सामने जरा भी संकुचित नहीं होंगे। देश का जो कुछ है सभी को सबल और सगर्व भाव से सिर-माथे पर लेकर देश को और स्वयं अपने को अपमान से बचायेंगे।'

ऐसा मानकर गोरा ने शिखा रखी, गंगा-स्नान और सन्ध्या-वन्दन आरम्भ किया, खान-पान और छुआछूत के नियम मानने लगा। तभी से वह प्रतिदिन सवेरे माता-पिता की चरण-धूलि लेता; जिस महिम को वह बात-बात पर अंग्रेजी में 'कैड' और 'स्नॉब' कह दिया करता था उसीको देखते ही उठ खड़ा होता और प्रणाम करता। इस नई भक्ति को लेकर महिम उस पर मनमाने व्यंग्य करता रहता, किन्तु गोरा कभी उनका उत्तर नहीं देता।

अपने उपदेश और आचरण से गोरा ने समाज में लोगों के एक दल को मानो जगा दिया। वे एक भारी खींच-तान से मुक्त हो गए और मानो लम्बी साँस

लेकर कह उठे, 'हम अच्छे हैं कि बुरे, सभ्य हैं कि असभ्य, इसके बारे में हम किसी को कोई जवाब नहीं देना चाहते···हम केवल सोलह आने यह अनुभव करना चाहते है कि हम हम हैं !'

किन्तु गोरा के इस नये परिवर्तन से कृष्णदयाल खुश हुए हों, ऐसा नहीं जान पड़ा। बल्कि एक दिन गोरा को बुलाकर उन्होंने कहा, "देखो जी, हिन्दू-शास्त्र बड़ी गहरी चीज है। ऋषि लोग जो धर्म स्थापित कर गए हैं उसकी गहराई को समझना जिसका-तिसका काम नहीं है। मेरी समझ में, बिना समझे-बूझे उसे लेकर न उलझना ही अच्छा है। तुम अभी बच्चे हो, बराबर अंग्रेजी पढ़ते हुए बड़े हुए हो, तुम जो ब्राह्म-समाज की ओर झुके थे वह तुम्हारे अधिकार के हिसाब से ठीक ही बात थी। इसीलिए मैंने उसका बुरा नहीं माना, बल्कि उससे खुश ही थी। लेकिन अब तुम जिस रास्ते चल रहे हो वह किसी तरह ठीक नहीं जान पड़ता ' वह तुम्हारा रास्ता ही नहीं है।"

गोरा बोला, "यह आप क्या कहते है, बाबा ? मैं भी तो हिन्दू हूँ। हिन्दू धर्म का गूढ़ मर्म आज न समझ सकूं तो कल तो समझूंगा, कभी भी न समझूं तो भी इसी पथ पर तो चलना होगा। हिन्दू-समाज के साथ पूर्व जन्म का सम्बन्ध नही तोड़ सका, तभी तो इस जन्म में ब्राह्मण के घर जन्मा। ऐसे ही जन्म-जन्मान्तर में इसी हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज के भीतर से ही इसकी चरम सीमा तक पहुँच सकूंगा। कभी भूल से दूसरे रास्ते की ओर मुड़ भी जाऊँ तो दुगने वेग से लौट आऊँगा।"

पर कृष्णदयाल सिर हिलाते-हिलाते कहते रहे, "अरे बाबा, हिन्दू कहने से ही तो हिन्दू नही हो जाते। मुसलमान होना आसान है, ख्रिस्तान तो कोई भी हो सकता है···किन्तु हिन्दू ! वह तो बड़ी मुश्किल बात है।"

गोरा -"यह तो ठीक है। लेकिन मैं जब हिन्दू होकर ही जन्मा हूँ, तब ड्योढ़ी को पार कर ही आया हूँ। अब ठीक ढंग से साधना करके धीरे-धीरे आगे भी बढ़ सकूंगा।"

कृष्णदयाल—"बाबा, बहस करके तुम्हें ठीक नहीं समझा सकूंगा। पर तुम जो कहते हो वह भी सच है। जिसका जो कर्म-फल है, जो निर्दिष्ट धर्म है, उसे एक दिन घूम-फिरकर उसी धर्म के पथ पर आना ही होगा···कोई उसे रोक नहीं सकेगा। भगवान् की जैसी इच्छा · हम लोग क्या कर सकते हैं···हम तो निमित्त-भर हैं।"

कर्म-फल और भगवान् की इच्छा, सोऽहंवाद और भक्ति-तत्त्व—कृष्णदयाल

सभी कुछ समान भाव से ग्रहण करते हैं। इन सबमें परस्पर किसी प्रकार के समन्वय की ज़रूरत है, इसका उन्हें कभी अनुभव नहीं होता।

६

सन्ध्या-वन्दन, स्नान-भोजन पूरा करके आज अनेक दिन बाद कृष्णदयाल ने आनन्दमयी के कमरे में प्रवेश किया। फ़र्श पर अपना कम्बल का आसन बिछाकर, सावधानी से चारों ओर के समस्त व्यापार से अपने को विविक्त करके वह बैठ गए।

आनन्दमयी बोलीं, "सुनते हो, तुम तो तपस्या कर रहे हो—घर की कोई खबर नहीं लेते। मुझे तो गोरा की ओर से बराबर डर लगा रहता है।"

कृष्णदयाल—"क्यों, डर किसका ?"

आनन्दमयी—"यह तो मैं ठीक नहीं कह सकती। पर मुझे बराबर लगता है, गोरा ने आजकल यह जो हिन्दूपन शुरू किया है वह उससे निभेगा नहीं; ऐसा ही चलता रहा तो अन्त में न जाने क्या आफ़त आयगी! मैंने तो तुम्हें तब भी कहा था, उसे जनेऊ मत पहनाओ! तब तो तुमने मेरी सुनी नहीं। यही कहा कि गले में एक लच्छी सूत पहना देने से किसी का कुछ आता-जाता नहीं है। लेकिन वह निरा सूत तो नहीं है। अब उसे छुड़ाओगे भी कैसे ?"

कृष्णदयाल—"ठीक है। मानो सारा दोष मेरा ही है। और पहले तुमने जो भूल की सो ? किसी तरह उसे छोड़ने को राज़ी नहीं हुई। तब मैं भी गँवार था, धर्म-कर्म का कुछ ज्ञान तो था नहीं। अब होने से क्या ऐसा काम कर सकता ?"

आनन्दमयी—"तुम जो कहो, मैं किसी तरह नहीं मान सकती कि मैंने कुछ अधर्म किया है। तुम्हें तो याद होगा, सन्तान के लिए मैंने क्या नहीं किया—जिसने जो कहा वही माना—कितने गंडे-ताबीज़ बाँधे, कितने मंतर लिये, सब तो तुम्हें मालूम है। एक दिन स्वप्न में देखा, मैं डलिया-भर तगर के फूल लेकर ठाकुर जी की पूजा करने बैठी हूँ, सहसा मुड़कर देखती हूँ कि डलिया में फूल नहीं हैं, फूल-सा उजला एक शिशु है। आह क्या स्वप्न मैंने देखा, कैसे तुम्हें बताऊँ! मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली; जल्दी से उसे गोद में ले लेने

के लिए झुकी कि मेरी नींद खुल गई। इसके दस ही दिन बाद तो मैंने गोरा को पाया। वह तो ठाकुर जी की देन है···वह क्या और किसी का था कि मैं उसे किसी को लौटा देती ? दूसरे जन्म में उसे गर्भ में लेकर शायद मैंने बहुत कष्ट पाया था तभी वह अब मुझे 'माँ' कहकर पुकारने आ गया। कैसे, कहाँ से वह आया तुम्हीं सोचकर देखो तो। चारों ओर तब मार-काट मची हुई थी, अपनी ही जान के लाले पड़े हुए थे; ऐसे में दोपहर रात मे जब वह मेम हमारे घर छिपने आई तब तुम तो डर के मारे घर में रहने नहीं देना चाह रहे थे, मैंने ही तुमसे लुकाकर उसे गोशाला में छिपा दिया। उसी रात बच्चे को जन्म देकर वह तो मर गई। उस बिना माँ-बाप के बच्चे को अगर मैं न बचाती तो क्या वह बचता ? तुम्हारा क्या है···तुम तो उसे पादरी को दे देना चाहते थे। पादरी को क्या दें ? पादरी क्या उसके माँ-बाप हैं ? पादरी ने क्या उसकी प्राण-रक्षा की थी ? ऐसे जो बच्चा मैंने पाया वह क्या पेट के बच्चे से कम है ? तुम चाहे जो कहो, जिन्होंने यह लड़का मुझे दिया वे स्वयं ही उसे न ले लें तो मैं जान गँवाकर भी उसे और किसी को देने वाली नहीं हूँ।"

कृष्णदयाल—"यह तो जानता हूं। खैर, अपने गोरा को लेकर तुम रहो, मैंने तो इसमें कभी कोई बाधा नहीं दी। किन्तु जब उसे अपना लड़का कहकर उसका परिचय दिया तब यज्ञोपवीत न देने से समाज कैसे मानता···इसीलिए वह भी करना पड़ा। अब केवल दो बातें सोचने की है। न्याय से मेरी सारी सम्पत्ति पर महिम का ही हक है, इसलिए···"

आनन्दमयी—"तुम्हारी सम्पत्ति का हिस्सा कौन लेना चाहता है ? तुमने जो कुछ जमा किया है सब महिम को ही दे देना, गोरा उसका एक पैसा भी नहीं लेगा। वह पुरुष है, पढ़-लिख चुका है, आप कमाकर खायगा; वह दूसरे के धन में हिस्सा बटाने क्यों जायगा भला ? वह राजी-खुशी रहे, बस, इतनी ही मेरी कामना है; मुझे और किसी जायदाद की जरूरत नहीं है।"

कृष्णदयाल—"नही, उसे एकबारगी वंचित नहीं करूँगा; जागीर उसी को दे दूँगा···आगे चलकर उससे साल में हज़ार रुपये की आमदनी तो हो ही जायेगी। अभी जो सोचने की बात है वह उसके विवाह का मामला है। अब तक तो जो किया सो किया, पर अब तो हिन्दू-विधि से ब्राह्मण के घर उसका विवाह नहीं कर सकूँगा···इस पर तुम चाहे गुस्सा करो, चाहे जो करो।"

आनन्दमयी—"हाय-हाय ! तुम समझते हो, तुम्हारी तरह सारी दुनिया पर गोबर और गंगा-जल छिड़कती हुई नहीं फिरती, इसलिए मुझे धर्म का ज्ञान ही

नहीं है ? ब्राह्मण के घर उसका विवाह क्यों करने जाऊँगी, और गुस्सा क्यों करूँगी ?''

कृष्णदयाल--''क्यों, तुम जो ब्राह्मण-कुल की हो !''

आनन्दमयी--''होती रहूँ ब्राह्मण-कुल की। बम्हनाई करना तो मैंने छोड़ ही दिया है। महिम के विवाह के समय भी मेरे रंग-ढंग को 'खि्स्तानी चाल' कहकर समधी लोग बखेड़ा करना चाहते थे; मैं तब जान-बूझकर अलग हट गई थी--कुछ बोली ही नहीं। सारी दुनिया मुझे खि्स्तान कहती है, और भी क्या कुछ कहती है...मैं सब मान लेती हूँ...मानकर ही कहती हूँ, तो क्या ? खि्स्तान क्या इन्सान नहीं है ? तुम्हीं अगर इतनी ऊँची जाति के और भगवान् के इतने प्यारे हो, तो भगवान् क्यों इस तरह तुम्हारा सिर कभी पठान के, कभी मुग़ल के, और कभी खि्स्तान के पैरों में झुकवा देते हैं ?''

कृष्णदयाल--''ये सब बड़ी-बड़ी बातें हैं। तुम औरत-जात नहीं समझोगी। लेकिन समाज भी कुछ है, यह तो समझती हो ? उसे तो मानकर ही चलना होगा।''

आनन्दमयी--''मुझे समझाने की जरूरत नहीं है। मैं तो इतना समझती हूँ कि जब मैंने गोरा को बेटा मानकर पाला-पोसा है, तब आचार-विचार का ढोंग करने से समाज रहे या न रहे, धर्म तो नहीं रहेगा। मैंने केवल धर्म के भय से ही कभी कुछ नहीं छिपाया। मैं तो कुछ मानती नहीं, यह मैं सभी को बता देती हूँ...और सबकी घृणा ओढ़कर चुपचाप पड़ी रहती हूँ। केवल एक बात मैंने छिपाई है; उसीके लिए डर से घुली जाती हूँ...ठाकुर जी न जाने कब क्या कर दें, मेरा तो मन होता है, गोरा से सारी बात कह दूँ, फिर भाग्य में जो होना बदा हो, वही हो।''

कृष्णदयाल ने हड़बड़ाकर कहा, ''नहीं-नहीं ! मेरे रहते यह किसी तरह नहीं हो सकेगा। गोरा को तो जानती ही हो। यह बात सुनकर वह क्या कर बैठेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर समाज में एक हलचल मच जायगी। और क्या इतना ही ? उधर गवर्नमेंट क्या करेगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। गोरा का बाप तो लड़ाई में मारा गया, और उसकी माँ भी मर गई, यह भी मालूम है; लेकिन सारा हंगामा शान्त होने के बाद तो मजिस्ट्रेट को खबर देना उचित था ! अब इसी बात को लेकर कोई उपद्रव खड़ा हो गया तो मेरा भजन-पूजन तो सब मिट्टी में मिलेगा ही, और भी क्या आफ़त खड़ी होगी, इसका क्या ठिकाना है !''

आनन्दमयी निरुत्तर होकर बैठी रही। कृष्णदयाल थोड़ी देर बाद बोले, ''गोरा के विवाह के बारे में मैं मन-ही-मन एक बात सोचता रहा हूँ। परेश

भट्टाचार्य मेरे साथ पढ़ता था···स्कूल की इन्स्पेक्टरी के काम से पेनशन लेकर आजकल कलकत्ता आकर रहने लगा है। कट्टर ब्राह्म है। सुना है, उसके घर में अनेक लड़कियाँ भी है। गोरा को किसी तरह उनके साथ भिड़ा दिया जाय तो उसके घर आते-जाते रहने से परेश की कोई लड़की उसे पसन्द भी आ-जा सकती है। उसके आगे फिर प्रजापति को जो मंज़ूर हो।"

आनन्दमयी—"क्या कह रहे हो तुम? गोरा ब्राह्म के घर आय-जायगा? वह दिन उसके गये!"

उनके यह कहते-कहते गोरा अपने मेघमन्द्र स्वर म 'माँ' पुकारता हुआ कमरे में आया। कृष्णदयाल को वहाँ बैठे हुए देखकर वह कुछ चकित-सा हो गया; आनन्दमयी हड़बड़ाकर उठीं और गोरा के पास आकर आँखों में स्नेह उमड़ाती हुई बोली, "क्यों बेटा, क्या चाहिए?"

"नहीं खास कुछ नहीं, फिर सही," कहकर गोरा वापस जाने लगा।

कृष्णदयाल बोले, "ज़रा ठहरो, एक बात कहनी है। मेरे एक ब्राह्म मित्र आजकल कलकत्ता आये हुए हैं. हेदोनल्ले में रहते हैं··"

गोरा बोला—"कौन, परेशबाबू?"

कृष्णदयाल—"तुम उन्हें कैसे जानते हो?"

गोरा—"विनय उसके घर के पास ही रहता है, उसीसे उनकी बात सुनी है।"

कृष्णदयाल—"मैं चाहता हूँ, तुम उनका हाल-चाल पूछ आना!"

गोरा मन-ही-मन कुछ सोचता रहा। फिर सहसा बोला, "अच्छा, मैं कल ही जाऊँगा।"

आनन्दमयी कुछ अचम्भे में आ गई।

थोड़ी देर सोचकर गोरा ने कहा, "नहीं···कल तो मेरा जाना नहीं हो सकेगा।"

कृष्णदयाल—"क्यों?"

गोरा—"कल मुझे त्रिवेणी जाना है।"

कृष्णदयाल ने चौंककर कहा, "त्रिवेणी!"

गोरा—"कल सूर्य-ग्रहण का नहान है।"

आनन्दमयी—"अब तुमसे क्या कहा जाय, गोरा! स्नान करना है तो कलकत्ता में भी तो गंगा है। त्रिवेणी के बिना तेरा नहान नहीं होगा। तू तो देश-भर के लोगों से आगे बढ़ गया है!"

गोरा इस बात का कोई उत्तर दिये बिना चला गया।

गोरा के त्रिवेणी-स्नान करने जाने के संकल्प का कारण यह था कि वहाँ अनेक तीर्थ-यात्री इकट्ठे होंगे। उसी साधारण जनता के साथ घुल-मिलकर गोरा अपने को देश की एक बहुत बड़ी धारा में बहा देना और देश के हृदय की धड़कन को अपने हृदय में अनुभव करना चाहता है। गोरा को जहाँ भी तनिक-सा अवकाश मिलता है, वहीं वह अपना सारा संकोच, अपने सारे पूर्वसंस्कार बलपूर्वक छोड़कर देश की साधारण जनता के साथ मैदान में आ खड़ा होना चाहता है और पूरे मन से कहना चाहता है, "मैं तुम्हारा हूँ, तुम सब मेरे हो।"

७

सवेरे उठकर विनय ने देखा, रातों-रात आकाश साफ़ हो गया है। सवेरे का प्रकाश दुधमुँहे शिशु की हँसी-सा निर्मल फूट रहा है। दो-एक उजले मेघ बिलकुल बिना प्रयोजन भटकते हुए-से आकाश में तिर रहे हैं।

बरामदे में खड़ा-खड़ा एक और निर्मल प्रभात की याद से वह पुलकित हो रहा था कि उसने देखा, एक हाथ में छड़ी और दूसरे हाथ से सतीश का हाथ थामे परेश बाबू धीरे-धीरे सड़क पर चले आ रहे हैं। सतीश ने विनय को बरामदे में देखते ही ताली देकर पुकारा, "विनय बाबू!" परेश बाबू ने मुँह उठाकर विनय को देखा। विनय जब जल्दी से नीचे उतर आया तब सतीश के साथ-साथ परेश बाबू ने भी उसके घर के भीतर प्रवेश किया।

सतीश ने विनय का हाथ पकड़ते हुए कहा, "विनय बाबू, आपने तो उस दिन कहा था, हमारे घर आयेंगे; अभी तक क्यों नहीं आये?"

विनय स्नेह से सतीश की पीठ पर हाथ फेरता हुआ हँसने लगा। परेश बाबू ने सावधानी से अपनी छड़ी मेज के सहारे खड़ी की और कुर्सी पर बैठते हुए बोले, "उस दिन आप न होते तो हम लोग बड़ी मुसीबत में पड़ जाते। आपने बड़ा उपकार किया।"

विनय ने शरमाते हुए कहा, "आप क्या कहते हैं— कुछ भी तो नहीं किया मैंने।"

सतीश ने सहसा पूछा, "अच्छा विनय बाबू, आपका कुत्ता नहीं है?"

विनय ने हँसकर कहा, "कुत्ता? नहीं, कुत्ता तो नहीं है।"

सतीश ने फिर पूछा, "क्यों, कुत्ता क्यों नहीं पालते ?"

विनय ने कहा, "कुत्ते की बात तो कभी सोची नहीं।"

परेश बाबू बोले, "मैंने सुना है, उस दिन सतीश आपके यहाँ आया था, ज़रूर बहुत तंग करता रहा होगा। वह इतना बकता है कि उसकी बहन उसे 'बक्त्यार खिलजी' कहती है।"

विनय ने कहा, "मैं भी बहुत बोलता हूँ, तभी हम दोनों की खूब दोस्ती हो गई है; क्या राय है, सतीश बाबू ?"

सतीश ने इस बात को कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन फिर यह सोचकर कि उसके नये नामकरण से कहीं विनय के सामने उसकी हेठी न हो गई हो, वह बेचैन हो उठा और बोला, "ठीक है, अच्छी बात है—बक्त्यार खिलजी ने तो लड़ाई लड़ी थी न ? उसने तो बंगाल को जीत लिया था न ?"

विनय ने हँसकर कहा, "पुराने ज़माने में वह लड़ाई लड़ता था, आजकल लड़ाई की ज़रूरत नहीं होती ! अब वह अकेला वक्तृता करता है और बंगाल को जीत भी लेता है।"

बहुत देर तक ऐसी बात-चीत होती रही। परेश बाबू सबसे कम बोले; केवल बीच में एक शान्त प्रसन्न मुस्कराहट उनके चेहरे पर खेल जाती, कभी एकाध छोटी-मोटी बात वह कह देते। विदा के समय कुर्सी से उठते हुए बोले, "हमारा ७८ नम्बर का मकान यहाँ से सीधे दाहिने को ..."

सतीश बोला, "वह हमारा घर पहचानते हैं। उस दिन तो मेरे साथ हमारे घर के दरवाज़े तक गये थे।"

इस बात पर झेंपने का कोई कारण नहीं था; किन्तु विनय मन-ही-मन ऐसा झेंप गया मानो उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो।

वृद्ध बोले, "तब तो आप घर पहचानते हैं। तब कभी आपका उधर..."

विनय 'वह आपको कहना नहीं होगा...जब भी..."

परेश -"हम लोगों का तो एक ही मुहल्ला है; कलकत्ता है इसीलिए अब तक जान-पहचान नहीं हुई।"

विनय सड़क तक परेश बाबू के साथ आया। द्वार पर वह थोड़ी देर खड़ा रहा। परेश बाबू छड़ी के सहारे धीरे-धीरे चले और सतीश उनके साथ-साथ बरा-बर बोलता हुआ चला।

विनय ने मन-ही-मन कहा, "परेश बाबू-जैसा सज्जन वृद्ध नहीं देखा। पैर छूने की इच्छा होती है। और सतीश भी कैसा तेज लड़का है ! बड़ा होकर खूब आदमी होगा...जितनी तेज़ बुद्धि है उतना ही सीधा स्वभाव है।'

वृद्ध और बालक कितने भी अच्छे क्यों न हों, इतने थोड़े परिचय से उन पर इतनी अधिक श्रद्धा और स्नेह साधारणतया सम्भव न होता। किन्तु विनय के मन की अवस्था ऐसी थी कि उसे अधिक परिचय की जरूरत नहीं थी।

फिर विनय मन-ही-मन सोचने लगा, 'परेश बाबू के घर जाना ही होगा, नहीं तो बदतमीज़ी होगी।' किन्तु साथ ही मानो गोरा का स्वर लेकर उनके दल का भारतवर्ष उसे टोकने लगा, 'तुम्हारा यहाँ आना-जाना नहीं हो सकता··· ख़बरदार !'

विनय ने कदम-कदम पर दल के भारतवर्ष के बहुत-से निषेध माने हैं। कई बार उसके मन में द्विधा भी रही है, फिर भी निषेध उसने मान लिया है। पर आज उसके मन में एक विद्रोह जाग उठा। उसका मन कहने लगा, 'यह भारतवर्ष तो केवल निषेधों की मूर्ति है !'

नौकर ने आकर खबर दी कि भोजन तैयार है। किन्तु अभी तो विनय नहाया भी नहीं ! बारह बज चुके है ! सहसा विनय ने ज़ोर से सिर हिलाकर कह दिया, "मैं नहीं खाऊँगा, तुम खा-पी लो !" उसने छाता उठाया और एकाएक बाहर निकल पड़ा, कंधे पर चादर भी उसने नहीं ली।

वह सीधा गोरा के घर जा पहुँचा। विनय जानता था, एमहर्स्ट स्ट्रीट में एक मकान किराये पर लेकर वहाँ 'हिन्दू-हितैषी-सभा' का दफ़्तर रखा गया है, प्रतिदिन दोपहर को गोरा दफ्तर जाकर बैठता है और वहाँ से सारे बंगाल में जहाँ भी उसके दल के जो सदस्य है उन्हें चिट्ठियाँ लिखकर बढ़ावा देता है। और यहीं उसके भक्त उसके मुँह से उपदेश सुनने आते हैं और उसके सहायक होकर अपने को धन्य मानते है।

उस दिन भी गोरा दफ्तर गया हुआ था। विनय मानो दौड़ता हुआ सीधा भीतर आनन्दमयी के कमरे में जा खड़ा हुआ। आनन्दमयी उस समय भात परोस कर खाने बैठी रही थीं; लछमिया पास बैठी पंखा झल रही थी।

आनन्दमयी ने आश्चर्य से कहा, "क्यों विनय, क्या हुआ है तुम्हें ?"

विनय ने उनके सामने बैठते हुए कहा, "माँ, बड़ी भूख लगी है, खाने को कुछ दो !"

आनन्दमयी ने हड़बड़ाकर कहा, "यह तो तुमने बड़ी मुश्किल में डाल दिया। ब्राह्मण-ठाकुर तो चला गया है, और तुम तो···"

विनय ने कहा, "मैं क्या ब्राह्मण-ठाकुर के हाथ का खाने आया हूँ ? ऐसा होता तो मेरे यहाँ के ठाकुर ने ही क्या अपराध किया था ? मैं तुम्हारी पत्तल का प्रसाद चाहता हूँ, माँ ! लछमिया ला तो मेरे लिए भी एक गिलास पानी..."

लछमिया के पानी लाते ही विनय गट्-गट् करके पी गया। तब आनन्दमयी ने एक थाली और मँगाई; अपनी पत्तल से भात उठाकर वह उसमें परोसने लगीं और विनय साल-भर के भूखे की भाँति खाने लगा।

आनन्दमयी के मन का एक दुःख आज दूर हुआ। उनके चेहरे की प्रसन्नता देखकर विनय की छाती पर से भी मानो एक बोझ उतर गया। आनन्दमयी फिर तकिये का गिलाफ़ सीने बैठ गईं। साथ के कमरे में सुगन्धित कत्था तैयार करने के लिए केवड़े के फूल रखे गए थे, उनकी गन्ध कमरे में फैल रही थी। विनय आनन्दमयी के पैरों के पास, कोहनी टेक, हाथ पर सिर रख अधलेटा होकर पड़ गया और दुनिया को भूलकर पुराने-दिनों की तरह ही हँस-हँसकर बात करने लगा।

८

इस एक बाँध के टूटते ही मानो विनय के हृदय में एक नई बाढ़ उमड़ने लगी। आनन्दमयी के कमरे से निकलकर बाहर सड़क पर आकर वह मानो एका-एक उड़ने लगा। उसके पाँव मानो धरती पर नहीं पड़ रहे थे। उसकी इच्छा हुई जिस बात को लेकर वह पिछले कई दिन से मन-ही-मन संकोच से मरता रहा है, वह मुँह खोलकर सबके सामने घोषित कर दे।

विनय जिस समय ७८ नम्बर के दरवाजे पर पहुँचा, ठीक उसी समय दूसरी ओर से परेश बाबू भी आते हुए दीखे।

"आइये-आइये, विनय बाबू, बड़ी खुशी हुई!" कहते हुए परेश बाबू विनय को सड़क से लगे हुए बैठने के कमरे में ले गए।

एक छोटी मेज़; एक ओर पीठ वाली बेंच, दूसरी ओर लकड़ी और बेंत की कुर्सियाँ; दीवार पर एक तरफ़ ईसा का रंगीन चित्र और दूसरी तरफ़ केशव बाबू का फ़ोटो। मेज़ पर पिछले दो-चार दिन के अखबार तहाकर रखे हुए, उनके ऊपर सीसे का चाँपा, कोने में एक छोटी अलमारी, जिसके ऊपर के ताक में थिओडोर पार्कर की पुस्तकों की कतार सजी हुई दीखती है। अलमारी के ऊपर कपड़े से ढका हुआ ग्लोब रखा है। विनय बैठ गया, पर उसका दिल धड़कने लगा। उसकी पीठ के पीछे दरवाज़ा खुला है, कोई सहसा उधर से आ गया तो···!

परेश बाबू ने कहा, "सोमवार को सुचरिता मेरे एक मित्र की लड़की को पढ़ाने जाती है। वहाँ सतीश की उम्र का भी एक लड़का है, इसलिए सतीश भी उसके साथ गया है। मैं वहाँ पहुँचाकर लौट रहा हूँ। और तनिक-सी भी देर हो जाती तो आपसे भेंट ही न होती !"

बात सुनकर विनय ने निराशा के आघात के साथ-साथ कुछ तसल्ली का भी अनुभव किया। परेश के साथ बातचीत एक बहुत ही सहज स्तर पर आ गई।

बातों-ही-बातों में परेश बाबू ने विनय के बारे में थोड़ा-थोड़ा करके बहुत-कुछ जान लिया। विनय के माँ-बाप नहीं हैं; काका-काकी देस में रहकर काम संभालते हैं। उसके दो चचेरे भाई उसके साथ रहकर पढ़-लिख रहे थे; बड़ा अब वकील होकर उनके ज़िले की कचहरी में वकालत करता है, छोटा कलकत्ता में रहता हुआ हैज़े से मर गया। काका की इच्छा है कि विनय डिप्टी-मजिस्ट्रेटी के लिए दौड़-धूप करे, किन्तु विनय कोई कोशिश न करके तरह-तरह के फ़िज़ूल के कामों में लगा हुआ है।

ऐसे ही प्राय: घंटा-भर बीत गया। बिना प्रयोजन के और अधिक बैठना अशिष्टता होगी, यह सोचकर विनय उठ खड़ा हुआ और बोला, "अपने दोस्त सतीश से भेंट नहीं हुई, इसका दु:ख रह गया --उसे कह दीजिएगा मैं आया था।"

परेश बाबू ने कहा, "ज़रा देर और ठहरें तो उन लोगों से भेंट हो जायगी—अब तो वे आते ही होंगे।"

इतनी-सी बात का सहारा लेकर फिर बैठ जाने में विनय को संकोच हुआ। थोड़ा और ज़ोर देने से वह फिर बैठ जाता; किन्तु परेश बाबू अधिक बोलने या आग्रह करने वाले व्यक्ति नहीं थे, इसलिए विदा ही लेनी पड़ी। परेश बाबू ने कहा, "बीच-बीच में आते रहियेगा, हमें खुशी होगी।"

बाहर सड़क पर आकर घर लौटने का कोई प्रयोजन विनय को नहीं जान पड़ा। वहाँ कोई काम नहीं था। विनय अखबारों में लिखता है; उसके अंग्रेज़ी लेखों की सभी बड़ी तारीफ़ करते हैं। किन्तु पिछले कई दिन से लिखने बैठने पर उसके दिमाग़ में कुछ आता-जाता ही नहीं। मेज़ के सामने अधिक बैठे रहना मुश्किल होता है; मन छटपटाने लगता है। इसलिए आज विनय बिना कारण ही उल्टी दिशा में चल पड़ा।

दो कदम भी नहीं गया होगा कि एक बालक-कंठ की पुकार उसे सुनाई दी, "विनय बाबू, विनय बाबू !"

उसने मुंह उठाकर देखा, एक भाड़ा-गाड़ी के दरवाज़े से उझककर सतीश उसे पुकार रहा है। गाड़ी के भीतर साड़ी का पल्ला और सफ़ेद आस्तीन का अंश देखकर विनय को यह पहचानने में कोई कठिनाई नही हुई कि दूसरा व्यक्ति कौन है।

बंगाली शिष्टाचार के अनुसार गाड़ी की ओर और झांकना विनय के लिए असंभव था। पर इसी बीच सतीश गाड़ी से उतरकर उसके पास आ गया और उसका हाथ पकड़ता हुआ बोला, "चलिए हमारे घर!"

विनय ने कहा, "अभी तुम्हारे घर से ही तो आ रहा हूँ।"

सतीश · "वाह, तब हम लोग तो नहीं थे। फिर चलिए!"

सतीश के आग्रह को विनय टाल न सका। बन्दी को लिये हुए घर में प्रवेश करता हुआ सतीश पुकारकर बोला, "बाबा, विनय बाबू को पकड़ लाया।"

वृद्ध बाहर निकलते हुए मुस्कराकर बोले, "अब आप कड़ी पकड़ में आ गए हैं, जल्दी छुटकारा नहीं मिलने का। सतीश, अपनी दीदी को तो बुला ला!"

विनय कमरे में आकर बैठ गया। उसकी सांस ज़ोर से चलने लगी। परेश बाबू बोले, "आप हाँफ गए शायद। सतीश बड़ा ज़िद्दी लड़का है।"

सतीश ने जब बहन को साथ लिये हुए कमरे में प्रवेश किया तब विनय ने पहले एक हल्की-सी सुगन्ध पाई, और फिर सुना, परेश बाबू कह रहे थे, "राधे, विनय बाबू आये हैं···उन्हें तो तुम सब जानते ही हो।"

विनय ने मानो चकित-सा होकर मुंह उठाकर देखा, सुचरिता उन्हें नमस्कार करके सामने की कुर्सी पर बैठ गई। इस बार विनय प्रति-नमस्कार करना नहीं भूला।

सुचरिता ने कहा, "यह चले जा रहे थे, इन्हें देखते ही सतीश को और रोकना मुश्किल हो गया – गाड़ी से कूदकर इन्हें खींचकर ले आया। आप शायद किसी काम से जा रहे थे —आपको कोई असुविधा तो नहीं हुई?"

सुचरिता सीधे विनय को सम्बोधित करके कोई बात कहेगी, विनय ने ऐसा बिलकुल नहीं सोचा था। सकपकाकर बोला, "नही, मुझे कोई काम नहीं था··· कोई असुविधा नहीं हुई।"

सतीश ने सुचरिता का आंचल पकड़कर खींचते हुए कहा, "दीदी, ज़रा चाबी देना तो—ज़रा अपना वह आर्गन विनय बाबू को दिखाएँ।"

सुचरिता हँसती हुई बोली, "बस, अब शुरू हुआ! बख्तियार की किसी से दोस्ती हुई नहीं कि उसकी शामत आई। आर्गन तो उसे सुनना ही होगा···और भी कई मुसीबतें उसकी किस्मत में लिखी हैं। विनय बाबू, आपका यह दोस्त तो

छोटा है, पर इसकी दोस्ती की ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी है। न मालूम आप उठा भी सकेंगे या नहीं?"

सुचरिता की ऐसी निस्संकोच बात-चीत में वह भी कैसे सहज भाव से योग दे सकता है, यह विनय किसी तरह सोच ही नहीं सका। वह शरमायगा नहीं, इसकी दृढ़ प्रतिज्ञा करके भी वह किसी तरह टूटे-फूटे स्वर में इतना ही कह पाया कि "नहीं, वह कुछ नहीं...आप उसका...मैं...मुझे तो अच्छा ही लगता है।"

सतीश ने बहन से चाबी लेकर आर्गन निकाला और उसे लेकर आ खड़ा हुआ। चौकोर काँच से मढ़े हुए, तरंगित सागर की तरह रंगे हुए नीले कपड़े पर एक खिलौना-जहाज़ था; सतीश के चाबी देते ही आर्गन के सुर-ताल के साथ जहाज़ डगमगाता हुआ चलने लगा; सतीश एक बार जहाज़ की ओर और एक बार विनय के चेहरे की ओर देखता हुआ अपनी चंचलता को किसी तरह भी छिपा नहीं सका।

इस प्रकार सतीश के बीच में रहने से धीरे-धीरे विनय का संकोच टूट गया और धीरे-धीरे बीच-बीच में मुँह उठाकर सुचरिता से दो-एक बात कर लेना भी उसके लिए असम्भव न रह गया।

सतीश ने बिना प्रसंग के ही सहसा पूछ लिया, "अपने बन्धु को एक दिन हमारे यहाँ नहीं लायँगे?"

इस पर विनय के बन्धु के बारे में सवाल पूछे जाने लगे। परेश बाबू हाल ही में कलकत्ता आये हैं, इसलिए वे लोग गोरा के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। विनय अपने बन्धु की बात करता हुआ उत्साहित हो उठा। गोरा में कैसी असाधारण प्रतिभा है, उसका हृदय कितना विशाल है, उसकी शक्ति कैसी अटल है, इसका बखान करते हुए मानो विनय की बात ही नहीं चुकती थी। 'गोरा एक दिन सारे भारतवर्ष पर दोपहर के सूरज की तरह चमक उठेगा,' विनय को इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं था।

बात कहते-कहते विनय का चेहरा मानो चमक उठा और उसका सारा संकोच एकाएक दूर हो गया। बल्कि गोरा के सिद्धान्तों के विषय में परेश बाबू के साथ थोड़ा वाद-प्रतिवाद भी हुआ। विनय ने कहा, "गोरा जो हिन्दू-समाज को समूचा ऐसे निःसंकोच ग्रहण कर पाता है उसका कारण यही है कि वह बहुत ऊँचाई से भारतवर्ष को देखता है। उसके लिए भारतवर्ष के छोटे-बड़े सब एक विराट् ऐक्य में बँधे हैं, एक बृहत् संगीत में घुल-मिलकर सम्पूर्ण दिखाई देते हैं। वैसे देख पाना हम सबके लिए सम्भव नहीं है, तभी हम लोग भारतवर्ष के टुकड़े-टुकड़े करके,

विदेशी-आदर्शों के साथ उनका मिलान करके केवल भारत के साथ अन्याय करते हैं।"

सुचरिता बोली, "आप क्या कहते हैं, कि जाति-भेद अच्छा है?"

बात ऐसे कही गई मानो इस बारे में कोई बहस हो ही नहीं सकती।

विनय बोला, "जाति-भेद न अच्छा है, न बुरा। यानी कहीं अच्छा है, कहीं बुरा। अगर पूछा जाय कि हाथ अच्छी चीज़ है कि बुरी, तो मैं कहूँगा, सारे शरीर में मिलाकर देखें तो अच्छी चीज़ है। किन्तु अगर पूछें कि उड़ने के लिए अच्छी है या नहीं, तो मैं कहूँगा कि नहीं—वैसे ही जैसे मुट्ठी पकड़ने के लिए डैने अच्छी चीज़ नहीं हैं।"

सुचरिता ने उत्तेजित होकर कहा, "वह सब बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं यह पूछती हूँ कि क्या आप जाति-भेद मानते हैं?"

और किसी से बहस होती तो विनय ज़ोर देकर कहता, "हाँ, मानता हूँ।" किन्तु आज वह ज़ोर देकर ऐसा नहीं कह सका। यह उसकी भीरुता थी या कि वास्तव में 'जाति-भेद मानता हूँ' यह बात जहाँ तक जाती है वहाँ तक जाना उसे आज स्वीकार नहीं होता, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। बहस अधिक न बढ़े, इस आशय से परेश बाबू ने बात बदलते हुए कहा, "राधे, माँ को और सब लोगों को बुला लाओ तो—इनसे परिचय करा दूँ।"

सुचरिता के उठकर बाहर जाते समय सतीश भी बात करते-करते उछलता हुआ उसके साथ चला गया।

कुछ देर बाद ही सुचरिता ने लौटकर कहा, "बाबा, माँ आप सबको ऊपर बरामदे में बुला रही हैं।"

६

पोर्च की छत पर सफ़ेद कपड़े से ढकी हुई मेज़ के आस-पास कुर्सियाँ सजी हुई थीं। मुँडेर के बाहर कोर्निस पर छोटे-छोटे गमलों में सदाबहार और दूसरे फूलों के पौधे लगे हुए थे। मुँडेर पर से ही नीचे सड़क के किनारे के सिरिस और कृष्ण-चूड़ पेड़ों की बरसात से धुली हुई और पल्लवित चिकनाई दीख रही थी।

सूर्य अभी अस्त नहीं हुआ था, पश्चिम से ढलती धूप की किरणें छत के एक

हिस्से में पड़ रही थीं। उस समय वहाँ पर कोई नहीं था। थोड़ी देर बाद ही सतीश सफ़ेद और काले बालों वाले कुत्ते को लिये हुए आ पहुँचा। कुत्ते का नाम था खुद्दे। कुत्ते को जो कुछ आता था सतीश ने विनय को सब दिखाया- एक पैर उठाकर सलाम करना, फिर सिर ज़मीन पर टेककर प्रणाम करना, बिस्कुट का टुकड़ा देखकर पूंछ पर बैठ, अगले पैर जोड़कर भीख माँगना। इसके लिए खुद्दे को जो कुछ प्रशंसा मिली, सतीश ने उसे मानो अपनी समझकर गर्व का अनुभव किया- -स्वयं कुत्ते की ओर से ऐसा यश कमाने का कोई उत्साह नहीं था, बल्कि उसकी समझ में तो उस यश की अपेक्षा बिस्कुट का टुकड़ा ही अधिक सत्य था !

किसी दूसरे कमरे से बीच-बीच में लड़कियों की खिलखिलाहट और अचम्भे की आवाज़ें और उनके साथ एक मर्दानी आवाज़ भी सुनाई पड़ जाती थी। इस खुले हँसी-मज़ाक के स्वर से विनय के मन में एक अपूर्व मिठास के साथ-साथ मानो एक ईर्ष्या की टीस-सी पैदा हुई। घर के भीतर लड़कियों की ऐसी आनन्द-भरी हँसी, वयस्क होने के समय से उसने कभी नहीं सुनी। यह आनन्द-माधुरी उसके इतनी निकट ही उच्छ्वसित हो रही है, फिर भी वह उससे इतनी दूर है। सतीश उसके कान के निकट क्या बोलता ही चला जा रहा था, विनय उसकी ओर ध्यान नहीं दे सका।

परेश बाबू की स्त्री अपनी तीनों लड़कियों को साथ लेकर आ गई। उनके साथ एक युवक भी आया, उसका उनसे दूर का रिश्ता है।

परेश बाबू की स्त्री का नाम है वरदासुन्दरी। उनकी उम्र कम नहीं है, किन्तु देखते ही पता लगता है कि साज-सँवार विशेष यत्नपूर्वक किया गया है। काफ़ी उम्र तक गाँव-देहात की लड़की की तरह रहकर उन्हें सहसा एक दिन आधुनिक युग के साथ-साथ इसीकी गति से चलने की धुन लग गई थी। इसीलिए उनकी रेशमी साड़ी कुछ अधिक सरसराती थी और उनके ऊँची एड़ी के जूते कुछ अधिक खट्-खट् करते थे। दुनिया में कौन-कौन-सी बातें ब्राह्म हैं और कौन-सी अब्राह्म, उसकी पड़ताल में वे सर्वदा बहुत सतर्क रहती है। इसीलिए उन्होंने राधारानी का नाम बदलकर सुचरिता रख दिया है। रिश्ते में उनके ससुर लगने वाले एक सज्जन ने बरसों बाद अपनी परदेश की नौकरी से लौटने पर उनके लिए 'जमाईषष्ठि' भेजी थी; परेश बाबू तब किसी काम से बाहर गए हुए थे; वरदासुन्दरी ने उपहार की सभी चीज़ें वापस भेज दी थीं। उनकी राय में ये सब व्यवहार कुसंस्कार और मूर्ति पूजा के अंग थ। लड़कियों के पैरों में मोजा पहनने, और टोपी पहनकर बाहर निकलने को भी वह ऐसा महत्त्व देती है मानो ये ब्राह्म-समाज के धर्म-सिद्धान्त का अंग हों। किसी ब्राह्म-परिवार को ज़मीन पर आसन बिछाकर भोजन

करते देख उन्होंने यह आशंका प्रकट की थी कि आजकल ब्राह्म-समाज फिर मूर्त्ति-पूजा की ओर फिसलने लगा है।

उनकी बड़ी लड़की का नाम है लावण्य। गोल-मटोल और हँस-मुख, उसे लोगों से मिलना-जुलना और गप करना अच्छा लगता है। गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, गेहुआँ रंग; वेश-भूषा के मामले में वह स्वभाव से ही लापरवाह है, किन्तु इस बारे में उसे माँ के शासन के अनुसार चलना होता है। उसे ऊँची एड़ी के जूतों से तकलीफ़ होती है, लेकिन पहने विना उपाय नहीं है। शाम को साज-सँवार के समय माँ अपने हाथों से उसके चेहरे पर पाउडर और गालों पर रंग लगा देती है। वह कुछ मोटी है, इसलिए वरदासुन्दरी ने उसके कपड़े ऐसे चुस्त सिलवाये हैं कि जब लावण्य सजकर बाहर निकलती है तब जान पड़ता है मानो उसे मशीन से दबाकर बोरी में भरकर बाँध दिया गया हो।

मँझली लड़की का नाम है ललिता। कहा जा सकता है कि वह बड़ी से ठीक उलटी है। लम्बाई में बड़ी बहन से ऊँची, दुबली, रंग कुछ अधिक साँवला: बात-चीत अधिक नहीं करती और अपने ढंग से रहती है; मन होने पर कड़ी-कड़ी बातें सुना सकती है। वरदासुन्दरी मन-ही-मन उससे डरती है, सहसा उसे नाराज़ कर देने का साहस नहीं करती।

छोटी है लीला। उसकी उम्र दस-एक बरस होगी। वह दौड़-धूप और दंगा करने में तेज़ है; सतीश के साथ उसकी धक्का-मुक्की और मार-पीट बराबर होती रहती है। विशेषतया घर के कुत्ते खुद्दे का मालिक कौन है, इसको लेकर उनका जो झगड़ा चला आता है, उसका अभी तक कोई फ़ैसला नहीं हो सका। कुत्ते की अपनी राय लेने से तो शायद वह दोनों में से किसी को भी अपना मालिक न चुनता, किन्तु इन दोनों में से शायद उसका झुकाव सतीश की ओर ही कुछ अधिक है, क्योंकि लीला के प्यार का दबाव सहना उस बेचारे छोटे-से जीव के लिए आसान नहीं। लड़की के प्यार की अपेक्षा लड़के का अत्याचार सहना ही उसके लिए कम मुश्किल था।

वरदासुन्दरी के आते ही विनय ने उठकर शीश झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। परेश बाबू ने कहा, "इन्हीं के घर उस दिन हम..."

वरदासुन्दरी बोलीं, "ओह! बड़ा उपकार किया आपने...हम आपके बड़े आभारी हैं।"

विनय ऐसा संकुचित हुआ कि ठीक से कुछ उत्तर नहीं दे सका।

लड़कियों के साथ जो युवक आया था उसके साथ भी विनय का परिचय हुआ। उसका नाम है सुधीर; कालेज में बी० ए० में पढ़ता है। सुघड़ चेहरा, गोरा

रंग, आँखों पर चश्मा और मूंछों की हल्की-सी रेख। स्वभाव बड़ा चंचल है—थोड़ी देर भी चुपचाप बैठा रह नहीं सकता, कुछ-न-कुछ करने के लिए बेकल हो उठता है। लड़कियों से हँसी-मज़ाक करके, या उन्हें चिढ़ाकर उनकी नाक में दम किये रहता है। लड़कियाँ भी मानो उसे बराबर डाँटती ही रहती हैं, किन्तु साथ ही सुधीर के बिना जैसे उनका काम भी नहीं चलता। सर्कस दिखाने या चिड़िया-घर की सैर कराने को, या शौक की कोई चीज़ खरीदकर लाने को सुधीर हमेशा तैयार है। लड़कियों के साथ सुधीर का बे-झिझक अपनेपन का बर्ताव विनय को बिलकुल नया और विस्मयकारी जान पड़ा। पहले तो उसने मन-ही-मन ऐसे व्यवहार की निन्दा की, किन्तु फ़िर उस निन्दा के साथ थोड़ा-थोड़ा ईर्ष्या का भाव भी मिश्रित होने लगा।

वरदासुन्दरी ने कहा, "आपको, जान पड़ता है, समाज में दो-एक बार देखा है।"

विनय को लगा, मानो उसका कोई अपराध पकड़ा गया है। अनावश्यक रूप से लज्जित होता हुआ वह बोला, "हाँ, कभी-कभी केशव बाबू के व्याख्यान सुनने चला जाता हूँ।"

वरदासुन्दरी ने पूछा, "आप शायद कालेज में पढ़ते हैं?"

"नहीं, अब तो और नहीं पढ़ता।"

वरदा ने पूछा, "कालेज में कहाँ तक पढ़े हैं?"

विनय बोला, "एम० ए० पास किया है।"

सुनकर बच्चों-जैसे चेहरे वाले इस युवक के प्रति वरदासुन्दरी को मानो श्रद्धा हुई। लम्बी साँस लेकर परेश की ओर उन्मुख होकर उन्होंने कहा, "मेरा मनू अगर होता तो वह भी अब तक एम० ए० पास कर चुका होता।"

वरदा की पहली सन्तान मनोरंजन की मृत्यु नौ वर्ष की आयु में ही हो गई थी। जब कभी वह सुनती हैं कि किसी युवक ने कोई बड़ी परीक्षा पास की है या बड़ा पद पाया है, कोई अच्छी पुस्तक लिखी है या कोई अच्छा काम किया है, तभी उन्हें ध्यान आता है, मनू बचा रहता तो उसके द्वारा भी ठीक वैसा ही कार्य सम्पन्न हुआ होता। जो हो, जब वह नहीं है तब आज के जन-समाज में अपनी तीन कन्याओं का गुण-गान करना ही वरदासुन्दरी का विशेष कर्तव्य हो गया है। उनकी लड़कियाँ पढ़ने-लिखने में बहुत अच्छी हैं, यह बात वरदा ने विनय को विशेष रूप से बताई। मेम ने उनकी लड़कियों की बुद्धि और गुणों के बारे में कब-कब क्या-क्या कहा, यह भी विनय से अपरिचित न रहा। लड़कियों के स्कूल में प्राइज़ देने के लिए जब लैफ्टिनैंट-गवर्नर और उनकी मेम आई थीं, तब उन्हें गुलदस्ते भेंट

करने के लिए स्कूल की सब लड़कियों में से विशेष रूप से लावण्य को ही चुना गया था; और गवर्नर की स्त्री ने लावण्य को उत्साह देने के लिए क्या मीठा वाक्य कहा था, यह भी विनय ने सुन लिया।

अन्त में वरदा ने लावण्य से कहा, "जिस सिलाई के लिए तुम्हें पुरस्कार मिला था वह ज़रा ले आना तो, बेटी!"

ऊनी कपड़े की सिलाई की एक तोते की छवि इस घर के सभी आत्मीय परिजनों में विख्यात हो चुकी थी। मेम की सहायता से लावण्य ने यह चीज़ बहुत दिन पहले बनाई थी, इसमें लावण्य का अपना कृतित्व बहुत अधिक रहा हो यह बात भी नहीं थी। किन्तु नये परिचित को यह दिखाना ही होगा, यह मानी हुई बात थी। शुरू-शुरू में परेश आपत्ति करते थे, किन्तु उसे बिलकुल व्यर्थ जानकर अब उन्होंने भी आपत्ति करना छोड़ दिया है। ऊन के तोते की रचना की कारीगरी को विनय विस्फारित आँखों से देख रहा था, तभी बैरे ने आकर एक चिट्ठी परेश के हाथ में दी।

चिट्ठी पढ़कर परेश बाबू खिल उठे। उन्होंने कहा, "बाबू को यहीं लिवा लाओ!"

वरदा ने पूछा, "कौन है?"

परेश बोले, "मेरे बचपन के दोस्त कृष्णदयाल ने अपने लड़के को हम लोगों से मिलने के लिए भेजा है।"

विनय का दिल सहसा धक्-सा हो गया और उसका चेहरा पीला पड़ गया। फिर क्षण-भर बाद ही वह मुट्ठियाँ भींचकर जमकर बैठ गया, मानो किसी प्रतिकूल पक्ष से अपनी रक्षा करने के लिए तैयार हो गया हो। गोरा इस परिवार के लोगों को अवज्ञा से देखेगा और समझेगा, यह सोचकर विनय मानो पहले से ही उत्तेजित हो उठा।

१०

तश्त में जल-पान और चाय की चीज़ें सजाकर नौकर के हाथ दे, सुचरिता ऊपर आकर बैठी थी कि उसी समय बैरा के साथ गोरा ने प्रवेश किया। उसका गोरा-तगड़ा शरीर और चेहरा-मोहरा देखकर सभी विस्मित हो उठे।

गोरा के माथे पर गंगा की मिट्टी की छाप थी। गाढ़े की धोती के ऊपर उसने तनीदार कुर्ता पहन रखा था, जिस पर मोटी चादर थी; पैरों में उठी सूँड़ वाले कटकी जूते थे। मानो वर्तमान काल के विरुद्ध एक मूर्तिमान विद्रोह-सा वह सामने खड़ा था। उसका ऐसा रूप विनय ने भी इससे पहले कभी नहीं देखा था।

गोरा के मन में आज एक विरोध की आग विशेष रूप से धधक रही थी। उसका कारण भी था।

ग्रहण के स्नान के लिए कल तड़के ही किसी स्टीमर-कम्पनी का जहाज़ यात्री लादकर त्रिवेणी के लिए रवाना हुआ था। रास्ते में जहाँ-तहाँ एक-एक पड़ाव से अनेक यात्री-स्त्रियों के दल, अपने साथ दो-दो एक-एक पुरुष अभिभावक लिये जहाज़ पर सवार हो रहे थे। पीछे कहीं जगह ही न मिले, इसलिए भारी ठेलम-ठेल हो रही थी। जहाज़ पर सवार होने के तख्ते पर कीचड़-सने पैरों से चलती हुई कोई स्त्री बेपर्दा होती हुई नदी के पानी में गिर पड़ती थी, किसी को खलासी धक्का देकर भी गिरा देते थे। कोई स्वयं सवार हो गई थी, पर साथियों के न चढ़ सकने से घबरा रही थी। बीच-बीच में वर्षा की बौछार आकर उन्हें और भिगो दे रही थी। जहाज़ में उनके बैठने का स्थान सब कीच से भर गया था। उनके चेहरे पर और आँखों में एक त्रस्त, पीड़ित, करुण भाव था—मानो निश्चित रूप से यह जानकर कि वे बेबस होकर भी इतनी क्षुद्र हैं कि जहाज़ के मल्लाह से लेकर मालिक तक कोई उनकी प्रार्थना पर ज़रा-सी सहायता भी नहीं करेगा, उनकी प्रत्येक चेष्टा में एक अत्यन्त कातर आशंका का भाव दीख जाता था। ऐसी हालत में गोरा भर-सक यात्रियों की सहायता कर रहा था। ऊपर पहले दर्जे की डेक से एक अंग्रेज़ और एक आधुनिक ढंग के बंगाली बाबू जहाज़ की रेलिंग पकड़े आपस में हँसी-मज़ाक करते हुए मुंह में चुरुट लगाये तमाशा देख रहे थे। बीच-बीच में किसी यात्री की विशेष दुर्गति देखकर अंग्रेज़ हँस उठता था, और बंगाली भी उसमें योग दे रहा था।

दो-तीन स्टेशन इसी तरह पार करते हुए गोरा को यह असह्य हो उठा। उसने ऊपर जाकर अपने वज्र कठोर स्वर में गरजकर कहा, "धिक्कार है तुम लोगों को! शरम नहीं आती?"

अंग्रेज़ ने कड़ी दृष्टि से गोरा को सिर से पैर तक देखा। बंगाली ने उत्तर दिया, "शरम? हाँ, देश के इन सब जाहिल जानवरों के कारण शरम ही आती है।"

गोरा मुँह लाल करके बोला, "जाहिलों से बड़े जानवर वह हैं जिनमें हृदय नहीं है।"

बंगाली ने बिगड़कर कहा, "यह तुम्हारी जगह नहीं है---यह फ़र्स्ट क्लास है।"

गोरा ने कहा, "नहीं, तुम्हारे साथ मेरी जगह हो ही नहीं सकती---मेरी जगह उन्हीं यात्रियों के साथ है। लेकिन मैं कहे जाता हूँ---फिर मुझे अपने इस फ़र्स्ट क्लास में आने को मजबूर न करना!" कहता हुआ गोरा धड़-धड़ाता हुआ नीचे उतर गया। अंग्रेज ने उसके जाते ही आरामकुर्सी पर दोनों पाँव फैलाकर उपन्यास मे मुँह गड़ा लिया। उसके सहयात्री बंगाली ने उससे बात करने की दो-एक बार कोशिश की, किन्तु वह जमी नहीं। वह देश के साधारण आदमियों में से नहीं है, यह सिद्ध करने के लिए उसने खानसामा को बुलाकर पूछा, "क्या खाने के लिए मुर्गी की कोई डिश मिल सकती है?"

खानसामा ने बताया कि केवल रोटी-मक्खन और चाय मिल सकती है।

इस पर अंग्रेज को सुनाकर बंगाली ने अंग्रेजी भाषा में कहा, "क्रीचर कम्फ़र्ट्स के मामले में भी जहाज़ का बन्दोबस्त बिलकुल रद्दी है।"

अंग्रेज़ ने कोई उत्तर नहीं दिया। मेज़ पर से उड़कर उसका अखबार नीचे गिर गया था; बंगाली बाबू ने कुर्सी से उठकर वह उठाकर उन्हें दिया, किन्तु बदले में 'थैंक्स' तक नहीं पाया। चन्दननगर पहुँचकर उतरते समय साहब ने सहसा गोरा के पास जाकर टोपी उठाते हुए कहा, "अपने बर्ताव के लिए मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ---आशा है आप मुझे क्षमा कर देंगे।" कहता हुआ वह तेजी से आगे बढ़ गया।

लेकिन एक पढ़ा-लिखा बंगाली अपनी साधारण जनता की दुर्गति देखकर विदेशी को बुलाकर अपनी श्रेष्ठता का अभिमान करके हँस सकता है, इसका आक्रोश गोरा के भीतर सुलगता रहा। देश की साधारण जनता ने अपने को सब तरह के अपमान और दुर्व्यवहार का ऐसा आदी बना लिया है कि उनके साथ पशुवत् व्यवहार करने पर भी वे उसे स्वीकार कर लेते है, बल्कि स्वाभाविक और संगत भी मान लेते हैं-- इसकी जड़ में जो देश-व्यापी गम्भीर अज्ञान है उसका ध्यान करके गोरा की छाती फटने लगी। किन्तु सबसे अधिक उसे यही अखर रहा था कि देश के इस अपमान और दुर्गति को पढ़े-लिखे लोग अपने ऊपर नहीं लेते-- निर्मम होकर अपने को अलग करके उसमें अपना गौरव भी मान सकते हैं। आज इसीलिए पढ़े-लिखे लोगों की सारी किताबी पढ़ाई और नकलची संस्कार के प्रति सम्पूर्ण उपेक्षा दिखाने के लिए ही गोरा ने माथे पर गंगा की मिट्टी की छाप लगाई थी और अद्भुत ढंग के नये कटकी जूते खरीदे थे; उन्हें पहनकर

छाती फुलाकर वह इस ब्राह्म परिवार में आया था।

विनय मन-ही-मन यह समझ गया कि गोरा का आज का रूप उसकी युद्ध-सज्जा है। आज गोरा न जाने क्या कर बैठे, इसी आशंका से विनय का मन एक भय, संकोच और विरोध के भाव से भर उठा।

वरदासुन्दरी जब विनय के साथ परिचय करा रही थीं तब सतीश अपने लिए कोई काम न पाकर छत के एक कोने में टीन की एक घिर्री घुमाता हुआ अपना मन बहला रहा था। गोरा को देखकर उसका खेल बन्द हो गया। फिर उसने विनय के कान में प्रश्न किया, "यही क्या आपके बन्धु हैं?"

विनय ने कहा, "हाँ।"

गोरा छत पर आकर एक क्षण-भर विनय के चेहरे की ओर देखता रहा, फिर मानो ऐसा हो गया कि विनय उसे दीखा ही न हो। परेश को नमस्कार करके उसने निःसंकोच भाव से एक कुर्सी खींचकर तेज़ से कुछ दूर हटाई और उस पर बैठ गया। वहाँ कहीं कोई स्त्रियाँ भी हैं, यह लक्ष्य करना मानो उसने अशिष्टता समझा।

'इस असभ्य के पास से लड़कियों को लेकर चली जायँ,' वरदासुन्दरी यह निश्चय कर रही थीं कि परेश ने उनसे कहा, "इनका नाम गौरमोहन है, मेरे मित्र कृष्णदयाल के लड़के हैं।"

तब गोरा ने उनकी ओर मुड़कर नमस्कार किया। विनय से बातचीत में सुचरिता यद्यपि गोरा की बात पहले ही सुन चुकी थी, तथापि यह समझने में उसे देर लगी कि यह अभ्यागत ही विनय का मित्र है। पहली दृष्टि से ही गोरा के प्रति उसमें एक खीझ उपजी। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे किसी व्यक्ति में कट्टर हिन्दूपन देखकर सह सके, ऐसे संस्कार सुचरिता के नहीं थे, न इतनी सहिष्णुता थी।

परेश ने गोरा से अपने बाल-बन्धु कृष्णदयाल के हाल-चाल पूछे। फिर अपनी छात्रावस्था की बात करते हुए बोले, "उन दिनों कालेज में हमारी अलग जोड़ी थी; दोनों काला पहाड़ की तरह थे—कुछ मानते ही नहीं थे...होटल में खाना ही कर्तव्य समझते थे। दोनों कितनी बार सन्ध्या के समय गोलदिग्घी पर बैठकर मुसलमान की दूकान का कबाब खाकर आधी-आधी रात तक बैठे इस पर बहस किया करते थे कि कैसे हम लोग हिन्दू-समाज का सुधार करेंगे।"

वरदासुन्दरी ने पूछा, "आजकल वह क्या करते हैं?"

गोरा बोला, "अब वह हिन्दू-आचार का पालन करते हैं।"

वरदा बोलीं, "लाज नहीं आती?" मानो क्रोध से उनका सर्वांग जल रहा था।

गोरा ने कुछ हँसकर कहा, "लाज कमज़ोर चरित्र का लक्षण है। कोई-कोई तो बाप का परिचय देने में भी लजाते हैं।"

वरदा—"पहले वह ब्राह्म नहीं थे?"

गोरा—"मैं भी तो एक समय ब्राह्म था।"

वरदा—"और अब आप साकार उपासना में विश्वास करते हैं?"

गोरा—"आकार नाम की चीज़ की बिना कारण अवज्ञा करूँ, ऐसा कुसंस्कार मेरा नहीं है। आकार को गाली देने से ही क्या वह मिट जायगा? आकार का रहस्य कौन जान सका है?"

परेश बाबू ने मृदु स्वर से कहा, "लेकिन आकार सीमा-विशिष्ट जो है।"

गोरा ने कहा, "सीमा के बिना तो कुछ प्रकट ही नहीं हो सकता। असीम अपने को प्रकट करने के लिए ही सीमा का आश्रय लेता है, नहीं तो वह प्रकट कहाँ है, और जो प्रकट नहीं है वह सम्पूर्ण नहीं है। वाक्य में जैसे भाव है, वैसे ही आकार में निराकार परिपूर्ण होता है।"

वरदा ने सिर हिलाकर कहा, "आप यह कहना चाहते हैं कि आकार निराकार से अधिक सम्पूर्ण है?"

गोरा—"मैं यदि न भी कहूँ तो उससे कुछ आता-जाता नहीं है; संसार में आकार मेरे कहने-न-कहने पर निर्भर नहीं करता। निराकार ही यदि यथार्थ परिपूर्णता होती तो आकार को कहीं स्थान न मिलता।"

सुचरिता की यह अत्यन्त उत्कट इच्छा होने लगी कि कोई इस उद्धत युवक को बहस में बिलकुल हराकर उसे नीचा दिखा दे। विनय चुपचाप बैठा हुआ गोरा की बात सुन रहा है, यह देखकर उसे मन-ही-मन क्रोध आया। गोरा इतने ज़ोर से अपनी बात कह रहा था कि उस ज़ोर को नीचा दिखाने के लिए सुचरिता के मन में भी बलवती प्रेरणा हुई।

इसी समय बैरा चाय के लिए केतली में गरम पानी लाया। सुचरिता उठकर चाय बनाने में लग गई। विनय बीच-बीच में चकित-सा सुचरिता के चेहरे की ओर देख लेता। यद्यपि उपासना के सम्बन्ध में विनय का मन गोरा से विशेष भिन्न नहीं था, तथापि उसे इस बात से कष्ट हो रहा था कि गोरा बिना बुलाये इस ब्राह्म परिवार में आकर, ऐसी ढिठाई से उनके विरुद्ध मत का प्रतिपादन कर रहा है। गोरा के इस प्रकार लड़ने को तैयार आचरण के साथ वृद्ध परेश के आत्म-समाहित प्रशान्त भाव, सभी प्रकार के तर्क-वितर्क से परे एक गहरी प्रसन्नता की तुलना करके विनय का हृदय उनके प्रति भक्ति से भर उठा। वह मन-ही-मन कहने लगा, 'मतामत कुछ नहीं होते, अन्तःकरण की पूर्णता, स्थिरता और आत्म-प्रसाद, यही सबसे दुर्लभ वस्तुएँ हैं। बाद में कौन सच है, कौन झूठ, इसे

लेकर चाहे जितनी बहस कर लें, उपलब्धि में जो सच है वही वास्तव में सच है।' परेश बाबू सारी बातचीत के बीच कभी-कभी आँखें बन्द करके अपने अन्तर के भीतर कहीं डूब जाते थे—यही उनका अभ्यास था—उस समय की उनकी अन्तर्निविष्ट, शान्त मुखश्री को विनय एकटक देख रहा था। गोरा भी इस वृद्ध के प्रति भक्ति का अनुभव करके अपनी बातों को संयत नहीं कर रहा है, इससे विनय को बड़ी तकलीफ़ हो रही थी।

कई-एक प्याले चाय बनाकर सुचरिता ने परेश के चेहरे की ओर देखा। चाय के लिए वह किससे अनुरोध करे और किससे न करे, इस बारे में उसे दुविधा हो रही थी। वरदासुन्दरी ने गोरा की ओर देखते हुए पूछ ही तो लिया, "आप तो शायद यह सब कुछ लेंगे नहीं।"

गोरा ने कहा, "नहीं।"

वरदा—"क्यों? जात चली जायगी क्या?

गोरा ने कहा, "हाँ।"

वरदा—"आप जात मानते हैं?"

गोरा—"जात क्या मेरी अपनी बनाई हुई है, जो न मानूँगा? जब समाज को मानता हूँ तब जात को भी मानता हूँ।"

वरदा—"समाज को क्या हर बात में मानना ही होगा?"

गोरा—"न मानने से समाज टूट जायगा।"

वरदा—"टूट ही जायगा तो क्या बुराई है?"

गोरा—"जिस डाल पर सब एक साथ बैठे हों उसे काट देने में क्या बुराई है?"

सुचरिता ने मन-ही-मन बहुत विरक्त होकर कहा, "माँ, फ़िज़ूल बहस करने से क्या फ़ायदा—वह हमारा छूआ नहीं खायँगे।"

गोरा ने पहली बार सुचरिता की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। सुचरिता विनय की ओर देखकर थोड़े संशय के स्वर में बोली, "आप क्या...?"

विनय कभी चाय नहीं पीता। मुसलमान की बनाई हुई डबल-रोटी-बिस्कुट खाना भी उसने बहुत दिने हुए छोड़ दिया है। किन्तु आज उसके न खाने से नहीं चलेगा। उसने सिर उठाकर जोर से कहा, "हाँ, ज़रूर लूँगा।" कहकर उसने गोरा के मुँह की ओर देखा। गोरा के ओठों पर कठोर हँसी की हल्की-सी रेखा दीख पड़ी। चाय विनय को कड़वी लगी, किन्तु उसने पीना नहीं छोड़ा।

वरदासुन्दरी ने मन-ही-मन कहा, 'आह, यह विनय कितना अच्छा लड़का है!' फिर उन्होंने गोरा की ओर से बिलकुल ही मुँह फेरकर विनय की ओर मन दिया। यह देखकर परेश बाबू ने धीरे-धीरे अपनी कुर्सी गोरा की ओर सरकाते

हुए मृदु स्वर में उससे वातचीत करना शुरू किया।

सड़क पर मूँगफली वाले ने 'ताज़ी भुनी हुई मूँगफली' की पुकार लगाई। सुनते ही लीला ने ताली बजाकर कहा, "सुधीर-दा, मूँगफली वाले को बुलाओ!"

उसके कहते ही सतीश छत से झुककर मूँगफली वाले को बुलाने लगा।

इसी बीच एक और सज्जन आ उपस्थित हुए। सभी ने उन्हें 'पानू बाबू' कहकर सम्बोधित किया। किन्तु उनका असली नाम था हारानचन्द्र नाग। इस टोली में विद्वता और बुद्धि के लिए उनकी विशेष ख्याति है। यद्यपि किसी ओर से भी कोई बात साफ़-साफ़ नहीं कही गई, तथापि यह सम्भावना मानो वायु-मंडल में बराबर तैरती रही है कि इन्हींके साथ सुचरिता का विवाह होगा। पानू बाबू का हृदय सुचरिता की ओर आकृष्ट है, इसके बारे में किसी को कोई सन्देह नहीं था; और इसी बात को लेकर लड़कियाँ सर्वदा सुचरिता से ठिठोली करती रहती थीं।

पानू बाबू स्कूल में मास्टरी करते हैं। वरदासुन्दरी उन्हें निरा स्कूलमास्टर मानकर उनका विशेष सम्मान नहीं करती। वह कुछ ऐसा भाव दिखाती हैं कि पानू बाबू को अगर उनकी किसी लड़की के प्रति अनुराग प्रकट करने का साहस नहीं हुआ, तो वह उचित ही हुआ है। उनके भावी दामाद डिप्टीगिरी के लक्ष्य-वेध की कठिन प्रतिज्ञा से बँधे हुए हैं···

सुचरिता के हारान बाबू की ओर एक प्याला चाय बढ़ाते लावण्य दूर से ही उसकी ओर देखकर दबे ओठों से मुस्कराने लगी। वह सूक्ष्म हँसी भी विनय से अलक्षित न रही। इतने थोड़े समय में ही दो-एक मामलों में विनय की नजर बड़ी तेज़ और सतर्क हो उठी थी—नहीं तो इससे पहले वह दीठ के पैनेपन के लिए ऐसा प्रसिद्ध नहीं था।

हारान और सुधीर बहुत दिनों से इस परिवार की लड़कियों से परिचित हैं, और इस परिवार के इतिहास के साथ इतने बँधे हुए हैं कि लड़कियों में आपस के इशारों का विषय बन गए है, विनय को यह बात विधाता के अविचार-सी लगी और उसके मन में चुभन-सी होने लगी। उधर हारान के आ जाने से सुचरिता के मन में थोड़ी-सी आशा का उदय हुआ। गोरा की हेकड़ी को जैसे भी हो सके नीचा दिखाया जाय तो उसका जी ठंडा हो। दूसरे मौकों पर हारान की बहसबाज़ी से वह प्रायः खीझ उठती है, किन्तु आज इस तर्क वीर को देखकर उसने आनन्द-पूर्वक उसके सम्मुख चाय और डबलरोटी की रसद हाज़िर कर दी।

परेश बाबू ने कहा, "पानू बाबू, ये हैं हमारे..."

हारान ने कहा, "इन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। एक समय यह हमारे ब्राह्म-

समाज के बड़े उत्साही सदस्य थे।"

यह कहकर गोरा से किसी तरह की बातचीत की कोशिश न करके हारान चाय के प्याले की ओर ही सारा ध्यान देने लगे।

उन दिनों तक दो-एक बंगाली ही सिविल सर्विस की परीक्षा पास करके स्वदेश लौटे थे। सुधीर उन्हीं में से एक के स्वागत की बात सुना रहा था। हारान ने कहा, "बंगाली चाहे जितनी परीक्षाएँ पास कर लें, किसी बंगाली के द्वारा काम कुछ नहीं हो सकता।"

कोई बंगाली मजिस्ट्रेट या जज जिले का भार लेकर कभी नहीं संभाल सकेगा, यही सिद्ध करने के लिए हारान बाबू बंगाली चरित्र के अनेक दोषों और दुर्बलताओं की व्याख्या करने लगे। देखते-देखते गोरा का मुँह लाल हो उठा। उसने अपनी शेर की-सी दहाड़ को भरसक दबाते हुए कहा, "आपकी राय अगर सचमुच यही हो, तो आराम से यहाँ मेज़ पर बैठे हुए डबलरोटी किस मुँह से चबा रहे हैं?"

हारान ने विस्मय से भवें उठाते हुए कहा, "तो आप क्या करने को कहते है?"

गोरा--"या तो बंगाली चरित्र के कलंक को मिटाइये, या गले में फाँसी लगाकर मरिए जाकर। हमारी जाति के द्वारा कभी कुछ नहीं होगा, यह बात क्या ऐसी आसानी से कह देने की है? आपके गले में रोटी अटक नहीं जाती?"

हारान—"सच्ची बात कहने में क्या डर है?"

गोरा—"आप बुरा न मानें, किन्तु यह बात अगर आप वास्तव में सच समझते, तो ऐसे आराम से यों बढ़ा-चढ़ाकर न कह सकते। आप जानते हैं कि बात झूठ है, तभी यह बात आपके मुँह से निकल सकी। हारान बाबू, झूठ बोलना पाप है, झूठी निन्दा और भी बड़ा पाप है, और अपनी जाति की झूठी निन्दा से बड़ा पाप शायद ही कोई हो!"

हारान गुस्से से बेचैन हो उठे। गोरा ने कहा, "आप अकेले ही क्या अपनी सारी जाति से बड़े है? आप गुस्सा करेंगे, और अपने पुरखों की ओर से हम सब चुप-चाप सहते जायँगे?"

अब तो हारान के लिए हार मानना और भी कठिन हो गया। उन्होंने और भी ऊँचे स्वर से बंगालियों की निन्दा करना शुरू किया। बंगाली समाज की अनेक प्रथाओं का उल्लेख करके वे बोले, "ये सब रहते हुए बंगाली से कोई उम्मीद नहीं हो सकती।"

गोरा ने कहा, "आप जिन्हें कुप्रथा कहते हैं केवल अंग्रेज़ी किताबें रटकर कहते है; स्वयं उनके बारे में कुछ नहीं जानते। जब अंग्रेजी की सब कुप्रथाओं

की भी आप ठीक ऐसे ही बुराई कर सकेंगे तब इस बारे में और कुछ कहिएगा।"

परेश बाबू ने इस प्रसंग को बन्द करने की चेष्टा की, किन्तु क्रुद्ध हारान ने बात को किसी तरह नहीं छोड़ा। सूर्य अस्त हो गया; बादलों के भीतर से आने वाले एक अपूर्व लाल प्रकाश से सारा आकाश लावण्यमय हो उठा; विनय के प्राणों के भीतर एक स्वर तर्क के कोलाहल को डुबाता हुआ गूंज उठा। परेश बाबू अपनी सायंकालीन उपासना में मन लगाने के लिए छत से उठकर बगीचे के चम्पा के पेड़ के नीचे बने हुए चबूतरे पर जा बैठे।

वरदासुन्दरी का मन जैसे गोरा के प्रति विमुख था, वैसे ही हारान भी उनके विशेष प्रिय नहीं थे। इन दोनों की बहस जब उनके लिए बिलकुल असह्य हो गई तब उन्होंने विनय बाबू को बुलाते हुए कहा, "चलिए, विनय बाबू, हम लोग कमरे में चलें!"

वरदासुन्दरी का यह स्नेहपूर्ण पक्षपात स्वीकार करके विनय को विवश होकर छत से कमरे में आना पड़ा। वरदा ने लड़कियों को भी बुला लिया। सतीश बहस की गति देखकर पहले ही मूंगफली का हिस्सा लेकर और कुत्ते खट्टू को साथ लेकर अन्तर्धान हो चुका था।

वरदासुन्दरी विनय के सामने अपनी लड़कियों के गुण बखान करने लगीं। लावण्य से बोलीं, "अपनी वह कापी लाकर विनय बाबू को दिखाना..."

नये परिचितों को यों कापी दिखाने का लावण्य को अभ्यास हो गया है। यहाँ तक कि वह मन-ही-मन इसकी राह देखती रहती है। आज बहस उठ खड़ी होने के कारण वह कुण्ठित-सी हो गई थी।

विनय ने कापी खोलकर देखी, उसमें अंग्रेज़ी कवि मूर और लांगफेलो की कविताएँ लिखी हुई थीं। हाथ की लिखावट परिश्रम और परिपाटी का परिचय दे रही थी। कविताओं के शीर्षक और प्रथमाक्षर रोमन शैली में लिखे गए थे।

कापी देखकर विनय के मन में अकृतिम विस्मय उदित हुआ। उन दिनों मूर की कविता कापी में नकल कर सकना लड़कियों के लिए कम बहादुरी की बात नहीं थी। विनय का मन काफ़ी प्रभावित हो गया है, यह देखकर वरदासुन्दरी ने मँझली लड़की को सम्बोधित करके कहा, "ललिता, तू बड़ी लक्ष्मी-बेटी है, ज़रा अपनी वह कविता..."

ललिता ने रुखाई से कहा, "नहीं माँ, मुझसे नहीं होगा। वह मुझे अच्छी तरह याद नहीं है।" यह कहकर वह दूर खिड़की के पास खड़ी होकर बाहर सड़क की ओर देखने लगी।

वरदासुन्दरी ने विनय को समझाया, "उसे याद सब-कुछ है, किन्तु ललिता बड़ी घुन्नी है—अपनी विद्या को प्रकट करना नहीं चाहती।" उन्होंने ललिता की

आश्चर्यजनक विद्या-बुद्धि का परिचय देने के लिए दो-एक घटनाओं का ब्यौरा देकर कहा, "ललिता बचपन से ही ऐसी है, रुलाई आने पर उसकी आँखों में आँसू भी आते थे।" इस मामले में पिता से उसके स्वभाव की तुलना भी उन्होंने कर दी।

अब लीला की बारी आई। उसे कहते ही वह पहले तो खिलखिलाकर हँसती रही; फिर धड़ा-धड़ एक ही साँस में चाबी के बाजे की तरह बिना अर्थ समझे हुए हुए 'ट्विंकल टिवंकल लिट्ल स्टार' कविता सुना गई।

अब संगीत-विद्या का परिचय देने का समय आ पहुँचा है, यह समझकर ललिता कमरे से बाहर चली गई।

बाहर छत पर बहस तब तक गरम हो उठी थी। गुस्से में आकर हारान तर्क छोड़कर गालियों पर उतर आने को हो रहे थे। हारान की असहिष्णुता से लज्जित और विरक्त होकर सुचरिता गोरा का पक्ष लेने लगी थी, यह बात भी हारान के लिए सान्त्वना या शान्ति देने वाली नहीं थी।

आकाश में अँधेरा और सावन के मेघ घने हो आए; सड़क पर बेला के फूलों की हाँक लगाते हुए फेरी वाले निकल गए। सामने सड़क के कृष्णचूड़ा पेड़ के पल्लवों में जुगनू चमकने लगे। साथ के घर की पोखरी के पानी पर एक घनी कालिमा छा गई।

उपासना पूरी करके परेश बाबू फिर छत पर आ गए। उन्हें देखकर गोरा और हारान दोनों ही झेंपकर चुप हो गए। गोरा ने खड़े होकर कहा, "रात हो गई, अब चलूँ!"

विनय भी विदा लेकर कमरे से बाहर छत पर आ गया था। परेश ने गोरा से कहा, "तुम्हारी जब इच्छा हो यहाँ आना! कृष्णदयाल मेरे भाई के बराबर हैं। अब उनसे मेरा मन नहीं मिलता, भेंट भी नहीं होती, चिट्ठी-पत्री भी बन्द है; लेकिन बचपन की दोस्ती धमनी में बस जाती है। कृष्णदयाल के नाते तुमसे भी मेरा बड़ा निकट सम्बन्ध है। ईश्वर तुम्हारा मंगल करे!"

परेश बाबू के शान्त स्नेहपूर्ण स्वर से गोरा की इतनी देर तक बहस की गर्मी मानो सहसा ठंडी पड़ गई। आते समय गोरा ने परेश बाबू के प्रति कोई विशेष सम्मान प्रकट नहीं किया था। किन्तु जाते समय सच्ची श्रद्धा से प्रणाम करता गया। सुचरिता से किसी प्रकार का विदा-सम्भाषण उसने नहीं किया। सुचरिता उसके सम्मुख है, अपने किसी आचरण से इसको स्वीकार करना ही उसने अशिष्टता माना। विनय ने परेश बाबू को झुककर प्रणाम किया और सुचरिता की ओर मुड़कर उसे नमस्कार किया। फिर लज्जित-सा जल्दी-जल्दी गोरा के पीछे-पीछे नीचे उतर गया।

हारान बाबू विदा लेने से बचने के लिए कमरे में जाकर मेज पर रखी हुई 'ब्राह्म-संगीत' पुस्तक लेकर उसके पन्ने उलटते रहे।

विनय और गोरा के जाते ही हारान तेज़ी से छत पर आकर परेश से बोले, "देखिए, हर किसी के साथ लड़कियों का परिचय करा देना मैं अच्छा नहीं समझता।"

सुचरिता भीतर-ही-भीतर कुढ़ती रही थी; अब धीरज नही रख सकी। बोली, "पिता जी यदि यही नियम मानते तब तो आप से भी हम लोगों का परिचय न हो पाया होता।"

हारान बोले, "मेल-जोल अपने समाज तक सीमित रखना ही अच्छा होता है।"

परेश बाबू हँसकर बोले, "पारिवारिक अन्तःपुर को थोड़ा और बड़ा करके आप एक सामाजिक अन्तःपुर बनाना चाहते हैं। लेकिन मैं समझता हूँ, लड़कियों का अलग-अलग मत के लोगों से मिलना उचित ही है, नहीं तो यह उनकी बुद्धि को जान-बूझकर कमज़ोर करना हुआ। इसमें डर या लज्जा का तो कोई कारण नहीं दीखता।"

हारान "मैं यह नही कहता कि लड़कियों को भिन्न मत के लोगों से नहीं मिलना चाहिए। किन्तु लड़कियों से कैसे व्यवहार करना चाहिए, इसकी तमीज़ तो उन्हें नहीं है।"

परेश बाबू - "नही-नहीं, यह आप क्या कहते हैं? आप जिसे तमीज़ की कमी कहते हैं वह केवल एक झिझक है...लडकियों से मिले-जुले बिना वह दूर नहीं होती।"

सुचरिता ने उद्धत भाव से कहा, "देखिए, पानू बाबू, आज की बहस में तो मैं अपने समाज के ही आदमी के व्यवहार से लज्जित हो रही थी।"

इसी बीच लीला ने दौड़ते हुए आकर "दीदी, दीदी!" कहते हुए सुचरिता का हाथ पकड़ा और उसे खींचती हुई भीतर ले गई।

११

उस दिन तर्क में गोरा को नीचा दिखाकर सुचरिता के सामने अपनी जय-पताका फहराने की हारान की बड़ी इच्छा थी। आरम्भ में सुचरिता भी यही

आशा कर रही थी। किन्तु संयोग से हुआ इससे ठीक उलटा ही। धर्म-विश्वास और सामाजिक सिद्धान्तों में सुचरिता की राय गोरा से नहीं मिलती थी। किन्तु अपने देश के प्रति ममता, अपनी जाति के लिए वेदना, उसके लिए स्वाभाविक थी। देश के मामलों की चर्चा वह प्रायः करती रही हो, ऐसा नहीं था; किन्तु उस दिन जाति की निन्दा सुनकर जब गोरा अचानक गरज उठा, तब सुचरिता के मन में उसके अनुकूल ही प्रतिध्वनि गूँज गई। इतने बल के साथ, इतने दृढ़ विश्वास के साथ कभी किसी ने उसके सामने देश की बात नहीं की थी। साधारणतया हमारे देश के लोग अपने देश और जाति की चर्चा में कुछ मुरव्वत का-सा भाव दिखाते रहते हैं; मानो वास्तव में गहरे में उन पर विश्वास न रखते हों। इसीलिए कविता करते समय देश के बारे में वे जो चाहे कह दें, देश पर उनकी आस्था नहीं होती। किन्तु गोरा अपने देश के सारे दुःख, दुर्गति, दुर्बलता के पार एक महान् सचाई को प्रत्यक्ष देख सकता था, इसलिए देश के दारिद्र्य को अस्वीकार किये बिना भी उसमें देश के प्रति ऐसी गहरी श्रद्धा थी। देश की अन्तर्निहित शक्ति के प्रति उसमें ऐसा अडिग विश्वास था कि उसके निकट आने पर संशय करने वाले भी उसकी द्विधा-विहीन देश-भक्ति की ललकार सुनकर हार जाते थे। गोरा की इसी अविचल भक्ति के सामने हारान के अवज्ञापूर्ण तर्क सुचरिता को निरन्तर अपमान-जैसे चुभ रहे थे। बीच-बीच में वह झिझक छोड़कर उच्छ्वसित भाव से हारान की दलीलों का प्रतिवाद किये बिना न रह सकी।

फिर जब गोरा और विनय की पीठ के पीछे हारान ने ईर्ष्यावश भद्दे ढंग से उनकी बुराई करनी शुरू की तब इस ओछेपन के विरुद्ध भी सुचरिता को गोरा का पक्ष लेना पड़ा।

फिर भी ऐसा नहीं था कि गोरा के विरुद्ध सुचरिता के मन का विद्रोह बिलकुल शान्त हो गया हो। गोरा का यह मानो सिर पर चढ़ने वाला उद्धत हिन्दूपन अब भी उसके मन पर आघात कर रहा था। वह ऐसा समझ रही थी कि इस हिन्दूपन के भीतर कहीं प्रतिकूलता का भाव जरूर है—वह सहज प्रशान्त भाव नहीं है, अपनी आस्था में परिपूर्ण नहीं है बल्कि सर्वदा दूसरे को चोट पहुँचाने के लिए कमर कसे हुए है।

उस दिन शाम को हर बात में, हर काम में, भोजन करते समय और लीला को कहानियाँ सुनाते समय भी सुचरिता के मन में कहीं गहरे में एक वेदना कसकती रही; जिसे वह किसी तरह भी दूर नहीं कर सकी। काँटा कहाँ है, यह ठीक-ठीक जानकर ही उसे निकाला जा सकता है। मन के काँटे को ढूँढ

निकालने के लिए ही उस रात सुचरिता देर तक छत के बरामदे में अकेली बैठी रही।

रात के स्निग्ध अन्धकार में उसने अपने मन की अकारण जलन को मानो पोंछकर अलग कर देने की कोशिश की, किन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। हृदय का बोझ हल्का करने के लिए उसने रोना चाहा, पर रो भी न सकी।

एक अजनबी युवक माथे पर तिलक लगाकर आ गया, अथवा उस बहस में हराकर उसका अहंकार नहीं तोड़ा जा सका, इसी बात को लेकर सुचरिता इतनी देर से क्लेश पा रही है, इससे अधिक बेतुकी और हास्यास्पद बात क्या हो सकती है! इन कारणों को बिलकुल असम्भव मानकर उसने मन से निकाल दिया। तब असली कारण उसके सामने आया, और उसका ध्यान आते ही सुचरिता को बड़ी लज्जा का बोध हुआ। आज तीन-चार घंटे तक सुचरिता उस युवक के सामने ही बैठी रही थी और बीच-बीच में उनका पक्ष लेकर बहस में योग देती रही थी, फिर भी उसने मानो उसे बिलकुल लक्ष्य ही नहीं किया; जाते समय भी मानो उसकी आँखों ने सुचरिता को देख ही न पाया हो। यह सम्पूर्ण उपेक्षा ही सुचरिता को बहुत गहरे में चुभ गई है, इसमें कोई सन्देह न रहा। दूसरे घर की लड़कियों से मेल-जोल का अभ्यास न होने से जो एक संकोच होता है -- विनय के व्यवहार में जैसे संकोच का परिचय मिलता है—उस संकोच में भी एक शरमीली नम्रता होती है। गोरा के व्यवहार में उसका भी नाम-निशान नहीं था। उसकी इस कठोर और प्रबल उदासीनता को सह लेना या अवज्ञा करके उड़ा देना सुचरिता के लिए आज क्यों ऐसा असम्भव हो उठा है? इतनी बड़ी उपेक्षा के बावजूद उसने जो अपने को न रोककर बहस में भाग लिया, अपनी इस प्रगल्लभता पर वह मानो मरी जा रही थी। हारान की थोथी युक्तियों से जब एक बार सुचरिता बहुत अधिक उत्तेजित हो उठी थी तब गोरा ने एक बार उसके मुँह की ओर देखा था। उस चितवन में संकोच का लेश-मात्र भी नही था—किन्तु उसमें क्या था यह समझना भी कठिन था। उस समय क्या वह मन-ही-मन कह रहा था-- 'यह लड़की कितनी निर्लज्ज है?' अथवा --'इसकी हिम्मत तो देखो···बिना बुलाये पुरुषों की बातचीत में टाँग अड़ाने आ गई है? लेकिन उसने अगर ऐसा ही सोचा भी हो, तो उससे क्या आता-जाता है? उससे कुछ भी आता-जाता नही, फिर भी सुचरिता को यह सोच-सोचकर बड़ी तकलीफ़ होने लगी। उसने सारी बात को भूल जाने की, मन से मिटा देने की चेष्टा की; पर सब विफल। तब उसे गोरा पर गुस्सा आने लगा। मन के पूरे ज़ोर से उसने चाहा कि गोरा को एक बदतमीज़ और उद्धत युवक कहकर उसकी अवज्ञा कर सके, किन्तु उस विशाल-शरीर, वज्र-कण्ठ पुरुष की उस निःसंकोच चितवन की स्मृति के सामने सुचरिता मानो अपने को बहुत

छोटा अनुभव करने लगी --किसी तरह भी वह अपने गौरव को अपने सम्मुख स्थापित न कर सकी।

सुचरिता को विशेष रूप से सबकी आँखों में रहने का, दुलार पाने का अभ्यास हो गया था। वह मन-ही-मन यह आदर चाहती रही हो, ऐसा नहीं था; फिर आज गोरा की उपेक्षा क्यों उसे इतनी असह्य जान पड़ी ? बहुत सोचकर सुचरिता अन्त में इस परिणाम पर पहुँची कि उसने गोरा को विशेष रूप से नीचा दिखाने की इच्छा की थी, इसीलिए गोरा की अविचल लापरवाही ने उसे इतनी चोट पहुँचाई।

इस प्रकार उधेड़-बुन करते-करते रात काफ़ी बीत गई। बत्ती बुझाकर सब लोग सोने चले गए। ड्योढ़ी का दरवाज़ा बन्द होने का शब्द सूचित कर गया कि बैरा भी चौका-बासन समाप्त करके सोने जाने की तैयारी कर रहा है। तभी ललिता रात के कपड़े पहने हुए छत पर आई और सुचरिता को कुछ कहे बिना उसके पास से जाती हुई छत के एक कोने की मुंडेर के सहारे खड़ी हो गई। सुचरिता मन-ही-मन हँसी; समझ गई कि ललिता उस पर नाराज है। आज उसकी ललिता के पास सोने की बात थी, वह बिलकुल भूल गई थी। किन्तु 'भूल गई थी' कहने से तो ललिता से अपराध क्षमा नहीं कराया जा सकता - वह कैसे भूल गई, यही तो सबसे बड़ा अपराध है ! समय पर वायदे की याद दिला देने वाली लड़की वह नहीं है। बल्कि वह मन कड़ा करके सोने भी चली गई थी --ज्यों-ज्यों देर होती गई त्यों-त्यों उसका आहत अभिमान और तीखा होता गया था। अन्त में जब और सहना बिलकुल असम्भव हो गया तब वह बिस्तर से उठकर बिना कुछ कहे यह जताने आई थी कि 'मैं अभी तक जाग रही हूँ।'

सुचरिता ने कुर्सी छोड़कर धीरे-धीरे ललिता के पास आकर उसे गले लगाया और कहा, "ललिता, मेरी अच्छी बहन, नाराज़ मत हो !"

ललिता ने सुचरिता की बाँह हटाते हुए कहा, "नहीं, मैं क्यों नाराज़ होने लगी ? तुम जाओ, बैठो !"

सुचरिता ने उसे फिर हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा, "चलो भई, सोने चलें !"

ललिता ने कोई उत्तर नहीं दिया, चुपचाप खड़ी रही। अन्त में सुचरिता उसे ज़ोर से खींचती हुई सोने के कमरे में ले गई।

ललिता ने रुँधे गले से कहा, "तुमने इतनी देर क्यों की ? पता है, ग्यारह बज गए हैं ? मैं बराबर घंटे गिनती रही हूँ। और अब तुम आते ही सो जाओगी।"

सुचरिता ने ललिता को छाती की ओर खींचते हुए कहा, "आज मुझसे गलती हो गई, भई !"

यों अपराध स्वीकार कर लेने पर ललिता का गुस्सा दूर हो गया। बिलकुल नरम होकर बोली, "इतनी देर अकेली बैठी किसकी बात सोच रही थीं, दीदी ? पानू बाबू की ?"

तर्जनी से उसे मारते हुए सुचरिता ने कहा, "दुर !"

पानू बाबू ललिता को बिलकुल अच्छे नहीं लगते। यहाँ तक कि और बहनों की तरह उनकी बात को लेकर सुचरिता को चिढ़ाना भी उससे नहीं बन पड़ता। पानू बाबू की सुचरिता से विवाह करने की इच्छा है, यह बात सोचकर ही उसे गुस्सा आ जाता है।

थोड़ी देर चुप रहकर ललिता ने बात उठाई, "अच्छा दीदी, विनय बाबू तो अच्छे आदमी हैं—हैं न ?"

इस प्रश्न में सुचरिता की राय भाँपने का ही उद्देश्य नहीं था, यह नहीं कहा जा सकता।

सुचरिता ने कहा, "हाँ, विनय बाबू तो अच्छे आदमी हैं ही—बहुत ही सज्जन है।"

ठीक जिस ध्वनि की आशा ललिता ने की थी उसकी गूँज उसे इस उत्तर में नहीं जान पड़ी। तब उसने फिर कहा, "लेकिन जो कहो, दीदी, गौरमोहन बाबू मुझे बिलकुल अच्छे नहीं लगे। कैसा भूरा-चिट्टा रंग है, कठैठा चेहरा है, दुनिया में और किसी को कुछ समझते ही नहीं। तुम्हें कैसे लगे ?"

सुचरिता बोली, "कट्टर हिन्दूपन है।"

ललिता ने कहा, "नहीं-नहीं, हमारे मँझले काका में भी तो बड़ा हिन्दूपन है, किन्तु वह तो और ढंग का है। लेकिन यह---यह तो न जाने कैसा है !"

सुचरिता ने हँसकर कहा, "हाँ, ज़रूर न जाने कैसा है !" कहते-कहते गोरा की वही चौड़े माथे वाली तिलकधारी मूर्ति का स्मरण करके उसे फिर क्रोध आ गया। क्रोध इसलिए कि उस तिलक के द्वारा ही गोरा ने मानो अपने माथे पर बड़े-बड़े अक्षरों में यह लिख रखा है कि 'मैं तुमसे अलग हूँ।' इस अलगाव के प्रचण्ड अभिमान को धूल में मिलाकर ही सुचरिता के जी की जलन मिट सकेगी।

बातचीत धीरे-धीरे बन्द हो गई और दोनों सो गईं। रात के दो बजे सुचरिता ने जागकर देखा, बाहर झमाझम वर्षा हो रही है और बिजली की चमक बार-बार उनकी मसहरी के आवरण को भेदकर कौंध जाती है। कमरे के कोने में जो दिया था वह बुझ गया है। रात की निस्तब्धता और अन्धकार में, अविराम वर्षा के शब्द के साथ सुचरिता के मन में फिर वेदना जाग उठी। करवट बदल-बदल

कर उसने सोने की बड़ी कोशिश की; पास ही गहरी नींद में डूबी हुई ललिता को देखकर उसे ईर्ष्या भी हुई, किन्तु नींद किसी तरह नहीं आई। ऊबकर वह बिस्तर छोड़कर बाहर निकल आई। खुले दरवाज़े के पास खड़ी-खड़ी बाहर छत की ओर देखने लगी। बीच-बीच में हवा के झोंके से एक हल्की बौछार उसे छू जाती। सन्ध्या की सारी बातें एक-एक करके उसके मन में आने लगीं। सूर्यास्त के रंग से रंजित छत पर गोरा का तमतमाया हुआ चेहरा चित्र-सा उसकी स्मृति के सम्मुख आ गया; और उस समय की बहस में जो बातें कान से सुनकर भी भुला दी गईं थीं वे सब गोरा के गम्भीर प्रबल स्वर में उसके मन में गूंजने लगीं। "आप जिन्हें अशिक्षित कहते हैं मैं उन्हींके दल का हूँ --आप जिसे सुसंस्कार कहते हैं वही मेरा संस्कार है। जब तक आप देश को प्रेम नहीं करते और देश के लोगों के साथ एक होकर नहीं खड़े होते तब तक आपके मुंह से देश की बुराई का एक शब्द भी सुनने को मैं तैयार नहीं हूं।" इस बात के जवाब में पानू बाबू ने कहा था, "ऐसा करने से देश का सुधार कैसे होगा ?" गोरा ने गरजकर कहा था, "सुधार ? सुधार बहुत बाद की बात है। सुधार से कहीं बड़ी बात है प्रेम की, श्रद्धा की; पहले हम एक हों, फिर सुधार भीतर से ही अपने-आप हो जायगा। आप लोग तो अलग होकर देश के टुकड़े-टुकड़े करना चाहते हैं—आप लोग कहते है, देश में कुसंस्कार हैं इसलिए हम सुसंस्कारी लोग उससे अलग रहेंगे। मैं यह कहता हूँ कि मैं किसी से श्रेष्ठ होकर किसी से अलग नहीं होऊँगा। यही मेरी सबसे बड़ी अकांक्षा है। फिर एक हो जाने पर, कौन-सा संस्कार रहेगा, कौन-सा नहीं रहेगा, यह हमारा देश जाने---या जो देश के विधाता हैं वे जाने।" पानू बाबू ने कहा, "ऐसे अनेक रीति-रिवाज और संस्कार हैं जो देश को एक नहीं होने देते।" गोरा ने कहा था, "आप अगर यही समझते हैं कि पहले उन सब रीति-रिवाजों और संस्कारों को उखाड़ फेंकेंगे, और उसके बाद देश एक होगा, तब तो समुद्र पार करने की चेष्टा करने से पहले समुद्र को सुखा देना होगा। अहंकार और अवज्ञा छोड़कर, नम्र होकर, प्रेम देकर पहले अपने को सच्चे दिल से सबके साथ मिलाइये; उस प्रेम के आगे हजारों त्रुटियाँ और कमज़ोरियाँ सहज ही हार मान लेंगी। सभी देशों के सभी समाजों में दोष और अपूर्णता है, किन्तु देश के लोग जब तक जाति-प्रेम के बन्धन से एकता में बंधे रहते हैं तब तक उनका विष काटकर आगे बढ़ सकते हैं। सड़ने का कारण हवा में ही होता है; किन्तु जीते रहें तो उससे बचे रहते हैं, मर जायँ तो सड़ने लगते हैं। मैं आपसे कहता हूं, सुधार करने आयेंगे तो हम नहीं सह सकेंगे, फिर चाहे आप लोग हों, चाहे मिशनरी हों।" पानू बाबू बोले थे, "क्यों नहीं सह सकेंगे ?" गोरा ने कहा था, "नहीं सह सकेंगे, उसका कारण है। माँ-बाप की ओर से सुधार सहा जाता है, लेकिन पहरेदार की ओर से सुधार में, सुधार से अपमान

कहीं अधिक है, इसलिए वैसा सुधार मानने में मनुष्यत्व नष्ट होता है। पहले अपने बनिए, फिर सुधारक बनिएगा...नहीं तो आपकी अच्छी बातों से भी हमारा अनिष्ट ही होगा।" यों एक-एक करके सारी बातचीत सुचरिता के मन में घूम गई और एक अनिर्देश्य व्यथा की कसक छोड़ गई। थककर सुचरिता फिर बिस्तर पर आ लेटी और हथेली से आँखें ढककर सोचना बन्द करके सोने की चेष्टा करने लगी। किन्तु उसके चेहरे और उसके कानों में एक झनझनाहट हो रही थी, और इसी बातचीत के टुकड़े बार-बार उसके मन में गूँज जाते थे।

१२

विनय और गोरा परेश बाबू के घर से निकलकर सड़क पर आ गए तो विनय ने कहा, "गोरा, जरा धीरे-धीरे चलो भई...तुम्हारी टाँगें बहुत लम्बी हैं, इन पर कुछ रोक नहीं रखोगे तो तुम्हारे साथ चलने में दम फूल जाएगा!"

गोरा ने कहा, "मैं अकेला ही चलना चाहता हूँ—मुझे आज बहुत-सा सोचना है।" और कहता हुआ वह अपनी स्वाभाविक तेज़ चाल से आगे बढ़ गया।

विनय के मन को ठेस लगी। उसने आज गोरा के विरुद्ध विद्रोह करके उसका शासन भंग किया है, इसे लेकर गोरा अगर उसे डाँट देता तो उसे खुशी ही होती। उनकी पुरानी दोस्ती के आकाश पर जो घटा घिर आई है, एक बौछार हो जाने से उसकी उमस मिट जाती और वह फिर चैन की साँस ले सकता।

इसके अलावा एक और बात से भी उसे तकलीफ़ हो रही थी। गोरा ने परेश बाबू के घर आज सहसा पहले-पहल आकर विनय को वहाँ पुराने परिचित की तरह बैठा हुआ देखकर ज़रूर समझा होगा कि विनय यहाँ बराबर आता-जाता रहता है। यह बात नहीं है कि आने-जाने मे कोई बुराई है; गोरा चाहे जो कहे, परेश बाबू के सुशिक्षित परिवार के साथ अंतरंग परिचय होने के सुयोग को विनय एक विशेष लाभ ही समझता है, इनसे मिलने-जुलने में गोरा को कोई बुराई दीखे तो वह निरा कठमुल्लापन है। लेकिन पहले की बातचीत से तो गोरा समझता रहा होगा कि विनय परेश बाबू के घर आता-जाता नहीं है; हो सकता है कि आज सहसा उसके मन में यह बात आई हो कि वह झूठ था। वरदासुन्दरी उसे खास तौर से कमरे में बुला ले गईं और वहाँ उनकी लड़कियों से उसकी बातचीत होती रही—गोरा की तीखी दृष्टि से यह बात छिपी न रही होगी। लड़कियों से ऐसे

मिल-जुलकर और वरदासुन्दरी की आत्मीयता से विनय को मन-ही-मन एक गौरव और आनन्द का अनुभव हो रहा था--किन्तु उसके साथ ही गोरा के और उसके साथ इस परिवार के बर्ताव का भेद उसे भीतर-ही-भीतर अखर भी रहा था। आज तक इन दोनों सहपाठियों के निविड़ बन्धुत्व में कोई बात बाधा बनकर नहीं आई थी। केवल एक बार गोरा के ब्राह्म-समाज के उत्साह को लेकर दोनों की दोस्ती पर कुछ दिन के लिए एक छाया-सी पड़ गई थी--किन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, विनय के निकट मत नाम की चीज़ कोई बहुत बड़ी चीज़ नहीं थी; मत को लेकर वह चाहे जितना लड़-झगड़ ले, उसके लिए मनुष्य ही अधिक बड़ा सत्य था। इस बार उन दोनों की दोस्ती में मनुष्य ही आड़े आते दीख रहे हैं, इससे वह डर गया। परेश के परिवार के साथ सम्बन्ध को विनय मूल्यवान् समझता है, क्योंकि अपने जीवन में ठीक ऐसे आनन्द का आस्वाद उसे और कभी नहीं मिला--किन्तु गोरा का बन्धुत्व भी विनय के जीवन का अंग है, उससे रहित जीवन की वह कल्पना ही नहीं कर सकता।

अभी तक विनय ने किसी दूसरे व्यक्ति को अपने हृदय के उतना निकट नहीं आने दिया जितना गोरा को। आज तक वह केवल किताबें पढ़ता रहा है और गोरा के साथ बहस करता रहा है, लड़ता भी रहा और गोरा को ही प्यार भी करता रहा है; दुनिया में और किसी चीज़ की तरफ़ ध्यान देने की उसे फ़ुरसत ही नहीं हुई। गोरा को भी भक्त-सम्प्रदाय की कमी नहीं थी, किन्तु बन्धु विनय को छोड़कर दूसरा नहीं था। गोरा की प्रकृति में एक निःसंगता का भाव है--इधर वह जन-साधारण से मिलने में नहीं हिचकता, उधर तरह-तरह के लोगों से घनिष्ठता करना उसके लिए सर्वथा असम्भव है। अधिकतर लोग उसके साथ एक दूरी का अनुभव किये बिना नहीं रहते।

आज विनय की समझ में आ गया कि परेश बाबू के परिवार की ओर उसके हृदय में गहरा आकर्षण उत्पन्न हो गया है, यद्यपि परिचय अधिक दिन का नहीं है। इससे मानो गोरा के प्रति कोई अपराध हो गया है, यह सोचकर वह लज्जित होने लगा।

वरदासुन्दरी ने आज विनय को जो अपनी लड़कियों को अंग्रेज़ी लिखाई और शिल्प का काम दिखाकर और कविता सुनवाकर मातृत्व का अभिमान प्रकट किया वह गोरा के निकट कितना अवहेलनीय है, इसकी विनय मन-ही-मन स्पष्ट कल्पना कर सकता था। सचमुच इसमें हँसी की बात भी कम नहीं थी, और वरदासुन्दरी की लड़कियों ने जो थोड़ी-बहुत अंग्रेज़ी सीख ली है, अंग्रेज़ मेमों से प्रशंसा पाई है और लैफ़्टिनेंट-गवर्नर की पत्नी का क्षणिक प्रश्रय पाया है, इस सबके गर्व की ओट में एक तरह की दीनता भी थी ही। किन्तु यह सब समझ-बूझकर भी विनय गोरा

के आदर्श के अनुसार इन बातों से घृणा नहीं कर सका। उसे यह सब अच्छा ही लगा था। लावण्य-जैसी लड़की - वह देखने में बड़ी सुन्दर है, इसमें सन्देह नहीं। विनय को अपने हाथ की लिखी मूर की कविता दिखाकर बड़ा अभिमान कर रही थी, इससे विनय के अहंकार की भी तृप्ति हुई थी। वरदासुन्दरी स्वयं आधुनिकता के रंग में पूरी रँगी नहीं गई ह फिर भी अतिरिक्त उत्साह से आधुनिकता दिखाने में व्यस्त है···इस असंगति की ओर विनय का ध्यान न गया हो सो बात नहीं थी, फिर भी वरदासुन्दरी उसे न:ः अच्छी लगी थी। उनके अहंकार और असहिष्णुता का भोलापन ही विनय को प्रीतिकर जान पड़ा। लड़कियाँ अपनी हँसी के शब्द से कमरे का वातावरण मधुर किये रहती है, चाय बनाकर परिवेशन करती है, अपने हाथ की कारीगरी से कमरे की दीवारें सजाती है, और इसके साथ ही अंग्रेजी कविता पढ़कर उसमें ··· लेती है, यह कितनी भी साधारण बात हो, विनय इसी पर मुग्ध है। अपने बहुत कम लोगों से मिलने-जुलने वाले जीवन में ऐसा रस उसे पहले कभी नहीं मिला। इन लड़कियों की वेश-भूषा, हँसी-मजाक, काम-काज के कितने मधुर चित्र वह मन-ही-मन आँकने लगा, इसकी गिनती नहीं थी। केवल किताबें पढ़ने और सिद्धान्तों को लेकर बहस करते रहकर जिसने यह भी नहीं जाना कि उसने कब यौवन में पदार्पण किया, उसके लिए परेश के इस साधारण परिवार के भीतर भी मानो एक नया और अचरज-भरा जगत् प्रकाशित हो उठा।

गोरा जो विनय का साथ छोड़कर नाराज होकर चला गया, उस नाराजी को विनय अन्याय नहीं मान सका। दोनों दोस्तों की बहुत दिन की दोस्ती में इतने अरसे बाद आज सचमुच का व्याघात उपस्थित हुआ है।

बरसात की रात के स्तब्ध अन्धकार को स्पन्दित करते हुए बादल बीच-बीच में गरज उठते थे। विनय मन पर एक बहुत भारी बोझ का अनुभव कर रहा था। उसे लग रहा था, उसका जीवन चिर-काल से जिस राह पर चला आ रहा था आज उसे छोड़कर एक नई राह पकड़ रहा है। इस अन्धकार में गोरा न जाने किधर चला गया, और वह न जाने किधर जा रहा था।

विच्छेद के समय प्रेम और प्रबल हो उठता है। गोरा के प्रति विनय का प्रेम कितना बड़ा और कितना प्रबल है, आज उस प्रेम पर आघात लगने से ही विनय ने इसका अनुभव किया।

घर पहुँचकर रात के अन्धकार और कमरे की निर्जनता के कारण विनय को बहुत ही सूना-सूना लगने लगा। एक बार वह गोरा के घर जाने के लिए बाहर भी निकल आया; किन्तु आज की रात गोरा के साथ उसका हार्दिक मिलन हो सकेगा ऐसी आशा वह नहीं कर सका, और फिर कमरे में लौटकर थका हुआ-सा

बिस्तर पर लेट गया।

दूसरे दिन सवेरे उठने पर उसका मन कुछ हल्का था। रात को कल्पना में उसने अपनी वेदना को बहुत अनावश्यक तूल दे दिया था···सवेरे उसे ऐसा नहीं जान पड़ा कि गोरा से दोस्ती और परेश बाबू के परिवार से मेल-जोल में ऐसा कोई एकान्त विरोध है। ऐसी कौन-सी बड़ी बात है, यह सोचकर विनय को अपनी कल रात की बेचैनी पर हँसी आने लगी।

कन्धे पर चादर डालकर तेज़ चलता हुआ विनय गोरा के घर जा पहुँचा। गोरा उस समय निचले कमरे में बैठा अखबार पढ़ रहा था। विनय अभी सड़क पर ही था कि गोरा ने उसे देख लिया, लेकिन आज विनय के आने पर भी उसकी नज़र अखबार से नहीं उठी। विनय ने आते ही बिना कुछ कहे गोरा के हाथ से अखबार छीन लिया।

गोरा ने कहा, "मुझे लगता है आप ग़लती कर रहे हैं– मैं गौरमोहन हूँ – कुसंस्कार में डूबा हुआ एक हिन्दू।"

विनय बोला, "भूल शायद तुम्हीं कर रहे हो। मैं हूँ श्रीयुत विनय···उन्ही गौरमोहन जी का कुसंस्कार में डूबा हुआ बन्धु।"

गोरा—"किन्तु गौरमोहन ऐसा बेहया है कि अपने कुसंस्कारों के लिए कभी किसी के आगे लज्जित नहीं होता।"

विनय—"विनय भी ठीक वैसा ही है। इतना ही है कि वह अपने संस्कारों के कारण चिढ़कर दूसरों पर आक्रमण करने नही जाता।"

देखते-ही-देखते दोनों दोस्तों में गरमा-गरम बहस छिड़ गई। मुहल्ले-भर के लोगों को पता लग गया कि गोरा से विनय का साक्षात् हो गया है।

गोरा ने पूछा, "तुम जो परेश बाबू के घर आते-जाते हो, यह बात उस दिन मुझसे छिपाने की क्या ज़रूरत थी?"

विनय—"न कोई ज़रूरत थी, न मैंने छिपाई···नहीं आता-जाता था इसीलिए वैसा कहा। तब से कल पहली बार उनके घर में प्रवेश किया था।"

गोरा—"मुझे डर है कि तुम अभिमन्यु की तरह प्रवेश करने का रास्ता ही जानते हो, निकलने का रास्ता नहीं जानते।"

विनय—"वह हो सकता है– शायद जनम से ही मेरा वैसा स्वभाव है। जिन पर श्रद्धा करता हूँ या जिन्हें चाहता हूँ उनका त्याग नहीं कर सकता। मेरे इस स्वभाव का पता तुम्हें भी है।"

गोरा—"तो फिर अब से उनके यहाँ आना-जाना जारी रहेगा?"

विनय—"अकेले मेरा ही आना-जाना जारी रहेगा, ऐसी तो कोई बात नहीं है। तुम्हारे भी तो हाथ-पैर हैं, तुम कोई स्थावर मूर्ति तो नहीं हो!"

गोरा--"मैं तो जाता हूँ और लौट आता हूँ। किन्तु तुम्हारे लक्षणों से तो यही जान पड़ता है कि तुम यदि गये तो फिर चले ही जाओगे। गरम चाय कैसी लगी ?"

विनय—"कुछ कड़वी तो लगी थी।"

गोरा—"तो फिर ?"

विनय—"न पीना तो और भी कड़वा लगता।"

गोरा--"यानी समाज को मानना केवल शिष्टाचार को मानना है ?"

विनय--"हमेशा नहीं। लेकिन देखो गोरा, समाज के साथ जब हृदय की ठन जाय तब मेरे लिए…"

गोरा अधीर होकर उठ खड़ा हुआ, विनय को अपनी बात उसने पूरी नहीं करने दी। गरजकर बोला, "हृदय! समाज को तुम इतना छोटा, इतना तुच्छ मानते हो तभी बात-बात में तुम्हारे हृदय से उसकी टकराहट होती है। किन्तु समाज पर आघात करने से उसकी चोट कितनी दूर तक पहुँचती है, अगर तुम यह अनुभव करते, तो अपने इस हृदय की चर्चा करते तुम्हें शर्म आती। परेश बाबू की लड़कियों के मन को थोड़ी-सी चोट पहुँचाते भी तुम्हें बड़ी तकलीफ़ होती है; किन्तु तुम्हें तकलीफ़ होती है, इस ज़रा-सी बात को लेकर तुम सारे देश को चोट पहुँचाने को तैयार हो!"

विनय बोला--"तो फिर सच्ची बात कहूँ, भाई! अगर एक प्याला चाय पीने से सारे देश को चोट पहुँचती है तो उस चोट से देश का उपकार ही होगा। उससे बचाने की कोशिश करना देश को अत्यन्त दुर्बल बना देना होगा—बाबू बना देना होगा।"

गोरा--"महाशय जी, ये सब दलीलें मैं जानता हूँ…यह न समझिए कि मैं एकदम भोला हूँ। लेकिन ये सब अभी की बातें नहीं हैं। बीमार बच्चा जब दवा नहीं खाना चाहता तब माँ बीमार न होने पर भी स्वयं दवा खाकर उसे यह समझाना चाहती है कि तुम्हारी और मेरी हालत एक-सी है। यह दलील की बात नहीं है, प्यार की बात है। यह प्यार न हो तो दलीलें चाहे जितनी हों, बेटे से माँ का सम्बन्ध नहीं रहता, और वैसा होने से सब काम बिगड़ जाता है। मैं भी एक प्याला चाय को लेकर बहस नहीं कर रहा हूँ, लेकिन देश से कट जाना मैं नहीं सह सकता। चाय न पीना उससे कहीं कम कठिन है, और परेश बाबू की लड़कियों के मन को चोट पहुँचाने की बात तो उससे भी छोटी। सारे देश के साथ एकात्म भाव से मिल जाना ही हमारी आजकल की अवस्था में सबसे बड़ा काम है। जब वह मिलन हो जायगा, तब चाय पीने या न पीने की दलीलों का निबटारा तो बात-की-बात में हो जायगा।"

विनय—"तब तो जान पड़ता है, मुझे चाय का दूसरा प्याला मिलने में अभी बहुत देर है !"

गोरा—"नहीं, अधिक देर करने की जरूरत नहीं है। लेकिन विनय, मेरे साथ और क्यों ? हिन्दू-समाज की और बहुती-सी बुरी चीज़ों के साथ-साथ मुझे भी छोड़ देने का समय आ गया है। नहीं तो परेश बाबू की लड़कियों के मन को चोट लगेगी।"

इसी समय अविनाश आ पहुँचा। अविनाश गोरा का शिष्य है। गोरा के मुँह से वह जो-कुछ सुनता है उसे अपनी बुद्धि के सहारे छोटा और अपनी भाषा के सहारे विकृत करके चारों ओर दोहराता फिरता है। गोरा की बात जिन लोगों की समझ में नहीं आती अविनाश की बात वे बड़ी आसानी से समझ लेते है और उसकी प्रशंसा भी करते हैं।

विनय के प्रति अविनाश को बड़ी ईर्ष्या है। इसलिए मौका मिलते ही वह विनय के साथ बच्चों की तरह बहस करने लग जाता है। विनय उसकी मूढ़ता पर बहुत अधीर हो उठता है, तब गोरा अविनाश का पक्ष स्वयं लेकर विनय से जूझ पड़ता है। अविनाश समझता है कि उसकी ही दलीलें गोरा के मुँह से प्रस्तुत हो रही है।

अविनाश के आ जाने से विनय की गोरा से मेल करने की कोशिश में बाधा पड़ गई। वह उठकर ऊपर चला गया। आनन्दमयी भंडारे के सामने बरामदे में बैठी तरकारी काट रही थीं।

आनन्दमयी ने कहा, "बड़ी देर से तुम लोगों का स्वर सुन रही थी। बड़े सवेरे निकल पड़े—नाश्ता तो कर लिया था ?"

और कोई दिन होता तो विनय कह देता, "नहीं, अभी नहीं किया," और आनन्दमयी के सामने बैठकर उसके नाश्ता करने की व्यवस्था हो जाती। किन्तु आज उसने कहा, "नहीं माँ, कुछ खाऊँगा नहीं—खाकर ही निकला था।"

गोरा के सामने अपना अपराध बढ़ाने की उसकी इच्छा नहीं थी। परेश बाबू के साथ उसके मेल-जोल के लिए ही गोरा ने अभी तक उसे क्षमा नहीं किया और उसे मानो कुछ दूर करके रखा है, यह अनुभव करके उसे मन-ही-मन क्लेश हो रहा था। जेब से चाकू निकालकर वह भी आलू छीलने बैठ गया।

पन्द्रह-एक मिनट बाद नीचे जाकर उसने देखा, गोरा अविनाश को साथ लेकर कहीं चला गया है। विनय बहुत देर तक चुपचाप गोरा के कमरे में बैठा रहा। फिर अखबार उठाकर अनमना-सा विज्ञापन देखता रहा। फिर एक लम्बी साँस लेकर वह भी बाहर निकल गया।

१३

दोपहर को विनय का मन फिर गोरा से मिलने के लिए चंचल हो उठा। गोरा के सामने झुक जाने में उसे कभी संकोच नहीं हुआ। लेकिन अपना अभिमान न भी हो, तो दोस्ती का ही एक अभिमान होता है, उसे भुला देना कठिन होता है। परेश बाबू के यहाँ जाने से गोरा के प्रति उसकी इतने दिनों की निष्ठा की कुछ हेठी हुई है, यह सोचकर वह अपराधी-सा अनुभव कर रहा था अवश्य, किंतु इसके लिए गोरा उसका मज़ाक-भर करेगा या डाँट-फटकार लेगा, यहीं तक उसने सोचा था। गोरा उसे ऐसे बिलकुल दूर रखने की चेष्टा करेगा, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। घर से थोड़ी दूर जाकर विनय फिर लौट आया। कहीं दोस्ती का फिर अपमान न हो, इस डर से वह गोरा के घर नहीं जा सका।

दोपहर को भोजन करके वह गोरा को चिट्ठी लिखने के विचार से कागज-कलम लेकर बैठा। बैठकर, बिना कारण यह निश्चय करके कि कलम भौंडी है, वह चाकू लेकर बड़े यत्न से धीरे-धीरे उसे गढ़ने लगा। इसी समय नीचे से पुकार सुनाई दी, "विनय!" विनय कलम रखकर तेजी से नीचे दौड़ा और बोला, "आइये महिम दादा, ऊपर आइये!"

महिम ऊपर के कमरे में आकर विनय की खाट पर जमकर बैठ गए और कमरे की सब चीज़ों का एक बार अच्छी तरह निरीक्षण करके बोले, "देखो विनय, मैं तुम्हारा घर पहचानता न होऊँ सो बात नहीं है -बीच-बीच में खबर लेता रहता हूं और उधर ध्यान भी रहता है। लेकिन मैं जानता हूँ, तुम लोग आजकल के अच्छे लड़के हो, तुम्हारे यहाँ तबाकू मिलने की उम्मीद नहीं है, इसीलिए जब तक जरूरी न हो···"

विनय को हड़बड़ाकर उठते देख महिम ने कहा, "तुम सोच रहे हो, अभी बाज़ार से नया हुक्का खरीदकर मुझे तबाकू पिलाओगे—ऐसी हरकत न करना! तंबाकू न पिलाने को तो क्षमा कर सकूँगा, लेकिन नये हुक्के पर अनाड़ी हाथ की तैयारी की हुई चिलम तो बर्दाश्त नहीं होगी।"

इतना कहकर महिम ने बिस्तर पर से पंखा उठाकर अपने को हवा करना शुरू किया और बोले, "आज रविवार की दिन की नींद मिट्टी करके जो तुम्हारे पास आया हूँ, उसका कारण है। मेरा एक उपकार तुम्हें करना ही होगा।"

विनय ने पूछा, "क्या उपकार?"

महिम बोले, "पहले वायदा करो, तब बताऊँगा!"

विनय—"मेरे वश की बात हो तभी तो।"

महिम—"केवल मात्र तुम्हारे वश की बात है। और कुछ नहीं, तुम्हारे एक बार 'हाँ' कहने से ही हो जायगा।"

विनय—"आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? आप तो जानते हैं, मैं घर का ही आदमी हूँ—सकने पर आपका काम नहीं करूँगा यह कैसे हो सकता है?"

महिम ने जेब से एक दौना पान निकालकर दो पान विनय की ओर बढ़ाये और बाकी अपने मुंह में रख लिये। चबाते-चबाते बोले, "अपनी शशिमुखी को तो तुम जानते ही हो। देखने-सुनने में ऐसी बुरी नहीं है—यानी अपने बाप पर नहीं गई। उम्र यही दस के आस-पास होगी। अब उसे किसी पात्र को सौंपने का समय हो गया है। किस अभागे के हाथ पड़ेगी, यह सोच-सोचकर मुझे तो रात-भर नींद नहीं आती।"

विनय बोला, "घबराते क्यों है, अभी तो समय है।"

महिम—"तुम्हारी कोई लड़की होती तो समझते कि क्यों घबराता हूँ! उम्र तो दिन बीतने से अपने-आप बढ़ जाती है, लेकिन पात्र तो अपने-आप नहीं आता! इसलिए ज्यों-ज्यों दिन बीतते है मन उतना ही और बेचैन होता जाता है। अब तुम कुछ आसरा दो तो, खैर, दो-चार दिन सब्र भी किया जा सकता है।"

विनय—"मेरी तो ज्यादा लोगों से जान-पहचान नही है। बल्कि एक तरह से कह सकता हूँ कि कलकत्ता-भर मे आप लोगों का घर छोड़कर और किसी का घर नहीं जानता···फिर भी खोज करके देखूँगा।"

महिम—"शशिमुखी का स्वभाव तो जानते ही हो।"

विनय—"जानता क्यों नहीं? वह छोटी-सी ही थी तभी से देखता आ रहा हूँ। बड़ी अच्छी लड़की है।"

महिम—"तब फिर ज्यादा दूर खोजने की क्या दरकार है, भैया! लड़की को तुम्हारे ही हाथ सौंपूंगा।"

विनय ने घबराकर कहा, "यह आप क्या कह रहे है?"

महिम—"क्यों, क्या बुरा कह रहा हूँ। तुम्हारा कुल हम लोगों से जरूर कहीं ऊंचा है, लेकिन इतना पढ़-लिखकर भी तुम लोग अगर कुल मानोगे तो कैसे चलेगा!"

विनय—"नहीं-नहीं, कुल की बात नहीं है, लेकिन उम्र तो..."

महिम—क्या बात है! शशि की उम्र क्या कम है? हिंदू घर की लड़की तो मेम साहब नहीं होती—समाज को यों उड़ा देने से तो नहीं चलेगा!"

महिम सहज छोड़ने वाले आसामी नहीं थे। विनय को उन्होंने परेशान कर दिया। अन्त में विनय ने कहा, "मुझे थोड़ा सोचने का समय दीजिए!"

महिम—"तो मैं कौन आज ही दिन पक्का किये दे रहा हूँ !"

विनय - "फिर भी, घर के लोगों से तो..."

महिम—"हाँ, सो तो है। उनकी राय तो लेनी ही होगी। तुम्हारे काका महाशय जब मौजूद हैं तो उनकी राय के बिना तो कुछ नहीं हो सकता।"

कहते हुए उन्होंने जेब से पान का दूसरा दौना निकाला और सारे पान मुँह में रख लिये। फिर, कुछ यह समझकर कि बातचीत पक्की हो गई है, वह चले गए।

कुछ दिन पहले आनन्दमयी ने एक बार शशिमुखी के साथ विनय के विवाह की चर्चा बातों-ही-बातों में उठाई थी। लेकिन विनय ने मानो वह सुनी ही नहीं। आज भी यह प्रस्ताव उसे कुछ संगत लगा हो ऐसा नहीं था, लेकिन बात मानो उसके मन तक पहुँच तो गई। उसके मन में विचार उठा, यह विवाह हो जाने से गोरा उसे आत्मीय के नाते कभी दूर नहीं कर सकेगा। विवाह के मामले को हृदय की वृत्तियों के साथ जोड़ने को वह अंग्रेज़ीपन कहकर इतने दिनों से उसका परिहास करता आया है, इसीलिए शशिमुखी से विवाह करने की बात उसे असम्भव नहीं जान पड़ी। महिम के इस प्रस्ताव को लेकर गोरा के साथ परामर्श करने का एक अवसर निकल आया, उससे भी विनय को खुशी ही हुई। विनय ने चाहा, गोरा इस बात को लेकर उससे थोड़ा आग्रह करे। महिम के आगे आसानी से हामी न भरने पर महिम ज़रूर ही गोरा से उस पर ज़ोर दिलवायगा, इस बारे में विनय को कोई सन्देह नहीं था।

ये सब बातें सोचकर विनय के मन का अवसाद दूर हो गया। वह उसी समय गोरा के घर जाने के लिए तैयार होकर कंधे पर चादर डालकर बाहर निकल पड़ा। थोड़ी दूर जाने पर पीछे से उसने सुना, "विनय बाबू!" और मुड़कर उसने देखा, सतीश उसे पुकार रहा है।

सतीश के साथ विनय फिर घर लौट आया। सतीश ने जेब से रूमाल की एक पोटली निकालते हुए पूछा, "इसमे क्या है, बताइये तो ?"

विनय ने 'खोपड़ी' से लेकर 'कुत्ते के पिल्ले' तक कई असंभव अटकले लगाकर सतीश को हँसने का मौका दिया। फिर सतीश ने रूमाल खोलकर पाँच-छै काले-काले फल दिखाकर पूछा, "अच्छा अब बताइए, क्या है ?"

विनय ने जो ज़बान पर आया कह दिया। अंत में उसके हार मानने पर सतीश ने बताया, रंगून में उसके एक मामा रहते है—उन्होंने वहाँ का यह फल माँ को भेजा है; उसीमें से माँ ने पाँच-छै फल विनय बाबू को उपहार मे भेजे है।

बर्मा का मैंगोस्टीन फल उस समय के कलकत्ता मे सुलभ नहीं था। तभी

विनय ने फलों को हिला-डुला और उलट-पुलटकर पूछा, "सतीश बाबू, यह फल खाया कैसे जायगा ?"

विनय के इस अज्ञान पर हँसते हुए सतीश ने कहा, "देखिए, दाँत से न काटिएगा—छुरी से काटकर खाना होता है।"

सतीश स्वयं ही थोड़ी देर पहले फल को दाँतों से काटने की निष्फल चेष्टा करके घर के लोगों की हँसी का कारण बन चुका था। इसीलिए विनय के अज्ञान पर विज्ञ-जन की-सी हँसी हँसने से उसके मन की व्यथा दूर हो गई।

असमान उम्र के दोनों दोस्तों में थोड़ी देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर सतीश ने कहा, "विनय बाबू, माँ ने कहा है, आपको समय हो तो आज एक बार हम लोगों के यहाँ आ जायँ—आज लीला का जन्म-दिन है।"

विनय ने कहा, "आज तो भई, नहीं हो सकेगा—आज मुझे एक जगह और जाना है।"

सतीश—"कहाँ जाना है ?"

विनय—"अपने दोस्त के घर।"

सतीश—"आपके वही दोस्त ?"

विनय—"हाँ !"

दोस्त के घर जा सकते हैं, पर हमारे घर नहीं जायँगे, इसकी संगतता सतीश नहीं समझ सका; इसलिए और भी नहीं कि विनय के यह दोस्त सतीश को अच्छे नहीं लगे। वह तो मानो स्कूल के हेडमास्टर से भी अधिक रूखे आदमी है, उन्हें आर्गन सुनाकर कोई तारीफ़ पा सकेगा ऐसे व्यक्ति वह नहीं है। ऐसे आदमी के पास जाने का भी कोई प्रयोजन विनय को हो सकता है, यह बात ही सतीश को अच्छी नहीं लगी। वह बोला, "नहीं, विनय बाबू, आप हमारे घर चलिए !"

बुलाये जाने पर भी वह परेश बाबू के घर न जाकर गोरा के पास ही जायगा, विनय ने मन-ही-मन यह पक्का निश्चय कर लिया था। आहत बंधुत्व के अभिमान की वह उपेक्षा नहीं करेगा, गोरा की दोस्ती के गौरव को वह सबसे ऊपर रखेगा, यही उसने स्थिर किया था।

किंतु हार मानते उसे अधिक देर न लगी। दुविधा में पड़े-पड़े, मन-ही-मन आपत्ति करते-करते भी अंत में वह लड़के का हाथ पकड़कर ७८ नम्बर मकान की ओर चल पड़ा। किसी को बर्मा से आये हुए दुर्लभ फलों का हिस्सा भेजने का ध्यान रहे, इसमें जो आत्मीयता झलकती है, उसका मान न रखना विनय के लिए असंभव है।

परेश बाबू के घर के पास आकर विनय ने देखा, पानू बाबू और दूसरे कुछ अपरिचित लोग परेश बाबू के घर से बाहर आ रहे हैं। ये लीला के जन्म-दिन पर

दोपहर के भोजन के लिए निमंत्रित थे। पानू बाबू ने मानो विनय को देखा न हो, ऐसे भाव से आगे बढ़ गए।

घर में प्रवेश करते ही विनय ने खुली हँसी की ध्वनि और दौड़-भाग के शब्द सुने। सुधीर ने लावण्य की चाबी चुरा ली थी; इतना ही नहीं, वह उस मारे दस्यु-समाज में इस बात का भंडा-फोड़ करने की भी धमकी दे रहा था कि लावण्य ने दराज में एक कापी छिपा रखी है, जिसमें उस कवियश:प्रार्थिनी का मजाक बनाने के लिए ढेरों सामग्री है! जिस समय विनय ने रंगभूमि में प्रवेश किया उस समय इसी बात को लेकर दोनों पक्षों की लड़ाई चल रही थी।

उसे देखते ही लावण्य का दल फौरन अंतर्धान हो गया। उनके हँसी-मजाक में भाग लेने के लिए सतीश भी उनके पीछे दौड़ा। कुछ देर बाद सुचरिता ने कमरे में आकर कहा, "माँ ने आपको जरा देर बैठने के लिए कहा है, वह अभी आ रही है। बाबा अनाथ बाबू के घर गये हैं, उन्हें भी लौटने में देर नहीं होगी।"

विनय का संकोच दूर करने के लिए सुचरिता ने गोरा की बात उठाई। हँसकर बोली, "वह जान पड़ता है यहाँ फिर कभी नहीं आयेंगे?"

विनय ने पूछा, "क्यों?"

सुचरिता ने कहा, "हम लोग पुरुषों के सामने आती हैं, यह देखकर उन्हें जरूर बड़ा अचम्भा हुआ होगा। घर के काम-काज को छोड़कर और कहीं लड़कियों को देखना, जान पड़ता है, उन्हें अच्छा नहीं लगता।"

इसका उत्तर देने में विनय मुश्किल में पड़ गया। बात का प्रतिवाद कर सकता तो उसे खुशी होती, किन्तु वह झूठ कैसे बोले? बोला, "गोरा की राय में लड़कियाँ घर के काम में पूरा मन न लगा पायें तो उनके कर्तव्य की एकाग्रता नष्ट होती है।"

सुचरिता ने कहा, "तब तो स्त्री-पुरुषों का घर और बाहर का पूरा हिस्सा-बाँट कर लेना ही अच्छा होता। पुरुषों को घर में घुसने देने से भी तो शायद उनका बाहर का कर्तव्य अच्छी तरह संपन्न नहीं होता। आपकी राय भी क्या अपने बन्धु की राय से मिलती है?"

अभी तक तो नारी-नीति के संबंध में गोरा की राय ही विनय की राय रही है। उसीको लेकर वह अखबारों में लिखता-विखता भी रहा है। किंतु इस समय उसके मुँह से यह बात न निकल सकी कि उसका मत भी वही है। उसने कहा, "देखिये, असल में इन सब मामलों में हम सब आदतों के दास हैं। इसीलिए लड़कियों को बाहर आते देखकर मन में खटका होता है। उसके बुरा लगने का कारण यह है कि वह अन्याय है या अनुचित है, ऐसा तो हम जबरदस्ती सिद्ध करना चाहते हैं। असल बात संस्कार की होती है, दलील तो केवल उपलक्ष्य हो जाती है।"

सुचरिता ने कहा, "जान पड़ता है, आपके दोस्त के संस्कार बड़े दृढ़ हैं।"

विनय—"बाहर से देखने पर हठात् ऐसा ही जान पड़ता है। किन्तु एक बात आप याद रखिए ! वह जो हमारे देश के संस्कारों से चिपटे रहते हैं, उसका कारण यह नहीं कि वह उन संस्कारों को अच्छा समझते हैं। हम लोग देश के प्रति अंधी अश्रद्धा के कारण देश की सभी प्रथाओं की अवज्ञा करने लगे थे, इसी अनर्थ को रोकने के लिए वह खड़े हुए हैं। वह कहते है, हमें पहले श्रद्धा और और प्रीति के द्वारा देश को समग्र रूप से अपनाना होगा, उसके बाद स्वाभाविक स्वास्थ्य के नियम के अनुसार अपने-आप भीतर से ही संशोधन का काम होने लगेगा।"

सुचरिता ने कहा, "अपने-आप होना होता तो इतने दिन क्यों नहीं हुआ ?"

विनय—"नहीं हुआ, उसका कारण यह है कि अब तक हम देश के नाम पर समूचे देश को, जाति के नाम पर समूची जाति को एक मानकर नहीं देख सके। फिर अगर हमने अपनी जाति पर अश्रद्धा नहीं की तो श्रद्धा भी नहीं की—यानी उसे ठीक से देखा ही नहीं, इसीलिए उसकी शक्ति भी नहीं जागी। एक समय रोगी की ओर देखे बिना, उसे बिना दवा-दारू और बिना पथ्य के एक ओर हटा दिया गया था, अब उसे दवाखाने में लाया ज़रूर गया है, किन्तु डाक्टर को उस पर इतनी अश्रद्धा है कि सेवा-शुश्रूषा माँगने वाले लम्बे इलाज की बात सोचने का भी धीरज उसमें नहीं है—उसे यही सूझता है कि एक-एक करके रोगी के अंग काट फेंके जायँ ! ऐसी अवस्था में मेरा दोस्त डॉक्टर कहता है, अपने इस परम आत्मीय को इलाज के नाम पर काट-कूटकर फेंक दिया जाय, यह मैं नहीं सह सकता। मैं अब इस अंग-छेदन को बिलकुल बन्द करके पहले अनुकूल पथ्य देकर इसके भीतर की जीवनी-शक्ति को जगाऊँगा। उसके बाद काटने की ज़रूरत होगी तो रोगी उसे सह सकेगा, और शायद बिना काटे भी वह अच्छा हो जायगा। गोरा कहते हैं, हमारे देश की वर्तमान अवस्था में गम्भीर श्रद्धा ही सबसे बड़ा पथ्य है—इस श्रद्धा के अभाव में ही हम देश को समग्र भाव से जान नहीं पाते—और जान न पाने के कारण उसके लिए जो भी व्यवस्था करते हैं वह कुव्यवस्था हो जाती है। देश से प्रेम न हो तो उसे अच्छी तरह जानने का धैर्य नहीं होता; और उसे जाने बिना उसका भला करना चाहने पर भी भला होता नहीं है।"

बराबर थोड़ा-थोड़ा छेड़ती रहकर सुचरिता ने गोरा-सम्बन्धी चर्चा को बन्द नहीं होने दिया। गोरा की ओर से विनय भी जो-कुछ कह सकता था सुलझा-सुलझाकर कहता रहा। ऐसी अच्छी दलीलें, ऐसे अच्छे दृष्टान्त देकर और इतनी सुलझाकर मानो उसने पहले कभी नहीं रखीं; गोरा भी स्वयं अपनी राय को इतनी सफ़ाई और स्पष्टता से प्रकट कर सकता कि नहीं इसमें सन्देह है। बुद्धि की

ओर विवेचन की इस अपूर्व उत्तेजना पर उसे मन-ही-मन आनन्द अनुभव होने लगा और उस आनन्द से उसका चेहरा दीप्त हो उठा।

विनय ने कहा, "देखिए, शास्त्रों में कहा है, 'आत्मानं विद्धि'—अपने को जानो! नहीं तो मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। मैं आपसे कहता हूँ, मेरे बन्धु गोरा में भारतवर्ष का यही आत्म-बोध प्रत्यक्ष रूप में आविर्भूत हुआ है। मैं उन्हें साधारण आदमी मान ही नहीं सकता। हम सबका मन जब ओछे आकर्षण, नयेपन के प्रलोभन में पड़कर बाहर की ओर बिखर गया, तब वही एक अकेला व्यक्ति इस सारे पागलपन के बीच अटल खड़ा सिंह-गर्जन के साथ वही मन्त्र देता रहा··· 'आत्मानं विद्धि'।"

यह बात-चीत और भी काफ़ी देर तक चल सकती—सुचरिता भी बड़ी लगन से सुन रही थी। किन्तु सहसा साथ के किसी कमरे में सतीश ने चिल्ला-चिल्लाकर पढ़ना शुरू किया :

बोलो न कातर स्वरे ना करि विचार
जीवन स्वप्न-सम, मायार संसार!

बेचारा सतीश घर के अतिथि-अभ्यागतों के सामने अपनी विद्या जताने का कोई मौका ही नहीं पाता। लीला तक अंग्रेजी कविता दोहराकर सभी का मनोरंजन कर सकती है, लेकिन सतीश को वरदासुन्दरी कभी नहीं बुलातीं। पर लीला के साथ हर मामले में सतीश की होड़ रहती है। किसी तरह भी लीला को नीचा दिखाना सतीश के जीवन का प्रधान सुख है। विनय के सामने लीला की परीक्षा हो गई; उस समय बुलाये ही न जाने के कारण सतीश उसे हराने की कोई कोशिश नहीं कर सका—कोशिश करता भी तो वरदासुन्दरी उसे उसी समय रोक देतीं। तभी वह आज पास के कमरे में मानो अपने-आप ऊँचे स्वर से काव्य-चर्चा करने लगा था। सुनकर सुचरिता हँसी न रोक सकी।

उसी समय लीला अपनी चोटी झुलाती हुई कमरे में आकर सुचरिता के गले से लिपटकर उसके कान में कुछ कहने लगी। पीछे-पीछे सतीश ने भी दौड़ते हुए आकर कहा, "अच्छा लीला, बताओ तो 'मनोयोग' का मतलब क्या है?"

लीला ने कहा, "नहीं बताती।"

सतीश—"एहे! नहीं बताती! यही कहो न कि जानती नहीं!"

विनय ने सतीश को अपनी ओर खींचते हुए पूछा, "तुम बताओ तो 'मनोयोग' के क्या माने हैं?"

सतीश ने गर्व से सिर उठाकर कहा, "मनोयोग माने—मनोनिवेश।"

सुचरिता ने जिज्ञासा की, "मनोनिवेश से तुम क्या समझते हो?"

अपनों के सिवा भला कौन किसी को ऐसी मुसीबत में डाल सकता है! पर

सतीश ने मानो सवाल सुना ही न हो, ऐसे उछलता-उछलता कमरे से बाहर चला गया।

विनय परेश बाबू के घर से जल्दी ही छुट्टी लेकर गोरा के पास जाने का निश्चय करके आया था। गोरा की बात करते-करते उसके पास जाने का उत्साह भी उसके मन में प्रबल हो उठा। इसीलिए वह घड़ी में चार बजते सुनकर जल्दी से कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

सुचरिता बोली, "आप अभी जायेंगे ? माँ तो आपके लिए जल-पान तैयार कर रही हैं; ज़रा देर और न बैठ सकेंगे ?"

विनय के लिए यह प्रश्न नहीं, आदेश था। वह फिर बैठ गया।

लावण्य रंगीन रेशमी कपड़ों में सज-धजकर आई और बोली, "दीदी, नाश्ता तैयार हो गया है, माँ ने छत पर आने को कहा है।"

छत पर जाकर विनय को नाश्ते में जुट जाना पड़ा। वरदासुन्दरी अपनी सब संतानों का जीवन-वृत्तान्त सुनाने लगीं। ललिता सुचरिता को भीतर खींचकर ले गई। लावण्य एक कुर्सी पर बैठकर कंधे झुकाकर लोहे की सलाइयों पर बुनाई करने में लग गई। उसे कभी किसी ने कहा था, 'बुनाई के समय उसकी उँगलियों का खेल बहुत सुंदर लगता है।' तभी से लोगों के सामने बिना प्रयोजन बुनाई करने का उसका अभ्यास हो गया है।

परेश बाबू आ गए। साँझ हो चली थी। आज रविवार था, उपासना-मंदिर जाने की बात थी। वरदासुन्दरी ने विनय से कहा, "आपत्ति न हो तो हम लोगों के साथ समाज में चलें ?"

ऐसे में आपत्ति करना कैसे सम्भव है ? दो गाड़ियों में बैठकर सब लोग उपासना-भवन गए। लौटते समय जब सब गाड़ी पर सवार हो रहे थे तब सुचरिता ने सहसा चौंककर कहा, "वह गौरमोहन बाबू जा रहे हैं !"

गोरा ने इस दल को देख लिया है, इसमें किसी को संदेह नहीं था। किंतु वह ऐसे भाव से तेज़ी से बढ़ गया मानो उसने उन्हें देखा न हो। गोरा की इस उद्धत अशिष्टता के कारण विनय ने परेश बाबू के सम्मुख लज्जित होकर सिर झुका लिया। किंतु मन-ही-मन वह स्पष्ट समझ सका कि विनय को इस दल में देखकर ही गोरा यों विमुख होकर इतनी तेजी से चला गया है। अब तक उसके मन में एक आनंद का जो दिया जल रहा था वह सहसा बुझ गया। विनय के मन का भाव और उसका कारण सुचरिता फ़ौरन समझ गई, और विनय-जैसे बंधु के प्रति गोरा को इस ज़्यादती और ब्राह्मों के प्रति उसकी इस अनुचित अवज्ञा से गोरा पर उसे फिर क्रोध आ गया। किसी तरह भी गोरा का पराभव हो, यह उसका मन चाह उठा।

१४

गोरा दोपहर को खाने बैठा तो आनंदमयी ने धीरे-धीरे बात उठाई —"आज सवेरे विनय आया था। तुमसे नहीं मिला ?"

गोरा ने थाली पर से आँख उठाये बिना ही कहा, "हाँ, मिला था।"

आनंदमयी बहुत देर तक चुपचाप बैठी रहीं। उसके बाद बोलीं, "उसे ठहरने को कहा था, किंतु वह अनमना-सा होकर चला गया।"

गोरा ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया। आनन्दमयी ने कहा, "उसके मन को न जाने क्या तकलीफ़ है गोरा, मैंने उसे कभी ऐसा नहीं देखा। मुझे न जाने कैसा लग रहा है !"

गोरा चुपचाप खाता रहा। आनन्दमयी अत्यन्त स्नेह के कारण ही मन-ही-मन गोरा से थोड़ा डरती थीं। वह अगर अपने मन की बात अपने-आप उनसे न कहता तो वह उसे मजबूर नहीं करती थीं। और कोई दिन होता, तो इतने ही पर चुप हो जातीं। किंतु आज उनके मन में विनय के लिए बड़ा दर्द था, इसीलिए उन्होंने फिर कहा, "देखो, गोरा, एक बात कहूँ—नाराज़ मत होना ! भगवान् ने अनेक लोग बनाये हैं, लेकिन सबके लिए केवल एक ही रास्ता नहीं बनाया। विनय तुम्हें प्राणों से बढ़कर स्नेह करता है, इसीलिए तुम्हारी ओर से सब-कुछ सह लेता है—लेकिन उसे तुम्हारे ही पथ पर चलना होगा, ऐसी ज़बरदस्ती करने से वह पथ सुख का नहीं होगा !"

गोरा ने कहा, "माँ, और थोड़ा दूध ला देना तो !"

बात यहीं चुक गई। भोजन के बाद आनन्दमयी चुपचाप तख्तपोश पर बैठकर सिलाई करने लगीं। लछमिया घर के किसी नौकर के किसी दुर्व्यवहार की शिकायत मे आनन्दमयी की दिलचस्पी जगाने की वृथा चेष्टा करके फ़र्श पर लेटकर सो गई।

गोरा ने चिट्ठी-पत्री में बहुत-सा समय बिता दिया। गोरा विनय पर नाराज़ है, विनय आज सवेरे यह स्पष्ट देख गया है; फिर भी वह इस नाराज़ी को मिटाने के लिए गोरा के पास न जाय, यह हो ही नहीं सकता, यही मानकर अपने सब कामों के बीच भी वह विनय के पैरों की चाप के लिए कान लगाए था।

पर बड़ी देर हो गई···विनय नहीं आया। लिखना छोड़कर गोरा उठने की सोच रहा था कि इसी समय महिम कमरे में आ गए। आते ही कुर्सी पर बैठकर बोले, "शशिमुखी के ब्याह के बारे में क्या सोचा, गोरा ?"

गोरा ने इस बारे में कभी कुछ सोचा ही नहीं, इसलिए अपराधी-सा चुप हो रहा।

बाज़ार में पात्र का भाव कितना बढ़ा हुआ है, और इधर घर में रुपये-पैसे की हालत कितनी तंग है, यह सब बताकर महिम ने गोरा को कुछ उपाय सोचने को कहा। गोरा जब सोचकर भी कोई किनारा न पा सका तब उन्होंने मानो इस चिन्ता-संकट से उसका उद्धार करने के लिए ही विनय की बात उठाई। इतना घुमा-फिराकर बात करने की कोई ज़रूरत नहीं थी, किन्तु महिम मुंह से चाहे जो कहें, मन-ही-मन गोरा से डरते थे।

इस प्रसंग में विनय की बात भी उठ सकती है, यह गोरा ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। बल्कि गोरा और विनय ने तय कर रखा था कि वे विवाह न करके अपना जीवन देश के लिए उत्सर्ग कर देंगे। इसलिए गोरा ने कहा, "विनय ब्याह करेगा क्यों?"

महिम बोले, "यही क्या तुम लोगों का हिन्दूपन है! हज़ार चुटिया रखो और तिलक लगाओ, साहिबी सिर पर चढ़कर बोलेगी! शास्त्रों के अनुसार विवाह भी ब्राह्मण के लड़के का एक संस्कार है, यह जानते हो?"

महिम आजकल के लड़कों की भाँति आचार भी नहीं तोड़ते, और शास्त्र की दुहाई भी नहीं देते। होटल में खाना खाकर बहादुरी दिखाने को भी वह ज़्यादती समझते हैं, और गोरा की तरह हमेशा श्रुति-स्मृति लेकर उलझते रहने को भी वह स्वस्थ आदमी का लक्षण नहीं मानते। किन्तु 'यस्मिन् देशे यदाचारः'···गोरा के सामने उन्हें शास्त्र की दुहाई देनी ही पड़ी।

यह प्रस्ताव अगर दो दिन पहले आया होता तो गोरा उसे एकबारगी अनसुना कर देता। किन्तु आज उसे लगा कि बात सर्वथा उपेक्षा के योग्य नहीं है। कम-से-कम इस प्रस्ताव को लेकर फ़ौरन विनय के घर जाने का एक कारण तो मिल ही सकता है।

अन्त में उसने कहा, "अच्छा, विनय का रुख क्या है, ज़रा समझ लूं!"

महिम बोले, "उसमें समझने को क्या है? तुम्हारी बात को वह किसी तरह नहीं टाल सकता। वह मान जायगा। तुम्हारा कहना ही काफ़ी है।"

उसी सांझ को गोरा विनय के घर जा पहुँचा। आंधी के समान उसके कमरे में प्रवेश करके उसने देखा, वहां कोई नहीं है। बैरा को बुलाकर पूछने पर मालूम हुआ कि बाबू ७८ नम्बर मकान में गये हैं। सुनकर गोरा का मन फिर विकल हो उठा। आज सारा दिन जिसके लिए गोरा का मन अशान्त रहा, उस विनय को आजकल गोरा का ध्यान करने की भी फ़ुरसत नहीं है! गोरा चाहे नाराज़

हो, चाहे दुखित हो; विनय की शान्ति और चैन में उससे कोई व्यवधान नहीं पड़ता !

परेश बाबू के परिवार के विरुद्ध, ब्राह्म-समाज के विरुद्ध गोरा का मन बिलकुल विषाक्त हो उठा। मन में एक तीखा विरोध लेकर वह परेश बाबू के घर की ओर लपका। उसका मन हुआ, वहाँ ऐसी कुछ बात खड़ी कर दे जिसे सुनकर उस ब्राह्म-परिवार के लोग जल उठें और विनय भी तिलमिलाकर रह जाय।

परेश के घर पहुँचकर उसने सुना, घर पर कोई नहीं है, सभी उपासना-मंदिर में गये हैं। क्षण-भर के लिए उसने सोचा, विनय शायद न गया हो—शायद इसी समय वह गोरा के घर की ओर गया हो।

वह और न रुक सका। अपनी स्वाभाविक आँधी-सी चाल से वह मंदिर की ओर ही चला। द्वार के पास पहुँचकर ही देखा, वरदासुन्दरी के पीछे विनय उनकी गाड़ी पर सवार हो रहा है—खुली सड़क के बीच बेशरम होकर पराये घर की लड़कियों के साथ एक गाड़ी में बैठ रहा है। मूढ़ ! नागपाश में इतनी जल्दी, इतनी आसानी से फँस गया ? तब दोस्ती के लिहाज़ का अब कोई प्रश्न नहीं है। गोरा आँधी की तरह आगे बढ़ गया और गाड़ी के अन्धकार में बैठा हुआ विनय चुपचाप रास्ते की ओर ताकता रह गया।

वरदासुन्दरी ने समझा, आचार्य का उपदेश विनय के मन पर असर कर रहा है। इसीलिए उन्होंने कोई बात नहीं की।

१५

रात को गोरा घर लौटकर अँधेरी छत पर चक्कर काटने लगा। उसे अपने ऊपर क्रोध आया। उसने रविवार क्यों ऐसे व्यर्थ बीत जाने दिया ! एक व्यक्ति के स्नेह के लिए दुनिया के और सब काम बिगाड़ने तो गोरा दुनिया में नहीं आया। विनय जिस पथ पर जा रहा है उससे उसे खींचते रहने की चेष्टा करना केवल समय नष्ट करना और अपने मन को तकलीफ़ देना है। इसलिए जीवन-यात्रा के पथ पर विनय से यहीं अलग हो जाना होगा। जीवन में गोरा का एक ही बन्धु है, उसीको छोड़कर गोरा अपने धर्म के प्रति अपनी सचाई प्रमाणित

करेगा ! गोरा ने जोर से हाथ झटककर मानो विनय के संसर्ग को अपने चारों ओर से दूर हटा दिया।

तभी महिम छत पर पहुँचकर हाँफते हुए बोले, "इंसान को अगर पंख नहीं दिये तो तिमंज़िले मकान क्यों बनाये ? ज़मीन पर चलने वाला मनुष्य आसमान में रहने की कोशिश करे तो आकाशचारी देवता कैसे सहेंगे ? ···विनय के पास गये थे ?"

गोरा ने इसका सीधा जवाब न देते हुए कहा, "विनय के साथ शशिमुखी का ब्याह नहीं हो सकेगा।"

महिम—"क्यों ? विनय की मर्ज़ी नहीं क्या ?"

गोरा—"मेरी मर्ज़ी नहीं है।"

महिम ने हाथ चमकाकर कहा, "वाह ! यह एक नया फ़िसाद खड़ा हुआ। तुम्हारी मर्ज़ी नहीं है ! वजह क्या है, जरा सुनूँ ?"

गोरा—"मैंने अच्छी तरह समझ लिया है कि विनय को हमारे समाज में बने रहना मुश्किल होगा। उसके साथ हमारे घर की लड़की का विवाह नहीं हो सकता।"

महिम—"मैंने बहुत हिन्दूपना देखा है, लेकिन ऐसा तो कभी नहीं देखा ! तुम तो काशी-भाटपाड़ा से भी आगे बढ़ गए ! तुम तो भविष्य देखकर विधान देते हो ! किसी दिन मुझे भी कहोगे, सपने में देखा कि तुम ख़िस्तान हो गए हो, गोबर खाकर फिर जात में आना होगा !"

बहुत बक-झक कर लेने के बाद महिम ने फिर कहा, "लड़की को मूर्ख के गले तो बाँध नहीं सकता। और पढ़ा-लिखा लड़का होगा, समझदार होगा, तो बीच-बीच में शास्त्र को उलांघकर चलेगा ही। इसके लिए उससे बहस करो, उसे गाली दो; किन्तु ब्याह रोककर बीच में मेरी लड़की को सजा क्यों दो ? तुम हर बात उलटी ही सोचते हो !"

नीचे उतरकर महिम ने आनन्दमयी से कहा, "माँ, अपने गोरा को तुम सभालो !"

आनन्दमयी ने घबराकर पूछा, "क्या हुआ ?"

महिम—"शशिमुखी के साथ विनय के विवाह की बात मैं एक तरह से पक्की करके आया था। गोरा को भी राज़ी कर लिया था, इस बीच गोरा ने अच्छी तरह समझ लिया है कि विनय में काफ़ी हिन्दूपन नहीं है—मनु-पराशर की राय से उसकी राय कभी थोड़ी उन्नीस-बीस हो जाती है। इसीलिए गोरा अड़ गया है—अड़ने पर वह कैसा अड़ता है, तुम जानती ही हो। कलियुग के जनक ने अगर प्रण किया होता कि जो टेढ़े गोरा को सीधा करेगा उसीको सीता देंगे, तो श्री

रामचन्द्र क्वाँरे ही रह जाते, यह मैं शर्त लगाकर कह सकता हूँ। मनु-पराशर के बाद वह इस दुनिया में एक तुम्हीं को मानता है—अब तुम्हीं अगर उबारो तो लड़की का कल्याण हो सकता है। ऐसा पात्र ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा।"

गोरा के साथ छत पर जो कुछ बातचीत हुई थी, महिम ने उसका पूरा ब्यौरा सुना दिया। विनय से गोरा का विरोध और गहरा हो गया है, यह समझकर आनन्दमयी का मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा।

आनन्दमयी ने ऊपर आकर देखा, गोरा छत पर टहलना छोड़कर कमरे में कुर्सी पर आ बैठा है। और दूसरी कुर्सी पर पैर फैलाकर किताब पढ़ रहा है। आनन्दमयी भी एक कुर्सी पास खींचकर बैठ गईं। गोरा ने कुर्सी पर से पैर हटा लिये और सीधे होकर बैठते हुए आनन्दमयी के चेहरे की ओर देखने लगा।

आनन्दमयी ने कहा, "बेटा गोरा, मेरी एक बात रखना···विनय से झगड़ा मत करना! मेरे लिए तुम दोनों दो भाई हो—तुम्हारे बीच फूट पड़ जायगी तो मुझसे नहीं सहा जायगा।"

गोरा बोला, "बन्धु ही अगर बन्धन काट देगा तो उसके पीछे-पीछे दौड़ने में समय नष्ट करना मुझसे नहीं होगा।"

आनन्दमयी ने कहा, "मैं नहीं जानती कि तुम दोनों के बीच क्या हुआ है। लेकिन विनय तुम्हारा बन्धन काटना चाहता है, इस बात पर अगर तुम विश्वास करते हो तो फिर तुम्हारी दोस्ती में क्या ज़ोर है?"

गोरा—"माँ, मुझे सीधा चलना पसन्द है। जो दोनों तरफ़ बनाये रखना चाहते हैं उनके साथ मेरी नहीं निभेगी। जिसका स्वभाव ही दो नावों में पैर रखने का है उसको मेरी नाव में से पैर हटाना ही होगा—इसमें चाहे मुझे तकलीफ़ हो, चाहे उसे तकलीफ़ हो।"

आनन्दमयी—"क्या हुआ है, यह तो बताओ? यह ब्राह्म लोगों के घर आता-जाता है, यही अपराध है न?"

गोरा—"बहुत-सी बातें हैं, माँ!"

आनन्दमयी—"हुआ करें बहुत-सी बातें। लेकिन मैं एक बात कहती हूँ, गोरा! हर मामले में तुम इतने हठी हो कि जिसे पकड़ते हो उसे कोई तुमसे छुड़ा नहीं सकता। फिर विनय के बारे में ही तुम क्यों ऐसे ढीले हो? तुम्हारा अविनाश अगर दल छोड़ना चाहता तो तुम क्या उसे सहज ही छोड़ देते? वह तुम्हें बन्धु कहता है, क्या इसीलिए वह तुम्हारे और सब साथियों से कम हो गया?"

गोरा चुप होकर सोचने लगा। आनन्दमयी की इस बात से अपने मन की

अवस्था उसके सामने साफ़ हो गई। अब तक वह सोच रहा था कि वह कर्तव्य के लिए दोस्ती का बलिदान करने जा रहा है; अब उसने स्पष्ट देखा कि बात इससे ठीक उलटी है। उसकी दोस्ती के अभिमान को ठेस लगी है, इसलिए वह विनय को दोस्ती की सबसे बड़ी सज़ा देने को उद्यत हुआ है! वह मन-ही-मन जानता था कि विनय को बांधे रखने के लिए बन्धुत्व ही काफ़ी है, और किसी तरह की चेष्टा दोस्ती का अपमान होगा।

उनकी बात गोरा के मन को छू गई है, इसका अनुमान होते ही आनन्दमयी और कुछ कहे बिना धीरे-धीरे उठकर जाने लगीं। गोरा भी सहसा तेज़ी से उठा और खूंटी पर से चादर उतारकर उसने कन्धे पर डाल ली।

आनन्दमयी ने पूछा, "कहीं जा रहे हो, गोरा?"

गोरा ने कहा, "विनय के घर जा रहा हूँ।"

आनन्दमयी—"खाना तो तैयार है, खाकर जाना!"

गोरा—"मैं विनय को पकड़कर लाता हूँ, वह भी यहीं खायगा।"

आनन्दनयी और कुछ न कहकर नीचे की ओर चलीं। सीढ़ी पर पैरों की आहट सुनकर सहसा रुककर बोलीं, "वह विनय आ रहा है।"

विनय के आते ही आनन्दमयी की आँखें छलछला उठीं। उन्होंने स्नेह से विनय के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, "विनय बेटा, खाना तो नहीं खाया तुमने?"

विनय ने कहा, "नहीं, माँ!"

आनन्दमयी—"तुम्हें यहीं भोजन करना होगा।"

विनय ने एक बार गोरा के मुंह की ओर देखा। गोरा ने कहा, "तुम्हारी बड़ी लम्बी उम्र है, विनय! मैं तुम्हारे यहाँ ही जा रहा था।"

आनन्दमयी का हृदय हल्का हो गया; वह तेज़ी से उतर गई।

दोनों कमरे में आकर बैठे तो गोरा ने यों ही इधर-उधर की कुछ बात उठाते हुए कहा, "जानते हो, अपने साथियों के लिए एक बहुत अच्छा जिमनास्टिक मास्टर मिल गया है। अच्छा सिखा रहा है।"

मन के भीतर की बात सामने लाने का साहस अभी किसी को नहीं था। दोनों जब खाने बैठ गए तब उनकी बातचीत के ढंग से आनन्दमयी समझ गई कि अभी उनके बीच का खिंचाव बिलकुल दूर नहीं हुआ है—दुराव अभी भी बाकी है। बोलीं, "विनय, रात बहुत हो गई है, तुम आज यहीं सो रहना! मैं तुम्हारे घर कहलाये देती हूँ।"

चकित से विनय ने गोरा के चेहरे की ओर देखते हुए कहा, "भुक्त्वा

राजवदाचरेत् ! खा-पीकर राह चलने का नियम नहीं है। तो फिर यहीं सोया जायगा।"

भोजन करके दोनों मित्र छत पर आकर चटाई बिछाकर बैठ गए। भादों जा रहा था; शुक्ल पक्ष की चाँदनी आकाश में छिटकी हुई थी। हल्के सफ़ेद बादल मानो नींद के हल्के झोंके से बीच-बीच में चाँद को ज़रा धुंधला करते हुए धीरे-धीरे उड़े चले जा रहे थे। चारों ओर दिगन्त तक छोटी-बड़ी, ऊँची-नीची छतों की श्रेणी प्रकाश-छाया में, और कभी-कभी पेड़ों के शिखरों के साथ मिलती हुई, मानो एक सम्पूर्ण प्रयोजनहीन, विशाल, वास्तव कल्पना की तरह फैली हुई थी।

गिरजाघर की घड़ी में ग्यारह बजे। कुल्फ़ी वाला अपनी अन्तिम हाँक लगाकर चला गया। गाड़ियों का शब्द धीमा पड़ गया। गोरा की गली में किसी के जागने का कोई निशान नहीं था; केवल पड़ोसी के अस्तबल के काठ के फ़र्श पर घोड़े की टाप का शब्द कभी-कभी सुनाई पड़ जाता या कोई कुत्ता भौंक उठता। दोनों बहुत देर तक चुप रहे। फिर विनय ने पहले कुछ सकुचाते हुए और फिर बड़ी तेज़ी से, अपने मन की बात कह डाली, "भाई गोरा, मेरा हृदय भर रहा है। मैं जानता हूँ कि इन सब बातों की तरफ़ तुम्हारा ध्यान नहीं है, किन्तु तुम्हें कहे बिना मैं नहीं रह सकता। अच्छा-बुरा कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ—किन्तु इतना निश्चय है कि यहाँ कोई चालाकी नहीं चलेगी। किताबों में बहुत-कुछ पढ़ा है, और इतने दिनों से सोचता आया हूँ कि सब जानता हूँ। जैसे तस्वीरों में पानी देखकर सोचता रहता था, तैरना तो बहुत आसान है; लेकिन आज पानी में उतरकर पल-भर में ही पता चल गया कि यह हँसी-खेल नहीं है।"

यों कहकर विनय अपने जीवन में इस नये आश्चर्य के आविर्भाव को यत्नपूर्वक गोरा के सामने उद्घाटित करने लगा।

वह कहने लगा—आजकल उसके लिए मानो दिन और रात में कहीं कोई दूरी नहीं है, सारे आकाश में मानो कहीं कोई सूनी जगह नहीं है, सब-कुछ मानो निविड़ रूप से भर गया है—जैसे वसन्त-ऋतु में मधु का छत्ता मधु से भरकर फटने-सा लगता है, वैसे ही। पहले इस चराचर विश्व का बहुत-सा हिस्सा उसके जीवन के बाहर ही पड़ा रहता था—जितने से उसका प्रयोजन था उतना ही उसकी नज़र पड़ता था। किन्तु आज वह समूचा उसके सम्मुख है, समूचा उसे छूता है, समूचा एक नये अर्थ से भर उठा है। वह नहीं जानता था कि वह धरती को इतना प्यार करता है, कि आकाश ऐसा अचरज-भरा है, कि आलोक ऐसा अपूर्व होता है, कि सड़क पर अपरिचित यात्रियों का आना-जाना भी इस गम्भीर

भाव से सत्य है। उसकी इच्छा होती है, इस सम्पूर्णता के लिए वह कुछ करे, अपनी सारी शक्ति को आकाश के सूर्य की भाँति वह संसार के चिरन्तन उपयोग में लगा दे।

विनय सारी बातें किसी विशेष व्यक्ति के प्रसंग में कह रहा है, सहसा ऐसा नहीं जान पड़ता। वह मानो किसी का भी नाम ज़बान पर नहीं ला सकता, कोई आभास देने में भी सकुचा जाता है। यह जो चर्चा वह कह रहा है, इसमें भी वह मानो अपने को किसी के प्रति अपराधी अनुभव कर रहा है। यह चर्चा अन्याय है, यह अपमान है--किन्तु आज इस निर्जन रात में, नि:स्तब्ध आकाश के नीचे, बन्धु के पास बैठकर वह इस अन्याय से किसी तरह अपने को नहीं रोक सका।

कैसा है यह चेहरा! प्राणों की आभा उसके कपोलों की कोमलता के बीच कितनी सुकुमारता से चमक उठती है! हँसने पर उसका अन्त:करण कैसे अद्भुत आलोक-सा फूट पड़ता है। ललाट पर कैसी बुद्धि झलकती है! और घने पल्लवों की छाया के नीचे दोनों आँखें--कैसी अनिर्वचनीय! और वे दोनों हाथ--मानो कह रहे हों कि सेवा और स्नेह को सुन्दरता को सार्थक करने के लिए सर्वदा प्रस्तुत हैं। विनय अपने जीवन और यौवन को धन्य मानता है, आनन्द से मानो उसका हृदय फूला नही समा रहा है। पृथ्वी के अधिकांश लोग जिसे देखे बिना ही जीवन बिता देते हैं, विनय उसे यों आँखों के सामने मूर्त्त करके देख सकेगा, उसका बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है?

लेकिन यह क्या पागलपन है--अनुचित बात है! हुआ करे अनुचित--अब उससे और संभलता नहीं। यही धारा अगर उसे कहीं किनारे लगा दे तो ठीक है; अगर बहा दे—अगर डुबा ही दे—तो क्या उपाय है? मुश्किल तो यही है कि उद्धार की इच्छा भी नहीं होती— इतने दिनों के संस्कार और परिस्थितियाँ सब भुलाकर चलते जाना ही मानो जीवन का सार्थक परिणाम है!

गोरा चुपचाप सुनता रहा। इसी छत पर ऐसी ही निर्जन चाँदनी रात में और भी अनेक बार दोनों में अनेक बातें हुई हैं-- साहित्य की, ज़माने की, समाज-कल्याण की कितनी चर्चाएँ, भविष्यत् जीवन के बारे में दोनों के कितने संकल्प, लेकिन ऐसी बात इससे पहले कभी नहीं हुई। मानव-हृदय का इतना बड़ा सत्य, ऐसा प्रबल प्रकाश, इस प्रकार गोरा के सामने कभी नहीं आया। इस सारे व्यापार को वह इतने दिन से कविता का खिलवाड़ कहकर उसकी सम्पूर्ण उपेक्षा करता आया है। आज उसे इतना निकट से देखकर वह उसको और अस्वीकार न कर सका। इतना ही नहीं, उसके वेग ने गोरा के मन को हिला दिया, उसकी

पुलक उसके सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। उसके यौवन के किसी अगोचर अंश का पर्दा क्षण-भर के लिए हवा से उड़ गया और अनेक दिनों से बन्द उस कमरे में शारद रजनी की चाँदनी प्रवेश करके माया का विस्तार करने लगी।

चन्द्रमा न जाने कब छतों के पीछे डूब गया। फिर पूर्व की ओर सोये हुए चेहरे की मुस्कराहट-सा हल्के प्रकाश का आभास हुआ। इतनी देर के बाद विनय का मन हल्का हुआ तो एक संकोच ने उसे घेर लिया। थोड़ी देर चुप रहकर वह बोला, "मेरी ये सब बातें तुम्हें बड़ी ओछी लगेंगी। तुम शायद मन-ही-मन मुझ पर हँस भी रहे हो। लेकिन क्या करूँ, कभी तुमसे कुछ छिपाया नहीं है, आज भी कुछ नहीं छिपा रहा हूँ—तुम समझो या न समझो!"

गोरा ने कहा, "विनय, ये सब बातें मैं ठीक-ठीक समझता हूँ, ऐसा तो नहीं कह सकता। अभी दो दिन पहले तक तुम भी नही समझते थे। और जीवन के काम-काज के बीच ये सब आवेग और आवेश आज तक मेरी दृष्टि में बड़ी छोटी चीज थीं, इससे भी इनकार नही कर सकता। लेकिन इसीलिए ये सचमुच छोटी है ऐसा शायद नहीं है। इनकी शक्ति, इसकी गम्भीरता से मेरा सामना नहीं हुआ, इसीलिए ये मुझे सार-हीन और माया-सी लगी हैं। लेकिन तुम्हारी इतनी बड़ी उपलब्धि को आज मैं कैसे झूठ कह दूं? असल में बात यह है कि जो आदमी जिस क्षेत्र में है उस क्षेत्र के बाहर की सचाई उसके निकट यदि छोटी न बनी रहे तो वह काम ही नही कर सकता। इसीलिए ईश्वर दूर की चीज़ों को मनुष्य की दृष्टि में छोटा कर देता है—सब सत्यों को एक-सा प्रत्यक्ष करके उसे आफ़त में नहीं देता। हमें कोई एक तरफ चुनना ही होगा, सब-कुछ एक साथ जकड़ लेने का लोभ छोड़ना ही होगा, नहीं तो सचाई हाथ नहीं आयेगी। तुम जहाँ खड़े होकर सत्य की जिस मूर्त्ति को प्रत्यक्ष देखते हो, मैं वही पर उसी मूर्त्ति का अभिवादन करने नहीं जा सकूंगा—उससे मेरे जीवन का सत्य खो जायगा। या तो इधर हो, या उधर।"

विनय बोला, "यानी—या विनय हो, या गोरा! मैं अपने को भर लेने के लिए निकला हूँ, और तुम अपने को त्याग देने के लिए!"

गोरा ने खीझकर कहा, "विनय, तुम मुँहज़बानी किताबें लिखना मत शुरू करो! तुम्हारी बात सुनकर मैं एक बात स्पष्ट समझ सका हूँ। अपने जीवन में तुम आज एक बहुत प्रबल सत्य के सामने खड़े हो—इसे टाल नहीं सकोगे। सत्य की उपलब्धि हो जाय तो उसके आगे आत्म-समर्पण करना ही होगा—कोई दूसरा रास्ता नहीं है। मैं जिस क्षेत्र में हूँ उस क्षेत्र के सत्य को भी ऐसे ही एक दिन पा

लूँ, यही मेरी आकांक्षा है। तुम इतने दिनों तक किताबी-प्रेम का परिचय पाकर ही सन्तुष्ट थे—मैं भी किताबी स्वदेश-प्रेम ही जानता हूँ। आज जब प्रेम तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष हुआ तभी तुम समझ सके कि किताबी चीज़ से वह कितना अधिक सत्य है—वह तुम्हारे चराचर जगत् पर छा गया है और तुम कहीं भी उससे छुटकारा नहीं पा रहे हो। जिस दिन मेरे सामने स्वदेश-प्रेम ऐसे ही सर्वांगीण भाव से प्रत्यक्ष हो जायगा उस दिन मेरे भी बचने का रास्ता न रहेगा—उस दिन वह मेरा धन-जीवन, मेरा हाड-मांस-मज्जा, मेरा आकाश-आलोक, मेरा सब-कुछ अयानास खींचकर ले जा सकेगा। स्वदेश की वह सत्य-मूर्ति कैसी अचरज-भरी सुन्दर, कैसी सुनिश्चित और सुगोचर है, उसका आनन्द और उसकी वेदना कितनी प्रचण्ड है, प्रबल है, जो क्षण-भर में जीवन-मरण को बाढ़ की तरह बहा ले जाती है—यह आज तुम्हारी बात सुनकर मन-ही-मन थोड़ा-थोड़ा अनुभव कर पा रहा हूँ। तुम्हारे जीवन की यह जानकारी आज मेरे जीवन को ललकार रही है—तुमने जो पाया है उसे मैं कभी समझ सकूँगा या नहीं यह नही जानता; किन्तु मैं जो पाना चाहता हूँ उसका आस्वाद मानो तुम्हारी मार्फ़त थोड़ा-थोड़ा पा सकता हूँ।"

कहते-कहते गोरा चटाई छोड़कर उठ खड़ा हुआ और छत पर टहलने लगा। पूर्व में उषा का आभास मानो उसे एक वाक्य-सा लगा; मानो प्राचीन तपोवन में एक वेद-मन्त्र उच्चारित हो उठा। उसका शरीर रोमांचित हो आया—क्षण-भर वह स्तम्भित-सा खड़ा रहा और उसे लगा कि उसका ब्रह्म-रन्ध्र भेद करके एक ज्योति सूक्ष्म मृणाल-तन्तु के सहारे उठकर एक ज्योतिर्मय शत-दल-सी सारे आकाश में व्यापकर खिल उठी है—उसके समूचे प्राण, समूची चेतना, समूची शक्ति मानो इससे एक परम आनन्द में जा मिली है।

गोरा जब अपने-आपमें लौट आया तब सहसा बोला, "विनय, तुम्हें इस प्रेम को भी पार करके आना होगा—मैं कहता हूँ, वहाँ रुक जाने से नहीं चलेगा। जिस महाशक्ति ने मेरा आह्वान किया है, वह कितना बड़ा सत्य है, यह मैं एक दिन तुम्हें दिखाऊँगा। मेरा मन आज भारी आनन्द से भर रहा है—अब मैं तुम्हें और किसी के हाथों में नहीं छोड़ सकूँगा।"

विनय चटाई छोड़कर उठ गया और गोरा के पास आ खड़ा हुआ। गोरा ने एक अपूर्व उत्साह से उसे दोनों बाँहों से घेरकर गले लगाते हुए कहा "भाई विनय, हम मरेंगे, तो एक ही मौत मरेंगे—हम दोनों एक हैं, हमें कोई अलग नहीं कर सकेगा, कोई बाँध नहीं सकेगा।"

गोरा के इस गम्भीर उत्साह का वेग विनय के हृदय को भी तरंगित

करने लगा; उसने कुछ कहे बिना अपने को गोरा के इस आकर्षण के प्रति सौंप दिया।

गोरा और विनय दोनों चुपचाप साथ-साथ टहलने लगे। पूर्व का आकाश लाल हो उठा। गोरा ने कहा, "भाई, अपनी देवी को मैं देखता हूँ तो सौन्दर्य के बीच तो नहीं, वहाँ तो अकाल है, दारिद्रय है, कष्ट और अपमान है। वहाँ गान गाकर, फूल चढ़ाकर पूजा नहीं होती, वहाँ प्राण देकर, लहू बहाकर पूजा करनी होगी। मुझे तो यही सबसे बड़ा आनन्द जान पड़ता है—वहाँ सुख में मगन होने को कुछ नहीं है, वहाँ अपने ही सहारे पूरी तरह जागते रहना होगा, सब-कुछ देना होगा—वहाँ मधुरता नहीं है—वह एक दुर्जय, दुस्सह आविर्भाव है—निठुर है, भयंकर है—उसमें वह कठिन झंकार है जिसमें सातों स्वर एक साथ बज उठने से तार ही टूट जाते हैं! उसकी याद से ही मेरा हृदय उल्लास से भर उठता है—मुझे जान पड़ता है कि यही है पुरुष का आनन्द—यही है जीवन का ताण्डव नृत्य! पुराने के प्रलय-यज्ञ की अग्नि-शिखा के ऊपर नये की सुन्दर मूर्ति देखने के लिए ही पुरुष की साधना है। लाल आकाश में मैं एक बन्धन-मुक्त ज्योतिर्मय भविष्य को देख पाता हूँ—आज के इस मोह में भी देख रहा हूँ—देखो, मेरे हृदय के भीतर कौन डमरू बजा रहा है!"

विनय ने कहा, "भाई गोरा, मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा। किन्तु इतना तुमसे कहता हूँ, मुझे कभी दुविधा मत करने देना! एकदम भाग्य की तरह कठोर होकर मुझे खींचे लिये जाना। हम दोनों का रास्ता एक है, लेकिन दोनों की शक्ति तो बराबर नहीं है।"

गोरा ने कहा, "हमारी प्रकृतियाँ अलग-अलग हैं। लेकिन एक बहुत बड़ा आनन्द हमारी भिन्न प्रकृतियों को एक कर देगा—तुम्हारे-मेरे बीच जो प्रेम है उससे भी बड़ा प्रेम हम दोनों को एक कर देगा। जब तक वह प्रेम सत्य नहीं होता तब तक हम दोनों के बीच क़दम-क़दम पर टकराहट, विरोध, विच्छेद होता रहेगा—फिर एक दिन हम सब-कुछ भूलकर, अपना अलगाव, अपना बन्धुत्व भी भूलकर, एक बहुत विशाल, एक प्रचण्ड आत्म-परिहास के द्वारा, एक अटल शक्ति के द्वारा एक हो जायँगे—वह कठिन आनन्द ही हमारे बन्धुत्व की चरम परिणति होगी।"

विनय गोरा का हाथ पकड़ते हुए बोला, "ऐसा ही हो!"

गोरा ने कहा, "लेकिन तब तक मैं तुम्हें बहुत कष्ट देता रहूँगा। मेरे सब अत्याचार तुम्हें सहने होंगे, क्योंकि अपने बन्धुत्व को ही मैं जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं मान सकूँगा—जैसे भी हो उसी को बचाते रहने की कोशिश करके उसका

अपमान नहीं करूँगा। इससे अगर दोस्ती टूट जाय तब तो कोई उपाय नहीं है, लेकिन अगर रहे तभी उसकी सार्थकता है।"

इसी समय पैरों की चाप सुनकर दोनों ने चौंककर पीछे मुड़कर देखा, आनन्दमयी छत पर आ रही थीं। उन्होंने दोनों के हाथ पकड़कर उन्हें खींच कर नीचे ले जाते हुए कहा, "चलो, जाकर सोओ!"

दोनों ने कहा, "अब क्या नींद आयगी, माँ!"

"आयगी," कहकर आनन्दमयी ने दोनों को बिस्तर पर पास-पास लिटा दिया और कमरे का दरवाजा उढ़काकर दोनों के सिरहाने बैठकर पंखा झलने लगीं।

विनय ने कहा, "माँ, तुम्हारे पंखा करते रहने से तो हमें नींद नहीं आयगी।"

आनन्दमयी बोली, "कैसे नहीं आयगी, देखूँगी! मैं चली गई तो तुम लोग फिर बहस करना शुरू कर दोगे—वह नहीं होने का।"

दोनों के सो जाने पर आनन्दमयी चुपके से कमरे के बाहर चली गई। सीढ़ियाँ उतरते हुए उन्होंने देखा, महिम ऊपर जा रहा है। उन्होंने कहा, "अभी नहीं—कल सारी रात वे लोग सोये नहीं। मैं अभी-अभी उन्हें सुलाकर आ रही हूँ।"

महिम ने कहा, "वाह रे, इसी को कहते हैं दोस्ती! ब्याह की कोई बात हुई थी या नहीं, तुम्हें कुछ पता है?"

आनन्दमयी—"पता नहीं।"

महिम—"जान पड़ता है, कुछ-न-कुछ तय हो गया है। उनकी नींद कब टूटेगी? ब्याह जल्दी न हुआ तो कई मुश्किलें होंगी।"

आनन्दमयी ने हँसकर कहा, "उनके सो जाने से कोई ऐसी बड़ी मुश्किल नहीं होगी—वे लोग आज ही किसी वक्त जाग जायँगे।"

१६

वरदासुन्दरी ने पूछा, "तुम सुचरिता का ब्याह नहीं करोगे ?"

परेश बाबू थोड़ी देर अपने स्वाभाविक शान्त गम्भीर भाव से दाढ़ी सहलाते रहे, फिर मृदु स्वर से बोले, "पात्र कहाँ है ?"

वरदासुन्दरी बोलीं, "क्यों, पानू बाबू के साथ उसके विवाह की बात तो तय ही हो चुकी है— कम-से-कम हम लोग तो ऐसा ही समझते रहे हैं, सुचरिता भी समझती है।"

परेश बोले, "मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि राधारानी को पानू बाबू ठीक पसन्द ही हैं।"

वरदासुन्दरी - "देखो, यही सब तो मुझे अच्छा नहीं लगता। सुचरिता को मैंने कभी अपनी लड़कियों से अलग नहीं माना; लेकिन इसीलिए तो यह भी कहना होगा कि उसमें ऐसी क्या असाधारण बात है ? पानू बाबू जैसे विद्वान् धार्मिक आदमी को अगर वह पसन्द है तो यह क्या यों ही उड़ा देने की बात है ? तुम जो कहो, मेरी लावण्य देखने में उससे कहीं अच्छी है, लेकिन मैं तुमसे कहे देती हूँ, हम जिसे भी पसन्द कर देंगे, वह उससे ब्याह कर लेगी, कभी 'ना' नहीं करेगी। तुम्हीं अगर सुचरिता को ऐसे सिर चढ़ाकर रखोगे तो उसके लिए पात्र मिलना मुश्किल हो जायगा।"

परेश बाबू ने इस पर और कुछ नहीं कहा। वरदासुन्दरी के साथ वह कभी बहस नहीं करते, खासकर सुचरिता के सम्बन्ध में।

सतीश को जन्म देकर जब सुचरिता की माँ मरीं तब सुचरिता सात बरस की थी। उसके पिता रामशरण हालदार ने पत्नी की मृत्यु के बाद ब्राह्म-समाज में प्रवेश किया और पड़ोसियों के अत्याचार के कारण गाँव छोड़कर ढाका में आ बसे। वहीं पोस्ट-आफ़िस की नौकरी करते समय परेश बाबू के साथ उनकी घनिष्ठता हो गई। सुचरिता तभी से परेश को ठीक अपने पिता के समान मानती है।

रामशरण की मृत्यु अचानक हो गई। अपनी वसीयत में अपना सब रुपया-पैसा लड़के और लड़की के नाम करके वह उनकी लड़की देख-भाल परेश बाबू को सौंप गए। तभी से सतीश और सुचरिता परेश के परिवार के हो गए।

घर, या बाहर के भी लोग सुचरिता के प्रति विशेष स्नेह या दिलचस्पी दिखाते

तो वरदासुन्दरी को अच्छा न लगता। फिर भी, चाहे जिस लिए हो, सुचरिता सभी से स्नेह और सम्मान पाती। वरदासुन्दरी की अपनी लड़कियाँ भी उसके स्नेह के लिए आपस में झगड़ती रहतीं। विशेषतया मँझली लड़की ललिता तो अपने ईर्ष्या-परायण स्नेह से मानो सुचरिता को दिन-रात जकड़कर बाँधे रखना चाहती थी।

उनकी लड़कियाँ पढ़ने-लिखने में उस ज़माने की सब विदुषियों से आगे निकल जायँ, वरदासुन्दरी की यह आकांक्षा थी। उनकी लड़कियों के साथ-साथ बड़ी होती हुई सुचरिता भी उन-सा ही फल प्राप्त कर ले, यह बात उनके लिए सुखकर नहीं थी। इसीलिए सुचरिता के स्कूल जाने के समय तरह-तरह के विघ्न होते ही रहते थे।

इन सब विघ्नों के कारण का अनुमान करके परेश बाबू ने सुचरिता का स्कूल छुड़ा दिया और उसे स्वयं पढ़ना आरम्भ कर दिया। इतना ही नहीं, सुचरिता मानो विशेष रूप से उन्हीं की संगिनी हो गई। वह उसके साथ अनेक विषयों की बातचीत करते, जहाँ जाते उसे साथ ले जाते, जब कहीं दूर रहने को बाध्य होते तब चिट्ठियों में अनेक प्रसंग उठाकर उनकी विस्तृत चर्चा किया करते। इन्हीं सब कारणों से सुचरिता का मन उसकी उम्र और अवस्था से कहीं आगे बढ़ गया था। उसके चेहरे पर और आचरण में जो एक गम्भीरता आ गई थी, उसे देखकर उसे कोई बालिका नहीं समझ सकता था; और लावण्य भी उम्र में उसके लगभग बराबर होने पर भी हर बात में सुचरिता को अपने से बड़ा मानती थी। यहाँ तक कि वरदासुन्दरी भी चाहने पर भी उसकी किसी तरह की अवज्ञा नहीं कर सकती थीं।

यह तो पाठक जान ही चुके हैं कि हारान बाबू बड़े उत्साही ब्राह्म थे। ब्राह्म-समाज के सभी कामों में उनका हाथ था—रात्रि-पाठशाला में वह शिक्षक थे, पत्र के वह सम्पादक थे, स्त्री-विद्यालय के सेक्रेटरी थे—वह मानो काम से थकते ही न थे। यह युवक एक दिन ब्राह्म-समाज में बहुत ऊँचा स्थान पायगा, इसकी सभी को आशा थी। विशेष रूप से अंग्रेज़ी भाषा पर उनके अधिकार और दर्शन-शास्त्र में उनकी गहरी पैठ की ख्याति विद्यालय के छात्रों के सहारे ब्राह्म-समाज के बाहर भी फैल गई थी।

इन्हीं सब कारणों से दूसरे ब्राह्म लोगों की तरह सुचरिता भी हारान बाबू को विशेष श्रद्धा से देखती थी। ढाका से कलकत्ता आने के समय हारान बाबू से परिचय के लिए उसके मन में विशेष उत्सुकता भी थी।

अन्त में इन्हीं सुप्रसिद्ध हारान बाबू के साथ सुचरिता का न केवल परिचय

हुआ, बल्कि थोड़े ही दिनों में सुचरिता के प्रति अपने हृदय के आकर्षण का प्रकाशन करने में भी हारान बाबू को संकोच न हुआ। स्पष्ट रूप से उन्होंने सुचरिता के सम्मुख प्रणय-निवेदन किया हो ऐसी बात नहीं थी; किन्तु सुचरिता की सब प्रकार की अपूर्णता पूरी करने, उसकी त्रुटियों का संशोधन करने, उसका उत्साह बढ़ाने, और उसकी उन्नति के साधन जुटाने का काम वह ऐसे मनोयोग से करने लगे कि सभी ने यह समझ लिया कि वह विशेष रूप से इस कन्या को अपने लिए उपयुक्त संगिनी तैयार करना चाहते हैं।

इस घटना से हारान बाबू के प्रति वरदासुन्दरी की पहले की श्रद्धा नष्ट हो गई। वह उन्हें मामूली स्कूल-मास्टर-मात्र मानकर उसकी अवज्ञा करने की कोशिश करने लगीं।

सुचरिता ने भी जब यह जान लिया कि विख्यात हारान बाबू के चित्त पर उसने विजय पाई है, तब मन-ही-मन भक्ति-मिश्रित गर्व का अनुभव किया।

प्रधान पक्ष की ओर से कोई प्रस्ताव न आने पर भी जब सबने यह तय कर लिया कि हरान बाबू के साथ ही सुचरिता का विवाह ठीक हो गया है, तब सुचरिता ने भी मन-ही-मन हामी भर दी थी; और हारान बाबू ने ब्राह्म-समाज के जिन सब हितों के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया है, उनके उपयुक्त होने के लिए उसे कैसी शिक्षा और साधना की आवश्यकता होगी, यह उसके लिए विशेष उत्कंठा का विषय हो गया था। वह किसी मनुष्य से विवाह करने जा रही है, इसका उसने हृदय से अनुभव नहीं किया—वह मानो समूचे ब्राह्म-समाज के महान् मंगल से ही विवाह करने जा रही हो, और वह मंगल बहुत-से ग्रन्थ पढ़कर विद्वान् हो गया हो, तथा तत्त्व-ज्ञान के कारण बहुत गम्भीर हो। विवाह की कल्पना उसके लिए मानो बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी की घबराहट के द्वारा रचा हुआ एक पत्थर का क़िला हो गई: वह क़िला केवल सुख से रहने के लिए नहीं है बल्कि युद्ध करने के लिए है—पारिवारिक नहीं, ऐतिहासिक है।

ऐसी अवस्था में ही विवाह हो जाता तो कम-से-कम कन्या-पक्ष के सभी लोग इसे बहुत बड़ा सौभाग्य मानकर ही ग्रहण करते। किन्तु हारान बाबू जीवन के अपने ही बनाये हुए महान् उत्तरदायित्व को इतना बड़ा करके देखते थे कि केवल अच्छा लगने के कारण आकृष्ट होकर विवाह करने को वे अपने योग्य नहीं मानते थे। इस विवाह के द्वारा ब्राह्म-समाज को कहाँ तक लाभ होगा, इसका पूरा विचार किये बिना वह इस ओर प्रवृत्त नहीं हो सकते थे। इसीलिए उन्होंने इसी दृष्टि से सुचरिता की परीक्षा लेनी आरम्भ कर दी।

इस प्रकार परीक्षा लेने चलने पर परीक्षा देनी भी होती है। हारान बाबू परेश

बाबू के घर में सुपरिचित हो गए। उनके घर के लोग उन्हें पानू बाबू कहकर पुकारते हैं, इसलिए इस घर में भी उनका नाम पानू बाबू चलने लगा। अब उन्हें केवल अंग्रेज़ी विद्या के भंडार, तत्त्व-ज्ञान के आधार, और ब्राह्म-समाज के मंगल के अवतार के ही रूप में देखना सम्भव न रहा— वह मनुष्य भी हैं यही परिचय सबसे निकट परिचय हो गया इस प्रकार वह केवल श्रद्धा और सम्मान के अधिकारी न रहकर अच्छा लगने और बुरा लगने के नियम के अधीन हो गए।

आश्चर्य की बात यह थी कि हारान बाबू की जो प्रवृत्ति पहले दूर से सुचरिता की श्रद्धा पाती थी, वही अब निकट आने पर उसे अखरने लगी। ब्राह्म-समाज में जो कुछ सत्य, मंगल और सुन्दर है, हारान बाबू के उस सबका मानो अभिभावक बनकर उसकी रक्षा का भार लेने पर वह उसे बहुत ही छोटे जान पड़े। सत्य के साथ मनुष्य का सच्चा सम्बन्ध भक्ति का सम्बन्ध है—वह भक्ति मनुष्य को स्वभावतया विनयी बना देती है। ऐसा न करके वह सम्बन्ध जहाँ मनुष्य को उद्धत और अहंकारी बनाता है, वहाँ मनुष्य उस सत्य की तुलना में ही अपने ओछेपन को बहुत स्पष्ट प्रकाशित कर देता है। सुचरिता इस मामले में परेश बाबू और हारान के अन्तर की मन-ही-मन आलोचना किये बिना न रह सकी। परेश बाबू ने ब्राह्म-समाज से जो-कुछ पाया है उसके सम्मुख वह मानो सर्वदा नत-मस्तक है, उसे लेकर वह ज़रा भी प्रगल्भ नहीं होते, उसकी गहराई में उन्होंने अपने जीवन को डुबा दिया है। परेश बाबू की शान्त मुख-छवि देखने पर, जिस सत्य को वह हृदय में धारण किये हैं उसीकी महत्ता आँखों के सामने आती है। किन्तु हारान बाबू वैसे नहीं हैं, उनमें ब्राह्मत्व नाम का एक तीखा आत्म-प्रकाश और सब-कुछ के ऊपर छा जाता है; उनकी प्रत्येक बात, उनके प्रत्येक काम में अशोभन ढंग से प्रकट हो जाता है। इससे सम्प्रदाय में उनका सम्मान बढ़ा था; किन्तु परेश बाबू की शिक्षा के प्रभाव से सुचरिता साम्प्रदायिक संकीर्णता में नहीं बँध सकी थी, इसलिए हारान बाबू की यह एकान्त ब्राह्मिकता उसकी स्वाभाविक मानवता को चोट पहुँचाती थी। हारान बाबू समझते थे, धर्म-साधना के कारण उनकी दृष्टि-शक्ति इतनी स्वच्छ हो गई है कि दूसरे सब लोगों का भला-बुरा और झूठ-सच वह अनायास ही समझ सकते हैं। इसीलिए वह सर्वदा हर किसी का विचार करने को तैयार रहते। विषयी लोग पर-निन्दा और नुक्ताचीनी करते रहते हैं; लेकिन जो लोग धार्मिकता की भाषा में यह काम करते हैं, उनकी इस निन्दा के साथ एक आध्यात्मिक अहंकार भी मिला रहता है जो संसार में बहुत बड़ा उपद्रव खड़ा कर देता है। सुचरिता उस भाव को बिलकुल नहीं सह सकती थी। ब्राह्म-सम्प्रदाय के बारे में उसके मन में कोई गर्व न हो ऐसा नहीं था; तथापि ब्राह्म-समाज में जो बड़े लोग हैं वे ब्राह्म

होने के कारण ही एक विशेष शक्ति पाकर बड़े हुए हैं, या कि ब्राह्म-समाज के बाहर जो चरित्र-भ्रष्ट लोग है वे ब्राह्म न होने के कारण ही विशेष रूप से शक्ति-हीन होकर बिगड़ गए हैं, इस बात को लेकर सुचरिता की हारान बाबू से कई बार बहस हो जाती थी।

ब्राह्म-समाज के मंगल की बात को लेकर विचार करने बैठकर हारान बाबू जब परेश बाबू को भी अपराधी ठहराने से नहीं चूकते थे तब सुचरिता मानो आहत नागिन-सी तिलमिला उठती थी। उन दिनों बंगाल में अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों में भगवद्गीता को लेकर बात-चीत नहीं होती थी, लेकिन परेश बाबू कभी-कभी सुचरिता के साथ गीता पढ़ते थे, कालीसिंह का महाभारत भी उन्होंने लगभग पूरा सुचरिता को पढ़कर सुनाया था। हारान बाबू को यह अच्छा नहीं लगा। वह इन सब ग्रन्थों को ब्राह्म-घरों से निर्वासित कर देने के पक्षपाती थे। उन्होंने स्वयं भी ये सब नही पढ़े थे। रामायण, महाभारत, भगवद्गीता को वह हिन्दुओं की किताबें कहकर दूर रखना चाहते थे। धर्म-शास्त्रों में बाइबल ही उनका एकमात्र अव-लम्बन था। परेश बाबू अपनी शास्त्र-चर्चा में एवं छोटी-मोटी अनेक बातों में ब्राह्म-अब्राह्म की सीमा की रक्षा करते हुए नहीं चलते, यह बात हारान के मन में काँटा-सी चुभती थी। परेश बाबू के आचरण के बारे में प्रकट या मन-ही-मन किसी तरह का दोषारोपण करने का कोई साहस करे, यह सुचरिता नहीं सह सकती थी। और हारान बाबू का ऐसा दुःसाहस प्रकट हो जाने के कारण ही वह सुचरिता की आँखों में गिर गए थे।

ऐसे ही अनेक कारणों से परेश बाबू के घर में हारान बाबू का मान दिन-दिन घटता गया था। वरदासुन्दरी भी ब्राह्म-अब्राह्म का भेद निबाहने में यद्यपि हारान बाबू से किसी तरह कम उत्साही न थी, और उन्हें भी अनेक समय पति के आचरण के कारण लज्जा का बोध होता था, तथापि हारान बाबू को वह आदर्श-पुरुष नहीं मानती थीं। हारान बाबू के हज़ारों दोष उन्हें दीखते रहते थे।

हारान बाबू के साम्प्रदायिक उत्साह के अत्याचार और नीरस संकीर्णता से सुचरिता का मन भीतर-ही-भीतर प्रतिदिन उनसे विमुख होता जाता था, फिर भी हारान बाबू से ही उसका विवाह होगा, इस सम्बन्ध में किसी पक्ष के मन में कोई तर्क या सन्देह नही था। धर्म-समाज की दूकान में जो व्यक्ति अपने ऊपर बहुत बड़े-बड़े अक्षरों में ऊँचे दाम का लेबिल लगाये रहता है, धीरे-धीरे अन्य लोग भी उसका महँगापन स्वीकार कर लेते हैं। इसीलिए न तो हारान बाबू के, न और किसी के मन में इस बारे में कोई सन्देह था कि अपने महान् संकल्प के अनुसार चलते हुए अच्छी तरह परीक्षा करके सुचरिता को पसन्द कर लेने पर हारान बाबू

के निश्चय को सभी लोग सिर-आँखों पर लेंगे। और तो और, हारान बाबू के दावे को परेश बाबू ने भी अपने मन में अग्राह्य नहीं किया था। हारान बाबू को सभी लोग ब्राह्म-समाज का भावी सहारा मानते थे; वह भी इसके विरुद्ध न सोचकर हामी भर देते थे। इसीलिए उनके लिए भी सोचने की बात यही थी कि हारान बाबू जैसे आदमी के लिए सुचरिता उपयुक्त होगी या नहीं; सुचरिता के लिए हारान बाबू कहाँ तक उपयुक्त होंगे, यह उन्होंने भी नहीं सोचा था।

इस विवाह के सिलसिले में जैसे और किसी ने सुचरिता की बात सोचना ज़रूरी नहीं समझा, वैसे ही सुचरिता ने भी अपनी बात नहीं सोची। ब्राह्म-समाज के और सब लोगों की तरह उसने भी सोच लिया था कि हारान बाबू जिस दिन कहेंगे, 'मैं इस कन्या को ग्रहण करने को तैयार हूँ,' उसी दिन वह इस विवाह के रूप में अपने महान् कर्तव्य को स्वीकार कर लेगी।

ऐसे ही सब चला जा रहा था। इसी बीच उस दिन गोरा को उपलक्ष्य करके हारान बाबू के साथ सुचरिता का दो-चार कड़ी बातों का जो आदान-प्रदान हो गया, उसका सुर सुनकर ही परेश बाबू के मन में शंका उठी कि सुचरिता शायद हारान बाबू पर यथेष्ट श्रद्धा नहीं करती, कि शायद दोनों के स्वभाव में मेल न होने का कारण है। इसीलिए वरदासुन्दरी जब विवाह के लिए ज़ोर दे रही थीं तब परेश पहले की तरह हामी नहीं भर सके। उसी दिन वरदासुन्दरी ने सुचरिता को अकेले में बुलाकर कहा, "तुमने तो अपने पिता को सोच में डाल दिया है।"

सुनकर सुचरिता चौंक उठी। वह भूल से भी परेश बाबू के उद्वेग का कारण हो, इससे अधिक कष्ट की बात उसके लिए कुछ नहीं हो सकती। उसका चेहरा फीका पड़ गया। उसने पूछा, "क्यों, मैंने क्या किया है?"

वरदासुन्दरी—"मैं क्या जानूँ, बेटी! उन्हें लगता है, तुम्हें पानू बाबू पसन्द नहीं हैं। ब्राह्म-समाज के सभी लोग जानते हैं कि पानू बाबू के साथ तुम्हारा विवाह एक तरह से पक्का हो चुका है—ऐसी हालत में अगर तुम···"

सुचरिता—"लेकिन माँ, मैंने तो इस बारे में किसी से कोई बात ही नहीं की?"

सुचरिता का आश्चर्य करना स्वाभाविक ही था। वह हारान बाबू के व्यवहार से कई बार विरक्त अवश्य हुई है; किन्तु विवाह के प्रस्ताव के विरुद्ध उसने मन-ही-मन भी कभी कुछ नहीं सोचा। इस विवाह से वह सुखी होगी या नहीं होगी, यह सवाल भी कभी उसके मन में नहीं उठा, क्योंकि वह यही जानती थी कि इस विवाह पर सुख-दुःख की दृष्टि से विचार नहीं किया जा सकता।

तब उसे ध्यान आया, उस दिन परेश बाबू के सामने ही उसने पानू बाबू के प्रति अपनी विरक्ति प्रकट की थी। 'इसी से वे उद्विग्न हुए हैं', यह सोचकर उसे क्लेश हुआ। ऐसा असंयम तो उसने पहले कभी नहीं दिखाया था। उसने मन-ही-मन संकल्प किया कि अब फिर ऐसी चूक कभी न होगी।

उधर हारान बाबू भी उसी दिन कुछ देर बाद फिर आ पहुँचे। उनका मन भी चंचल हो उठा था। इतने दिन से उनका विश्वास था कि सुचरिता मन-ही-मन उनकी पूजा करती है, और इस पूजा का अर्घ्य और भी सम्पूर्णता से उनको मिलता अगर अन्ध-संस्कार के कारण बूढ़े परेश बाबू के प्रति सुचरिता की असंगत भक्ति न होती। परेश बाबू के जीवन में अनेक त्रुटियाँ दीखने पर भी सुचरिता मानो उन्हें देवता ही समझती है, इस पर हारान बाबू को मन-ही-मन हँसी भी आती थी खीझ भी होती थी; फिर भी उन्हें आशा थी कि यथासमय मौका पाकर वह इस अत्यधिक भक्ति को ठीक राह पर डाल सकेंगे।

जो हो, हारान बाबू जब तक अपने को सुचरिता की भक्ति का पात्र समझते रहे तब तक उसके छोटे-छोटे कामों और आचरण की भी केवल समालोचना करते रहे और सर्वदा उसे उपदेश देकर अपने ढंग से गढ़ने की कोशिश करते रहे— विवाह के बारे में कोई स्पष्ट बात उन्होंने नहीं की। उस दिन सुचरिता की दो-एक बातें सुनकर जब सहसा उनकी समझ में आ गया कि वह उन पर विचार भी करने लगी है, तब से उनके लिए अपना अविचल गाम्भीर्य और स्थिरता बनाये रखना कठिन हो गया। इधर उनकी सुचरिता से दो-एक बार जो भेंट हुई है उसमें वह पहले की भाँति अपने गौरव को स्वयं अनुभव अथवा प्रकाशित नहीं कर सके हैं, बल्कि सुचरिता के साथ उनकी बात-चीत और व्यवहार में कुछ झगड़े का-सा भाव दीखता रहा है। इसे लेकर वह अकारण ही, या छोटे-छोटे कारण ढूँढ़कर नुक्ताचीनी करने रहे हैं। इस मामले में भी सुचरिता की अविचल उदासीनता से उन्हें मन-ही-मन हार माननी पड़ी है, और घर लौटकर अपनी मर्यादा-हानि पर वह पछताते रहे हैं।

जो हो, सुचरिता की श्रद्धाहीनता के दो-एक लक्षण देखकर हारान बाबू के लिए और बहुत समय तक स्थिर होकर उसके परीक्षक के आसन पर बैठे रहना कठिन हो गया। इससे पहले वह परेश बाबू के घर यों बार-बार नहीं आते-जाते थे; कोई यह न समझे कि वह सुचरिता के प्रेम में चंचल हो उठे हैं, इस आशंका से वह सप्ताह में केवल एक बार आते थे और अपनी गरिमा में ऐसे रहते थे मानो सुचरिता उनकी छात्रा हो। लेकिन इधर कुछ दिन से न जाने क्या हुआ है कि हारान बाबू कोई भी छोटा बहाना लेकर दिन में एक से अधिक बार भी आये हैं,

और उससे भी छोटा बहाना खोजकर सुचरिता के पास आकर बातें करने की चेष्टा करते रहे हैं। इससे परेश बाबू को भी दोनों की अच्छी तरह पर्यवेक्षण करने का मौका मिल गया है, और इससे उनका सन्देह क्रमशः घना ही होता गया है।

आज हारान बाबू के आते ही वरदासुन्दरी ने उन्हें अलग बुलाकर पूछा, "अच्छा, पानू बाबू, सभी लोग कहते हैं कि आप हमारी सुचारिता से विवाह करेंगे लेकिन आपके मुंह से तो कभी कोई बात नही सुनी। अगर सचमुच आपका ऐसा अभिप्राय हो तो आप साफ़-साफ़ कह क्यों नहीं देते ?"

हारान बाबू और देर नहीं कर सके। अब सुचरिता को वह किसी तरह बन्दी कर लें तभी निश्चिन्त होंगे--उनके प्रति उसकी भक्ति की, और ब्राह्म-समाज के हित के लिए उसकी योग्यता की परीक्षा फिर भी की जा सकेगी। उन्होंने वरदा-सुन्दरी से कहा, "कहने को अनावश्यक मानकर ही मैंने नहीं कहा। सुचरिता के अठारह वर्ष पूरे होने की ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

वरदासुन्दरी बोलीं, "आप तो जरूरत से ज्यादा सोचते हैं। हम लोग तो चौदह वर्ष की उम्र काफ़ी समझते हैं।"

उस दिन चाय के समय परेश बाबू सुचरिता का व्यवहार देखकर चकित रह गए। सुचरिता ने बहुत दिनों से हारान बाबू के लिए इतना यत्न और आग्रह नहीं दिखाया था। यहाँ तक कि जब वह जाने को उठे तब लावण्य की शिल्पकारी का एक नया नमूना दिखाने की बात कहकर सुचरिता ने उनसे और कुछ देर बैठने का अनुरोध किया।

परेश बाबू निश्चिन्त हो गए। उन्होंने मान लिया कि उन्होंने समझने में भूल की थी। बल्कि वह मन-ही-मन थोड़ा हँसे भी। उन्होंने सोचा कि दोनों में कोई अलक्षित प्रणय-कलह हुआ था और अब फिर सुलह हो गई है।

उस दिन विदा होते समय हारान ने परेश बाबू के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रख दिया। उन्होंने जता दिया कि इस सम्बन्ध में और देर करने की उनकी इच्छा नहीं है।

परेश बाबू ने कुछ अचरज करते हुए कहा, "लेकिन आपका तो मत है कि अठारह वर्ष से कम उम्र की लड़की का विवाह होना अनुचित है ? बल्कि आपने तो अखबारों में भी ऐसा लिखा है।"

हारान बाबू बोले, "सुचरिता के बारे में वह बात लागू नहीं होती। क्योंकि उसका मन जैसा विकसित है वैसा उससे कहीं अधिक उम्र की लड़कियों में भी नहीं पाया जाता।"

परेश बाबू ने शान्त दृढ़ता के साथ कहा, 'वह होगा, पानू बाबू ! लेकिन जब कोई हानि नहीं जान पड़ती तब आपके मन के अनुसार राधारानी की उम्र पूरी होने तक प्रतीक्षा करना ही कर्त्तव्य है।"

अपनी दुर्बलता प्रकट हो जाने पर लज्जित हारान बाबू ने कहा, "वह अवश्य ही कर्त्तव्य है। मेरी इच्छा इतनी ही है कि एक दिन सबको बुलाकर भगवान का नाम लेकर सम्बन्ध पक्का कर दिया जाय।"

परेश बाबू ने कहा, "यह तो अति उत्तम प्रस्ताव है।"

१७

दो-ढाई घंटे की नींद के बाद गोरा ने जागकर देखा कि विनय पास ही सो रहा है, तब उसका हृदय आनन्द से भर उठा। स्वप्न में कोई प्रिय वस्तु खोकर, जागकर यह देखे कि वह वस्तु खोई नहीं है, जैसा सन्तोष होता है वैसा ही गोरा को हुआ। विनय को छोड़ देने से गोरा का जीवन कितना पंगु हो जाता, आज नींद से जागकर विनय को पास ही देखकर उसने इसका अनुभव किया। इसी आनन्द की उतावली में गोरा ने विनय को हिलाकर जगा दिया और कहा, "चलो, एक काम है।"

गोरा का रोज सवेरे का एक बँधा हुआ काम था। वह पड़ोस के निम्न श्रेणी के लोगों के घर जाता था। उनका उपकार करने या उन्हें उपदेश देने के लिए नहीं, केवल उन्हें देखने ही जाता था। पढ़े-लिखे लोगों के साथ उसका ऐसा मेल-जोल, कहा जा सकता है कि नहीं था। ये लोग गोरा को 'दादा ठाकुर' कहते थे और कौड़ियों-बँधे हुक्के से उसका स्वागत करते थे। केवल इन लोगों का आतिथ्य स्वीकार करने के लिए ही गोरा ने जबर्दस्ती तम्बाकू पीना आरम्भ कर दिया था।

इन लोगों में नन्द गोरा का प्रधान भक्त था। नन्द बढ़ई का लड़का था, उम्र कोई बाईस, बाप की दूकान में लकड़ी के बक्स तैयार किया करता था। मैदान में शिकार खेलने वालों में नन्द के बराबर बन्दूक का निशाना साधने वाला कोई नहीं था। क्रिकेट के खेल में गेंद फेंकने में भी वह अद्वितीय था।

गोरा ने अपनी शिकार और क्रिकेट की टोलियों में भद्र घरों के विद्यार्थियों के साथ इन सब बढ़ई-लुहार लड़कों को भी मिला लिया था। इस मिले-जुले दल

में नन्द सब प्रकार के खेलों में और व्यायाम में सबसे आगे था। भद्र विद्यार्थियों में कोई-कोई उससे ईर्ष्या भी करते थे, पर गोरा के शासन में सभीको उसे सरदार मानने को राज़ी होना पड़ता था।

बटाली गिरने से पैर कट जाने के कारण यही नन्द पिछले कुछ दिन से खेल के मैदान में नहीं आ रहा था, उन दिनों गोरा का मन विनय की बात को लेकर बेचैन था, इसलिए वह नन्द के घर नहीं जा सका था। इसलिए आज सबेरे ही वह विनय को साथ लेकर बढ़ई-टोले में जा पहुँचा।

नन्द के दुमंज़िले कच्चे मकान के द्वार पर पहुँचते ही भीतर से औरतों के रोने का शब्द सुनाई दिया। नन्द का बाप या कोई पुरुष अभिभावक घर पर नहीं था। पास ही तम्बाकू की एक दुकान थी। उसके मालिक ने निकलकर कहा, "नन्द आज सबेरे ही मर गया। उसे जलाने ले गए हैं।"

नन्द मर गया! ऐसा स्वास्थ्य, ऐसी शक्ति, ऐसा तेज, ऐसा हृदय, इतनी कम उम्र—और वह नन्द आज सबेरे मर गया। गोरा अपने सारे शरीर को कड़ा करके किसी तरह संभलकर खड़ा रह सका। नन्द एक मामूली बढ़ई का लड़का था—उसके न रहने से संसार के कारोबार में क्षण-भर की जो अटक पड़ेगी उसे बहुत थोड़े लोग ही देखेंगे—लेकिन आज नन्द की मृत्यु गोरा को असहनीय रूप से असंगत और असम्भव जान पड़ रही थी। गोरा ने तो देखा था कि उसमें कितने प्राण हैं—इतने लोग और जीते हैं लेकिन नन्द-जैसा प्राणवान् तो कहीं नहीं दीखता।

मृत्यु कैसे हुई, यह पूछने पर पता चला कि उसे धनुष्टंकार हो गया था। नन्द के बाप ने डाक्टर को बुलाना चाहा था, पर नन्द की माँ ने ज़ोर देकर कहा था कि उसके लड़के को भूत लग गया है। ओझा आकर सारी रात मन्त्र पढ़कर और मारकर उसे झाड़ते रहे। बेहोश होने से पहले नन्द ने गोरा को ख़बर देने का अनुरोध किया था, लेकिन गोरा आकर कहीं डाक्टरी इलाज के लिए ज़िद न करने लगे, इस डर से नन्द की माँ ने किसी को गोरा तक खबर पहुँचाने नहीं जाने दिया।

वहाँ से लौटते समय विनय ने कहा, "कैसी मूढ़ता है! और उसकी कैसी भयानक सज़ा!"

गोरा ने कहा, "इस मूढ़ता को एक तरफ़ हटाकर और अपने को इससे बाहर मानकर अपने को तसल्ली मत दो, विनय! यह मूढ़ता कितनी बड़ी है, और उसकी सज़ा भी कितनी है, यह अगर साफ़-साफ़ देख सकते तो ऐसे आक्षेप

की एक बात कहकर पल्ला झाड़कर सारे मामले से अलग हो जाने की चेष्टा न करते !"

मन की उत्तेजना के साथ गोरा के कदम भी क्रमशः तेज होते गए। विनय उसकी बात का कोई उत्तर न देकर उसके बराबर डग भरता हुआ साथ चलने की कोशिश में लग गया।

गोरा कहता रहा, "सारी जाति ने झूठ के हाथों अपनी अक्ल बेच दी है। देवता, भूत-प्रेत, उल्लू, छींक, बृहस्पतिवार, त्र्यहस्पर्श—किस-किसका डर है, इसका कोई ठिकाना नहीं है। जगत् में सत्य के साथ कैसे मर्दानगी से जूझना होता है, यह ये लोग कैसे जानेंगे ? और हम-तुम समझ लेते हैं कि हम लोगों ने दो-चार पन्ने विज्ञान पढ़ लिया है इसलिए हम इनके दल में नहीं हैं। लेकिन यह निश्चय जानो, चारों ओर फैली हुई हीनता की खींच से थोड़े-से लोग किताबी विद्या के सहारे अपने को कभी बचाकर नहीं रख सकते। जब तक ये लोग दुनिया के व्यापारों में नियम के आधिपत्य में विश्वास नहीं करेंगे, जब तक लोग मिथ्या-भय से जकड़े रहेंगे, तब तक हमारे शिक्षित लोग भी इसके प्रभाव से बच नहीं सकते।"

विनय ने कहा, "शिक्षित लोग बच भी जायेंगे तो क्या ! शिक्षित हैं कितने ? पढ़े-लिखों को उन्नत करने के लिए ही दूसरों को उन्नत होना होगा, ऐसी बात नहीं है। बल्कि दूसरों को बड़ा करने में ही पढ़े-लिखों की शिक्षा का गौरव है।"

गोरा ने विनय का हाथ पकड़कर कहा, "ठीक यही बात तो मैं कहना चाहता हूँ। लेकिन तुम लोग अपनी भद्रता और शिक्षा के अभिमान में साधारण लोगों से अलग होकर मज़े में निश्चित हो सकते हो, यह मैंने बार-बार देखा है; इसीलिए तुम्हें सावधान कर देना चाहता हूँ कि नीचे के लोगों का निस्तार किये बिना तुम्हारा यथार्थ निस्तार कभी नहीं होगा। नाव के तले में छेद हो तो नाव का मस्तूल कभी अकड़कर नहीं चल सकता, चाहे वह कितना ही ऊँचा क्यों न हो।"

विनय निरुत्तर होकर गोरा के साथ चलता रहा।

थोड़ी देर चुप रहकर गोरा फिर बोल उठा, "नहीं, विनय, इसे मैं किसी तरह सहज भाव से नहीं सह सकता ! वह जो ओझा आकर मेरे नन्द को मार गया है, उसकी मार मुझ पर पड़ रही है, सारे देश पर पड़ रही है। इन सब बातों को मैं अलग-अलग, छोटी-छोटी घटनाओं के रूप में किसी तरह नहीं देख पाता।"

विनय को फिर भी निरुत्तर देखकर गोरा बिगड़ उठा, "विनय, मैं खूब समझता

हूँ कि तुम मन-ही-मन क्या सोचते हो। तुम सोचते हो, इसका कोई इलाज नहीं है, या कि इलाज का समय आने में अभी बहुत देर है। तुम सोचते हो, यह जो सब डर और झूठ भारतवर्ष की छाती पर सवार है, इसका बोझ हिमालय के बोझ की तरह है, इसे कौन सरका सकता है। लेकिन मैं ऐसे नहीं सोचता, सोचता तो बचता नहीं। जो कुछ भी हमारे देश को चोट पहुँचाता है उसका प्रतिकार ज़रूर है, वह चाहे कितना ही प्रबल क्यों न हो। और वह प्रतिकार एकमात्र हमारे ही साथ में है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है; तभी मैं चारों ओर फैले इस दुःख-दुर्गति-अपमान को झेल सकता हूँ।"

विनय ने कहा, "इतनी बड़ी देश-व्यापी दुर्गति के सामने अपने विश्वास को खड़ा करने का मुझे तो साहस ही नहीं होता।"

गोरा ने कहा, "अँधेरा बड़ा होता है और दीये की शिखा छोटी। पर इतने बड़े अन्धकार से इतनी छोटी-सी शिखा पर ही मैं अधिक आस्था रखता हूँ। दुर्गति चिरस्थायी हो सकती है, यह बात मैं किसी तरह भी मान सकता। सारे विश्व की ज्ञान-शक्ति, प्राण-शक्ति उस पर भीतर और बाहर से बराबर चोट कर रही है। हम लोग छोटे ही क्यों न हों, उसी ज्ञान के दल मे, प्राण के दल में जा खड़े होंगे। वहाँ खड़े-खड़े मर भी जायँ तो मन में यह निश्चय जानकर मरेंगे कि हमारे दल की जीत होगी। देश की जड़ता को ही सबसे बड़ा और प्रबल मानकर उसी पर बिस्तर लगाकर पड़े नही रहेंगे। मैं तो कहता हूँ, जगत् में शैतान के ऊपर श्रद्धा रखना और भूत से डरना ठीक एक बराबर है; दोनों का फल यही होता है कि रोग की सही चिकित्सा की ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती। जैसा झूठा डर वैसा ही झूठा ओझा; दोनों मिलकर हमे मारते रहते है। विनय, मैंने तुमसे बार-बार कहा है, इस बात को एक क्षण-भर के लिए भी, स्वप्न में भी, असम्भव न समझो कि हमारा यह देश मुक्त होगा ही; अज्ञान उसे हमेशा जकड़े नहीं रहेगा और अंग्रेज भी उसे अपनी व्यापार की नौका के पीछे-पीछे साँकल से बाँधे हुए नहीं ले जा सकेगा। यही बात मन में दृढ़ रखकर हमें हमेशा तैयार रहना होगा। भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए भविष्य में किसी एक दिन लड़ाई आरम्भ होगी, तुम लोग इसी पर अपनी किस्मत छोड़ कर निश्चिन्त बैठे हो। मैं कहता हूँ, लड़ाई आरम्भ हो गई है! हर क्षण लड़ाई हो रही है; ऐसे समय में अगर तुम निश्चिन्त रह सकते हो तो इससे कड़ी कापुरुषता नहीं हो सकती।"

विनय ने कहा, "देखो गोरा, तुममें और अपने में एक भेद मुझे यह दीखता है, कि हमारे देश में प्रतिदिन राह चलते जो कुछ होता रहता है, और बहुत दिन से जो होना चला आ रहा है, उसे तुम मानो रोज नई आँखों से देख पाते हो।

हम जैसे अपने साँस लेने को भूले रहते हैं, यह सब भी हमारे लिए वैसा ही है --न हमें आशा देता है, न हताश करता है—उसमें हमें न आनन्द है, न दुःख है—दिन के बाद दिन शून्य-भाव से बीतते जाते हैं और इन सबके बीच हम अपना या अपने देश का अनुभव ही नहीं करते।"

सहसा गोरा का मुँह लाल हो गया और उसके माथे की नसें तन गई···दोनों हाथों की मुट्ठियाँ भींचकर वह रास्ते के बीच जाती हुई दो घोड़ों वाली गाड़ी के पीछे दौड़ा और अपनी गरज से राह चलते लोगों को चौंकाता हुआ चिल्लाया, "गाड़ी रोको!" भारी घड़ी-चेन पहने हुए एक बाबू गाड़ी हाँक रहे थे. उन्होंने एक बार मुड़कर पीछे देखा और दोनों तेजस्वी घोड़ों को चाबुक मारकर क्षण-भर में दूर निकल गये।

एक बूढ़ा मुसलमान सिर पर फल-तरकारी, अण्डा-रोटी-मक्खन आदि खाने-पीने की चीजें लेकर किसी अंग्रेज प्रभु की रसोई की ओर चला जा रहा था। चेन पहने हुए बाबू ने उसे गाड़ी के आगे से हट जाने की हाँक भी लगाई थी, पर बूढ़े के सुन न पाने से गाडी प्रायः उसके ऊपर से निकल गई थी। बूढ़े के प्राण तो बच गये, लेकिन टोकरी की सब चीजें लुढ़ककर सड़क पर बिखर गई। क्रुद्ध बाबू ने कोच-बक्स से फिरकर 'डैम सूअर!' की गाली देकर चाबुक उठाया और तड़ाक से बूढ़े के सिर पर जमा दिया। उसके माथे पर लहू की लाल रेखा झलक आई। बूढ़े ने 'अल्लाह!' कहकर लम्बी साँस ली और जो चीजें बच गई थीं उन्हें उठा-उठाकर टोकरी में रखने लगा। गोरा भी मुड़कर बिखरी हुई चीज़ें बीन-बीनकर उसकी टोकरी में रखवाने लगा। मुसलमान एक अच्छे-भले भद्र पथिक का ऐसा व्यवहार देखकर सकुचाते हुए बोला, "आप क्यों कष्ट करते है. बाबू···ये अब किसी काम नहीं आयेंगी।"

गोरा जानता था कि जो वह कर रहा है अनावश्यक है, और यह भी जानता था कि जिसकी सहायता की जा रही है उसे संकोच हो रहा है। वास्तव में सहायता के रूप में उसके कार्य का कोई विशेष मूल्य नहीं था। लेकिन एक भद्र-जन ने जिसका अपमान किया है, एक दूसरा भद्र-जन उसी अपमानित के साथ अपने को मिलाकर धर्म की क्षुब्ध व्यवस्था में सामंजस्य लाने की कोशिश कर रहा है. यह बात राह चलते लोगों के लिए समझनी असम्भव थी। टोकरी भर जाने पर गोरा ने बूढ़े से कहा, "इतना नुकसान तो तुमसे सहा नहीं जायगा। चलो, हमारे घर चलो, हम पूरे दाम चुकाकर सब ले लेंगे। लेकिन, बाबा, एक बात तुमसे कहूँ- तुमने जो बिना कुछ कहे यह अपमान सह लिया, उसके लिए अल्लाह तुम्हें माफ़ नहीं करेंगे।"

गोरा—"अलग फल होने के डर से ही तो यह व्यवस्था की जा रही है। विधाता किसी-किसी को यों ही ज्यादा बोझ से लदा हुआ बना देते हैं, और किसी को बिलकुल सहज भार-मुक्त। ऐसे दो प्राणियों को एक साथ जोतकर चलाना हो तो इनमें से एक पर बाहर से बोझा लादकर दोनों का बोझ बराबर करना पड़ता है। तुम विवाह करके कुछ जिम्मेदारी से लद जाओगे तो हम तुम एक-सी चाल से चल सकेंगे!"

विनय ने कुछ हँसकर कहा, "अगर यही मंशा है तो ठीक है, बाट उसी पलड़े में डाल दो!"

गोरा—"बाट के बारे में तो कोई आपत्ति नहीं है?"

विनय—"भार बराबर करने के लिए तो जो हाथ पड़ जाय उसी से काम चल सकता है—वह पत्थर हो तो भी चल सकता है, ढेला हो तो भी!"

गोरा ने इस विवाह के प्रस्ताव में क्यों उत्साह दिखाया है, यह समझने में विनय को देर न लगी। गोरा को आशंका हुई है कि विनय कहीं परेश बाबू के परिवार में विवाह न कर ले, यह समझकर, विनय मन-ही-मन हँसा। ऐसे विवाह का संकल्प तो क्या, सम्भावना भी उनके मन में क्षण-भर के लिए भी उदित नहीं हुई। वह तो हो ही नहीं सकता! जो भी हो शशिमुखी से विवाह हो जाने पर ऐसी अद्भुत आशंका जड़ से उखड़ जायगी, और वैसा होने पर दोनों का बन्धु-भाव फिर स्वस्थ और शान्त हो जायगा; और परेश बाबू के परिवार से मिलने-जुलने में भी उसे किसी ओर से संकोच करने का कोई कारण न रहेगा, यह सोचकर उसने शशिमुखी से विवाह के लिए सहज ही सम्मति दे दी।

दोपहर के भोजन के बाद रात के उनींदे की कमी पूरी करते-करते दिन बीत गया। दिन-भर दोनों बन्धुओं में और कोई बात नहीं हुई। पर साँझ को, जब सारे जगत् पर अन्धकार का पर्दा पड़ जाने से मानो बन्धुओं के मन का पर्दा उठ जाता है, ऐसे झुटपुटे के समय में छत पर बैठे-बैठे विनय ने सीधे आकाश की ओर ताकते हुए कहा, "देखो, गोरा, एक बात मैं तुम्हें कहना चाहता हूँ। मुझे लगता है, हमारे स्वदेश-प्रेम में एक बहुत बड़ा अधूरापन है। हम लोग भारतवर्ष को आधा ही करके देखते हैं।"

गोरा—"वह कैसे?"

विनय—"हम भारतवर्ष को केवल पुरुषों का देश मानकर देखते है, स्त्रियों को बिलकुल देखते ही नहीं।"

गोरा—"तो तुम शायद अंग्रेजों की तरह घर में और बाहर, जल-थल और आकाश में आहार-विहार और कर्म में, सब जगह स्त्रियों को देखना चाहते हो?

उसका नतीजा यही होगा कि पुरुषों से स्त्रियों को अधिक मानना होगा—उसमे भी देखने में सामंजस्य नहीं रहेगा।"

विनय—"नहीं-नहीं, मेरी बात को ऐसे उड़ा देने से नहीं चलेगा। अंग्रेजों की तरह देखने या न देखने का सवाल कहाँ उठता है? मैं यह कहता हूँ कि इतना तो सच है कि स्वदेश मे स्त्रियों के अंश को हम लोगों ने अपने चिन्तन में उचित स्थान नहीं दिया है। तुम्हारी ही बात कहूँ। तुम स्त्रियों के बारे में कभी पल-भर भी नहीं सोचते—तुम्हारी राय में मानो देश नारी-हीन ही है। ऐसा जानना कभी सत्य जानना नहीं हो सकता।"

गोरा—"मैंने जब अपनी माँ को देखा है, माँ को जाना है, तब अपने देश की सभी स्त्रियों को उसी एक रूप में देख और जान लिया है।"

विनय—"यह तो तुम अपने को भुलावा देने के लिए एक आलंकारिक बात कह रहे हो। घर के काम-काज के बीच घर की स्त्रियों को हम अति-परिचित भाव से देखते हैं, उसमे वास्तविक देखना ही नहीं होता। गृहस्थी के काम-काज से बाहर अगर हम देश की स्त्रियों को देख पाते तो हम स्वदेश के सौन्दर्य और सम्पूर्णता को देखते। देश की एक ऐसी प्रतिमा दिखाई देती जिसके लिए प्राण देना आसान होता—कम-से-कम यह मानने की भूल हममे कभी न होती कि देश में स्त्रियाँ मानो कहीं हैं ही नहीं। मैं जानता हूँ कि अंग्रेजों के समाज से तुलना करने जाते ही तुम आग-बबूला हो उठोगे—मैं वह करना भी नहीं चाहता। मैं नहीं जानता कि ठीक किस हद तक या किस ढंग से स्त्रियों के हमारे समाज में आगे आने से उनकी मर्यादा का उल्लंघन नहीं होगा। लेकिन यह मानना होगा कि स्त्रियों के छिपे रहने से हमारा स्वदेश हमारे निकट आधा ही सच है—हमारे हृदय को पूरा प्रेम या पूरी शक्ति नहीं दे सकता।"

गोरा—"लेकिन तुम्हें यह बात हठात् इस समय कैसे सूझ गई?"

विनय—"हाँ, अभी ही सूझी है और हठात् सूझी है। इतना बड़ा सत्य मैं इतने दिन से नहीं जानता था। जान सका हूँ, इसके लिए अपने को भाग्यवान् ही समझता हूँ। हम लोग जैसे किसान को केवल उसकी खेती के, या जुलाहे को केवल उसकी बुनाई के बीच देखते हैं, इसीलिए उन्हें छोटी जाति मानकर उनकी अवज्ञा करते है, वे पूरे हमें दीखते ही नहीं, और इस छोटे-बड़े के भेद के कारण ही देश कमजोर हुआ है; ठीक उसी तरह देश की स्त्रियों को केवल उनके चौका-बासन और कुटाई-पिसाई से घिरी हुई देखकर ही हम स्त्रियों को भी केवल 'ज़नानी' मानकर उन्हें ओछी नज़र से देखते हैं···इससे हमारा सारा देश ओछा हो जाता है।"

गोरा—"जैसे दिन और रात, समय के ये दो भाग हैं, वैसे ही पुरुष और नारी समाज के दो अंश हैं। समाज की स्वाभाविक अवस्था में स्त्री रात की तरह ओझल ही रहती है-- उसका सारा काज गूढ़ और निभृत है। अपने कारोबार के हिसाब में हम रात को नहीं गिनते। लेकिन न गिनने से ही उसका जो गम्भीर कार्य है उसमें से कुछ भी कम नहीं हो जाता। वह गोपन-विश्राम की ओट में क्षति-पूर्ति करती है, हमारे पोषण में सहायक होती है। जहाँ समाज की अवस्था स्वाभाविक नहीं है वहाँ रात को जबरदस्ती दिन बनाया जाता है ---वहाँ गैस जला कर मशीनें चलाई जाती हैं, बत्तियाँ जलाकर रात-भर नाच-गाना होता है। उसका नतीजा क्या होता है ? यही कि रात का जो स्वाभाविक अलक्षित काम है वह नष्ट हो जाता है, थकान बढ़ती जाती है, क्षति-पूरण नहीं हो पाता, इन्सान पागल हो उठता है। ऐसे ही स्त्रियों को भी अगर हम खुले कर्म-क्षेत्र में खींचकर ले आयें तो उससे उसके निगूढ़ कर्म की व्यवस्था नष्ट हो जाती है---उससे समाज का स्वास्थ्य और उसकी शान्ति नष्ट होती है, समाज पर एक पागलपन सवार हो जाता है। उस पागलपन से हठात् शक्ति का भ्रम हो सकता है, किन्तु यह शक्ति विनाश करने की शक्ति है। शक्ति के दो अंश होते है--एक व्यक्त और एक अव्यक्त; एक अंश उद्योग, और एक अंश विश्राम; एक अंश प्रयोग और एक अंश संवरण। शक्ति का यह सामंजस्य नष्ट करने से वह क्षुब्ध हो उठती है, लेकिन वह क्षोभ मंगलकारी नहीं है। नर-नारी समाज-शक्ति के दो पक्ष है; पुरुष ही व्यक्त है, लेकिन व्यक्त होने से ही वह बड़ा है ऐसा नहीं है। नारी अव्यक्त है; इस अव्यक्त शक्ति को अगर केवल व्यक्त करने की चेष्टा की जायगी तो समाज का सारा मूल-धन खर्च करके उसे तेजी से दीवालियापन की ओर ले जाना ही होगा। इसीलिए कहता हूँ, हम पुरुष लोग अगर यज्ञ के क्षेत्र में रहें और स्त्रियाँ भंडारे की अर्गला के पीछे, तभी स्त्रियों के अदृश्य रहने पर भी यज्ञ ठीक से सम्पन्न होगा। जो लोग सारी शक्ति को एक ही जगह, एक ही दिशा में, एक ही ढंग से खर्च करना चाहते है वे पागल हैं।"

विनय—"गोरा, तुमने जो कहा मैं उसका प्रतिवाद करना नहीं चाहता। किन्तु मैंने जो कुछ कहा था, तुमने भी उसका प्रतिवाद नहीं किया। असल बात···"

गोरा—"देखो विनय, इससे आगे इस बात को लेकर और अधिक वक-झक करना निरी दलीलबाज़ी होगी। मैं यह मानता हूँ कि आजकल तुम स्त्रियों के मामले में जितने सजग हो उठे हो मैं उतना नहीं हुआ। इसलिए तुम जो अनुभव करते हो मुझे भी वही अनुभव कराने की चेष्टा कभी सफल नहीं हो सकती। इस-

लिए यही क्यों न मान लिया जाय कि इस मामले में फ़िलहाल हमारी राय नहीं मिल सकती !'

यों गोरा ने बात उड़ा दी। लेकिन बीज को उड़ा देने से भी वह भूमि पर गिरता ही है और गिरकर सुयोग होने पर उसमें अंकुर भी फूटता ही है। अब तक गोरा ने जीवन के क्षेत्र से स्त्री-जाति-मात्र को अलग कर रखा था; इसे उसने कभी स्वप्न में भी अभाव या क्षति मानकर अनुभव नहीं किया था। आज विनय की बदली हुई अवस्था देखकर संसार में स्त्री-जाति की विशेष सत्ता और प्रभाव उसके लिए गोचर हो उठा। लेकिन इसका स्थान कहाँ है, इसका प्रयोजन क्या है, यह वह किसी तरह स्थिर नहीं कर सका, इसलिए विनय के साथ इस बारे में बहस करना उसे अच्छा नहीं लगा। इस विषय को न वह अस्वीकार कर पा रहा था, न उस पर अधिकार कर पा रहा था, इसीलिए वह उसे बात-चीत से अलग ही रखना चाहता था।

रात को विनय जब घर लौट रहा था तब आनन्दमयी ने उसे बुलाकर पूछा, "विनय, सुनती हूँ कि शशिमुखी के साथ तुम्हारा विवाह ठीक हो गया है—सच ?"

विनय ने लजाई हुई हँसी के साथ कहा, "हाँ, माँ, गोरा ही इस शुभ कर्म का घटक है।"

आनन्दमयी बोलीं, "शशिमुखी अच्छी लड़की है। लेकिन, बेटा, तुम बचपन मत करो ! मैं तुम्हारा मन समझती हूँ, विनय—तुम कुछ दुचित्ते हो रहे हो इसीलिए जल्दी-जल्दी यह किये डाल रहे हो। अब भी सोचकर देखने का समय है। तुम सयाने हो गए हो—इतना बड़ा काम अश्रद्धा लेकर मत करो !"

ऐसा कहते हुए आनन्दमयी ने विनय का कन्धा सहला दिया। विनय कुछ कहे बिना धीरे-धीरे चला गया।

१८

विनय आनन्दमयी की बात के बारे में सोचता-सोचता घर पहुँचा। आनन्दमयी की कही हुई कोई भी बात उसके लिए कभी उपेक्षणीय नहीं हुई; यह बात भी रात-भर उसके मन पर एक बोझ-सी रही।

दूसरे दिन सवेरे उठकर उसे मानो मुक्ति का-सा बोध हुआ। उसे लगा कि गोरा के बन्धुत्व का उसने बहुत बड़ा दाम चुका दिया है। एक ओर शशिमुखी से विवाह करने को राज़ी होकर उसने जो जीवन-व्यापी बन्धन स्वीकार किया है, उसके बदले एक दूसरी ओर अपने बन्धन काट देने का भी अधिकार उसे मिल गया है। गोरा को उस पर यह जो अत्यन्त अन्यायपूर्ण सन्देह हुआ था कि वह समाज छोड़कर ब्राह्म-परिवार में विवाह करने के लिए ललच रहा है, शशिमुखी से विवाह की स्थायी ज़मानत देकर विनय ने इस सन्देह से अपने को मुक्त कर लिया है। तब से विनय ने परेश बाबू के घर निःसंकोच भाव से और अक्सर आना-जाना शुरू कर दिया।

जो उसे अच्छे लगें, उनके साथ घर के आदमी का-सा हो उठना विनय के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। गोरा के कारण जो संकोच था उसे मन से दूर कर देने पर देखते-देखते परेश बाबू के घर के सभी लोगों से ऐसा घुल-मिल गया मानो बरसों से जान-पहचान हो।

केवल ललिता के मन में जितने दिन यह सन्देह रहा कि सुचरिता का मन शायद विनय की ओर कुछ आकृष्ट है, उतने दिन उसका मन विनय के विरुद्ध मानो अस्त्र धारण किये रहा। किन्तु जब उसने स्पष्ट समझ लिया कि सुचरिता का विनय की ओर ऐसा झुकाव नहीं है तब उसके मन का विद्रोह दूर हो गया, और उसे बड़ी शान्ति मिली। फिर विनय बाबू को बहुत ही भले आदमी मानने में उसे कोई बाधा न रही।

हारान बाबू भी विनय से विमुख नहीं हुए—बल्कि उन्होंने मानो कुछ अधिक ज़ोर देकर यह स्वीकार किया कि विनय को भद्र आचरण का ज्ञान है। इस स्वीकारोक्ति का अभिप्राय यही था कि गोरा में इतनी तमीज़ नहीं है।

विनय कभी हारान बाबू के सामने कोई बहस की बात नहीं छेड़ता था, और सुचरिता की भी कोशिश थी कि ऐसी कोई बात न उठे। इसलिए इतने दिनों चाय की मेज़ पर शान्ति भंग नहीं हुई।

लेकिन हारान की अनुपस्थिति में सुचरिता जान-बूझकर विनय को अपने सामाजिक विचारों की चर्चा के लिए उकसाती। गोरा और विनय जैसे पढ़े-लिखे लोग कैसे देश के कुसंस्कारों का समर्थन कर सकते हैं, यह जानने का उसका कौतूहल किसी तरह शान्त नहीं होता था। गोरा और विनय को वह स्वयं न जानती होती, तो यह जानकर ही कि वे इन सब बातों को मानते हैं, और कुछ जाने-सुने बिना सुचरिता उन्हें अवहेलना के योग्य ठहरा देती। किन्तु गोरा को देखने के बाद से वह किसी तरह भी उसे अवहेलना के साथ मन से दूर नहीं कर सकी। तभी

मौका मिलते ही वह घुमा-फिराकर विनय के साथ गोरा के विचारों और जीवन की चर्चा उठाती, और प्रतिवाद के द्वारा सब कुछ कोंचकर निकालने की कोशिश करती। परेश बाबू की राय में सभी सम्प्रदायों के विचार सुनने देना ही उसकी शिक्षा का उपाय था, इसलिए उन्होंने इस सब वाद-विवाद में कभी कोई पक्ष न लिया, न कभी बाधा दी।

एक दिन सुचरिता ने पूछा, "अच्छा, गौरमोहन बाबू क्या सचमुच जाति-भेद नही मानते, या वह सिर्फ़ देश-प्रेम का अतिरिक्त जोश है?"

विनय ने कहा, "आप क्या सीढ़ी के अलग-अलग चरणों को मानती हैं? वे भी तो सब विभाग है—कोई ऊपर है, कोई नीचे।"

सुचरिता—"वह मानती हूँ तो इसीलिए, कि नीचे से ऊपर उठना होता है—नहीं तो मानने की कोई जरूरत नहीं थी। समतल भूमि पर सीढ़ी को न मानने से भी चलेगा।"

विनय—"आप ठीक कहती हैं। हमारा समाज एक सीढ़ी है। उसका एक उद्देश्य था—वह था नीचे से ऊपर उठने देना—मानव-जीवन को एक नतीजे तक ले जाना। अगर हम इस समाज को, इस संसार को ही नतीजा या मंजिल समझते तब तो किसी विभाग-व्यवस्था की कोई जरूरत ही नहीं थी; तब तो यूरोपीय समाज की तरह हम भी प्रत्येक दूसरे से अधिक कुछ हथिया लेने के लिए छीना-झपटी और मारपीट करते चलते! संसार में जो सफल होता वही सिर उठाता, और जिसकी कोशिश निष्फल हो जाती वह बिलकुल नीचे दब जाता। हम लोग संसार मे रहते हुए संसार के पार हो जाना चाहते हैं, इसीलिए हमने संसार के कर्त्तव्यों को प्रवृत्ति और प्रतियोगिता के आधार पर नहीं खड़ा किया·· सांसारिक कर्म को भी माना, क्योंकि कर्म के द्वारा कोई दूसरी सफलता नहीं, मुक्ति ही पानी होगी। इसीलिए एक ओर संसार का काम, दूसरी ओर संसार के काम की परिणति, दोनों को देखकर हमारे समाज में वर्ण-भेद की अर्थात् वृत्ति-भेद की स्थापना हुई।"

सुचरिता—"मैं आपकी बात बहुत अच्छी तरह समझ पा रही हूँ, ऐसा नहीं है। पर मेरा प्रश्न यह है कि आप जिस उद्देश्य से समाज में वर्ण-भेद का चलन हुआ मानते हैं, उस उद्देश्य को क्या सफल होता देख रहे हैं?"

विनय—"दुनिया में सफलता का चेहरा पहचानना बड़ा कठिन है। ग्रीस की सफलता आज ग्रीस में नहीं है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि ग्रीस का सारा आइडिया ही भ्रान्त या व्यर्थ रहा। ग्रीस का आइडिया अब भी मानव-समाज में नाना प्रकार की सफलता प्राप्त कर रहा है। भारतवर्ष ने जाति-भेद

नाम से सामाजिक समस्या का एक बहुत बड़ा उत्तर दिया था— वह उत्तर अभी मरा नहीं है—अब भी दुनिया के सामने मौजूद है। यूरोप भी सामाजिक समस्या का कोई और अच्छा उत्तर अभी तक नहीं दे सका; वहाँ केवल ठेला-ठेली और और हाथा-पाई ही चल रही है। भारतवर्ष का यह उत्तर मानव-समाज में अब भी सफलता की प्रतीक्षा कर रहा है—एक क्षुद्र सम्प्रदाय की ओछी अन्धता के कारण हमारे उसे उड़ा देना चाहने से ही वह उड़ जायगा, ऐसा कभी न सोचियेगा। हमारे छोटे-छोटे सम्प्रदाय पानी की बूँद-से समुद्र में मिल जायँगे, लेकिन भारतवर्ष की सहज प्रतिभा से जो प्रकांड मीमांसा उद्‌भूत हुई है, वह तब तक स्थिर खड़ी रहेगी, जब तक कि पृथ्वी पर उसका काम न हो जाय।"

सुचरिता ने सकुचाते हुए पूछा, "बुरा न मानिएगा, लेकिन सच बताइए, ये सब बातें क्या आप गौरमोहन बाबू की प्रतिध्वनि की तरह कह रहे हैं, या कि सच-मुच इन पर पूरा विश्वास करते हैं?"

विनय ने हँसकर कहा, "आपसे सच ही कहता हूँ, मेरे विश्वास में गोरा जैसा ज़ोर नहीं है। जब जाति-भेद के बन्धन और समाज के विकारों को देखता हूँ तब कई बार सन्देह भी प्रकट करता हूँ, किन्तु गोरा का कहना है कि बड़ी चीज़ को छोटा करके देखने से ही सन्देह उत्पन्न होता है···पेड़ की टूटी हुई डाल या सूखे पत्ते को भी पेड़ की चरम प्रकृति मानना बुद्धि की असहिष्णुता है टूटी डाल की प्रशंसा करने को नहीं कहता, लेकिन वनस्पति को भी देखो और उसका तात्पर्य समझने की कोशिश करो।"

सुचरिता—"पेड़ के सूखे पत्ते न भी देखे सही, लेकिन पेड़ का फल तो देखना होगा? जाति-भेद का फल हमारे देश के लिए कैसा है?"

विनय—"जिसे आप जाति-भेद का फल कहती हैं, वह अवस्था का फल है, केवल जाति-भेद का नहीं। हिलती हुई दाढ़ से चबाने पर दर्द होता है, वह दांत का अपराध नहीं है, हिलती दाढ़ का अपराध है। अनेक कारणों से हम लोगों में विकार और दुर्बलता आ गई है, इसलिए हम भारतवर्ष के आइडिया को सफल न करके और विकृत किये दे रहे हैं···वह विकार आइडिया का मूलगत नहीं है। हममें प्राण और स्वास्थ्य काफ़ी हो तो सब अपने-आप ठीक हो जायगा। गोरा इसीलिए बार-बार कहते हैं, सिर दुखता है इसलिए सिर उड़ा देने से नहीं चलेगा ···स्वस्थ होओ, सबल होओ!"

सुचरिता—"अच्छा, तो आप ब्राह्मण-जाति को नर-देवता मानने को कहते हैं? आप सचमुच मानते हैं कि ब्राह्मण के पैरों की धूलि से मनुष्य पवित्र होता है?"

विनय—"पृथ्वी पर बहुत-से सम्मान तो हमारे अपने गढ़े हुए हैं। जब तक राजा की आवश्यकता रहती है—चाहे जिस कारण से हो—तब तक मनुष्य उसे असाधारण ही कहकर प्रचारित करते है। लेकिन राजा वास्तव में तो असाधारण नहीं है। फिर भी अपनी साधारणता का बन्धन लाँघकर उसे असाधारण हो उठना होगा, नहीं तो वह राज ही नहीं कर सकेगा। राजा से ठीक ढंग से राजत्व पाने के लिए हम उसे असाधारण बना डालते हैं—हमारे उस सम्मान की ज़िम्मेदारी राजा को संभालनी पड़ती है, उसे असाधारण बनना पड़ता है। मनुष्य के सभी सम्बन्धों में ऐसी कृत्रिमता है। यहाँ तक कि माता-पिता का जो आदर्श हम सबने मिलकर खड़ा किया है, उसीके सहारे समाज में माता-पिता को विशेष रूप से माता-पिता माना जाता है, केवल स्वाभाविक स्नेह के कारण नहीं। संयुक्त परिवार में बड़ा भाई छोटे भाई के लिए बहुत-कुछ सहता और त्याग करता है—क्यों करता है? हमारे समाज में बड़े भाई को बड़े भाई का विशेष पद दिया गया है, दूसरे समाजों में वैसा नहीं है। ब्राह्मण को भी अगर सचमुच ब्राह्मण बना दिया जा सके तो वह क्या समाज के लिए मामूली लाभ होगा? हम लोग नर-देवता चाहते हैं—यदि सचमुच सच्चे मन से और बुद्धिपूर्वक हम नर-देवता को चाहें तो अवश्य पायेंगे—और अगर मूर्खों की तरह चाहें तो जो सब अप-देवता तरह-तरह के उत्पात करते रहते है, और हमारे माथे पर अपने चरणों की धूल डालना जिनकी जीविका का उपाय है, उनका दल—और धरती का भार—बढ़ेगा ही!"

सुचरिता—"आपके ये नर-देवता कहीं है भी?"

विनय "बीज में जैसे पौधा होता है वैसे ही हैं, भारतवर्ष के आन्तरिक अभिप्राय और प्रयोजन में है। दूसरे देश वेलिंगटन-जैसा सेनापति, न्यूटन-जैसा वैज्ञानिक, राथ्सचाइल्ड-जैसा लखपति चाहते हैं, हमारा देश ब्राह्मण चाहता है। ब्राह्मण—जिसे भय नहीं है, जो लोभ से घृणा करता है, दुःख पर जो जय पाता है, अभाव की जो परवाह नहीं करता, जो 'परमे ब्रह्मणि योजितचित्तः' है, जो अटल है, शान्त है, मुक्त है—उस ब्राह्मण को भारतवर्ष चाहता है—उसे सचमुच पा लेने से ही भारतवर्ष स्वाधीन हो सकेगा। हमारे समाज के प्रत्येक विभाग में, प्रत्येक कर्म में, सर्वदा मुक्ति का एक स्वर गुंजाने के लिए ही ब्राह्मण चाहिए—राँधने और घण्टा बजाने के लिए नहीं! समाज की सार्थकता को हर वक्त समाज की आँखों के सामने प्रत्यक्ष किये रहने के लिए ही ब्राह्मण चाहिए; ब्राह्मण के इस आदर्श को हम जितना बड़ा अनुभव करेंगे, ब्राह्मण के सम्मान को उतना ही बड़ा करके रखना होगा। वह सम्मान राजा के सम्मान से भी कहीं अधिक है; वह सम्मान देवता का ही सम्मान है। देश में ब्राह्मण जब इस सम्मान का यथार्थ अधिकारी

होगा, तब इस देश को कोई अपमानित नहीं कर सकेगा।--हम लोग क्या राजा के सामने सिर झुकाते हैं ? अत्याचारी का बन्धन गले पहनते हैं ? अपने डर के सामने ही हमारा माथा झुकता है, अपने लालच के जाल में ही हम बँधे हैं, अपनी मूढ़ता के ही हम दासानुदास हैं। ब्राह्मण तपस्या करें, उस डर से, लोभ से, मूढ़ता से हमें मुक्त करें—हम उनसे युद्ध नहीं चाहते, वाणिज्य नहीं चाहते, और कुछ भी नहीं चाहते-- वे केवल हमारे समाज में मुक्ति-साधना को सत्य किये रहे !"

परेश बाबू अब तक चुपचाप सुन रहे थे। अब धीरे-धीरे बोले, "भारतवर्ष को मैं जानता हूँ, यह तो नहीं कह सकता; और भारतवर्ष ने क्या चाहा था, या जो चाहा था वह कभी पाया था या नहीं, मैं निश्चयपूर्वक नहीं जानता। लेकिन जो दिन बीत गए हैं उनकी ओर क्या कभी लौटा जा सकता है ? आज जो सम्भव है वही हमारी साधना का विषय है--अतीत की ओर हाथ बढ़ाकर समय नष्ट करने से कोई काम नही होगा।"

विनय ने कहा, "आप जैसा कहते है मै भी वैसा ही सोचता हूँ, और मैंने कई बार कहा भी है। गोरा का कहना है, हमने अतीत को अतीत कहकर बर्खास्त कर दिया है, क्या इसीसे वह अतीत हो गया है ? वर्तमान की चीख-पुकार की ओट होकर वह हमारी दृष्टि से अतीत हो गया है, इतने ही से वह अतीत नहीं हो जाता --वह भारतवर्ष की मज्जा में बना हुआ है। कोई भी सत्य कभी भी अतीत नहीं हो सकता, इसीलिए भारतवर्ष के इस सत्य ने हम पर चोट करना आरम्भ किया है। हममें से एक जन भी इसे एक दिन सत्य मानकर पहचान और ग्रहण कर सकेगा तो उसीसे हमारी शक्ति की खान का रास्ता खुल जायगा, अतीत का भंडार वर्तमान की सामग्री हो उठेगा ! आप क्या समझते हैं कि भारतवर्ष में कहीं भी ऐसे सार्थक-जन्मा व्यक्ति का आविर्भाव नही हुआ ?"

सुचरिता ने कहा, "आप जिस ढंग से ये बातें कहते हैं, साधारण लोग उसी ढंग से नही कहते। इसीलिए आपकी राय को सारे देश की मान लेने मे झिझक होती है।"

विनय बोला, "देखिए, सूर्य के उदय की वैज्ञानिक लोग एक ढंग से व्याख्या करते हैं, और साधारण लोग एक दूसरे ढंग से। इससे सूर्य के उदय का विशेष कुछ घटता-बढ़ता नही है। फिर भी सत्य को ठीक ढंग जानने में हम लोगों का लाभ ही है। देश के जिन सब सत्यों को हम लोग खंडित करके, बिगाड़कर देखते हैं, गोरा इन सबको एक करके, संश्लिष्ट करके देख सकते हैं--उनमें इसकी आश्चर्यजनक क्षमता है—लेकिन इसीसे क्या गोरा के ऐसे देखने को दृष्टि-विभ्रम मान लेना होगा और जो लोग तोड़-मरोड़कर देखते हैं, उनके देखने को सत्य ?"

सुचरिता चुप हो गई। विनय ने कहा, "हमारे देश में साधारणतया जो सब लोग अपने को परम हिन्दू मानकर अभिमान करते है, मेरे बन्धु गोरा को आप उनके दल का न समझिएगा। आप अगर उनके पिता कृष्णदयाल बाबू को देखतीं तो बाप-बेटे का अन्तर समझ सकती। कृष्णदयाल बाबू हमेशा अपने को सुपवित्र किये रखने के लिए कपड़े उतारने, गंगा जल छिड़कने, पोथी-पत्रा बाँचने को लेकर दिन-रात व्यस्त रहते हैं; रसोई के मामले मे वह बहुत अच्छे ब्राह्मण पर भी विश्वास नही करते - कि कही उसके ब्राह्मणत्व मे कोई कमी न रह गई हो; गोरा को वह अपने कमरे की सीमा में घुसने नही देते, कभी अगर काम के लिए उन्हे पत्नी के कमरे में जाना पड़े तो फिर लौटकर अपने को पवित्र कर लेते है; पृथ्वी पर दिन-रात बिलकुल अलग रहते है कि कही जाने-अनजाने किसी नियम-भंग की धूल का एक कण भी उन्हें न छू जाय! कोई बहुत ही 'छैला बाबू'-जैसे अपने को धूप और धूल से बचाते हुए अपने रंग-रूप की, बालों के सँवार की, कपड़ों की चुन्नट की रक्षा के लिए सतर्क रहता है, वैसे ही! गोरा बिलकुल ऐसे नही है। वे हिन्दूपन के नियमों मे अश्रद्धा नहीं करते, लेकिन ऐसे झाड़-पोंछकर नही चल सकते। हिन्दू-धर्म को वह भीतर से और बहुत ऊंची दृष्टि मे देखते हैं, वह कभी ऐसा नही सोचते कि हिन्दू-धर्म के प्राण इतने नाजुक है कि ज़रा-सी छुअन से ही मुरझा जायँगे या ठेस लगते ही मर जायँगे!"

सुचरिता--"लेकिन लगता तो यही है कि वह छुआछूत के मामले म बड़े सावधान होकर चलते है।"

विनय-- "उनकी यह सतर्कता ही एक अद्भुत चीज़ है। उनसे अगर पूछा जाय तो वह फ़ौरन कहेंगे, 'हां, मैं यह सब मानता हूँ ---छू जाने से जाति जाती है, खाने से पाप होता है, ये सब अभ्रान्त सत्य है।' लेकिन मैं अच्छी तरह जानता हूँ, ये सब उनकी ज़बरदस्ती की बातें हैं -- ये बातें जितनी ही असंगत हों वह मानो उतनी ही ज़ोर से सबको सुना-सुनाकर कहते है। वर्तमान हिन्दूपन की मामूली-सी बात को भी अस्वीकार करने पर दूसरे मूढ़ लोगों में कहीं हिन्दुत्व की बड़ी बातों का भी असम्मान न हो, और जिन्हें हिन्दुत्व पर श्रद्धा नहीं है वे उसे अपनी जीत समझें, इस ख़याल से गोरा बिना विचारे सभी कुछ मानकर चलना चाहते हैं। मेरे सामने भी इस बारे में कोई शिथिलता नहीं प्रकट करना चाहते।"

परेश बाबू बोले, "ब्राह्म लोगों में भी ऐसे बहुत हैं। वे हिन्दुत्व की सभी बातों को बिना विचारे दूर कर देना चाहते हैं, जिससे बाहर का कोई व्यक्ति भूल से भी यह न समझे कि वे हिन्दू धर्म की कुप्रथाओं को भी स्वीकार करते है। ऐसे लोग दुनिया में सहज भाव से चल ही नहीं सकते; या तो दिखावा करते हैं या

होड़ करते हैं; समझते हैं कि सत्य दुर्बल है और उसे चालाकी से या ज़बरदस्ती से बचाना ही कर्तव्य का अंग है। जो लोग ऐसा मानते हैं कि 'सत्य हम पर निर्भर करता है, सत्य पर हम निर्भर नहीं हैं,' उन्हीं को तो कठमुल्ला कहते है। जिन्हें सत्य की शक्ति पर विश्वास है, वे अपनी जबरदस्ती को संयत रखते है। बाहर के लोग दो-चार दिन गलत समझ लें, यह कोई बड़ा नुकसान नहीं है। लेकिन किसी क्षुद्र-संकोच के कारण सचाई को स्वीकार न कर सकना इससे कहीं बड़ी क्षति है। मैं तो ईश्वर से सर्वदा यही माँगता हूँ कि चाहे ब्राह्म-सभा मे हो चाहे हिन्दू चण्डी-मण्डप में, मैं सत्य को सर्वत्र सिर झुकाकर सहज भाव से और बिना विद्रोह के प्रणाम कर सकूँ--बाहर की कोई बाधा मुझे रोक न सके।"

इतना कहकर परेश बाबू ने क्षण-भर स्तब्ध होकर मानो अपने मन का भीतर ही-भीतर समाधान किया। परेश बाबू ने मृदु स्वर से यह जो बात कही उसने मानो इतनी देर की सारी बातचीत में एक गम्भीरतर स्वर ला दिया वह स्वर उनकी इस बात का स्वर नहीं था, बल्कि परेश बाबू के अपने जीवन की एक प्रशान्त गम्भीरता का स्वर था। सुचरिता और ललिता के चेहरे पर एक आनन्दित भक्ति की दीप्ति फैल गई। विनय चुप रह गया। वह मन-ही-मन जानता था कि गोरा में एक प्रचण्ड हठधर्मिता है - सत्य के वाहकों के मन, वचन और कर्म में जो एक सहज, सरल शान्ति रहनी चाहिए वह गोरा में नहीं है। परेश बाबू की बात सुनकर इस बात ने मानो उसके मन पर और भी स्पष्ट आघात किया। अवश्य ही विनय इतने दिन गोरा के पक्ष में मन-ही-मन यह दलील देता रहा है कि जब समाज की व्यवस्था डगमग है, जब बाहर के देश-काल के साथ संघर्ष हो रहा है, तब सत्य के सिपाही स्वाभाविकता की रक्षा नहीं कर सकते --तब सामयिक आवश्यकताओं के दबाव मे सचाई में भी मिलावट आ जाती है। आज परेश बाबू की बात से क्षण-भर विनय के मन मे प्रश्न उठा : 'तात्कालिक प्रयोजन साधने के लोभ से सचाई को बिगाड़ना साधारण लोगों के लिए तो स्वाभाविक है पर उसके गोरा भी क्या ऐसे ही साधारण लोगों के दल के है?'

रात को जब सुचरिता बिस्तर पर आ लेटी तब ललिता आकर उसकी खाट के छोर पर बैठ गई। सुचरिता ने समझ लिया कि ललिता के मन में कोई बात चक्कर काट रही है। वह बात विनय के सम्बन्ध मे है, यह भी उसने समझ लिया।

इसीलिए सुचरिता ने स्वयं बात उठाई, "लेकिन विनय बाबू मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।"

ललिता ने कहा, "वह हर वक्त गौर बाबू की ही बातें करते रहते है न, इसी लिए तुम्हें अच्छे लगते हैं।"

बात का इशारा सुचरिता ने समझकर भी नहीं समझा। उसने एक सरल भाव धारण करते हुए कहा, "सच तो, उनके मुंह से गौर बाबू की बात सुनकर बड़ा आनन्द होता है। मैं मानो उन्हें स्पष्ट देख पाती हूँ।"

ललिता ने कहा, "मुझे तो बिलकुल अच्छा नहीं लगता—मुझे तो गुस्सा आता है।"

सुचरिता ने अचम्भे से कहा, "क्यों ?"

ललिता बोली, "गोरा, गोरा, गोरा—दिन-रात केवल गोरा! मान लिया कि उनके दोस्त गोरा बहुत बड़े आदमी हैं, अच्छी बात है—लेकिन वह खुद भी तो आदमी हैं!"

सुचरिता ने हँसकर कहा, "सो तो है! लेकिन इसमें हर्ज क्या है ?"

ललिता "उनके दोस्त उन पर ऐसे छा गए हैं कि वह अपनी बात कह ही नहीं सकते। मानो एक मकड़ी ने एक टिड्डे को घेर लिया हो···वैसी हालत में मकड़ी पर भी मुझे गुस्सा आता है, और टिड्डे पर भी श्रद्धा होती हो ऐसा नहीं है।"

ललिता की बात के तीखेपन पर सुचरिता कुछ न कहकर हँसने लगी।

ललिता ने कहा, "तुम हँस रही हो, दीदी, लेकिन मैं तुमसे कहे देती हूँ, मुझे कोई वैसे दबाए रखने की कोशिश करता तो मैं एक दिन भी न सह सकती। तुम यही सोचो—लोग चाहें जो समझें, तुमने मुझे आच्छन्न करके नहीं रखा—तुम्हारी वैसी प्रकृति ही नहीं है इसीलिए तो तुम इतनी अच्छी लगती हो। असल में यह तुमने बाबा से ही सीखा है वह हर किसी के लिए उसके लायक जगह छोड़ देते हैं।"

इस परिवार में सुचरिता और ललिता परेश बाबू की परम भक्त हैं। 'बाबा' कहते ही उनका हृदय मानो खिल जाता है।

सुचरिता ने कहा, "अब बाबा से किसी की बराबरी थोड़े ही हो सकती है ? लेकिन जो हो, भई, विनय बाबू बात को बड़े अच्छे ढंग से रख सकते हैं।"

ललिता—"वे सब उनके मन की बातें नहीं हैं न, तभी इतने अच्छे ढंग से रख सकते हैं! अपनी बात कहते तो बड़ी सीधी-सीधी बातें होतीं, यह न लगता कि सोच-सोचकर, बना-बनाकर कह रहे हैं। इन सब बढ़िया-बढ़िया बातों से वह मुझे कहीं अच्छा लगता।"

सुचरिता—"तो नाराज़ क्यों होती है, भई! गौरमोहन बाबू की बातें उनकी अपनी बातें हो गई हैं।"

ललिता—"अगर ऐसा है तो और भी बुरा है। भगवान् ने क्या बुद्धि इसीलिए

दी है कि दूसरों की ही बात की व्याख्या करते रहें, और मुंह इसलिए दिया है कि दूसरों की ही बातें अच्छे ढंग से कहें ? ऐसे अच्छे ढंग की मुझे कोई ज़रूरत नहीं है।"

सुचरिता—"लेकिन तू यह बात क्यों नहीं समझती कि विनय बाबू गौरमोहन बाबू को बहुत चाहते हैं—उनके साथ उनके मन का सच्चा मेल है ?"

ललिता ने अधीर होकर कहा, "नहीं, नहीं, नहीं ! पूरा मेल नहीं है। गौरमोहन बाबू को मानकर चलना उनका अभ्यास हो गया है वह प्रेम नहीं है, गुलामी है। फिर भी ज़बरदस्ती मानना चाहते हैं कि उनके साथ उनकी राय बिलकुल मिलती है। इसीलिए उनकी राय को वह इतने जतन से सजा-सजाकर अपने को और दूसरे को भुलाने की कोशिश करते है। वह सिर्फ़ अपने मन के संदेह और विरोध को दबा देना चाहते हैं, ताकि कहीं गौरमोहन बाबू को अमान्य न करना पड़े। उनको अमान्य करने का साहस उनमें नहीं है। प्रेम हो तो राय न मिलने पर भी बात मानी जा सकती है -- बिना अन्धे हुए भी अपने को छोड़ दिया जा सकता है—उनका वैसा नहीं है। वह गौरमोहन बाबू को मानते हैं शायद प्रेम के कारण ही, पर इस बात को किसी तरह स्वीकार नहीं कर पाते। उनकी बात सुनने से साफ़ पता चल जाता है। अच्छा सच बताओ दीदी, तुम्हें नहीं पता लगता ?"

सुचरिता ने ललिता की भाँति यह बात उस ढंग से सोची ही नहीं थी। गोरा को पूरी तरह जानने के लिए ही उसका कौतूहल इतना व्यग्र था कि विनय को स्वतन्त्र रूप से देखने की ओर उसका ध्यान ही नहीं था। सुचरिता ने ललिता के प्रश्न का स्पष्ट उत्तर न देकर कहा, "अच्छा, चल; तेरी बात ही मान ली गई तो बता, फिर क्या किया जाय ?"

ललिता—"मेरा तो मन करता है, उन्हें उनके दोस्त के बन्धन से छुड़ाकर स्वाधीन कर दिया जाय।"

सुचरिता - "तो कोशिश करके देख ले न !"

ललिता "मेरी कोशिश से नहीं होगा—तुम ज़रा ध्यान दोगी तो हो जायगा।"

सुचरिता ने यद्यपि मन-ही-मन समझ लिया था कि विनय उसके प्रति अनुरक्त है, तब भी उसने ललिता की बात को हँसकर टाल देना चाहा।

ललिता ने कहा, "गौरमोहन बाबू का हुक्म तोड़कर भी वह जो तुम्हारे पास ऐसे पकड़ाई देने आते हैं, इसीलिए मुझे वह अच्छे लगते हैं। उनकी अवस्था में और कोई होता तो ब्राह्म लड़कियों को गालियाँ देकर नाटक लिखता। उनका मन अब

भी खुला है, इसका यही सबूत है कि वह तुम्हें चाहते हैं और बाबा का सम्मान करते हैं। विनय बाबू को उनके अपने रूप में खड़ा करना ही होगा, दीदी! वह जो केवल गौरमोहन बाबू का प्रचार करते रहते हैं, वह मुझे असह्य लगता है।"

इसी समय 'दीदी' पुकारता हुआ सतीश आ पहुँचा। विनय आज उसे बड़े मैदान में सर्कस दिखाने ले गया था, यद्यपि रात बहुत हो गई थी फिर भी अपना पहला सर्कस देखने का उसका उत्साह उससे संभल नहीं रहा था। सर्कस का पूरा वर्णन कर लेने के बाद वह बोला, "आज विनय बाबू को पकड़कर मैं अपने बिस्तर पर ला रहा था—वह घर के अन्दर भी आये थे, फिर चले गए। बोले कि कल आयेंगे। दीदी, मैंने उनसे कहा है एक दिन आप लोगों को भी सर्कस दिखा लावें।"

ललिता ने पूछा, "इस पर उन्होंने क्या कहा?"

सतीश ने कहा, "वह बोले, बाघ देखकर लड़कियाँ डर जायेंगी। लेकिन मुझे बिलकुल डर नहीं लगा।"

कहते-कहते सतीश पौरुष के अभिमान से छाती फुलाकर बैठ गया।

ललिता ने कहा, "ऐसी बात है? तुम्हारे दोस्त विनय बाबू का साहस कितना बड़ा है, वह खूब समझ सकती हूँ। नहीं, दीदी, उन्हें सर्कस दिखाने के लिए हमें अपने साथ ले जाना ही पड़ेगा।"

सतीश बोला, "कल तो सर्कस दिन में होगा।"

ललिता ने कहा, "वही तो अच्छा है---दिन में ही जायेंगे।"

दूसरे दिन विनय बाबू के आते ही ललिता बोल उठी, "लीजिए, ठीक ही वक्त पर आये हैं, विनय बाबू! चलिए!"

विनय—"कहाँ चलना होगा?"

ललिता—"सर्कस देखने।"

सर्कस देखने! दिन दहाड़े शामियाना-भर लोगों के समाने लड़कियों को लेकर सर्कस देखने जाना! विनय हक्का-बक्का हो गया।

ललिता बोली, "जान पड़ता है, गौरमोहन बाबू नाराज होंगे?"

ललिता के इस सवाल से विनय कुछ चकित हुआ।

ललिता ने फिर कहा, "सर्कस देखने लड़कियों के ले जाने के बारे में गौरमोहन बाबू की कोई राय है?"

विनय ने कहा, "जरूर है।"

ललिता—"उसकी आप किस ढंग से व्याख्या करते हैं, बताइये तो? मैं दीदी को बुला लाऊँ, वह भी सुनेंगी।"

विनय झेंपकर हँसा। ललिता ने कहा, "हँसते क्यों हैं, विनय बाबू ? आपने कल सतीश से कहा था, लड़कियाँ बाघ से डरती हैं। आप जैसे किसी से नहीं डरते !"

इस पर विनय लड़कियों को सर्कस दिखाने ले गया था। इतना ही नहीं, गोरा के साथ उसका सम्बन्ध ललिता को, और शायद परिवार के सभी लड़कियों को कैसा जान पड़ता है— इस बात को लेकर भी वह मन-ही-मन काफ़ी उधेड़-बुन करता रहा था।

इसके बाद जिस दिन विनय से ललिता की भेंट हुई उसने बड़े भोले कौतूहल से पूछा, "उस दिन की सर्कस जाने की बात आपने गौरमोहन बाबू को बता दी ?"

यह प्रश्न विनय को बहुत अखरा, क्योंकि कानों तक लाल होते हुए उसे कहना पड़ा, "नहीं, अभी तक मौका नहीं मिला।"

लावण्य ने हँसते हुए कमरे में आकर कहा, "विनय बाबू, आइए न !"

ललिता बोली, "कहाँ ? क्या सर्कस देखने ?"

लावण्य ने कहा, "वाह, आज कैसा सर्कस ? मैं बुला रही हूँ इसलिए कि पेंसिल से मेरे रूमाल के चारों ओर एक बेल आँक दें— मैं काढ़ूँगी। विनय बाबू बड़ा सुन्दर आँकते हैं।"

कहती हुई लावण्य विनय को पकड़ ले गई।

१६

सवेरे गोरा काम कर रहा था। विनय ने अचानक आकर छूटते ही कहा, "उस दिन परेश बाबू की लड़कियों को लेकर मैं सर्कस देखने गया था।"

गोरा ने लिखते-लिखते कहा, "मैंने सुना है।"

विनय ने विस्मित होकर पूछा, "किससे सुना ?"

गोरा – "अविनाश से। वह भी उस दिन सर्कस देखने गया था।"

और कुछ न कहकर गोरा फिर लिखने में लग गया। गोरा ने यह बात पहले ही सुन ली है और वह भी अविनाश से, जिसने नमक-मिर्च लगाकर कहने में कोई कसर न रखी होगी; इस बात से विनय को अपने पुराने संस्कार के कारण बड़ा

संकोच हुआ। सर्कस जाने की बात की लोक-समाज में ऐसी चर्चा न उठी होती तभी अच्छा होता!

तभी उसे याद आया, कल रात बहुत देर तक जागते रहकर वह मन ही-मन ललिता से झगड़ता रहा है। ललिता समझती है, वह गोरा से डरता है और बच्चे जैसे मास्टर को मानते हैं वैसे ही वह गोरा को मानकर चलता है। कोई किसी को इतना ग़लत समझ सकता है! गोरा और वह तो एकात्मा हैं; यह ठीक है कि गोरा की असाधारणता के कारण उसकी गोरा पर श्रद्धा भी है, लेकिन इसीसे ललिता का ऐसा सोच लेना गोरा के साथ भी अन्याय है और विनय के साथ भी। विनय बच्चा नहीं है, न गोरा ही बच्चे का अभिभावक है!

गोरा चुपचाप लिखता रहा और ललिता के वही दो-तीन तीखे प्रश्न बार-बार विनय को याद आने लगे। विनय उन्हें आसानी से मन से न हटा सका।

देखते-देखते विनय के भीतर एक विद्रोह ने सिर उठाया। 'सर्कस देखने गया था तो क्या हुआ? अविनाश कौन होता है इस बात की गोरा से चर्चा करने वाला— और गोरा भी क्यों मेरे काम के बारे में उस कुम्हड़बतिये से बात-चीत करने गया, मैं क्या गोरा का नजरबन्द हूँ; कहाँ आता-जाता हूँ, गोरा के सामने क्या इसका जवाब देना होगा? यह तो दोस्ती का अपमान है।'

गोरा और अविनाश पर विनय को इतना गुस्सा न आया होता यदि अपनी भीरुता उसके सामने सहसा इतनी स्पष्ट न हो गई होती; वह जो थोड़ी देर के लिए भी गोरा से कोई बात छिपाने के लिए बाध्य हुआ, इसके लिए वह आज मन-ही-मन मानो गोरा को ही दोषी ठहराना चाहता है। सर्कस जाने की बात को लेकर गोरा अगर विनय से झगड़े की दो-एक बातें करता तो भी उनकी दोस्ती की समानता बनी रहती और विनय को तसल्ली होती—लेकिन गोरा इतना गम्भीर होकर विचारक बन बैठा है और अपनी चुप्पी के द्वारा उसका अपमान कर रहा है, यह देखकर ललिता की बात का काँटा उसे फिर-फिर बींधने लगा।

इसी समय हुक्का हाथ में लिये महिम ने कमरे में प्रवेश किया। डिब्बे से गीले कपड़े के भीतर से एक पान विनय के हाथ में देते हुए बोले, "भाई विनय, इधर तो सब ठीक हो गया, अब तुम्हारे काका महाशय की एक चिट्ठी आ जाय तो निश्चिन्त हो सकें। उन्हें तुमने लिख तो दिया है न?"

विवाह का यह आग्रह आज विनय को बहुत बुरा लगा, यद्यपि वह जानता था कि महिम का कोई दोष नहीं है उन्हें तो वचन दिया जा चुका है। किन्तु उस वचन देने में ही उसे एक हीनता जान पड़ी। आनन्दमयी ने तो उसे एक तरह से

मना ही किया था —उसका अपना भी इस विवाह के मामले मे कोई आकर्षण नहीं था—गड़बड़ी में क्षण-भर में ही यह बात पक्की कैसे हो गई ? यह भी नहीं कहा जा सकता कि गोरा ने कोई जल्दी की थी। विनय ने अगर मन से कुछ आपत्ति की होती तब भी गोरा उस पर दबाव डालता, ऐसी भी बात नहीं थी। लेकिन, फिर भी···! इस 'फिर भी' को लेकर ही ललिता की बात उसे सालने लगी। उस दिन कोई विशेष घटना नहीं हुई थी, किन्तु जो हुआ उसके पीछे अनेक दिनों का प्रभुत्व था। विनय केवल अपने स्नेह के कारण और नितान्त भलमनसाहत के कारण गोरा के आधिपत्य को अनायास सहते रहने का आदी हो गया है। इसी लिए प्रभुत्व का यह सम्बन्ध बन्धुत्व के सिर पर चढ़ बैठा है। इतने दिन विनय ने इसका अनुभव नहीं किया, किन्तु अब इसे स्वीकार किये बिना नहीं चलेगा। तो क्या शशिमुखी से विवाह करना ही होगा ?

विनय ने कहा, "नहीं, काका को तो अभी नहीं लिखा।"

महिम बोले, "वह मेरी ही ग़लती है। यह चिट्ठी तुम्हारे लिखने की तो बात नहीं है, वह मैं ही लिखूंगा। उनका पूरा नाम क्या है यह तो बताना।"

विनय ने कहा, "आप चिन्ता क्यों करते हैं ? आश्विन-कार्तिक मे तो विवाह हो ही नहीं सकता। एक अगहन है --लेकिन उसमें भी मुश्किल है। हमारे परिवार के इतिहास में न जाने कब अगहन के महीने में किसके साथ कौन-सी दुर्घटना घटी थी, तब से हमारे वंश में अगहन में विवाह आदि शुभ-कर्म बन्द हैं।"

महिम ने हुक्का कमरे के कोने में दीवार के साथ टेककर कहा, "विनय, तुम लोग यह सब मानते हो तो सारी लिखाई-पढ़ाई क्या किताबों को रटते-रटते मर जाना ही है ? अव्वल तो इस कम्बख्त देश में वैसे ही शुभ दिन ढूंढ़े नहीं मिलता, उस पर अगर हर घर अपना प्राइवेट पोथी-पत्रा लेकर बैठ जायगा तो कैसे काम चलेगा ?"

विनय ने कहा, "फिर आप भाद्र-आश्विन महीने भी क्यों मानते हैं ?"

महिम बोले, "मैं कहाँ मानता हूँ ? कभी नहीं मानता। लेकिन क्या करूँ भैया -- इस मुलुक में भगवान् को माने बिना मजे में चल जाता है, लेकिन भाद्र-आश्विन, बृहस्पति-शनि, तिथि-नक्षत्र माने बिना कोई टिकने नहीं देता ! फिर यह भी कहूँ कि मैंने कह तो दिया कि नहीं मानता, लेकिन काम करने के समय तिथि-मुहूर्त इधर-उधर होने से मन खुश नहीं रहता—देश की हवा में जैसे मलेरिया होता है, वैसे ही डर भी होता है, उससे ऊपर नहीं उठा जा सकता।"

विनय-- "हमारे वंश में अगहन का डर भी किसी तरह नहीं मिटता। काकी-माँ तो किसी तरह राजी नहीं होंगी।"

इस तरह विनय ने उस दिन तो जैसे-तैसे बात को टाल दिया।

विनय के बात कहने के ढंग से गोरा ने समझ लिया कि विनय के मन में एक द्विविधा उत्पन्न हो गई है। कुछ दिनों से विनय से भेंट ही नहीं हो रही थी, इससे गोरा ने समझ लिया था कि परेश बाबू के घर विनय का आना-जाना और भी बढ़ गया है। उसके ऊपर आज के इस विवाह के प्रस्ताव को टालने की कोशिश से गोरा के मन में और भी खटका हुआ।

सांप जैसे किसी को निगलना आरम्भ करने पर उसे किसी तरह छोड़ ही नहीं सकता, गोरा भी मानो उसी तरह अपने किसी भी संकल्प को छोड़ देने या उसमें जरा भी इधर-उधर करने में असमर्थ था। दूसरी ओर से किसी तरह की बाधा अथवा कोई शिथिलता उपस्थित होने पर वह और भी जिद पकड़ लेता था। द्विविधा में पड़े हुए विनय को पकड़ रखने के लिए गोरा पूरे अन्तःकरण से उद्यत हो उठा।

लिखना छोड़कर मुंह उठाकर उसने कहा, "विनय, एक बार जब तुमने दादा को वचन दे दिया है, तब क्यों अनिश्चय में रखकर व्यर्थ कष्ट देते हो?"

विनय ने सहसा बिगड़कर कहा, "मैंने वचन दिया है, या कि मुझे हड़बड़ाकर जल्दी में मुझसे वचन ले लिया गया है?"

विनय के इस अचानक विद्रोह के लक्षण देखकर गोरा विस्मित हो गया। उसने कड़ा पड़ते हुए पूछा, "तुमसे किसने वचन ले लिया?"

विनय ने कहा, "तुमने!"

गोरा—"मैंने! तुमसे इस बारे में मेरी दो-चार बात से अधिक नहीं हुई—यही क्या ज़बरदस्ती वचन ले लेना हो गया?

वास्तव में विनय के पक्ष में प्रमाण खास कुछ नहीं था, गोरा का कहना सच ही था कि उनकी बातचीत बहुत अल्प ही हुई थी और उसमें ऐसा कुछ बहुत आग्रह भी नहीं था जिसे दबाव डालना कहा जा सके। फिर भी यह बात भी सच थी कि गोरा ही ने मानो विनय से उसकी सम्मति ज़बरदस्ती छीन ली थी। जिस अभियोग का बाहरी प्रमाण जितना कम होता है, उसके लगाने वाले का क्षोभ उतना ही अधिक होता है। तभी विनय ने कुछ असंगत क्रोध से कहा, "कहलवा लेने के लिए ज्यादा बातचीत करना ज़रूरी नहीं है।"

गोरा मेज छोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला, "तो ले जाओ अपनी बात वापस। यह कोई इतनी बड़ी या मूल्यवान बात नहीं है कि तुमसे भीख माँगी जाय या डाका डाला जाय।"

महिम साथ के कमरे में ही थे, गोरा ने वज्र-स्वर से उन्हें पुकारा, "दादा!

महिम के हड़बड़ाकर कमरे में आते ही गोरा ने कहा, "दादा, मैंने क्या आपको शुरू में ही नहीं कहा था कि शशिमुखी के साथ विनय का विवाह नहीं हो सकता—इसमें मेरी राय नहीं है ?"

महिम—"जरूर कहा था। तुम्हारे सिवा ऐसी बात और कौन कह सकता था ? और कोई भाई होता तो भतीजी के विवाह की बात में शुरू से ही उत्साह दिखाता !"

गोरा—"फिर आपने क्यों मेरे द्वारा विनय से अनुरोध करवाया ?"

महिम—"यही सोचकर कि इससे काम हो सकेगा, और तो कोई कारण नहीं है।"

गोरा का मुँह लाल हो आया। वह बोला, "मैं इस सबमें नहीं पड़ता, ब्याह ठीक करना मेरा धन्धा नहीं है, मुझे दूसरे काम हैं।"

ऐसा कहकर गोरा घर से बाहर हो गया। हतबुद्धि महिम विनय से इस बारे में कोई प्रश्न पूछे, इससे पहले ही वह भी निकलकर सड़क पर पहुँच गया। महिम ने दीवार के कोने में टिका हुआ हुक्का उठाया और चुप-चाप बैठकर दम लगाने लगे।

गोरा के साथ विनय के इससे पहले कई बार कई झगड़े हुए हैं। लेकिन ऐसा ज्वालामुखी की तरह अकस्मात् फट पड़ने वाला मामला पहले कभी नहीं हुआ। पहले तो विनय अपनी करनी पर स्तम्भित-सा हो रहा, फिर घर पहुँचने के बाद यह बात उसे भीतर-ही-भीतर सालने लगी। तनिक-सी देर में वह गोरा को कितनी बड़ी चोट पहुँचा आया है, यह सोचकर उसकी खाने-पीने या विश्राम करने में कोई रुचि न रही। विशेषतया इस मामले में गोरा को दोषी ठहराना कितना ग़लत और बेतुका हुआ, यह बात उसे बार-बार सताने लगी। उसका मन बार-बार उसे धिक्कारने लगा : 'अन्याय, अन्याय, अन्याय !'

दो बजे के लगभग आनन्दमयी खा-पीकर सिलाई लेकर बैठी ही थीं कि विनय उनके पास आ बैठा। सुबह की थोड़ी-बहुत बात तो उन्होंने महिम से सुन ली थी। भोजन के समय गोरा का चेहरा देखकर भी उन्होंने समझ लिया था कि एक तूफ़ान गुज़र चुका है।

विनय ने आते ही कहा, "माँ, मैंने ज्यादती की है। शशिमुखी से विवाह की बात को लेकर मैंने गोरा को जो कहा उसका कोई मतलब नहीं होता।"

आनन्दमयी ने कहा, "हो सकता है, विनय—मन में कोई दर्द दबा रखने की कोशिश करने से वह ऐसे ही फूट निकलता है। वह ठीक ही हुआ है। इस झगड़े की बात दो दिन बाद तुम भी भूल जाओगे, गोरा भी भूल जायगा।"

विनय—"लेकिन माँ, शशिमुखी से विवाह में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, यही बात तुम्हें बताने आया हूँ।"

आनन्दमयी—"बेटा, जल्दी से झगड़ा मिटाने की कोशिश में और एक झंझट में मत पड़ो। झगड़ा तो दो दिन का है, विवाह तो हमेशा की बात है।"

विनय ने उनकी कोई बात नहीं सुनी। यह प्रस्ताव लेकर वह फ़ौरन गोरा के पास तो नहीं जा सका; महिम से ही उसने जाकर कहा कि विवाह में कोई बाधा नहीं है, कि माघ में ही वह सम्पन्न हो सकेगा, कि इस बात का जिम्मा विनय ही लेगा कि उसके काका महाशय को कोई आपत्ति न हो।

महिम बोला, "तो फिर सगाई ही हो जाय न!"

विनय ने कहा, "ठीक है, वह आप गोरा से सलाह करके कर लीजिए।"

महिम ने घबराकर कहा, "फिर गोरा से सलाह?"

विनय बोला, "हाँ, उसके बिना तो नहीं हो सकता।"

महिम बोले, "अगर नहीं हो सकता तब तो कोई चारा नहीं है, लेकिन···" कहते-कहते उन्होंने एक पान उठाकर मुँह में भर लिया।

२०

महिम ने उस दिन तो गोरा से कुछ नहीं कहा, अगले दिन उसके कमरे में गये। उन्होंने सोचा था कि गोरा तो फिर से राज़ी कराने के लिए लम्बी चखचख करनी होगी। पर जब उन्होंने आकर बताया कि विनय कल दोपहर को आकर विवाह के बारे में पक्का वचन दे गया है और सगाई के बारे में गोरा की सलाह लेने को कह गया है, तब गोरा ने तुरन्त अपनी राय ज़ाहिर कर दी, "ठीक है, तो सगाई हो जाय।"

महिम ने अचरज से कहा, "अभी तो कह रहे हो 'ठीक है'—इसके बाद फिर तो टाँग नहीं अड़ाओगे?"

गोरा ने कहा, "मैंने बाधा देकर तो टाँग नहीं अड़ाई, अनुरोध करके ही अड़ाई थी।"

महिम—"इसीलिए मेरी तुमसे यही विनती है कि तुम बाधा भी न देना, और अनुरोध भी न करना। न तो मुझे कौरवों की ओर से नारायणी सेना की ज़रूरत

है, और न पाण्डवों की ओर से नारायण की जरूरत ही दीखती है। मुझ अकेले से ही जो बन पड़ेगा वही ठीक है। मुझसे भूल हुई—तुम्हारी सहायता भी इतनी उलटी पड़ेगी, यह मैं पहले नहीं जानता था। खैर, विवाह हो यह तो तुम चाहते हो न?"

"हाँ, चाहता हूँ।"

महिम—"तो चाहने तक ही रहे, कोशिश करने की जरूरत नहीं है।"

गोरा को क्रोध आता है तो उसके आवेश में वह कुछ भी कर सकता है, यह सत्य है; लेकिन उस गुस्से को पोसकर अपने ही संकल्प नष्ट करना उसका स्वभाव नहीं है। विनय को जैसे भी हो वह बाँधना चाहता है, रूठने का समय यह नहीं है। कल के झगड़े की प्रतिक्रिया के कारण ही विवाह की बात पक्की हुई, विनय के विद्रोह ने ही विनय के बन्धन मजबूत कर दिए, यह बात सोच कर गोरा को कल की घटना पर मन-ही-मन खुशी ही हुई। विनय के साथ हमेशा का स्वाभाविक सम्बन्ध फिर से स्थापित करने में गोरा ने बिलकुल देर नहीं की। लेकिन दोनों के बीच जो एकान्त सहज भाव था, उसमें तो कुछ कमी आ ही गई।

गोरा ने अब यह समझ लिया कि विनय को दूर से बाँधकर रखना कठिन होगा; जहाँ से खतरा है वहीं जाकर पहरा देना होगा। उसने मन-ही-मन सोचा, 'मैं अगर परेश बाबू के घर बराबर आना-जाना बनाये रखूँ तो विनय को ठीक रास्ते पर रखे रह सकूँगा।'

उसी दिन, अर्थात् झगड़े के अगले ही दिन, तीसरे पहर के समय गोरा विनय के घर जा पहुँचा। विनय को इसकी बिलकुल आशा नहीं थी कि गोरा उसी दिन आ जायगा, इसीलिए उसे मन-ही-मन जितनी खुशी हुई उतना ही आश्चर्य भी हुआ।

इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह थी कि गोरा ने अपने-आप परेश बाबू की लड़कियों की बात उठाई, और उस बात में ज़रा भी विरूपता नहीं थी। इस चर्चा में विनय का उत्साह जगा देने के लिए अधिक परिश्रम की ज़रूरत नहीं थी।

सुचरिता के साथ विनय जिन बातों की चर्चा करता रहा, यह विस्तार से गोरा को बताने लगा। सुचरिता विशेष आग्रह से स्वयं ये सब बातें उठाती है, और चाहे जितनी बहस करे; अनजाने में धीरे-धीरे उनसे सहमत होती जा रही है, गोरा को यह बात बताकर विनय ने उसे उत्साहित करने की चेष्टा की।

बातों-बातों में विनय ने कहा, "नन्द की माँ ने भूतों के ओझा को बुलाकर कैसे नन्द के प्राण ले लिये और इसे लेकर तुम्हारे साथ क्या बात हुई थी, जब मैंने

बताया तब कहने लगी, 'आप लोग सोचते हैं, लड़कियों को घर में बन्द करके रसोई-बर्तन और सफ़ाई करने देने से ही उनका सब कर्तव्य पूरा हो जाता है। इधर तो ऐसा करके उनकी समझ-बूझ सब चौपट करके रख देंगे, उधर जब वे ओझा को बुलायेंगी तब उन पर बिगड़ने से भी नहीं चूकेंगे। जिनके लिए सारी दुनिया अड़ोस-पड़ोस के दो-एक घरों तक ही सीमित है, वे कभी सम्पूर्ण मानव नहीं हो सकतीं—और अधूरी रहकर पुरुषों के सब बड़े कामों का बिगाड़कर, अधूरे करके, पुरुष को भार से लादकर नीचे की ओर खींचकर, वे फिर अपनी दुर्गति का बदला लेंगी ही। नन्द की माँ को आप ही ने ऐसा बनाया है और ऐसी जगह घेरकर रखा है कि आज आप जान लगाकर भी उसे सुबुद्धि देना चाहें तो वह उस तक पहुँचेगी ही नहीं।' मैंने इस बारे में तर्क करने की बहुत कोशिश की है, लेकिन सच कहूँ, गोरा, मन-ही-मन उनसे सहमत होने के कारण मैं कोई ज़ोरदार दलील नहीं दे सका। और उनसे तो फिर भी बहस हो जाती, लेकिन ललिता से बहस करने का मुझे साहस नहीं होता। ललिता ने जब भँवें सिकोड़कर कहा, 'आप लोग सोचते हैं, दुनिया-भर का काम आप लोग करेंगे, और आप लोगों का काम हम करेंगी, यह नहीं होने का। या तो हम भी दुनिया का काम संभालेंगी, नहीं तो बोझ होकर रह जायेंगी। हम बोझ होंगी तो आप बिगड़कर कहेंगे, 'पथे नारी विवर्जिता।' लेकिन आप नारी को भी चलने दें तो फिर उसका विवर्जन करने की ज़रूरत न होगी—'न घर में, न पथ पर।'—तब मुझसे कोई उत्तर नहीं बन पड़ा और मैं चुप रह गया। ललिता आसानी से कोई बात नहीं कहती, लेकिन जब कहती है तब बहुत सोच-समझकर जवाब देना होता है। तुम जो कहो, गोरा, मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि हमारी नारियाँ अगर चीनी नारियों के पैरों की तरह बाँधकर रखी जायेंगी तो उससे हमारा कोई काम आगे नहीं बढ़ेगा।"

गोरा—"लड़कियों को शिक्षा न दी जाय, ऐसा तो मैंने कभी नहीं कहा।"

विनय—'चारु-पाठ तीसरा भाग' पढ़ा देने से ही क्या शिक्षा हो जाती है?"

गोरा—"अच्छी बात है, अब से 'विनय-बोध प्रथम भाग' पढ़ाया जायगा।"

दोनों बन्धुओं के घूम-फिरकर परेश बाबू की लड़कियों की बात करते-करते रात हो गई।

गोरा के अकेले घर लौटते समय ये सब बातें उसके मन में घूमती रहीं। घर पहुँचकर चारपाई पर लेटे-लेटे भी गोरा जब तक सो नहीं गया, परेश बाबू की लड़कियों की बात मन से नहीं निकाल सका। गोरा के जीवन में ऐसी बात पहले कभी नहीं हुई थी; लड़कियों की बात उसने कभी सोची ही नहीं। आज

विनय ने यह प्रमाणित कर दिया कि संसार में यह भी तक सोचने की बात है—इसे उड़ाया नहीं जा सकता, या तो इसके साथ समझौता करना होगा या लड़ना होगा।

दूसरे दिन विनय ने जब गोरा से कहा, "परेश बाबू के घर एक बार चले ही चलो न; बहुत दिनों से गए नहीं, वह तुम्हारी बात अक्सर पूछते हैं," तब गोरा बिना आपत्ति किये तैयार हो गया। केवल तैयार ही नहीं हो गया, बल्कि उसका मन भी पहले-सा निरुत्सुक नहीं था। पहले सुचिरता और परेश बाबू की लड़कियों के अस्तित्व के बारे में गोरा सम्पूर्ण भाव से उदासीन था, फिर बीच में उसके मन में उनके विरुद्ध अवज्ञा का भाव उत्पन्न हुआ था, अब उसके मन में एक कौतूहल का उदय हो गया था। कौन-सी चीज़ विनय के चित्त को इतना आकर्षित करती है, यह जानने के लिए उसके मन में एक विशेष उत्सुकता हो गई थी।

दोनों जिस समय परेश बाबू के घर पहुँचे उस समय साँझ हो रही थी। दूसरी मंज़िल के एक कमरे में तेल के लैम्प की रोशनी में हारान अपना एक अंग्रेज़ी लेख परेश बाबू को सुना रहे थे। वास्तव में परेश बाबू इस समय केवल उपलक्ष्य-मात्र थे—लेख सुचरिता को सुनाना ही उद्देश्य था। सुचरिता मेज़ के परले सिरे पर रोशनी से आँखों को ओट देने के लिए ताड़ के पत्ते का पंखा चेहरे के सामने रखे चुपचाप बैठी थी। अपने स्वभाव के कारण वह प्रबन्ध को एकाग्र होकर सुनने की बड़ी चेष्टा कर रही थी, किन्तु रह-रहकर उसका मन इँधर-उधर दौड़ रहा था।

इसी बीच जब नौकर ने आकर गोरा और विनय के आने की सूचना दी तो वह चौंक उठी। वह कुर्सी छोड़कर जाने को ही थी कि परेश बाबू ने कहा, "कहाँ जा रही हो, राधा, और कोई नहीं है, अपने विनय और गौर आये हैं।"

सुचरिता सकुचाती हुई फिर बैठ गई। हारान के लम्बे अंग्रेज़ी लेख-पाठ के रुक जाने से उसे कुछ तसल्ली हुई। गोरा के आने की बात सुनकर उसके मन में कुछ उत्तेजना न हुई हो, यह बात नहीं थी; किन्तु हारान बाबू के सामने गोरा के आने से मन-ही-मन एक बेचैनी और संकोच होने लगा था। कहीं दोनों में कुछ बहस न हो जाय, इस डर से अथवा किसी दूसरे कारण से, यह कहना कठिन है।

गोरा का नाम सुनते ही हारान बाबू का मन भीतर-ही-भीतर बिलकुल विमुख हो उठा। गौर के नमस्कार का जैसे-तैसे जवाब देकर वे गम्भीर होकर बैठे रहे। हारान को देखते ही गोरा की युद्ध करने की प्रवृत्ति हथियार बाँधकर तैयार हो गई।

वरदासुन्दरी अपनी तीनों लड़कियों को लेकर कहीं न्योते पर गई थीं; साँझ

होने पर परेश बाबू के उन्हें लिवा लाने की बात थी। परेश बाबू के जाने का समय हो गया था। इसी बीच गोरा और विनय के आ जाने से वह मुश्किल में पड़ गए। किन्तु और देर करना उचित न समझकर उन्होंने धीरे से हारान और सुचरिता से कहा, "तुम लोग ज़रा इन्हें लेकर बैठो, मैं फ़ौरन लौटकर आता हूँ।" और चले गए।

देखते-देखते गोरा और हारान बाबू में बहस छिड़ गई। बहस जिस प्रसंग को लेकर हुई वह यों था : कलकत्ता के पास ही के किसी ज़िले के मजिस्ट्रेट ब्राउनलो साहब के साथ ढाका में रहते समय परेश बाबू का परिचय हुआ था। परेश बाबू की स्त्री और कन्याएँ अन्तःपुर से बाहर निकलती हैं, इसलिए साहब और उनकी स्त्री इनकी बहुत खातिर करते थे। साहब अपने जन्म-दिन पर हर साल कृषि-प्रदर्शनी का मेला किया करते थे। इस बार वरदासुन्दरी के ब्राउनलो साहब की मेम के साथ बातचीत करते समय अंग्रेज़ी काव्य-साहित्य वग़ैरा में अपनी लड़कियों के दखल की बात करने पर मेम साहब ने सहसा कहा, 'इस बार मेले में लैफ्टिनेंट गवर्नर सस्त्रीक आयेंगे—आपकी लड़कियाँ अगर उनके सम्मुख किसी छोटे-से अंग्रेज़ी काव्य-नाट्य का अभिनय कर दें तो बड़ा अच्छा हो।' इस प्रस्ताव पर वरदासुन्दरी अत्यन्त उत्साहित हो उठी थीं। आज वह लड़कियों को रिहर्सल कराने के लिए ही उन्हें किसी बन्धु के घर ले गई हैं। इस मेले में गोरा का उपस्थित होना सम्भव होगा या नहीं, यह पूछने पर गोरा ने कुछ अनावश्यक रुखाई के साथ कह दिया, 'नहीं'। इसी बात को लेकर देश में अंग्रेज़-बंगाली का सम्बन्ध और परस्पर सामाजिक सम्मिलन की बाधा को लेकर दोनों जनों में बाकायदा लड़ाई छिड गई।

हारान ने कहा, "बंगाली का ही दोष है। हमारे इतने कुसंस्कार और कुप्रथाएँ हैं कि हम अंग्रेज़ों से मिलने के योग्य ही नहीं है।"

गोरा ने कहा, "अगर यही सच हो तो इस अयोग्यता के कारण ही अंग्रेज़ से मिलने के लिए ललचाये फिरना हमारे लिए लज्जाजनक है।"

हारान बोले, "लेकिन जो योग्य हो गए हैं उनको अंग्रेज़ से काफ़ी सम्मान मिलता है—जैसे इन सबको।"

गोरा—"एक आदमी के सम्मान से जहाँ और सबका अनादर प्रकट होता हो, वहाँ ऐसे सम्मान को मैं अपमान समझता हूँ।"

देखते-देखते हारान बाबू अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे, और गोरा रह-रहकर उन्हें वाग्बाणों से बिद्ध करने लगा।

दोनों में जब इस प्रकार की बहस चल रही थी तब सुचरिता मेज़ के पास

बैठी पंजे की ओट से एकटक गोरा को देख रही थी। जो बातें हो रही थीं वह उसके कानों में जरूर पड़ रही थीं, लेकिन उधर उसका मन बिलकुल नहीं था। वह जो अनिमेष नेत्रों से गोरा को देख रही थी, इसकी चेतना उसे स्वयं होती तो सुचरिता लज्जित हो जाती; किन्तु वह मानो आत्म-विस्मृत होकर ही गोरा को देख रही थी। गोरा अपनी दोनों बलिष्ठ भुजाएँ मेज पर टेककर आगे झुककर बैठा था; उसके प्रशस्त शुभ्र ललाट पर लैम्प की रोशनी पड़ रही थी; चेहरे पर कभी अवज्ञा की हँसी, कभी घृणा की भृकुटी लहरा जाती थी। उसके चेहरे की प्रत्येक भाव-लीला में एक आत्म-मर्यादा का गौरव लक्षित होता था। वह जो कुछ कह रहा है वह केवल सामयिक बहस या आक्षेप की बात नहीं है, प्रत्येक बात उसके अनेक दिन के चिन्तन और व्यवहार से असन्दिग्ध रूप से सिद्ध हुई है, उसमें किसी प्रकार की द्विधा, दुर्बलता या आकस्मिकता नहीं है, यह केवल उसकी आवाज में ही नहीं, उसके चेहरे, और मानो उसके समूचे शरीर में दृढ़ भाव से प्रकट हो रहा था। सुचरिता विस्मित होकर उसे देखने लगी। अपने जीवन में इतने दिनों बाद मानो यहीं पहले-पहल उसने किसी को एक विशेष व्यक्ति, एक विशेष पुरुष के रूप में देखा। उस व्यक्ति को वह और दस जनों से मिलाकर न देख सकी। इस गोरा के विरुद्ध खड़े होकर हारान बाबू मानो नगण्य हो गए। उनके शरीर और चेहरे की आकृति, उनकी भाव-भंगी, यहाँ तक कि उनके कपड़े और चादर तक उन पर व्यंग्य करने लगी। इतने दिनों तक बार-बार विनय के साथ गोरा की चर्चा करते रहकर सुचरिता गोरा को एक विशेष मत का असाधारण व्यक्ति-भर समझने लगी थी; उसके द्वारा देश का कोई विशेष मंगल उद्देश्य सिद्ध हो सकता है, इतनी ही उसने कल्पना की थी। आज उसके चेहरे की ओर एकटक देखते-देखते सुचरिता ने गोरा को मानो सभी दलों, सभी मतों, सभी उद्देश्यों से अलग करके केवल गोरा के रूप में देखा। जैसे समुद्र चाँद को सारे प्रयोजनों और व्यवहारों से परे करके देखकर अकारण ही उद्वेलित हो उठता है, सुचरिता का अन्तःकरण भी आज वैसे ही सब-कुछ भूलकर, अपनी सारी बुद्धि और संस्कार, अपने सारे जीवन का अतिक्रमण करके मानो चारों ओर उच्छ्वसित होने लगा। मनुष्य क्या है, मनुष्य की आत्मा क्या है, सुचरिता ने यह मानो पहले-पहल देखा और इस अपूर्व अनुभूति से वह मानो अपने अस्तित्व को बिलकुल भूल गई।

हारान बाबू ने सुचरिता का यह तद्गत भाव लक्ष्य किया। इससे बहस उनकी युक्तियों का जोर कुछ बढ़ा नहीं। अन्त में एकाएक अत्यन्त अधीर होकर वह आसन छोड़कर उठ खड़े हुए और सुचरिता को बिलकुल आत्मीय की तरह बुलाते हुए बोले, "सुचरिता, जरा इस कमरे में आओ, तुम्हें एक बात कहनी है।"

सुचरिता एकबारगी चौंक उठी, मानो उसे किसी ने मार दिया हो। हारान बाबू के साथ उसका जैसा सम्बन्ध है, उसमें वह उसे कभी इस तरह नहीं बुला सकते, ऐसा नहीं है; कोई दूसरा समय होता तो वह कुछ परवाह भी न करती, किन्तु आज गोरा और विनय के सम्मुख उसने अपने को अपमानित अनुभव किया। विशेषतया गोरा ने उसके चेहरे की ओर कुछ ऐसे ढंग से देखा कि वह हारान बाबू को क्षमा न कर सकी। पहले तो वह ऐसे ही चुपचाप बैठी रही मानो उसने हारान बाबू की बात सुनी ही न हो। इस पर हारान बाबू ने अपने स्वर में कुछ खीझ दिखाते हुए फिर पुकारा, "सुनती हो सुचरिता —मुझे एक बात कहनी है, एक बार उस कमरे में आना होगा।"

सुचरिता ने उनके चेहरे की ओर देखे बिना उत्तर दिया, "अभी रहने दीजिए---बाबा आ जायँ, फिर हो जायगी।"

विनय ने खड़े होते हुए कहा, "नहीं तो हम लोग चलें···"

सुचरिता ने जल्दी से कहा, "नहीं, विनय बाबू, बैठे रहिए! बाबा आपको बैठने को कह गए हैं-—अभी आते ही होंगे।"

उसके स्वर में एक व्याकुल अनुनय का भाव प्रकट हो रहा था। मानो हिरनी को व्याध के हाथों सौंपकर चले जाने का प्रस्ताव हो रहा हो।

"मैं और नहीं रुक सकता—तो मैं चल दिया," कहते हुए हारान बाबू तेज़ी से कमरे से निकल गए। गुस्से में वह बाहर तो आ गए, लेकिन अगले ही क्षण उन्हें अनुताप होने लगा। लेकिन तब फिर लौटने का भी कोई बहाना न खोज सके।

हारान बाबू के चले जाने पर सुचरिता जब गहरी लज्जा से लाल चेहरा झुकाए हुए बैठी थी, क्या करे या क्या कहे यह नहीं सोच पा रही थी, तब गोरा को अच्छी तरह उसके चेहरे की ओर देखने का अवकाश मिल गया। शिक्षित लड़कियों में जिस उद्धतता और प्रगल्भता की कल्पना गोरा ने कर रखी थी, सुचरिता की मुखश्री में उसका आभास तक भी कहाँ है? उसके चेहरे पर बुद्धि की उज्ज्वलता अवश्य प्रकाशित हो रही है, किंतु नम्रता और लज्जा से वह आज कैसी सुन्दर और कोमल दिखाई दे रही है! चेहरा कितना सुकुमार है, भंवों के ऊपर ललाट मानो शरद् के आकाश-जैसा स्वच्छ-निर्मल! ओठ चुप हैं, किंतु अनुच्चारित बात का माधुर्य दोनों ओठों के बीच एक कोमल कली-सा अटका हुआ है। नवीना स्त्रियों की वेश-भूषा की ओर गोरा ने इससे पहले कभी ध्यान से नहीं देखा, और बिना देखे ही उसके प्रति एक धिक्कार-भाव लिये रहा है—आज सुचरिता की देह पर नये ढंग की साड़ी पहनने की भंगिमा उसे विशेष अच्छी

लगी। सुचरिता का एक हाथ मेज़ पर था, उसकी आस्तीन के सिकुड़े हुए भाग से बढ़ा हुआ वह हाथ आज गोरा को किसी कोमल हृदय की कल्याणमयी वाणी-सा लगा। दीपालोकित शांत संध्या में सुचरिता को घेरे हुए सारा कमरा अपने प्रकाश, अपनी दीवारों के चित्र, अपनी सजावट और अपनी व्यवस्था के साथ मानो एक विशेष अखंड रूप लेकर दिखाई दिया। वह गृह है, वह सेवा-कुशला नारी के यत्न, स्नेह और सौन्दर्य से मंडित है, वह निरी दीवारों और शहतीरों पर टिकी हुई छत से कहीं अधिक कुछ है—यह आज मानो पल-भर में गोरा के सामने प्रत्यक्ष हो उठा। अपने चारों ओर के आकाश में गोरा ने मानो एक सजीव सत्ता का अनुभव किया—उसके हृदय पर चारों ओर से एक और हृदय की लहरें आकर आघात करने लगीं; न जाने कैसी एक निविड़ता मानो उसे घेरने लगी। ऐसी अपूर्व उपलब्धि उसे जीवन में पहले कभी नहीं हुई। देखते-देखते सुचरिता के माथे पर बिखरे हुए केशों से लेकर उसके पैरों के निकट साड़ी के किनारे तक क्रमशः अत्यन्त सत्य और अत्यन्त विशेष हो उठा। एक ही साथ समग्र रूप में सुचरिता, और स्वतन्त्र रूप से सुचरिता का प्रत्येक अंश गोरा की दृष्टि को आकृष्ट करने लगा।

कुछ देर किसी के कुछ न कह सकने से सभी कुछ कुण्ठित हो गए थे। तभी विनय ने सुचरिता की ओर देखकर कहा, "उस दिन हम लोगों में बात हो रही थी कि—" और इस प्रकार बात का सिलसिला उठाया।

वह बोला, "आपसे तो कह चुका हूँ, मेरा एक ज़माना ऐसा था जब मेरे मन में भी यह विश्वास जमा हुआ था कि अपने देश के लिए, समाज के लिए हम कोई आशा नहीं कर सकते—चिरकाल तक हम नाबालिग़ ही रहेंगे और अंग्रेज़ हमारे अभिभावक बने रहेंगे—जहां जो जैसा है वैसा ही बना रहेगा · अंग्रेज़ की प्रबल शक्ति और समाज की प्रबल जड़ता के विरुद्ध कहीं कोई उपाय भी हम न कर सकेंगे। हमारे देश के अधिकांश लोगों के मन का भाव ऐसा ही है। ऐसी अवस्था में मनुष्य या तो अपने स्वार्थ में ही डूबा रहता है, या फिर उदासीन हो जाता है। हमारे देश के मध्य-वित्त के लोग इसीलिए नौकरी में तरक्क़ी छोड़ दूसरी कोई बात ही नहीं सोच सकते, और धनी लोग सरकार से खिताब पाकर ही जीवन को सार्थक मानते हैं। हमारी जीवन-यात्रा का पथ थोड़ी दूर जाकर ही रुक जाता है—किसी सुदूर उद्देश्य की कल्पना भी हमारे दिमाग़ में नहीं आती, और उसके लिए पाथेय जुटाने को भी हम बिलकुल अनावश्यक समझ लेते हैं। मैंने भी कभी सोचा था, गोरा के पिता की सिफ़ारिश से कोई नौकरी ठीक कर लूंगा। ऐसे ही समय गोरा ने मुझसे कहा, 'नहीं, सरकारी नौकरी तुम किसी तरह नहीं कर

सकोगे।"

इस बात से सुचरिता के चेहरे पर एक हल्का-सा विस्मय का भाव देखकर गोरा ने कहा, "आप यह न समझिएगा कि गवर्नमेंट पर नाराज़ होकर मैंने ऐसी बात कही थी। जो लोग गवर्नमेंट का पक्ष करते हैं वे गवर्नमेंट की शक्ति को अपनी शक्ति मानकर घमण्ड करते हैं और देश के लोगों से अलग एक श्रेणी के हो जाते हैं —ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं हमारा यह भाव भी त्यों-त्यों बढ़ता जाता है। मैं जानता हूं, मेरी पहचान के एक पुराने डिप्टी थे —अब काम छोड़ चुके हैं— उनसे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने पूछा था, 'बाबू, तुम्हारी कचहरी में इतने ज़्यादा लोग कैसे बरी हो जाते हैं ?' इस पर उन्होंने जवाब दिया था, 'साहब, उसकी एक वजह है। आप जिन्हें जेल भेजते हैं, वे आपके लिए कुत्ते-बिल्ली के समान है, और मैं जिन्हें जेल भेजता हूं वे तो मेरे अपने भाई लगते है।' तब तक भी ऐसे डिप्टी थे जो इतनी बड़ी बात कह सकें, और ऐसे अंग्रेज़ मजिस्ट्रेटों की भी कमी नहीं थी जो सुन सकें। लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, नौकरी के फन्दे अंग के गहने होते जा रहे हैं, और आजकल के डिप्टियों के लिए भी देश के लोग धीरे-धीरे कुत्ते-बिल्ली के समान हुए जा रहे हैं। और इस तरह तरक्की पाते रहने से जो उनकी केवल अधोगति हो रही है, इस बात की अनुभूति भी उनकी चली जा रही है। दूसरे के कन्धे का सहारा लेकर अपनों को नीचा समझना, और नीचा समझकर उनके साथ अन्याय करने को बाध्य होना, इससे कोई मंगल नहीं हो सकता।"

कहकर गोरा ने मुट्ठी से मेज़ पर आघात किया; तेल का लैम्प काँप उठा।

विनय ने कहा. "गोरा, यह मेज गवर्नमेंट की नहीं है, और यह लैम्प परेश बाबू का है।"

गोरा ऊँचे स्वर से हँसा। उसकी हँसी की प्रबल ध्वनि से सारा घर भर गया। मज़ाक करने पर गोरा ऐसे बच्चों की तरह खुलकर हँस सकता है, इससे सुचरिता को अचम्भा हुआ और मन-ही-मन आनन्द भी हुआ। जो लोग बड़ी-बड़ी बातों की चिन्ता करते है ऐसे जी खोलकर हँस भी सकते हैं, यह वह नहीं जानती थी।

गोरा ने उस दिन बहुत बातें कीं। सुचरिता यद्यपि चुप ही रही फिर भी उसके चेहरे का भाव कुछ ऐसा सहमति का था कि गोरा का हृदय उत्साह से भर उठा। अन्त में मानो विशेष रूप से सुचरिता को सम्बोधित करके ही उसने कहा, "देखिए, एक बात याद रखिए। अगर हमें यही ग़लत संस्कार हो कि अंग्रेज़ क्योंकि इतने प्रबल हो गए हैं, इसलिए हम भी ठीक अंग्रेज हुए बिना किसी तरह प्रबल नहीं हो सकते, तो फिर वह असम्भव कभी सम्भव नहीं होगा और हम लोग नकल करते-करते ही घर से बाहर निकाल दिये जायेंगे। आप निश्चय जानिए, भारत की एक

विशेष प्रकृति है, विशेष शक्ति है, विशेष सचाई है; उसी के परिपूर्ण विकास के द्वारा ही भारत सार्थक होगा, भारत की रक्षा होगी। अंग्रेज का इतिहास पढ़कर भी अगर हमने यह न सीखा, तो सभी कुछ ग़लत सीखा है। आपसे मेरा यही अनुरोध है, आप भारतवर्ष के भीतर आइए, उसकी सब अच्छाई-बुराई के बीचों-बीच उतरकर खड़ी होइए—विकृति हो तो भीतर से संशोधन कर दीजिए; लेकिन उसे देखिए, समझिए, उसकी सोचिए, उसकी ओर मुड़िए, उसके साथ एक होइए! उसके विरुद्ध खड़े होकर, बाहर रहकर, बचपन से ख्रिस्तानी संस्कारों में दीक्षित होकर उसे आप समझ ही नहीं सकेंगी, उसे केवल चोट ही पहुँचाती रहेंगी, उसके किसी काम नहीं आ सकेंगी।"

गोरा ने कहा तो 'मेरा अनुरोध' किन्तु यह अनुरोध नहीं था; मानो आदेश था। बात में कुछ ऐसा प्रचण्ड जोर था कि उसे दूसरे की सम्मति की अपेक्षा न थी। सुचरिता ने सिर झुकाकर सब सुन लिया। गोरा ने विशेष रूप से उसी को सम्बोधित करके इतने प्रबल आग्रह के साथ ये बातें कहीं, इससे सुचरिता के मन में एक हलचल मच गई। यह हलचल किस बात की है, यह सोचने का समय तब नहीं था। भारतवर्ष नाम की एक बृहत् प्राचीन सत्ता है, यह बात सुचरिता ने कभी क्षण-भर के लिए भी न सोची थी। यह सत्ता छिपी रहकर भी अधिकारपूर्वक सुदूर अतीत से लेकर सुदूर भविष्य तक मानव-जाति के विराट् भाग्य-जाल में एक विशेष रंग का सूत्र एक विशेष ढंग से बुनती रही है, यह सूत्र कितना सूक्ष्म और विचित्र है और कितनी दूर तक उसका कितना गहरा प्रभाव है, यह आज गोरा के प्रबल स्वर से सुनकर सुचरिता ने मानो सहसा जान लिया। प्रत्येक भारतवासी का जीवन इतनी बड़ी एक सत्ता से घिरा हुआ और अधिकृत है, उसे सचेतन भाव से अनुभव न करने से हम लोग कितने छोटे हो जाते हैं और अपने चारों ओर के सम्बन्ध में कैसे बेखबर होकर काम करते हैं, यह सुचरिता के सम्मुख पल-भर में स्पष्ट हो गया। इसी आकस्मिक स्फूर्ति के आवेग से सुचरिता अपना सब संकोच छोड़कर सहज विनय से कह उठी, "देश की बात मैंने कभी इस ढंग से, उसे इतना बड़ा, इतना सत्य मानकर नहीं सोची। लेकिन एक बात मैं पूछना चाहती हूँ—धर्म के साथ देश का क्या सम्बन्ध है? धर्म क्या देश से परे नहीं है?"

मृदु स्वर में पूछा गया सुचरिता का यह प्रश्न गोरा को बड़ा मधुर लगा। सुचरिता की बड़ी-बड़ी आँखों में यह प्रश्न और भी मधुर दिखाई दिया। गोरा ने कहा, "देश से जो परे है, देश से जो कहीं बड़ा है, वह देश के भीतर से ही प्रकाशित होता है। ईश्वर ऐसे ही विचित्र भाव से अपने अनन्त स्वरूप को व्यक्त करते हैं। जो कहते हैं कि सत्य एक है, इसलिए केवल एक ही धर्म सत्य हो सकता है, कि धर्म

का एक ही रूप सत्य हो सकता है, वे इस सत्य को तो मानते हैं कि सत्य एक है, लेकिन इस सत्य को नहीं मानना चाहते कि सत्य अन्तहीन होता है। वह जो अन्तहीन एक है, वह अन्तहीन अनेक में अपने को प्रकाशित करता रहता है—उसी की तो लीला सारे जगत् में हम देखते हैं। इसीलिए धर्म-मत भी विचित्र रूप लेकर कई दिशाओं से उसी धर्म-राज की उपलब्धि कराते हैं। मैं निश्चयपूर्वक आपसे कहता हूँ, भारतवर्ष की खुली खिड़की से आप सूर्य को देख सकेंगी—इसके लिए सागर-पार जाकर ख़िस्तान गिरजाघर की खिड़की में बैठने की कोई जरूरत न होगी।"

सुचरिता ने कहा, "आप कहना चाहते हैं कि भारतवर्ष का धर्म-तन्त्र हमें एक विशेष पथ से ईश्वर की ओर ले जाता है। वह विशेषत्व क्या है?"

गोरा ने कहा, "वह यह कि ब्रह्म जो निर्विशेष है, वह विशेष में ही व्यक्त होता है, किन्तु उसके विशेष का अन्त नहीं है। जल भी उसका विशेष है, स्थल भी उसका विशेष है वायु, अग्नि, प्राण उसके विशेष हैं; बुद्धि, प्रेम सभी उसके विशेष हैं। गिनकर उसका कोई अन्त नहीं पाया जा सकता, इसीलिए विज्ञान का सिर चकरा जाता है। जो निराकार है उसके आकार का अन्त नहीं है—ह्रस्व-दीर्घ, स्थूल-सूक्ष्म का अनन्त प्रवाह ही उसका है। जो अनन्त विशेष है वही निर्विशेष है, जो अनन्त रूप है वही अरूप है। दूसरे देशों में ईश्वर को कम या अधिक मात्रा में किसी एक विशेष में बाँधने की चेष्टा होती है—भारतवर्ष में भी ईश्वर को विशेष में देखने की चेष्टा होती है अवश्य; किन्तु भारतवर्ष उसी विशेष को एकमात्र और चरम नहीं कहता। ईश्वर उस विशेष का भी अनन्त प्रकार से अतिक्रमण करता रहता है, इस बात को भारतवर्ष के कोई भक्त कभी अस्वीकार नहीं करते।"

सुचरिता ने कहा, "ज्ञानी नहीं करते, लेकिन अज्ञानी?"

गोरा बोला, "मैंने तो पहले ही कहा, अज्ञानी सब देशों में सब सत्यों को विकृत करते हैं।"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन हमारे देश में वह विकृति क्या अधिक दूर तक नहीं पहुँच गई है?"

"वह हो सकता है। किन्तु उसका कारण यही है कि धर्म के स्थूल और सूक्ष्म, अन्तर और बाहर, शरीर और आत्मा, इन दोनों अंगों को भारतवर्ष पूरी तरह स्वीकार करना चाहता है; इसलिए जो लोग सूक्ष्म को ग्रहण नहीं कर पाते वे स्थूल को ही धारते हैं, और अज्ञान से उस स्थूल में अनेक अद्भुत विकार पैदा करते रहते हैं। लेकिन जो रूप में भी सत्य हैं, अरूप में भी सत्य हैं, स्थूल में भी सत्य हैं और

सूक्ष्म में भी, ध्यान में भी और प्रत्यक्ष में भी, उन्हें देह-मन-कर्म सभी से उपलब्ध करने का जो आश्चर्यमय और विशाल प्रयत्न भारतवर्ष कर रहा है, मूर्खों की तरह उसकी अवज्ञा करके यूरोप की अठारहवीं शताब्दी के, नास्तिकता और आस्तिकता-मिश्रित एक संकीर्ण, नीरस, अंगहीन धर्म को हम एकमात्र धर्म के रूप में ग्रहण कर लें, यह कैसे हो सकता है ? मैं जो कह रहा हूँ वह शायद आप अपने बचपन में पड़े हुए संस्कारों के कारण अच्छी तरह न समझ सकेंगी, सोचेंगी कि अंग्रेजी पढ़कर भी इस आदमी को शिक्षा का कुछ फल नहीं मिला। लेकिन भारतवर्ष की सत्य प्रकृति और सत्य साधना के प्रति आप में कभी श्रद्धा उत्पन्न हो सकी—हज़ारों बाधाओं और विकृतियों के बीच भी भारतवर्ष जैसे अपने को प्रकाशित कर रहा है, उस प्रकाश की गहराई में आप प्रवेश कर सकीं, तो—और क्या कहूँ, अपने भारतवर्षीय स्वभाव और शक्ति को फिर पाकर आप मुक्ति-लाभ करेंगी।"

सुचरिता को बहुत देर तक चुप बैठे देखकर गोरा ने कहा, "मुझे आप एक कट्टर व्यक्ति न समझ लीजिएगा। कट्टर लोग—विशेषकर जो लोग नये सिरे से कट्टर हो गए हैं वे, हिन्दू धर्म के बारे में जिस ढंग से बात करते हैं मेरी बात को उस ढंग से न लीजिएगा। भारतवर्ष की अनेक प्रकार की झलक और विचित्र चेष्टाओं के बीच मैं एक गहरा और बृहत् ऐक्य देख सका हूँ, उसी ऐक्य के आनन्द से मैं पागल हूँ। उसी ऐक्य के आनन्द से, भारतवर्ष में जो सबसे मूढ़ हैं उनके साथ हिल-मिलकर धूल में बैठने में मुझे ज़रा भी संकोच नहीं होता। भारतवर्ष की इस वाणी को कोई समझते हैं, कोई नहीं समझते—न सही; मैं अपने भारतवर्ष के सब लोगों के साथ एक हूँ; वे सभी मेरे अपने हैं। उन सबके बीच चिरन्तन भारतवर्ष का गूढ़ आविर्भाव बराबर अपना कार्य कर रहा है, इस विषय में मेरे मन में ज़रा भी संशय नहीं है।"

गोरा की ये ज़ोरदार बातें मानो कमरे की दीवारों से, मेज़ से, सभी सामान से गूँज-गूँजकर आने लगीं।

ये सब बातें सुचरिता के खूब स्पष्ट समझने की नहीं थीं। किन्तु अनुभूति का पहला हल्का संचार बड़ा प्रबल होता है। जीवन किसी चारदीवारी या दल की सीमा में बँधा नहीं है, यह उपलब्धि सुचरिता के मन में कसकने लगी।

सहसा सीढ़ी के पास से लड़कियों की ऊँची हँसी के साथ पैरों की द्रुत चाप सुनाई दी। वरदासुन्दरी और लड़कियों को लेकर परेश बाबू लौट आए थे। सीढ़ियाँ चढ़ते समय सुधीर कुछ दंगा कर रहा था, यही उस हँसी का कारण था।

लावण्य, ललिता और सतीश कमरे में घुसते ही गोरा को देख संभल कर खड़े हो गए। लावण्य कमरे से बाहर चली गई, सतीश विनय की कुर्सी के पास खड़ा होकर उसके कानों में कुछ कहने लगा। ललिता एक कुर्सी सुचरिता के पीछे खींचकर उसकी ओट में अदृश्य-सी होकर बैठ गई।

परेश बाबू ने आकर कहा, "मुझे लौटने में बड़ी देर हो गई। पानू बाबू, जान पड़ता है, चले गए ?"

सुचरिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। विनय ने ही कहा, "हां, वह और नहीं रुक सके।"

गोरा ने उठकर कहा, "अब हम लोग भी चलें।" कहकर उसने नत होकर परेश बाबू को नमस्कार किया।

परेश बाबू ने कहा, "आज तुम लोगों से बात-चीत का मौक़ा ही नहीं मिला। बाबा, जब भी तुम्हें फ़ुरसत हो आते रहना !"

गोरा और विनय कमरे से निकल रहे थे कि वरदासुन्दरी आ गईं। दोनों ने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने कहा, "आप लोग अब जा रहे हैं क्या ?"

गोरा ने कहा, "हां।"

वरदासुन्दरी ने विनय से कहा, "लेकिन, विनय बाबू, आप अभी नहीं जा सकते--आपको भोजन करके ही जाना होगा। आपसे कुछ काम की बात करनी है।"

सतीश ने उछलकर विनय का हाथ पकड़ लिया और कहा, "हां, मां, विनय बाबू को जाने मत देना; वह आज मेरे पास रहेंगे।"

विनय कुछ सकुचा रहा है और उत्तर नहीं दे पा रहा है, यह देखकर वरदासुन्दरी ने गोरा से कहा, "विनय बाबू को क्या आप ले ही जाना चाहते है—उनकी क्या अभी ज़रूरत है ?"

गोरा ने कहा, "नहीं, बिलकुल नहीं। विनय, तुम रह जाओ न - मैं जाता हूँ।" कहता हुआ गोरा जल्दी उतर गया।

विनय के रुक जाने के बारे में जैसे ही वरदासुन्दरी ने गोरा से अनुमति मांगी, वैसे ही ललिता की ओर देखे बिना विनय न रह सका। ललिता ने दबे ओठों से मुस्कराकर मुंह फेर लिया।

ललिता के इस छोटे-से मुस्कराते व्यंग्य के साथ विनय झगड़ा नहीं कर सकता, पर यह उसे कांटे-सा चुभता है। विनय के कमरे में आकर बैठते ही ललिता ने कहा, "विनय बाबू, आज तो आपका भाग जाना ही ठीक रहता।"

विनय ने कहा, "क्यों ?"

"माँ ने आपको मुसीबत में डालने की सोची है। मजिस्ट्रेट के मेले में जो अभिनय होगा उसके लिए एक आदमी कम पड़ रहा है—माँ ने आप ही को तय किया है।"

विनय ने घबराकर कहा, "मारे गए! मुझसे तो यह काम नहीं होगा!"

ललिता ने हँसकर कहा, "यह तो मैंने माँ से पहले ही कह दिया है। इस अभिनय में आपके दोस्त कभी आपको भाग नहीं लेने देंगे।"

विनय ने चोट खाकर कहा, "दोस्त की बात छोड़िए। मैंने सात जन्म में कभी अभिनय नहीं किया—मुझे क्यों?"

ललिता ने कहा, "और हम लोग तो मानो जन्म-जन्मान्तर से अभिनय करती आ रही हैं न?"

इसी समय वरदासुन्दरी कमरे में आकर बैठ गईं। ललिता ने कहा, "माँ, तुम अभिनय के लिए विनय बाबू को यों ही कह रही हो? पहले उनके दोस्त को राजी कर सको तभी···"

विनय ने कातर होकर कहा, "दोस्त के राजी होने की बात नहीं है। अभिनय करने से ही तो नहीं हो जाता—मुझे तो आता ही नहीं।"

वरदासुन्दरी ने कहा, "उसकी फ़िक्र न करें—हम आपको सिखा-पढ़ाकर तैयार कर देंगी। छोटी-छोटी लड़कियाँ कर सकेंगी और आप नहीं कर सकेंगे?"

विनय के उद्धार का कोई उपाय नहीं रहा।

२१

गोरा अपनी स्वाभाविक तेज चाल छोड़कर अन्यमनस्क भाव से धीरे-धीरे घर की ओर चला। घर का सीधा रास्ता छोड़ उसने बहुत घूमकर गंगा के किनारे का रास्ता पकड़ा। उस समय कलकत्ता की गंगा और गंगा का किनारा वणिक्-सभ्यता की लाभ-लोलुप कुरूपता से जल-थल पर आक्रान्त नहीं हुआ था; किनारे पर रेल की पटरी और पानी पर पुल की बेड़ियाँ नहीं पड़ी थीं। उन दिनों जाड़ों की सन्ध्या में शहर के निःश्वासों की कालिख आकाश पर इतनी घनी नहीं छा जाती थी। सुदूर हिमालय की निर्जन चोटियों से नदी तब कलकत्ता की धूल-लिपटी व्यस्तता के बीच शान्ति की वार्ता लिये हुए ही आती थी।

प्रकृति को कभी गोरा के मन को आकृष्ट करने का मौका नहीं मिला था। उसका मन उसके अपने काम-काज के वेग से ही बराबर तरंगित रहता था. जो जल-थल-आकाश मुक्त भाव से उसके काम-काज का क्षेत्र बने हुए थे उन्हें मानो उसने लक्ष्य ही नहीं किया था।

लेकिन आज नदी के ऊपर का वही आकाश नक्षत्रों से अभिषिक्त अपने अन्धकार के द्वारा गोरा के हृदय को बार-बार निःशब्द भाव से छूने लगा। नदी निस्तरंग थी, कलकत्ता के घाटों पर कुछ नौकाओं में रोशनी जल रही थी और कुछ पर दीपहीन सन्नाटा था। दूसरी ओर के पेड़ों के झुरमुटों पर घनी कालिमा छाई थी। उनके ऊपर वृहस्पति अन्धकार के अन्तर्यामी-सा अपनी तिमिर-भेदी अपलक दृष्टि लिये चमक रहा था।

आज मानो इस विशाल निःस्तब्ध प्रकृति ने गोरा के तन-मन को अभिभूत कर दिया। आकाश का विराट् अन्धकार मानो गोरा के हृदय की गति पर ताल देने लगा। प्रकृति इतने दिनों से धीरज धरे स्थिर बैठी थी —आज गोरा के अन्तः-करण का कोई द्वार खुला पाकर उसने पल-भर में इस असावधान दुर्ग को विजित कर लिया। अब तक अपनी विद्या-बुद्धि, चिन्ता और कर्म के बीच गोरा बिलकुल स्वतन्त्र था — आज सहसा क्या हुआ. आज न जाने कहाँ उसने प्रकृति को स्वीकार किया और उसके स्वीकार करते ही इस गहरे काले जल. इस निविड़ काले तट, इस उदार काले आकाश ने उसे वरण कर लिया। आज न जाने कैसे गोरा प्रकृति को पकड़ाई दे गया।

रास्ते के किनारे पर व्यापारिक दफ्तर के बगीचे की किसी विलायती लता से किसी अपरिचित फूल की मृदु कोमल गन्ध गोरा के व्याकुल हृदय को सहलाने लगी। नदी ने उसे भीड़-भरे कर्म-क्षेत्र से किसी अनिर्दिष्ट सुदूर की ओर इशारा कर दिया जहाँ निर्जन जल के किनारे पेड़ों की मिली हुई डालों में न जाने कौन-से फूल खिलते हैं, कौन-सी छायाएँ फैलती हैं। वहाँ निर्मल नीलाकाश के नीचे दिन मानो किसी की आँखों की उन्मीलित दृष्टि है और रातें मानो किसी की झुकी हुई पलकों की लज्जा-जड़ित छाया। चारों ओर से माधुर्य की लहर ने आकर गोरा को जिस एक अतल, अनादि शक्ति के आकर्षण में समेट लिया, उसका कोई परिचय गोरा को इससे पहले नहीं था। वह एक साथ ही वेदना और आनन्द से उसके समूचे मन को एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की ओर ले जाने लगी। आज इस हेमन्ती रात में नदी के किनारे नगर के अव्यक्त कोलाहल और नक्षत्रों के अस्फुट आलोक में गोरा किसी विश्वव्यापिनी अवगुंठिता मायाविनी के सम्मुख आत्म-विस्मृत-सा खड़ा हुआ। इस महारानी को उसने इतने दिन सिर झुकाकर स्वीकार

नहीं किया, इसीलिए आज अकस्मात् उसके शासन के जादू ने गोरा को अपनी सहस्र-वर्ण डोर से जल, थल, आकाश के साथ चारों ओर से बाँध लिया। गोरा अपने ऊपर स्वयं विस्मित होता हुआ नदी के सूने घाट की एक सीढ़ी पर बैठ गया। वह बार-बार अपने-आपसे पूछने लगा कि उसके जीवन में यह किस चीज़ का आविर्भाव हो रहा है और इसका क्या प्रयोजन है ! जिस संकल्प के द्वारा उसने अपने जीवन को एक सिरे से दूसरे सिरे तक व्यवस्थित करके रखा था, उसके बीच इसका स्थान कहाँ है ? यह क्या उसके विरुद्ध है --इसे क्या संग्राम करके परास्त करना होगा ? यह सोचकर गोरा ने जैसे ही मुट्ठियाँ कसकर बाँधी, वैसे ही बुद्धि से उज्ज्वल, नम्रता से कोमल दो स्निग्ध आँखों की जिज्ञासु दृष्टि उसके मन के सामने आ गई --किसी अनिन्द्य सुन्दर हाथ की उँगलियों ने स्पर्श-सौभाग्य का अनास्वादित अमृत उसके ध्यान के सामने ला रखा—गोरा के सारे शरीर में पुलक की बिजली कौंध गई। अन्धकार के सूनेपन में यह प्रगाढ़ अनुभूति उसके सभी प्रश्नों को, उसकी द्विविधा को बिलकुल निरस्त कर गई। अपने पूरे देह-मन से वह इस नई अनुभूति का उपभोग करने लगा, इसे छोड़कर उठने की उसकी इच्छा नहीं हुई।

बहुत रात गये जब वह घर लौटा तब आनन्दमयी ने पूछा, "इतनी रात कर दी, बेटा ? खाना तो ठंडा हो गया है।"

गोरा ने कहा, "क्या जाने माँ, आज क्या सूझा, बहुत देर गंगा के घाट पर बैठा रहा।"

आनन्दमयी ने पूछा, "तो विनय साथ था ?"

गोरा ने कहा, "नहीं, मैं अकेला ही था।"

आनन्दमयी को मन-ही-मन कुछ अचम्भा हुआ। गोरा बिना प्रयोजन इतना रात तक गंगा के किनारे बैठकर सोचे, ऐसी घटना तो कभी नहीं हुई। चुपचाप बैठे रहना तो गोरा का स्वभाव ही नहीं है। गोरा जब अनमना-सा खाना खा रहा था तब आनन्दमयी ने लक्ष्य किया कि उसके चेहरे पर एक नये ढंग की बेचैनी बिखरी हुई है।

थोड़ी देर के बाद आनन्दमयी ने धीरे-से पूछा, "आज शायद विनय के घर गये थे ?"

गोरा ने कहा, "नहीं, आज हम दोनों ही परेश बाबू के यहाँ गये थे।"

यह सुनकर आनन्दमयी थोड़ी देर चुप बैठी सोचती रहीं। फिर उन्होंने पूछा, "उन सबके साथ तुम्हारा परिचय हो गया है ?"

गोरा ने कहा, "हाँ, हो गया।"

आनंदमयी—"उनकी लड़कियाँ सामने आती हैं ?"

"हाँ, उन्हें कोई बाधा नहीं है ।"

और किसी समय ऐसे उत्तर के साथ-साथ थोड़ी उत्तेजना भी प्रकट होती, आज उसके कोई लक्षण न देखकर आनंदमयी फिर चुपचाप सोचने लगीं।

अगले दिन सवेरे उठकर गोरा अन्य दिनों की भाँति फ़ौरन मुँह-हाथ धोकर दिन के कामों के लिए तैयार होने नहीं गया। अन्यमनस्क भाव से सोने के कमरे के पूरब की ओर का दरवाज़ा खोलकर कुछ देर खड़ा रहा। पूरब की ओर उनके घर की गली एक बड़ी सड़क में मिलती है, उस सड़क के पूरब की ओर एक स्कूल है, उस स्कूल से लगे हुए मैदान में एक पुराने जामुन के पेड़ के ऊपर हल्का कुहासा तैर रहा था और उसकी ओट में आसन्न सूर्योदय की अरुण रेखा धुंधली-सी दीख रही थी। गोरा के चुपचाप बहुत देर तक उधर देखते-देखते वह हल्का कुहासा विलीन हो गया और उजली धूप पेड़ की डालों के भीतर से बहुत-सी चमचमाती संगीनों की तरह पार हो गई और देखते-देखते कलकत्ता की सड़कें जनता से और कोलाहल से भर उठीं।

इसी समय गली के मोड़ पर अविनाश के साथ और कुछ-एक विद्यार्थियों को अपने घर की ओर आते देखकर गोरा ने अपने इस आवेश के जाल को ज़ोर से खींचकर तोड़ दिया। अपने मन को झटककर उनसे कहा, "नहीं, यह सब कुछ नहीं है, ऐसे नहीं चलेगा।" ऐसा कहते हुए वह तेज़ी से सोने के कमरे से निकल गया। गोरा के दल के लोग उसके घर पर आवें और उनसे बहुत पहले से गोरा तैयार न हो गया हो, ऐसी घटना इससे पहले कभी नहीं घटी। इस छोटी-सी चूक ने ही गोरा को बहुत गहरे में धिक्कारा। उसने मन-ही-मन ठीक किया कि वह फिर परेश बाबू के घर नहीं जायगा और ऐसी कोशिश करेगा कि विनय से भी कुछ दिन भेंट न हो और इन बातों की चर्चा बन्द रहे।

उस दिन नीचे जाकर सलाह करके यही तय पाया गया कि दल के दो-तीन आदमियों को साथ लेकर गोरा पैदल ग्रांड ट्रंक रोड की यात्रा करने निकलेगा, साथ में रुपया-पैसा कुछ नहीं लेगा, रास्ते पर गृहस्थों का आतिथ्य ग्रहण किया जायगा।

यह अद्भुत संकल्प बाँधकर गोरा सहसा कुछ अतिरिक्त मात्रा में उत्साहित हो उठा। सारे बंधन काटकर इस तरह खुली सड़क पर चल निकलने का एक प्रबल आनंद उस पर छा गया। उसे लगा कि भीतर-ही-भीतर उसका हृदय जिस जाल में फँस गया था, उससे निकलने की इस कल्पना से ही वह छिन्न हो गया है। यह सब भावावेश केवल माया है और कर्म ही सत्य है, वह बात बड़े जोर से अपने

मन में दुहरा और प्रतिध्वनित करके, यात्रा की तैयारी करने के लिए गोरा घर की निचली मंजिल के बैठने के कमरे से यों लगभग दौड़ता हुआ बाहर निकला जैसे स्कूल की छुट्टी होने पर लड़के निकलते हैं।

उस समय कृष्णदयाल गंगा-स्नान करके, लोटे में गंगा-जल लिये, नामावली ओढ़े, मन-ही-मन मन्त्र जपते-जपते घर लौट रहे थे। गोरा एकाएक उनसे टकरा गया। लज्जित होकर उसने जल्दी से उन्हें पैर छूकर प्रणाम किया, वह 'रहने दो, रहने दो' कहकर सकपकाये हुए-से भीतर चले गए। पूजा पर बैठने से पूर्व गोरा का संस्पर्श हो जाने से उनके गंगा-स्नान का फल तो धूल हो गया। कृष्णदयाल गोरा के संस्पर्श से ही विशेष रूप से बचने की चेष्टा करते हैं, यह गोरा ठीक-ठीक नहीं समझता था; वह यही सोचता था कि छुआछूत मानने के कारण सभी के सभी प्रकार के संसर्ग से बचने के लिए ही वह इतने सतर्क रहते हैं। आनन्दमयी को तो वह म्लेच्छ कहकर दूर रखते ही थे, महिम काम-काजी आदमी था और उससे तो भेंट होने का अवसर नहीं होता था। सारे परिवार में केवल महिम की लड़की शशिमुखी को अपनाकर वह उसे संस्कृत स्तोत्र रटाते थे और पूजा-अर्चना की विधि सिखाते थे।

गोरा द्वारा पाँव छुए जाने से व्यस्त होकर कृष्णदयाल के जल्दी से हट जाने पर गोरा का ध्यान उनके संकोच के कारण की ओर गया और वह मन-ही-मन हँसा। इसी तरह पिता से साथ गोरा का सम्बन्ध धीरे-धीरे प्रायः टूट गया था, और माँ के अनाचार की वह चाहे जितनी निंदा करे, इसी आचारद्रोहिणी माँ की ही वह अपने जीवन की सारी श्रद्धा के साथ पूजा करता था।

भोजन के बाद कुछ-एक कपड़ों की पोटली बाँधकर उसे विदेशी पर्यटकों की भाँति कन्धे पर डालकर माँ के निकट आ उपस्थित हुआ। बोला, "माँ, मैं कुछ दिन के लिए बाहर जाऊँगा।"

आनन्दमयी ने पूछा, "कहाँ जाओगे, बेटा ?"

गोरा ने कहा, "यह तो मैं ठीक नहीं बता सकता।"

आदन्दमयी ने पूछा, "कोई काम है ?"

गोरा ने कहा, "काम जिसे कहा जाता है वैसा तो कुछ नहीं यह बाहर जाना ही काम है।"

आनन्दमयी को चुप होते देखकर गोरा ने कहा, "माँ, मैं हाथ जोड़ता हूँ, मुझे मना मत करना। तुम तो मुझे जानती हो, मेरे संन्यासी हो जाने का तो कोई डर है नहीं। मैं माँ को छोड़कर अधिक दिन कहीं नहीं रह सकता।"

माँ के प्रति अपने प्यार की बात गोरा ने कभी अपने मुँह से इस तरह नहीं

कही थी, इसीलिए यह बात कहकर वह लज्जित हो गया।

पुलकित आनन्दमयी ने जल्दी से उसकी लज्जा को ओट देते हुए कहा, "तो विनय भी साथ जायगा ?"

गोरा ने हड़बड़ाकर कहा, "नहीं माँ, विनय नहीं जायगा ! यह लो, यह माँ ने सोचना शुरू किया कि कि विनय न गया तो सफ़र में उसके गोरा की देख-भाल कौन करेगा ! विनय को मेरा रखवाला समझती हो यह तुम्हारी बुरी आदत है—इस बार मेरे भले-चंगे लौट आने से ही तुम्हारा यह संस्कार दूर होगा।"

आनन्दमयी ने पूछा, "बीच-बीच में खबर तो मिलती रहेगी ही न ?"

गोरा ने कहा, "तुम यही समझ लो कि खबर नहीं मिलेगी—फिर भी अगर मिल जाय तो तुम्हें अच्छा ही लगेगा। डर की कोई बात नहीं है, तुम्हारे गोरा को कोई ले नहीं जायगा। तुम मुझे जितना मूल्यवान् समझती हो माँ, उतना और कोई नहीं समझता न ! या इस गठरी पर ही किसी को लाभ हो तो यह उसे दान देकर ही चला आऊँगा, इसको बचाने के लिए जान नहीं गँवाऊँगा —यह तो निश्चय है।"

गोरा ने आनन्दमयी की चरण-धूलि लेकर प्रणाम किया। उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरकर हाथ चूम लिया, किसी तरह का निषेध नहीं किया। अपने कष्ट की बात कहकर या किसी अनिष्ट की आशंका करके आनन्दमयी कभी किसी को नहीं रोकती थी। अपने जीवन में उन्होंने अनेक बाधाएँ और विपत्तियाँ सही थीं, बाहर की दुनिया उनके लिए अपरिचित न थी। भय उनके मन में था ही नही। यह आशंका उन्हे नही हुई कि गोरा पर कोई मुसीबत आ सकती है, किन्तु पिछले दिन से वह यही सोचकर चिन्तित थी कि गोरा के मन मे न जाने क्या उथल-पुथल हो रही है। आज सहसा यह सुनकर कि गोरा अकारण ही भ्रमण करने चला जा रहा है, उनकी चिन्ता और भी गहरी हो गई।

गठरी कन्धे पर उठाकर गोरा जैसे ही बाहर निकला वैसे ही विनय हाथों में गहरे लाल रंग के गुलाबों का जोड़ा बड़े यत्न से संभाले हुए सामने आ खड़ा हुआ। गोरा ने कहा, "विनय, तुम्हारा दर्शन असगुन है कि सगुन, इसकी पड़ताल अब हो जायगी।"

विनय ने पूछा, "कही जा रहे हो क्या ?"

गोरा ने कहा, "हाँ।"

विनय ने पूछा, "कहाँ ?"

गोरा ने कहा, "प्रतिध्वनि उत्तर देती है, कहाँ।"

विनय—"प्रतिध्वनि से अच्छा उत्तर नहीं है क्या ?"

गोरा—"नहीं। तुम माँ के पास जाओ, उनसे सब पता लग जायगा। मैं चल दिया।"

गोरा तेज़ी से चला गया, विनय ने भीतर आनन्दमयी को प्रणाम करके गुलाब के फूल उनके चरणों पर रख दिए।

आनन्दमयी ने फूल उठाते हुए पूछा, "ये कहाँ पाये, विनय ?"

विनय ने प्रश्न का ठीक सीधा उत्तर न देकर कहा, "अच्छी चीज़ मिलने पर पहले उसे माँ की पूजा में चढ़ाने का मन होता है।"

फिर आनन्दमयी के तख़्तपोश पर बैठते हुए विनय ने कहा, "लेकिन माँ, तुम कुछ अनमनी जान पड़ती हो।"

आनन्दमयी ने कहा, "क्यों भला ?"

"क्योंकि आज मुझे मेरा पान देने की बात भूल ही गईं।"

आनन्दमयी ने लज्जित होकर विनय को पान ला दिया।

फिर दोपहर-भर दोनों में बातचीत होती रही। गोरा के निरुद्देश्य भ्रमण के असली कारण के बारे में विनय कुछ ठीक न बतला सका।

आनन्दमयी ने बातों-बातों में पूछा, "कल शायद तुम गोरा को साथ लेकर परेश बाबू के घर गये थे ?"

विनय ने पिछले दिन की सारी बात ब्यौरेवार सुना दी, आनन्दमयी पूरा मन लगाकर सुनती रहीं।

जाते समय विनय ने कहा, "माँ, पूजा तो सांग हो गई, अब तुम्हारे चरणों की प्रसादी ये दो फूल सिर पर धारण करके ले जाऊँ ?"

आनन्दमयी ने हँसकर दोनों गुलाब विनय के हाथ में दे दिये और मन-ही-मन सोचा, इन गुलाबों को केवल सौन्दर्य के लिए इतना सम्मान मिल रहा हो सो बात नहीं है—ज़रूर ही इसमें वनस्पति तत्त्व से परे किसी गहरे तत्त्व की भी बात है। तीसरे पहर विनय के चले जाने पर वह बहुत-कुछ सोचती रहीं और भगवान् को पुकारकर बार-बार प्रार्थना करती रहीं कि गोरा को कोई दुःख न हो और विनय से उसके मन-मुटाव का कोई कारण न उपस्थित हो।

२२

गुलाब के फूल का थोड़ा-सा इतिहास था।

रात को गोरा तो परेश बाबू के घर मे चला आया, पर मजिस्ट्रेट के घर अभिनय में भाग लेने की बात को विनय को लेकर कष्ट भोगना पड़ा।

उस अभिनय के लिए ललिता के मन मे कोई उत्साह रहा हो, ऐसा नहीं था, बल्कि ऐसी सब बातें उसे बिलकुल नापसन्द थीं। लेकिन विनय को किसी तरह इस अभिनय के लिए पकड़वा देने के लिए मानो उसने जिद ठान ली थी। जो भी काम गोरा की राय के विरुद्ध हो, विनय से वही करवाना वह चाह रही थी। विनय गोरा का अनुवर्त्ती है, यह बात ललिता को क्यों इतनी असह्य हो उठी थी, यह वह स्वयं ही नही समझ पा रही थी, पर उसे ऐसा लग रहा था कि जैसे भी हो, सब बन्धन काटकर विनय को मुक्त कर पाने मे ही वह चैन से साँस ले सकेगी।

ललिता ने वेणी झुलाते हुए सिर हिलाकर कहा, "क्यों जनाब, अभिनय मे बुराई क्या है?"

विनय ने कहा, "अभिनय दोष चाहे न भी हो, किन्तु मजिस्ट्रेट के घर अभिनय करने जाना मेरे मन को नही रुचता।"

ललिता "आप अपने मन की बात कह रहे है या और किसी के?"

विनय "और किसी के मन की बात कहने का भार मुझ पर नहीं है, और कहना भी मुश्किल है। आप चाहे न मानिए, मैं हमेशा अपने मन की बात ही कहता हूँ कभी अपने शब्दों में, कभी शायद और किसी के।"

ललिता ने इस बात का कोई जवाब नही दिया, केवल तनिक-सी मुस्करा दी। लेकिन थोड़ी देर बाद बोली, "जान पड़ता है, आपके दोस्त गोरा बाबू समझते है कि मजिस्ट्रेट का निमन्त्रण न मानना ही बहुत बड़ी बहादुरी का काम है और इसी तरह अंग्रेज़ से लड़ाई लड़ी जायगी।"

विनय ने उत्तेजित होकर कहा, "मेरे दोस्त शायद ऐसा न भी समझते हो, लेकिन मैं समझता हूं। लड़ाई नही तो और क्या है? जो आदमी हमें तुच्छ समझता है---समझता है कि छिगुनी के इशारे से बुलाये जाकर ही हम कृतार्थ हो जायँगे, उसकी इस उपेक्षा के साथ उपेक्षा मे ही लड़ाई न करें तो आत्म-सम्मान कैसे रहेगा?"

ललिता स्वयं स्वभाव से अभिमानिनी है, विनय के मुँह से अभिमान की यह बात सुनकर उसे अच्छा ही लगा। लेकिन इसीसे अपनी दलील को दुर्बल समझकर ललिता और भी चिढ़कर बात-बात में विनय को कोंचने लगी।

अन्त में विनय ने कहा, "देखिए, आप बहस क्यों करती हैं---आप यही क्यों नही कहतीं कि 'मेरी इच्छा है कि आप अभिनय मे भाग लें?' उससे मुझे आपकी

बात रखने के लिए अपनी राय का बलिदान करने का ही सुख मिलेगा।"

ललिता ने कहा, "वाह, ऐसा मैं क्यों कहने चली ! सचमुच ही आपकी कोई राय हो तो उसे आप मेरे अनुरोध पर क्यों छोड़ने जायँगे ? लेकिन वह सचमुच आपकी राय तो हो।"

विनय ने कहा, "अच्छा, यही सही। मेरी सचमुच कोई राय न सही। आपका अनुरोध भी न सही, आपकी दलील से हारकर ही मैं अभिनय में योग देने को राज़ी हो गया सही।"

तभी वरदासुन्दरी के कमरे में प्रवेश करने पर विनय ने उठकर उनसे कहा, "अभिनय की तैयारी के लिए मुझे क्या करना होगा, बता दीजिएगा।"

वरदासुन्दरी ने गर्व से कहा, "उसकी आपको चिन्ता नहीं करनी होगी, हम आपको ठीक तैयार कर देंगी। सिर्फ़ अभ्यास के लिए आपको रोज़ नियम से आना होगा।"

विनय ने कहा, "अच्छी बात। तो आज चलूँ।"

वरदासुन्दरी बोलीं, "अभी कैसे, आपको खाना खाकर जाना है।"

विनय ने कहा, "आज रहने दीजिए।"

वरदासुन्दरी कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

विनय ने खाना वहीं खाया, लेकिन अन्य दिनों की-सी स्वाभाविक प्रफुल्लता उसमें न थी। सुचरिता भी न जाने कैसी अनमनी होकर चुप थी। जब ललिता से विनय का झगड़ा हो रहा था तब वह बरामदे में टहलती रही थी। रात को बात-चीत कुछ जमी नहीं।

चलते समय विनय ने ललिता का चेहरा गम्भीर देखकर कहा, "मैंने हार भी मान ली, तब भी आपको खुश न कर सका।"

ललिता आसानी से रोती नहीं, किन्तु आज न जाने क्या हुआ है कि उसकी आँखों से आँसू फूट पड़ना चाहते हैं। न जाने क्यों वह विनय बाबू को बार-बार ऐसे कोंच रही है और स्वयं कष्ट पा रही है।

जब तक विनय अभिनय में योग देने को राज़ी नहीं हो रहा था, तब तक ललिता को उसे मनाने की ज़िद चढ़ती जा रही थी। लेकिन विनय के राज़ी होते ही उसका सारा उत्साह चला गया। भाग न लेने के पक्ष में जितने तर्क थे उसके मन में प्रबल हो उठे। तब उसका मन दुखी होकर कहने लगा, 'केवल मेरा अनुरोध रखने के लिए विनय बाबू का ऐसे राज़ी होना ठीक नहीं हुआ। अनुरोध— क्यों रखेंगे अनुरोध ? वह समझते हैं, मेरा अनुरोध रखकर उन्होंने मुझ पर एहसान किया है—उनके इतने-से एहसान के लिए ही जैसे मैं मरी जा रही हूँ।'

लेकिन अब ऐसे कुढ़ने से क्या होगा ! सचमुच ही तो उसने विनय को अभिनय में शामिल करने के लिए इतना ज़ोर लगाया था। विनय ने शिष्टाचारवश ही उसकी यह ज़िद मान ली। इस पर गुस्सा करके भी क्या फ़ायदा ? इस बात से ललिता को अपने ऊपर इतनी घृणा और लज्जा होने लगी जो स्वभावतया तो इतने ही कारण से न होनी चाहिए थी। और दिन मन चंचल होने पर वह सुचरिता के पास जाती थी, आज नहीं गई; क्योंकि वह स्वयं नहीं समझ सकी कि क्यों उसकी छाती भेदकर उसकी आँखों से आँसू फूटे पड़ रहे थे।

अगले दिन सवेरे ही सुधीर ने लावण्य को एक गुलदस्ता लाकर दिया था। उस गुलदस्ते में एक डण्ठल पर दो अधखिले गुलाब थे। ललिता ने उन्हें गुलदस्ते से निकाल लिया। लावण्य ने पूछा, "यह क्या कर रही है ?"

ललिता ने कहा, "गुलदस्ते के इतने सब रद्दी फूल-पत्तों के बीच अच्छे फूल बंधे देखकर मुझे तकलीफ़ होती है। वैसे सब चीज़ों को रस्सी से ज़बरदस्ती एक साथ बाँध देना जंगलीपन है।"

यह कहकर ललिता ने सब फूल खोल दिए और उन्हें अलग-अलग करके कमरे में जहाँ-तहाँ सजा दिया ! केवल दोनों गुलाब उठा ले गई। सतीश ने दौड़ते हुए आकर पूछा, "दीदी, फूल कहाँ से मिले ?"

ललिता ने उसकी बात का उत्तर न देकर कहा, "आज अपने दोस्त के घर नहीं जायगा ?

तब तक सतीश विनय की बात नहीं सोच रहा था, लेकिन अब उसका उल्लेख होते ही उछलकर बोला, "जाऊँगा।" कहते-कहते वह फौरन जाने के लिए उतावला हो उठा।

ललिता ने उसे पकड़कर पूछा, "वहाँ जाकर तू क्या करता है ?"

सतीश ने संक्षेप में कहा, "बातें करता हूँ।"

ललिता ने पूछा, "वह तुझे इतनी तस्वीरें देते हैं, तू उन्हें कुछ क्यों नहीं देता ?"

विनय सतीश के लिए अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं से तरह-तरह की तस्वीरे काट-कर रखता था। सतीश ने एक कापी बनाकर उसमें यह तस्वीरें चिपकाकर रखना शुरू कर दिया था। इस तरह कापी भर देने का उसे ऐसा नशा चढ़ गया था कि कोई अच्छी पुस्तक देने पर उसमें से तस्वीरें काट लेने को उसका मन छटपटा उठता था। इसी लालच के कारण उसे कई बार अपनी दीदी से फटकार खानी पड़ चुकी है।

दुनिया में प्रतिदान का भी एक उत्तरदायित्व होता है, आज यह बात सहसा

सामने आने पर सतीश बहुत चिन्तित हो गया। अपने टूटे टीन के डिब्बे में उसने जो कुछ निजी सम्पत्ति जुटा रखी है उसमें से किसी पर से भी वह अपनी आसक्ति के बन्धन को आसानी से न काट सकेगा। सतीश का उद्विग्न चेहरा देखकर ललिता ने हँसकर उसके गाल में चुटकी काटते हुए कहा, "बस, रहने दे, इतना सोचने की जरूरत नहीं है। चल, ये दो गुलाब के फूल ही उन्हें दे आना।"

समस्या का हल इतनी जल्दी होता देखकर वह खिल उठा और फूल लेकर तत्काल अपने दोस्त का ऋण-शोध करने चल पड़ा।

राह में ही विनय से उसकी भेंट हो गई। दूर से ही, "विनय बाबू, विनय बाबू" पुकारता हुआ वह विनय के पास पहुँचा और कुर्ते की ओट में फूल छिपाये हुए बोला, "बताइये, आपके लिए मैं क्या लाया हूँ ?"

विनय से हार मनवाकर उसने गुलाब निकाले। विनय ने कहा, "वाह, कितने सुन्दर ! लेकिन, सतीश बाबू, यह आपकी अपनी चीज़ तो नहीं है। चोरी का माल लेकर अन्त में कहीं पुलिस के हाथ तो न पड़ना होगा ?"

इन दो गुलाबों को ठीक अपनी चीज कहा जा सकता है या नहीं, इस बारे में सतीश थोड़ी देर दुविधा में रहा। फिर कुछ सोचकर बोला, "नहीं, वाह ! ललिता दीदी ने तो मुझे दिये हैं आपको देने के लिए !"

यह बात यहीं समाप्त हो गई और तीसरे पहर उनके घर आने का आश्वासन देकर विनय ने सतीश को विदा कर दिया।

कल रात की ललिता की बातों से चोट खाकर विनय उसकी व्यथा भूल नहीं सका था। विनय के साथ कभी किसी का झगड़ा नहीं होता, इसीलिए ऐसी तीखी चोट की आशा वह किसी से नहीं करता। अब तक वह ललिता को सुचरिता की अनुवर्तिनी के रूप में ही देखता आया था। लेकिन कुछ दिन से ललिता के सम्बन्ध में उसकी अवस्था वैसी ही हो रही थी जैसी उस हाथी की जो बराबर अंकुश की मार खाते रहने से महावत को भूलने का मौका ही नहीं पाता। कैसे ललिता को थोड़ा-सा प्रसन्न करके शान्ति पाई जा सकती है, यही मानो विनय की मुख्य चिन्ता हो गई थी। सन्ध्या समय घर लौटकर ललिता की तीखी व्यंग्य-भरी बातें एक-एक करके उसके मन में गूंज जाती थीं और उसकी नींद को भगा देती थीं। 'मैं गोरा की छाया-भर हूँ, मेरा अपना कुछ नहीं है।' यह कहकर ललिता मेरी अवज्ञा करती है, लेकिन यह बात बिलकुल झूठ है। इसके विरुद्ध वह मन-ही-मन अनेक युक्तियाँ जुटा लेता; लेकिन फिर भी वे सब उसके किसी काम न आतीं, क्योंकि ललिता ने कभी ऐसा स्पष्ट अभियोग तो उस पर लगाया नहीं—इस बारे

में बहस करने का तो मौका ही उसे कभी नहीं मिला। जवाब मे कहने के लिए इतनी बातें उसके पास थीं कि उनका व्यवहार न कर सकने का उसका क्षोभ बढ़ता जाता था। अन्त में कल रात को जब हार मानकर उसने ललिता का चेहरा प्रसन्न न देखा तब घर आकर वह बहुत बेचैन हो गया। मन-ही-मन वह पूछने लगा, 'सचमुच क्या मैं इतनी अवज्ञा का पात्र हूँ ?'

इसीलिए जब उसने सतीश से सुना कि ललिता ने सतीश के हाथ उसके लिए दो गुलाब के फूल भेजे हैं तब उसे बड़ा उल्लास हुआ। उसने सोचा, 'अभिनय में भाग लेने के लिए राज़ी हो जाने पर ललिता ने सन्धि की सूचना के रूप में ही उसे ये दो गुलाब भेजे है।' पहले उसने सोचा, 'फूल घर रख आऊँ।' फिर उसका मन हुआ, 'नहीं, शान्ति के इन फूलों को माँ के पैरों पर चढ़ा कर पवित्र कर लाऊँ।'

उस दिन तीसरे पहर विनय जब परेश बाबू के घर पहुँचा तब सतीश ललिता के पास बैठकर अपनी स्कूल की पढ़ाई दोहरा रहा था। विनय ने ललिता से कहा, "लाल रंग तो लड़ाई का होता है, इसलिए सन्धि के फूल सफ़ेद होने चाहिएँ।"

बात न समझकर ललिता ने विनय के चेहरे की ओर देखा। तब विनय ने चादर की ओट से सफ़ेद कनेर का एक गुच्छा निकालकर ललिता के सामने रखते हुए कहा, "आपके दोनों फूल जितने भी सुन्दर रहे हों उनमें क्रोध के रंग की झलक थी ही, मेरे ये फूल सुन्दरता में उनके पास नही फटकते, लेकिन शान्ति के शुभ्र रंग में नम्रतापूर्वक आपके सामने हाज़िर हैं।"

ललिता ने कानों तक लाल होते हुए कहा, "मेरे फूल आप किसे कहते है ?"

विनय ने कुछ अप्रतिभ होते हुए, "तब तो मैं ग़लत समझा। सतीश बाबू, आपने किसके फूल किसको दे दिए ?"

सतीश ने ज़ोर से कहा, "वाह, ललिता दीदी ने तो देने को कहा था।"

विनय— "किसे देने को कहा था ?"

सतीश— "आपको।"

ललिता ने और भी लाल होकर उठते हुए सतीश की पीठ पर थप्पड़ मारते हुए कहा, "तेरे-जैसा बुद्धू भी कभी नही देखा, विनय बाबू की तसवीरों के बदले उन्हें फूल देना तू नहीं चाहता था ?"

सतीश ने हतबुद्धि होकर कहा, "हाँ, तो ! लेकिन तुम्हींने मुझ देने को नहीं कहा क्या ?"

सतीश के साथ तकरार करने जाकर ललिता और भी उलझन में पड़ गई

थी। विनय ने समझ लिया कि फूल ललिता ने ही भेजे थे, लेकिन वह गुमनाम ही रहना चाहती थी। उसने कहा, "खैर, आपके फूलों का दावा तो मैं छोड़ ही देता हूँ। लेकिन फिर भी मेरे इन फूलों के बारे में कोई भूल नहीं है। हमारे विवाद के निबटारे के शुभ उपलक्ष्य में ये कुछ फूल..."

ललिता ने सिर हिलाकर कहा, "हमारा विवाद ही कौन-सा है, और उसका निबटारा भी कैसा?"

विनय ने कहा, "तो शुरू से आखिर तक सब माया है? विवाद भी झूठ, फूल भी झूठ, निबटारा भी झूठ! सीपी देखकर चाँदी का भ्रम हुआ हो, यह नहीं; सीपी ही भ्रम था! तब वह जो मजिस्ट्रेट साहब के यहाँ अभिनय करने की एक बात सुनी थी, वह भी क्या...?"

ललिता ने कहा, "जी नहीं, वह झूठ नहीं है। लेकिन उसे लेकर झगड़ा कैसा? आप क्यों सोचते हैं कि आपको उसके लिए राज़ी करने के लिए मैं कोई लड़ाई छेड़ रही थी, या कि आपके राज़ी होने से मैं कृतार्थ हुई? अभिनय करना अगर आपको ग़लत मालूम होता है, तो किसी की भी बात मानकर आप क्यों राज़ी हों?"

बात कहती हुई ललिता कमरे से चली गई। सभी कुछ उलटा ही घटित हुआ। ललिता ने तय कर रखा था, आज वह विनय के आगे अपनी भूल स्वीकार करेगी और उससे यही अनुरोध करेगी कि वह अभिनय में भाग न ले, लेकिन बात जिस ढंग से उठी और जो उसकी परिणति हुई, उसका नतीजा ठीक उलटा हुआ। विनय ने समझा कि उसने जो इतने दिन तक अभिनय के बारे में विरोध प्रकट किया था उसी का गुस्सा अभी तक ललिता के मन में रह गया है। उसने केवल ऊपर से हार मान ली है, किन्तु मन में उसका विरोध बना हुआ है, इसी बात को लेकर ललिता का क्षोभ दूर नहीं हो रहा है। इस सारे मामले से ललिता को इतनी चोट पहुँची है, यह सोचकर विनय दुखी हो उठा। मन-ही-मन उसने निश्चय किया कि इस बात को लेकर वह हँसी में भी कोई चर्चा नहीं करेगा और ऐसी निष्ठा और निपुणता से यह काम सम्पन्न करेगा कि कोई उस पर काम के प्रति उदासीनता का अभियोग न लगा सके।

सुचरिता सवेरे से ही अपने सोने के कमरे में अकेली बैठकर 'ख्रीस्ट का अनुकरण' नाम का अंग्रेज़ी धर्म-ग्रन्थ पढ़ने की चेष्टा कर रही थी। आज उसने अपने दूसरे नियमित कामों में भी योग नहीं दिया। बीच-बीच में किताब से मन उचट जाने से किताब के अक्षर उसके सामने धुँधले पड़ जाते थे। अगले ही क्षण वह अपने ऊपर क्रुद्ध होकर और भी ज़ोर से अपने चित्त को पुस्तक में लगाने

लगती थी, किसी तरह हार मानना नहीं चाहती थी।

एकाएक दूर से स्वर सुनकर उसे लगा, विनय बाबू आये हैं। चौंककर उसने पुस्तक रख दी, और उसका मन बाहर के कमरे में जाने के लिए छटपटा उठा। फिर अपनी इस आकुलता पर भी क्रुद्ध होकर सुचरिता ने कुर्सी पर बैठकर किताब उठा ली। कहीं फिर कोई आवाज़ न सुनाई दे, इसलिए अपने दोनों कान बन्द करके वह पढ़ने का यत्न करने लगी।

इसी समय ललिता कमरे में आई। सुचरिता उसके चेहरे की ओर देखकर बोली, "तुझे क्या हुआ है, री ?"

ललिता ने बड़े ज़ोर से सिर हिलाकर कहा, "कुछ नहीं।"

सुचरिता ने पूछा, "कहाँ थी ?"

ललिता ने कहा, "विनय बाबू आए हैं। वह शायद तुमसे बात करना चाहते हैं।"

विनय बाबू के साथ और भी कोई आया है या नहीं, यह प्रश्न सुचरिता आज किसी तरह नहीं पूछ सकी। और कोई आया होता तो निश्चय ही ललिता उसका भी उल्लेख करती, किन्तु फिर भी मन निःसंशय न हो सका। और अपने को दमन करने की चेष्टा न करके घर आए अतिथि के प्रति कर्तव्य का ध्यान करके वह बाहर के कमरे की तरफ चली। ललिता से उसने पूछा "तू नहीं जायगी ?"

ललिता ने कुछ अधीर होकर कहा, "तुम जाओ न, मैं पीछे आऊँगी।"

सुचरिता ने बाहर के कमरे में जाकर देखा, विनय सतीश से बात कर रहा था।

सुचरिता ने कहा, "बाबा बाहर गये है, अभी आ जायेंगे। माँ आपके उस अभिनय की कविता याद कराने के लिए लावण्य और लीला को लेकर मास्टर साहब के घर गई है—ललिता किसी तरह नहीं गई। माँ कह गई हैं, आप आएँ तो आपको बिठा रक्खा जाय—आपकी आज परीक्षा होगी।"

विनय ने पूछा, "आप इसमें नहीं हैं ?"

सुचरिता ने कहा, "सभी अभिनेता हो जायें तो दुनिया में दर्शक कौन होगा ?"

वरदासुन्दरी सुचरिता को इन सब मामलों में यथासम्भव अलग ही रखती थीं। इसीलिए उसे अपने गुण दिखाने के लिए इस बार भी नहीं बुलाया गया था।

और दिनों इन दोनों व्यक्तियों के एकत्र होने पर बातों का अभाव नहीं

होता था। आज दोनों ओर ही ऐसा विघ्न हुआ था कि बातचीत किसी तरह जमी ही नहीं। सुचरिता गोरा की चर्चा न उठाने का प्रण करके आई थी। और विनय भी पहले की भाँति सहज भाव से गोरा की बात नहीं कर सका। उसे ललिता और शायद घर के सभी लोग गोरा का एक क्षुद्र उपग्रह-भर समझते हैं, यह सोचकर गोरा की चर्चा उठाने में उसे झिझक हो रही थी।

कई बार ऐसा हुआ है कि पहले विनय आया है और उसके बाद ही गोरा भी आ गया है; आज भी ऐसा हो सकता है, यह सोचकर सुचरिता मानो कुछ परेशान-सी थी। गोरा कहीं आ न जाय, इसे लेकर उसे एक भय था, और वह कहीं न आया, इस आशंका से उसे कष्ट हो रहा था।

विनय के साथ दो-चार उखड़ी-उखड़ी बातें करके सुचरिता और उपाय न देखकर सतीश की तस्वीरों वाली कापी लेकर सतीश के साथ उसी के बारे में बातचीत करने लगी। बीच-बीच में तस्वीरें सजाने के ढंग की बुराई करके उसने सतीश को चिढ़ा दिया। सतीश बहुत बिगड़कर ऊँचे स्वर से बहस करने लगा और विनय मेज़ पर पड़े हुए अपने प्रत्याख्यात कनेर के गुच्छे की ओर देखता हुआ लज्जा और क्षोभ से भरा मन-ही-मन सोचने लगा कि और नहीं तो निरे शिष्टाचार के लिए ही ललिता को उसके फूल स्वीकार कर लेना उचित था।

सहसा पैरों की चाप से चौंककर सुचरिता ने मुड़कर देखा, हारान बाबू कमरे में प्रवेश कर रहे थे। उसका चौंकना इतना स्पष्ट दीख गया था, इससे सुचरिता का चेहरा लाल हो उठा था। हारान बाबू कुर्सी पर बैठते हुए बोले, "कहिये, आपके गौर बाबू नहीं आए ?"

हारान बाबू के इस ढंग के गैर-ज़रूरी प्रश्न से विरक्त होकर विनय ने कहा, "क्यों, उनसे कुछ काम है क्या ?"

हारान बाबू ने कहा, "आप हों और वह न हों, ऐसा तो कम ही देखा जाता है, इसीलिए पूछा।"

विनय को मन-ही-मन बड़ा गुस्सा आया। कहीं वह प्रकट न हो जाय, इसलिए उसने संक्षेप से कहा, "वह कलकत्ता में नहीं हैं।"

हारान—"प्रचार करने गये हैं शायद ?"

विनय का क्रोध और बढ़ गया। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। सुचरिता भी कुछ कहे बिना उठकर चली गई। हारान बाबू तेजी से उठकर सुचरिता के पीछे चले, लेकिन उस तक पहुँच नहीं सके। उन्होंने दूर से ही पुकारा, "सुचरिता, एक एक बात कहनी है।"

सुचरिता ने कहा, "मेरी तबियत ठीक नहीं है। और साथ-ही-साथ उसके

कमरे का किवाड़ बन्द हो गया।

इसी समय वरदासुन्दरी आकर अभिनय में विनय का भाग उसे समझाने के लिए उसे दूसरे कमरे में बुला ले गई। थोड़ी देर बाद ही लौटकर उसने देखा कि फूल अकस्मात् मेज़ पर से गायब हो गए हैं। उस रात ललिता भी वरदासुन्दरी के अभिनय के मैदान में नहीं दिखाई दी, और सुचरिता भी अपनी पुस्तक, 'ख्रीस्ट का अनुकरण' गोद में रखे-रखे, रोशनी को एक कोने में ओट देखकर बहुत रात गये तक द्वार के बाहर अन्धकार की ओर देखती बैठी रही। उसने मानो मरीचिका-सा एक अपरिचित अपूर्व देश देखा था, जीवन के अब तक के सारे अनुभव से वह देश कहीं बिलकुल अलग था और इसीलिए उसके वातायनों में जो दिये जलते थे, वे अँधेरी रात में टिमटिमाते नक्षत्रों की तरह एक रहस्यभरी दूरी से मन को भीन कर रहे थे। उसका मन कह रहा था, 'मेरा जीवन कितना तुच्छ है—अब तक जिसे निश्चित समझती रही, वह सब सन्दिग्ध हो गया है और जो प्रतिदिन करती रही वह अर्थहीन—वहीं शायद सब ज्ञान सम्पूर्ण होगा, कर्म महान् हो उठेगा और जीवन सार्थकता पा सकेगा—उस अपूर्व अपरिचित, भयंकर देश के अज्ञात सिंहद्वार के सामने मुझे कौन ले आया? क्यों मेरा हृदय ऐसे काँप रहा है, क्यों आगे बढ़ना चाहने पर मेरे पैर ऐसे लड़खड़ा जाते हैं?'

२३

अभिनय के अभ्यास के लिए विनय रोज़ आने लगा। सुचरिता एक बार उसकी ओर देख लेती, फिर अपने हाथ की पुस्तक की ओर मन देती या अपने कमरे की ओर चली जाती। विनय के अकेले आने की असम्पूर्णता प्रतिदिन उसके मन को चोट पहुँचाती, किन्तु वह कभी कोई प्रश्न न पूछती। किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते, सुचरिता के मन में गोरा के विरुद्ध एक अभियोग का-सा भाव बढ़ता जाता। मानो उस दिन उनकी जो बात हुई थी, उसमें कुछ ऐसा भाव रहा था कि गोरा फिर आने के लिए प्रतिश्रुत है।

अन्त में जब सुचरिता ने सुना कि गोरा बिलकुल बिना कारण ही कुछ दिन के लिए कहीं घूमने चला गया है और उसका कुछ पता-ठिकाना नहीं है, तब उसने बात को एक मामूली खबर की तरह उड़ा देना चाहा, किन्तु वह उसके मन में कसकती ही रही। काम करते-करते सहसा यह बात उसे याद आ जाती—कभी अन-

मनी बैठी-बैठी वह चौंककर जान लेती कि वह मन-ही-मन यही बात सोच रही थी।

गोरा के साथ उस दिन उसकी बातचीत के बाद वह अचानक ऐसे लापता हो जायगा, सुचरिता ने ऐसी आशा बिलकुल नहीं की थी। गोरा के मत से अपने संस्कारों के इतना अधिक भिन्न होने पर भी उस दिन उसके भीतर विद्रोह की प्रवृत्ति ज़रा भी नहीं रही थी। गोरा के मत-विश्वासों को उसने ठीक-ठीक भले ही न समझा हो, किन्तु व्यक्ति गोरा को वह मानो समझ सकी थी। गोरा के मत चाहे जो रहे हों, उनसे वह व्यक्ति क्षुद्र नहीं हो गया है, अवज्ञा के योग्य नहीं हो गया है बल्कि उनसे उसके चित्त की शक्ति प्रत्यक्ष हुई है —यह उसने प्रबल भाव से अनुभव किया था। वे सब बातें और किसी के मुंह से वह न सह सकती, क्रुद्ध होती, उस व्यक्ति को मूर्ख समझती, उसे डाँट-डपटकर सुधारने के लिए उत्तेजित हो उठती, लेकिन गोरा के सम्बन्ध में उस दिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। गोरा की बातों ने उसके चरित्र के, उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता के, उसके असन्दिग्ध विश्वासों की दृढ़ता के, और उसके मेघ-मन्द्र मर्मभेदी स्वर की प्रबलता के साथ-साथ मिलकर एक सजीव और सत्य आकार धारण कर लिया था। ये सब मत और विश्वास सुचरिता स्वयं न भी अपना सके, किन्तु और कोई उन्हें इस प्रकार पूरी बुद्धि से, पूरी श्रद्धा से, सम्पूर्ण जीवन अर्पित करके ग्रहण करे तो उसे धिक्कारने की कोई बात नहीं है, बल्कि विरोधी संस्कारों का अतिक्रमण करके उस पर श्रद्धा भी की जा सकती है, यह भाव उस दिन सुचरिता के मन पर पूरी तरह छा गया था। सुचरिता के लिए मन की ऐसी अवस्था बिलकुल नई थी। मतभेद के विषय में वह अत्यन्त असहिष्णु थी। परेश बाबू के एक प्रकार निर्लिप्त, समाहित, शान्त जीवन का उदाहरण सामने रहने पर भी, सुचरिता क्योंकि बचपन से ही साम्प्रदायिकता से घिरी रही थी, इसलिए मत-सिद्धान्त को वह अत्यन्त एकान्त रूप से ग्रहण करती थी। उसी दिन पहले-पहल व्यक्ति को और मत को मिला हुआ देखकर उसने मानो एक सजीव समग्र पदार्थ की रहस्यमय सत्ता का अनुभव किया। मानव-समाज को केवल मेरा पक्ष और दूसरा पक्ष नामक दो सफेद और काले भागों में बिलकुल अलग-अलग बाँटकर देखने की भेद-दृष्टि वह उसी दिन पहले-पहल भूल सकी थी और भिन्न मत के मनुष्य को भी पहले मनुष्य मानकर ऐसे ढंग से देख सकी थी कि मत की भिन्नता गौण हो गई थी।

उस दिन सुचरिता ने अनुभव किया कि उसके साथ बातचीत करने में गोरा को एक आनन्द का बोध होता है। यह क्या केवल अपनी राय जाहिर करने का ही आनन्द था? उस आनन्द देने में सुचरिता का क्या कोई योग नहीं था? शायद

नहीं था। शायद गोरा के निकट किसी व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है, वह अपने मत और उद्देश्य लेकर ही सभी से दूर हो गया है --मनुष्य उसके लिए केवल मत के प्रयोग करने के उपलक्ष्य हैं।

सुचरिता कुछ दिनों से उपासना में विशेष रूप से मन लगाने लगी थी। वह मानो पहले से भी अधिक परेश बाबू का सहारा चाहने लगी थी। एक दिन परेश बाबू अपने कमरे में अकेले बैठे पढ़ रहे थे कि सुचरिता भी चुपचाप आकर उनके पास बैठ गई।

परेश बाबू ने किताब मेज़ पर रखते हुए पूछा, "क्यों, राधे ?"

सुचरिता ने कहा, "कुछ नहीं।"

उत्तर देकर मेज़ पर पड़े हुए कागज़ और किताबें, जो कि पहले से ही संभाल और सजाकर रखे हुए थे, इधर-उधर करके फिर से सँवाकर रखने लगी। थोड़ी देर बाद बोली, "बाबा, पहले तुम मुझे जैसे पढ़ाते थे, अब क्यों नहीं पढ़ाते ?"

परेश बाबू ने स्नेहपूर्वक तनिक मुस्कराकर कहा, "मेरी छात्रा तो मेरे स्कूल से पास होकर चली गई है। अब तो तुम खुद पढ़कर समझ सकती हो।"

सुचरिता ने कहा, "नहीं, मैं कुछ नहीं समझ सकती, मैं पहले की तरह तुमसे पढ़ूँगी।"

परेश बाबू ने कहा, "अच्छा ठीक है, कल से पढ़ाऊँगा।"

सुचरिता फिर थोड़ी देर चुप रहकर सहसा बोल उठी, "उस दिन विनय बाबू ने जाति-भेद की बहुत-सी बातें कीं---तुमने मुझे उसके बारे में कभी कुछ क्यों नहीं समझाया ?"

परेश बाबू ने कहा, "बेटी, तुम तो जानती हो तुम्हारे साथ मैंने बराबर ऐसा व्यवहार रखा है कि तुम अपने-आप सोचने-समझने की कोशिश करोगी, मेरी या और किसी की भी बात केवल अभ्यस्त होने के कारण नहीं मानोगी। कोई सवाल ठीक से मन में उठने से पहले ही कोई उपदेश देना और भूख लगने से पहले ही खाना परोस देना एक ही बात है, उससे केवल अरुचि और अपच होता है। तुम जब भी मुझसे प्रश्न पूछोगी, मैं अपनी समझ से उसका उत्तर दूँगा।"

सुचरिता ने कहा, "मैं प्रश्न ही पूछ रही हूँ, हम लोग जाति-भेद को बुरा क्यों कहते हैं ?"

परेश बाबू ने कहा, "एक बिल्ली को थाली के पास बिठाकर खाने से दोष नहीं होता, लेकिन एक मनुष्य के उस कमरे में आने से भी खाना फेंक देना होता है, जिस जाति-भेद से मनुष्य के प्रति मनुष्य में ऐसा अपमान और घृणा का भाव पैदा हो उसे अधर्म न कहा जाय तो क्या कहा जाय ? जो लोग मनुष्य की ऐसी

भयानक अवज्ञा कर सकते हैं वे कभी दुनिया में बड़े नहीं हो सकते, दूसरों की अवज्ञा उन्हें भी सहनी होगी।"

सुचरिता ने गोरा के मुंह से सुनी हुई बात का अनुसरण करते हुए कहा, "आजकल के समाज में जो विकृतियाँ आ गई हैं उनमें अनेक दोष हो सकते हैं, वे दोष तो समाज की सभी चीजों में आ गए हैं—इसीलिए क्या असल चीज़ को भी दोषी ठहराया जा सकता है ?"

परेश बाबू ने अपने स्वाभाविक शान्त स्वर में कहा, "असल चीज कहाँ है, यह जानता तो बता सकता। मैं आंखों से देख सकता हूँ कि हमारे देश में मनुष्य मनुष्य से असह्य घृणा करता है और उससे हम सब विच्छिन्न हुए जा रहे हैं, ऐसी हालत में एक काल्पनिक असल चीज़ की बात सोचकर मन को दिलासा देने का क्या मतलब होता है ?"

सुचरिता ने फिर गोरा की बात को प्रतिध्वनित करते हुए कहा, "लेकिन सभी को सम-दृष्टि से देखना तो हमारे देश का चरम तत्त्व रहा है ?"

परेश बाबू बोले, "सम-दृष्टि से देखना तो ज्ञान की बात है, हृदय की बात नहीं। सम-दृष्टि में प्रेम भी नहीं है, घृणा भी नहीं है—सम-दृष्टि तो राग-द्वेष से परे है। मनुष्य का हृदय ऐसी हृदय-धर्म-विहीन जगह बराबर नहीं टिक सकता। इसीलिए हमारे देश में ऐसे साम्य-तत्त्व रहते भी नीच जाति को देवालय तक मे घुसने नही दिया जाता। जब देवता के घर में भी हमारे देश मे समता नहीं है, तब दर्शन-शास्त्र में उस तत्त्व के रहने, न रहने से क्या !"

सुचरिता बहुत देर तक चुप बैठी मन-ही-मन परेश बाबू की बात समझने का प्रयत्न करती रही। अन्त में बोली, "अच्छा, बाबा, तुम विनय बाबू वगैरह को यह सब बातें समझाने की कोशिश क्यों नहीं करते ?"

परेश बाबू कुछ हँसकर बोले, "विनय बाबू वगैरह बुद्धि कम होने के कारण यह सब बातें न समझते हों ऐसा नही है, बल्कि उनकी बुद्धि ज्यादा है, इसीलिए वे समझना नहीं चाहते, केवल समझाना चाहते है। वे लोग जब धर्म की ओर से, अर्थात् सबसे बड़े सत्य की ओर से ये सब बातें सच्चे दिल से समझना चाहेंगे तब उन्हें तुम्हारे बाबा की बुद्धि के लिए अपेक्षा किये बैठे रहना नहीं पड़ेगा। अभी वे एक दूसरी ओर से देख रहे है, अभी मेरी बात उनके किसी काम न आयगी।"

गोरा की बात यद्यपि सुचरिता ने श्रद्धा के साथ ही सुनी थी, फिर भी वह उसके संस्कारों के विरुद्ध जाती थी, इसलिए उसे कष्ट होता था और शान्ति नही मिलती थी। आज परेश बाबू से बात करके उसे उस विरोध से थोड़ी देर के लिए मुक्ति मिली। गोरा, विनय या और कोई भी किसी विषय को परेश बाबू से

अधिक अच्छी तरह समझ सकता है, यह बात सुचरिता किसी तरह मन में नहीं आने देना चाहती। परेश बाबू से जिनका मत-भेद हुआ है, सुचरिता उन पर क्रोध किये बिना नहीं रह सकी है। इधर गोरा से परिचय होने के बाद वह गोरा की बात को क्रोध अथवा अवज्ञा करके उड़ा नहीं पा रही थी, इसीलिए सुचरिता को क्लेश हो रहा था। इसी कारण फिर शिशुकाल की तरह परेश बाबू की छाया के नीचे निर्भय आश्रय आने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो उठा था। कुर्सी से उठकर दरवाज़े तक जाकर सुचरिता ने फिर लौटकर परेश बाबू के पीछे खड़े हो उनकी कुर्सी की पीठ पर हाथ रखकर कहा, "बाबा, आज शाम को आपकी उपासना के मैं भी साथ बैठूंगी।"

परेश बाबू ने कहा, "अच्छा।"

इसके बाद अपने कमरे में जाकर सुचरिता किवाड़ बन्द करके बैठकर गोरा की बात को बिलकुल व्यर्थ करने का प्रयत्न करने लगी। लेकिन गोरा का बुद्धि और विश्वास से उद्दीप्त चेहरा ही उसकी आँखों के सामने आता रहा। उसे लगता रहा कि गोरा की बात केवल बात नहीं है, वह मानो गोरा स्वयं है, उस बात की आकृति है, उसमें गति है, प्राण है —वह विश्वास के बल से और स्वदेश-प्रेम के दर्द से भरा हुआ है। वह केवल मत नहीं है कि उसका प्रतिवाद करके उसे खतम किया जा सके वह एक सम्पूर्ण व्यक्ति है और वह व्यक्ति भी साधारण व्यक्ति नहीं है। उसे हटा देने के लिए हाथ उठता ही नहीं। मानो एक गहरे द्वन्द्व में पड़कर सुचरिता को रोना आ गया। 'कोई उसे इतनी बड़ी दुविधा में डालकर सम्पूर्ण उदासीन भाव से अनायास दूर चला जा सकता है!' यह बात सोचकर उसका हृदय फटने लगा, पर साथ ही अपने कष्ट पाने पर उसके अपने प्रति धिक्कार की भी सीमा न रही।

२४

यह तय हुआ कि अंग्रेज़ कवि ड्राइडन-रचित संगीत-सम्बन्धी एक कविता विनय नाटकीय भावाभिव्यक्ति के साथ पढ़ता जायगा और अभिनय-मंच पर लड़कियाँ उपयुक्त साज-सज्जा के साथ कविता में वर्णित व्यापार का मूक अभिनय करती रहेंगी। इसके अलावा लड़कियाँ अंग्रेजी कविता की आवृत्ति और गान आदि करेंगी।

वरदासुन्दरी ने विनय को भरोसा दिलाया था कि वे सब किसी तरह उसकी तैयारी करा देंगी। वह स्वयं तो अंग्रेजी बहुत साधारण ही जानती थीं, किन्तु अपने दल के दो-एक पंडितों पर वह निर्भर कर रही थीं। लेकिन जब रिहर्सल के लिए सब जमा हुए तो विनय ने अपनी आवृत्ति के द्वारा वरदासुन्दरी के पंडित-समाज को चकित कर दिया। अपनी मण्डली के बाहर के इस आदमी को सिखा-पढ़ाकर तैयार करने के सुख से वरदासुन्दरी वंचित रह गईं। जिन लोगों ने इससे पहले विनय को विशेष कोई न समझकर उसकी परवाह नहीं की थी, अब उसका अंग्रेजी का ज्ञान देखकर उसका सम्मान करने को बाध्य हो गए। यहां तक कि हारान बाबू ने भी विनय से कभी-कभी अपने पत्र में लिखने का अनुरोध किया. और सुधीर भी विनय से उनकी छात्र-सभा में कभी-कभी अंग्रेज़ी में भाषण देने का आग्रह करने लगा।

ललिता की अजीब हालत थी। विनय को किसी से कोई सहायता नही लेनी पड़ी इससे वह बहुत खुश भी थी, लेकिन इससे उसे मन-ही-मन एक असन्तोष भी था। विनय उन सबमें किसी से कम नहीं है, बल्कि उन सबमे अच्छा ही है, इससे वह मन-ही-मन अपने को श्रेष्ठ समझेगा और उनसे कुछ भी सीखने की उसे जरूरत न होगी, यह बात उसे अखर रही थी। विनय के सम्बन्ध मे वह ठीक क्या चाहती है, क्या होने से उसका मन अपनी सहज अवस्था में आ सकेगा, यह वह स्वयं नही सोच पाती थी। इससे उसकी अप्रसन्नता छोटी-छोटी बातों में तीखे ढंग से प्रकट होकर घूम-फिरकर विनय को ही निशाना बनाने लगी। यह विनय के प्रति न्याय नहीं है और शिष्टाचार भी नहीं है, यह वह स्वयं समझ रही थी; यह समझकर उसे कष्ट होता था और वह अपने को दमन करने की काफ़ी चेष्टा भी करती थी, लेकिन अचानक किसी बहुत ही साधारण बात पर उसके भीतर की एक असंगत अन्तर्ज्वाला संयम का शासन तोड़कर फूट पड़ती थी। वह स्वयं नहीं समझ पाती थी कि ऐसा क्यों होता है। अब तक जिस काम में भाग लेने के लिए वह बराबर विनय पर ज़ोर डालती रही थी, अब उसीसे उसे हटाने के लिए उसने विनय की नाक में दम कर दिया। लेकिन अब विनय अकारण ही सारे आयोजन को बिगाड़-कर कैसे भाग जाय? समय भी और अधिक नही था और अपने में एक नयी निपुणता पहचानकर विनय को स्वयं भी कुछ उत्साह हो आया था।

अन्त मे ललिता ने वरदासुन्दरी से कहा, "मैं इसमें नहीं रहूँगी।"

वरदासुन्दरी अपनी मँझली लड़की को अच्छी तरह पहचानती थी, इसीलिए अत्यन्त शंकित होकर उन्होंने पूछा, "क्यों?"

ललिता ने कहा, "मुझसे नहीं होता।"

वास्तव में जब से विनय को अनाड़ी समझना सम्भव न रहा, तभी से ललिता किसी तरह भी विनय के सामने कविता की आवृत्ति या अभिनय का अभ्यास करने को राज़ी नहीं होती थी। वह कहती, 'मैं अपने-आप अलग अभ्यास करूँगी।' इससे सभी के अभ्यास में बाधा पड़ी थी, लेकिन ललिता को किसी तरह मनाया नहीं जा सका। अन्त में हार मानकर ललिता को रिहर्सल से अलग करके ही काम चलाना पड़ा।

किन्तु जब अन्तिम समय पर ललिता ने बिलकुल ही अलग हो जाना चाहा तब वरदासुन्दरी के सिर पर मानो बिजली गिरी। वह जानती थी कि इस मामले को सुलझाना उसके बस की बात नहीं है, इसलिए उन्होंने परेश बाबू की शरण ली। परेश बाबू साधारण बातों में कभी उन लड़कियों की इच्छा-अनिच्छा में हस्तक्षेप नहीं करते थे। लेकिन उन्होंने मजिस्ट्रेट को वचन दिया है और इसीके अनुसार उस तरफ़ से भी सारा प्रबन्ध किया गया है, समय भी बहुत तंग है, ये सब बातें सोचकर परेश बाबू ने ललिता को बुलाकर उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, "ललिता, अब तुम्हारा छोड़ देना तो ठीक नहीं होगा।"

ललिता ने रुँधे हुए गले से कहा, "बाबा, मुझसे नहीं होता। मुझे आता ही नहीं।"

परेश बाबू बोले, "अच्छा नहीं कर सकोगी, उसमें तुम्हारा अपराध नहीं होगा, पर करोगी नहीं तो अन्याय होगा।"

ललिता सिर झुकाये खड़ी रही। परेश बाबू कहते गये, "बेटी, जब तुमने भार लिया है तब तुम्हें निबाहना तो होगा ही। कहीं अहंकार को ठेस न लगे, यह सोचकर भागने का समय तो नहीं है। लगने दो ठेस, उसकी उपेक्षा करके भी तुम्हें कर्त्तव्य करना ही होगा। इतना भी नहीं कर सकोगी?"

ललिता ने मुँह उठाकर पिता की ओर देखकर कहा, "कर सकूँगी।"

उस दिन सन्ध्या को विशेष रूप से विनय के सामने ही सब संकोच छोड़कर मानो एक अतिरिक्त बल के साथ, मानो होड़ लगाकर, ललिता अपने कर्त्तव्य की ओर प्रवृत्त हुई। विनय ने तब तक उसकी आवृत्ति नहीं सुनी थी, आज सुनकर चकित रह गया। इतना सुस्पष्ट, सतेज उच्चारण—कहीं कोई अटक नहीं, और भाव-प्रकाशन में एक ऐसा निःसंशय बल कि उसे सुनकर विनय को आशातीत आनन्द हुआ। ललिता का कंठ-स्वर बहुत देर तक उसके कानों में गूँजता रहा।

कविता की आवृत्ति में अच्छी आवृत्ति करने वाला श्रोता के मन में एक विशेष मोह उत्पन्न करता है। कविता का भाव उसे पढ़ने वाले को एक महिमा प्रदान करता है, वह मानो उसके कंठ-स्वर, उसकी मुख-श्री और उसके चरित्र में जटिल

होकर दिखता है। फूल जैसे पेड़ की डालों को विशेष शोभा प्रदान करते हैं, वैसे ही कविता भी आवृत्ति करने वाले को।

ललिता भी विनय के लिए कविता द्वारा मंडित होने लगी। इतने दिन तक वह अपनी तीखी बातों से अनवरत विनय को उत्तेजित करती रही थी। जैसे जहाँ चोट लगी हो हाथ बार-बार वहीं पड़ता है, वैसे ही विनय भी कई दिन से ललिता की कड़ी बातों और तीखे हास्य के सिवा कुछ सोच ही नहीं पाता था। ललिता ने ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों कहा, उसे बार-बार इसी बात को लेकर सोचना पड़ता रहा है। ललिता के असन्तोष का रहस्य जितना ही वह नहीं समझ सका उतना ही ललिता की चिन्ता उसके मन पर और अधिकार जमाये रही है। सहसा सवेरे नींद से जागकर यही बात उसे याद आई है, परेश बाबू के घर जाते समय प्रतिदिन उसके मन में यह वितर्क उठा है कि आज न जाने ललिता कैसे पेश आयगी। जिस दिन ललिता ज़रा-सी भी प्रसन्न दिखी है, उस दिन विनय ने तसल्ली की लम्बी साँस ली है और इस बात को लेकर सोचा है कि कैसे उसके इसी भाव को स्थायी बनाया जा सकता है किन्तु ऐसा कोई उपाय कभी नहीं सोच पाया जो उसके बस का हो।

पिछले कई दिन से इस मानसिक आलोड़न के बाद ललिता की काव्य आवृत्ति के माधुर्य ने विनय को विशेष और प्रबल रूप से प्रभावित किया। उसे इतना अच्छा लगा कि वह यह सोच ही न सका कि किन शब्दों में उसकी प्रशंसा करे। ललिता के मुँह पर अच्छा-बुरा कुछ भी कहने का उसे साहस नहीं होता, क्योंकि मानव-चरित्र का यह साधारण नियम, कि अच्छा कहने से अच्छा लगे, ललिता पर लागू नहीं भी हो सकता है—बल्कि शायद साधारण नियम होने के कारण ही लागू न हो सके। इसीलिए विनय ने उच्छ्वसित हृदय से वरदासुन्दरी के सामने ही ललिता की योग्यता की अजस्र प्रशंसा की। इससे विनय की विद्या और बुद्धि के बारे में वरदासुन्दरी की श्रद्धा और भी बढ़ गई।

एक और भी अचरज की बात देखी गई। ललिता ने ज्यों ही यह स्वयं अनुभव किया कि उसकी आवृत्ति और अभिनय निर्दोष हुए है, वह अपने कर्त्तव्य की दुरूहता के पार वैसे ही निरायास भाव से चल निकली, जैसे सुगठित नौका लहरों को काटती हुई चली जाती है। विनय के प्रति उसकी तीव्रता भी न रही और विनय को विमुख करने की चेष्टा भी उसने छोड़ दी। बल्कि इस काम के बारे में उसका उत्साह बहुत बढ़ गया और रिहर्सल के मामले में वह विनय को पूरा योग देने लगी, यहाँ तक कि आवृत्ति के या और किसी भी विषय के सम्बन्ध में विनय से उपदेश लेने में भी उसे आपत्ति न रही।

ललिता के इस परिवर्तन से विनय की छाती पर से मानो पत्थर का-सा बोझ उतर गया। उसे इतना आनन्द हुआ कि वह जब-तब आनन्दमयी के पास जाकर छोटे बालकों की भाँति ऊधम करने लगा। सुचरिता के पास बैठकर बहुत बातें करने की भी उसे सूझ थी, लेकिन आजकल सुचरिता से उनकी भेंट ही न होती। मौका मिलते ही वह ललिता के साथ बातचीत करने बैठ जाता, किन्तु ललिता से बातें करने में उसे विशेष सावधान रहना होता, ललिता मन-ही-मन उस पर और उसकी सभी बातों पर बड़ी कड़ाई के साथ विचार करती है, यह जानकर ललिता के सामने उसकी बातों की धारा सहज वेग से नहीं बहती थी। बीच-बीच में ललिता कह उठती थी, "आप ऐसे क्या बातें करते हैं मानो किताबों में से पढ़कर आये हों और दुहरा रहे हों?"

विनय जवाब देता, "मैं जो इतने वर्षों से केवल किताबें ही पढ़ता रहा हूँ, इसीलिए मन भी छापे की किताब-जैसा हो गया है।"

ललिता कहती, "आप ज्यादा अच्छी तरह बात कहने की कोशिश न किया करें। अपनी बात अपने सीधे ढंग से कह दिया करें। आप ऐसे सँवारकर बात कहते हैं तो मुझे सन्देह होता है कि आप और किसी की बात को सजा-सँवारकर कह रहे हैं।"

इसलिए अपनी स्वाभाविक क्षमता के कारण कभी कोई बात साफ़-सुथरे ढंग से विनय के मन में आती भी थी तो ललिता से कहते समय वह यत्नपूर्वक उसे साधारण बनाकर और कम करके कहता था। कोई अलंकृत वाक्य सहसा उसके मुँह से निकल जाने पर वह मानो झेंप जाता था।

ललिता के मन के भीतर घिरी हुई अकारण घटा छट जाने से उसका हृदय उज्ज्वल हो उठा। उसका परिवर्तन देखकर वरदासुन्दरी को भी आश्चर्य हुआ। ललिता अब पहले की भाँति बात-बात में आपत्ति करके विमुख होकर नहीं बैठ जाती, सब कामों में उत्साह के साथ योग देती है। आगामी अभिनय की साज-सज्जा आदि सभी विषयों में उसे रोज़ तरह-तरह की नयी बातें सूझती रहती और उन्हींको लेकर वह सभी को तंग कर देती। इस मामले में वरदासुन्दरी का उत्साह कितना ही अधिक रहा हो वह खर्च की बात भी सोचती थी, इसीलिए जब ललिता अभिनय के मामले में उदासीन थी, तब उनके चिन्तित होने का जितना कारण था, उसकी उत्साहित अवस्था से भी उतना ही संकट उपस्थित हो गया। लेकिन ललिता की उत्तेजित कल्पना-वृत्ति को चोट पहुँचाने का भी साहस नहीं होता था, क्योंकि जिस काम में ललिता को उत्साह होता उसमें ज़रा भी कमी रह जाने से वह इतनी हताश हो जाती थी कि फिर उस काम में योग देना ही उसके लिए

असम्भव हो जाता था।

अपने उत्साह में ललिता अनेक बार सुचरिता के पास भी जाती। सुचरिता हँसती, बात करती; ललिता को उसकी बातों में बार-बार एक बाधा का अनुभव होता, जिसके कारण वह नाराज होकर लौट जाती।

एक दिन उसने परेश बाबू से जाकर कहा, "बाबा, सुचि दीदी कोने में बैठी-बैठी किताब पढ़ेगी और हम नाटक करने जायेंगी, यह नहीं होगा। उन्हें भी हमारे साथ शामिल होना होगा।"

परेश बाबू भी कुछ दिनों से सोच रहे थे कि सुचरिता न जाने क्यों अपनी साथिनों से दूर हटती जा रही है। उन्हें आशंका हो रही थी कि ऐसी हालत उसके चरित्र के लिए स्वास्थ्यकर न होगी। ललिता की बात सुनकर आज उन्हें लगा कि आमोद-प्रमोद में सबके साथ शामिल न हो सकने से सुचरिता का यह दुराव बढ़ता ही जायगा। उन्होंने ललिता से कहा, "अपनी माँ से कहो न!"

ललिता ने कहा, "माँ से तो मैं कहूँगी, किन्तु सुचि दीदी को राजी करने का जिम्मा आपको लेना होगा।"

जब परेश बाबू ने कह दिया तब सुचरिता और आपत्ति न कर सकी। वह अपने कर्त्तव्य-पालन में लग गई।

सुचरिता के अपने कोने से निकलकर बाहर आते ही विनय ने फिर उसके साथ पहले की भाँति बातचीत का सिलसिला जोड़ने की चेष्टा की। पर इधर कई दिनों से न जाने क्या हो गया था कि वह मानो सुचरिता तक पहुँच ही नहीं पाता, उसके चेहरे पर, उसकी दृष्टि में एक ऐसी दूरी रहती कि उसकी ओर बढ़ने में झिझक होती। पहले भी काम-काज और मिलने-जुलने में सुचरिता में एक निर्लिप्तता रहती थी, पर अब वह मानो बिलकुल परिस्फुट हो गई थी। वह जो अभिनय और अभ्यास में योग देने लगी थी, उससे भी मानो उसका अलगाव कम नहीं हुआ। काम के लिए उसकी जितनी जरूरत होती, पूरी होते ही वह अलग हो जाती। सुचरिता की इस दूरी से पहले तो विनय को बड़ी चोट पहुँची। विनय मिलनसार आदमी था, जिनसे उसका सौहार्द्र होता उनकी ओर से किसी प्रकार की बाधा उठने पर विनय को बड़ी तकलीफ होती। इस परिवार में इतने दिनों से वह विशेष रूप से सुचरिता से ही समादर पाता रहा है, अब सहसा बिना कारण उपेक्षित होने से उसे बड़ा कष्ट हुआ। लेकिन जब उसने देखा कि ऐसे ही कारण से ललिता भी सुचरिता पर नाराज हो रही है, तब उसे सान्त्वना मिली और ललिता से उसकी घनिष्ठता और भी बढ़ गई। सुचरिता को उसे और दूर हटाने का अवसर न देकर उसने स्वयं ही सुचरिता का निकट-सम्पर्क छोड़ दिया और इस प्रकार

देखते-देखते सुचरिता विनय से बहुत दूर चली गई।

इस बार इतने दिन गोरा के उपस्थित न रहने से विनय परेश बाबू के परिवार से बिना किसी बाधा के अच्छी तरह घुल-मिल गया था। विनय के स्वभाव का इस प्रकार निर्बाध परिचय पाकर परेश बाबू के घर के सभी लोग विशेष रूप से सन्तुष्ट थे। उधर विनय को भी इस प्रकार अपनी सहज स्वाभाविक अवस्था प्राप्त करके जो आनन्द मिला, वह पहले कभी नहीं मिला था। वह इन सबको अच्छा लगता है, इसका अनुभव करके उसकी अच्छा लगने की शक्ति मानो और बढ़ गई।

प्रकृति के इस विकास के समय, अपने को एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में अनुभव करने के समय सुचरिता विनय से दूर हट गई, और किसी समय यह क्षति, इसका आघात विनय के लिए दुःसह होता, पर इस समय वह उसे सहज ही पार कर गया। और आश्चर्य की बात थी कि ललिता ने भी सुचरिता का भाव-परिवर्तन पहचानकर भी पहले की तरह उसके प्रति नाराजी नहीं दिखाई। क्या काव्य-आवृत्ति और अभिनय के उत्साह ने ही उस पर पूरा अधिकार कर लिया था?

इधर सुचरिता को अभिनय में योग देते देखकर हारान बाबू भी सहसा उत्साहित हो उठे। उन्होंने स्वयं प्रस्ताव किया कि वह भी 'पैराडाइज़ लास्ट' से एक अंश का पाठ करेंगे और ड्राइडन के काव्य की आवृत्ति की भूमिका के रूप में संगीत की मोहिनी शक्ति के बारे में एक छोटा-सा भाषण भी देंगे। वरदासुन्दरी को यह मन-ही-मन बहुत बुरा लगा, और ललिता भी इससे प्रसन्न नहीं हुई। हारान बाबू पहले ही मजिस्ट्रेट से स्वयं मिलकर यह प्रस्ताव पक्का कर आए थे। ललिता ने जब कहा कि कार्यक्रम को इतना लम्बा कर देने पर मजिस्ट्रेट शायद आपत्ति करें, तब हारान बाबू ने जेब से मजिस्ट्रेट का कृतज्ञता प्रकट करता हुआ पत्र निकालकर ललिता को दिखाकर उसे निरुत्तर कर दिया।

गोरा बिना कारण यात्रा पर चला गया है, कब लौटकर आयगा यह कोई नहीं जानता था। यद्यपि सुचरिता ने सोचा था कि इस बारे में किसी बात को मन में स्थान न देगी, फिर भी रोज ही उसके मन में आशा उठती कि शायद आज गोरा आ जाय। इस आशा को वह मन से किसी तरह न निकाल सकती। जिस समय गोरा की उदासीनता और अपने मन की इस विवशता के कारण सुचरिता को बहुत अधिक पीड़ा हो रही थी जब किसी तरह इस जाल को काटकर भाग जाने के लिए उसका चित्त व्याकुल हो रहा था, तब एक दिन हारान बाबू ने फिर परेश बाबू से अनुरोध किया कि विशेष रूप से ईश्वर का नाम लेकर सुचरिता के साथ उनका सम्बन्ध पक्का कर दिया जाय।

परेश बाबू ने कहा, "अभी तो विवाह में बहुत देर है, इतनी जल्दी बँध जाना

क्या ठीक होगा ?"

हारान बाबू बोले, "विवाह से पहले कुछ समय ऐसी आबद्ध अवस्था में रहना दोनों के मन की परिणति के लिए मेरी समझ में विशेष आवश्यक है। पहले परिचय और विवाह के बीच ऐसा एक आध्यात्मिक सम्बन्ध, जिसमें सामाजिक दायित्व नहीं है फिर भी बन्धन है—बहुत उपकारी होगा।"

परेश बाबू ने कहा, "अच्छा, सुचरिता से पूछ देखूं।"

हारान बाबू ने कहा, "उन्होंने तो पहले ही राय दे दी है।"

हारान बाबू के प्रति सुचरिता के मन के भाव के सम्बन्ध में परेश बाबू को अब भी सन्देह था। इसीलिए उन्होंने स्वयं सुचरिता को बुलाकर हारान बाबू का प्रस्ताव उसके सम्मुख रखा। सुचरिता अपने द्विविधा में पड़े हुए जीवन को कहीं भी अन्तिम रूप से समर्पित कर सके तो उसे शान्ति हो, इसलिए उसने ऐसे अविलम्ब और निश्चित ढंग से हामी भर दी कि परेश बाबू का सब सन्देह दूर हो गया। विवाह से इतनी पहले बंध जाना ठीक है या नहीं, इस बात को अच्छी तरह सोच लेने के लिए उन्होंने सुचरिता से अनुरोध किया, फिर भी सुचरिता ने प्रस्ताव के बारे में कोई आपत्ति नहीं की।

ब्राउनलो साहब के निमन्त्रण से निबटकर एक विशेष दिन निश्चित करके सभी को बुलाकर भावी दम्पत्ति का सम्बन्ध पक्का कर दिया जाय, यह तय हो गया।

थोड़ी देर के लिए सुचरिता को लगा, मानो उसका मन राहु के ग्रास से मुक्त हो गया है। मन-ही-मन उसने निश्चय किया कि हारान बाबू से विवाह हो जाने पर ब्राह्म समाज के काम में जुट जाने के लिए वह कठोर होकर अपने मन को तैयार करेगी। उसने संकल्प किया कि वह प्रति-दिन थोड़ा-थोड़ा करके धर्म-तत्त्व सम्बन्धी अंग्रेज़ी पुस्तकें हारान बाबू से ही पढ़ेगी और उनके निर्देश के अनुसार चलेगी। उसके लिए जो कठिन होगा, बल्कि जो अप्रिय होगा, उसीको ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करके उसे मन-ही-मन एक सन्तोष का अनुभव हुआ।

हारान बाबू द्वारा सम्पादित अंग्रेज़ी पत्र उसने कुछ दिनों से नहीं पढ़ा था, आज वह प्रकाशित होते ही उसके पास पहुँच गया। शायद हारान बाबू ने विशेष रूप से उसके लिए भिजवा दिया था।

पत्र लेकर कमरे में जाकर सुचरिता स्थिर होकर बैठ गई और परम-कर्तव्य की तरह उसे पहली पंक्ति से पढ़ने लगी। मन में श्रद्धा लेकर, अपने को छात्री मानकर वह पत्रिका से आदेश ग्रहण करने लगी।

लेकिन पाल के सहारे चलती हुई नाव हठात् पहाड़ से टकराकर टेढ़ी हो

गई। पत्र की इस संख्या में 'पुरानी पीढ़ी' नाम का एक प्रबन्ध था, जिसमें ऐसे लोगों पर आक्रमण किया गया था जो वर्तमान काल में रहते हुए भी प्राचीन काल की ओर मुंह फेरे रहते है। उसकी युक्तियाँ असंगत नहीं थी, बल्कि सुचरिता स्वयं ऐसी ही युक्तियाँ खोजती रही थी, किन्तु प्रबन्ध पढ़ते ही वह समझ गई कि वह गोरा को लक्ष्य करके लिखा गया है। यद्यपि उसमें गोरा के नाम का अथवा उसके लिखे हुए किसी प्रबन्ध का कोई उल्लेख न था। सैनिक जैसे बन्दूक की प्रत्येक गोली से एक-एक आदमी को मार गिराकर प्रसन्न होता है, इस प्रबन्ध के प्रत्येक वाक्य से वैसे ही किसी सजीव पदार्थ को विद्ध कर सकने का एक हिंसा-मय आनन्द टपक रहा था।

वह प्रबन्ध सुचरिता से नहीं सहा गया। उसकी प्रत्येक युक्ति को काट फेंकने को वह छटपटा उठी। मन-ही-मन उसने सोचा, 'गौरमोहन बाबू चाहे तो इस प्रबन्ध को धूल मे रौद सकते है।' गोरा उज्ज्वल चेहरा उसकी आँखों के आगे ज्योतिर्मय हो उठा और उसका प्रबल कण्ठ-स्वर सुचरिता की छाती के भीतर तक गूंज गया। उस चेहरे और उस स्वर की असाधारणता के आगे इस प्रबन्ध और इसके लेखक की क्षुद्रता उसे इतनी ओछी जान पड़ी कि उसने पत्र को फ़र्श पर फेंक दिया।

बहुत दिनों के बाद उस दिन सुचरिता अपने-आप विनय के पास आकर बैठी और बातों-बातों में बोली, "अच्छा, आपने तो कहा था कि जिन पत्रों में आप लोगों के लेख निकले है, आप मुझे पढ़ने के लिए देंगे आपने तो दिये नहीं ?"

विनय यह नहीं कह सका कि इस बीच सुचरिता का बदला हुआ रुख देखकर उसे अपना वायदा पूरा करने का साहस नहीं हुआ। उसने कहा, "मैंने वे सब इकट्ठे कर रखे हैं. कल ही ले आऊँगा।"

अगले दिन विनय पुस्तिकाओं और पत्रों की पोटली लाकर सुचरिता को दे भी गया। उन्हें पाकर सुचरिता ने फिर पढ़ा नही, बक्स में बन्द करके रख दिया— पढ़ने की बहुत अधिक इच्छा हुई, इसीलिए नहीं पढ़ा। वह मन को किसी तरह भी भटकने नहीं देगी। प्रतिज्ञापूर्वक अपने विद्रोही चित्त को एक बार फिर हारान बाबू के शासन को सौंपकर उसने फिर सांत्वना पाई।

२५

रविवार था, सबेरे आनन्दमयी पान लगा रही थी और शशिमुखी उनके पास

बैठी सुपारी काटकर उसका ढेर लगा रही थी। इसी समय विनय के कमरे में आते ही शशिमुखी अपनी गोद की सुपारियाँ फेंककर हड़बड़ाती हुई उठकर भाग गई। आनन्दमयी थोड़ा-सा मुस्करा दीं।

विनय बड़ी जल्दी सबसे घुल-मिल जाता था। अब तक शशिमुखी से भी उसका काफ़ी मेल-जोल था। दोनों ही एक-दूसरे को काफ़ी छकाते भी रहते थे। शशिमुखी विनय के जूते छिपाकर विनय से कहानी सुनने की जुगत किया करती थी। विनय ने शशिमुखी के ही जीवन की दो-एक साधारण घटनाएँ लेकर उन्हीमें खूब नमक-मिर्च लगाकर कुछ कहानियाँ गढ़ रखी थीं। इनके सुनाये जाने से शशिमुखी बहुत कटती थी। पहले तो वह सुनाने वाले पर झूठ बोलने का अभियोग लगाकर जोर-शोर से प्रतिवाद करती, फिर हारकर भाग जाती थी। उसने भी बदले में विनय के जीवन-चरित्र को तोड़-मरोड़कर कहानी गढ़ने की कोशिश की थी, किन्तु रचना-शक्ति में विनय के बराबर न होने के कारण इसमें विशेष सफलता न पा सकी थी।

जो हो, विनय के घर आते ही शशिमुखी सब काम छोड़कर उसके साथ छेड़-छाड़ करने दौड़ी आती थी। कभी-कभी इतना उत्पात करने पर आनन्दमयी उसे डाँट देती थी, किन्तु दोष अकेली शशिमुखी का नहीं था, क्योंकि विनय ही उसे इतना चिढ़ा देता था कि वह अपने को रोक न सकती थी। वही जब आज विनय को देखते ही हड़बड़ाकर कमरे से भाग गई तब आनन्दमयी को हँसी आ गई, किन्तु यह हँसी सुख की नहीं थी।

इस छोटी-सी घटना से विनय को भी ऐसा आघात पहुँचा कि वह कुछ देर के लिए चुप बैठा रहा। शशिमुखी से विवाह करना उसके लिए कितना असंगत होगा, यह ऐसी छोटी-छोटी बातों से ही प्रकट हो जाता था। विनय ने जब इसके लिए हामी भरी थी, तब वह केवल गोरा के साथ अपनी दोस्ती की बात ही सोचता रहा था, स्वयं विवाह को उसने कल्पना के द्वारा मूर्त्त करके नहीं देखा था। इसके अलावा विनय ने पत्रों में इस बात पर गौरव करते हुए अनेक लेख भी लिखे थे कि हमारे देश में विवाह मुख्यतया व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं बल्कि पारिवारिक सम्बन्ध है, स्वयं भी उसने विवाह के सम्बन्ध में अपनी निजी इच्छा या अनिच्छा को कोई महत्त्व नहीं दिया था। आज शशिमुखी जब विनय को देखकर उसे अपना वर जान दाँतों से जीभ काटकर भाग गई, तब मानो शशिमुखी के साथ अपने भावी सम्बन्ध का एक साकार रूप उसे दीख गया। क्षण-भर में ही उसका समूचा अंतःकरण विद्रोही हो उठा। गोरा उसे उसकी प्रकृति के विरुद्ध कितनी दूर तक लिये जा रहा था, यह जानकर गोरा के ऊपर उसे क्रोध हो आया और अपने प्रति

धिक्कार का भाव उत्पन्न हुआ। यह याद करके कि आनन्दमयी ने शुरू से ही इस विवाह का निषेध किया था, विनय का मन उनकी सूक्ष्मदर्शिता के प्रति एक विस्मय-मिश्रित श्रद्धा से भर आया।

आनन्दमयी ने विनय के मन का भाव समझ लिया। उसे दूसरी ओर प्रवृत्त करने के लिए उन्होंने कहा, "विनय, कल गोरा की चिट्ठी आई थी।"

विनय ने कुछ अनमने भाव मे ही कहा, "क्या-क्या लिखा है?"

आनन्दमयी बोलीं, "अपनी खबर तो खास कुछ नहीं दी। देश के छोटे लोगों की दुर्दशा देखकर दुखी होकर लिखा है। घोषपाड़ा नाम के किसी गाँव में मजिस्ट्रेट ने क्या-क्या अन्याय किये है, उसीका बखान है।"

गोरा के विरुद्ध उत्तेजना के कारण ही विनय ने अधीर होकर कहा, "गोरा की नज़र बस उसी दूसरी तरफ़ है। और हम लोग जो समाज की छाती पर सवार होकर रोज़ न जाने कितने अत्याचार करते है, उन सबकी लीपा-पोती करते हुए कहते रहना होगा कि ऐसा सत्कर्म दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता।"

सहसा गोरा पर ऐसे अभियोग लगाकर विनय अपने को मानो दूसरे पक्ष मे खड़ा कर रहा है, यह देखकर आनन्दमयी हँस दी।

विनय ने कहा, "माँ, तुम हँस रही हो, सोच रही हो कि विनय को एकाएक इतना गुस्सा क्यों आ रहा है। क्यों गुस्सा आ रहा है, तुम्हें बताता हूँ। उस दिन सुधीर मुझे नेहाटी स्टेशन पर अपने एक दोस्त के बागान मे ले गया था। हम लोगों के सियालदह से चलते ही बारिश हो गई। सोदपुर स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो देखा, साहबी कपड़े पहने हुए एक बंगाली ने शान से सिर पर छाता लगाये हुए अपनी बहू को गाड़ी से उतारा। बहू की गोद में छोटा बच्चा भी था बदन की मोटी चादर से बच्चे को किसी तरह ढककर वह बेचारी खुले प्लेटफार्म पर एक ओर खड़ी होकर ठंड और लज्जा से सिकुड़ती हुई भीगती रही, और पति महोदय सामान के पास खड़े छाता लगाये चिल्लाते रहे। क्षण-भर में ही मैंने समझ लिया कि सारे बंगाल मे, चाहे धूप हो चाहे बारिश, चाहे भद्र घर की हो चाहे मामूली, किसी स्त्री के सिर पर छाता नहीं होता। जब देखा कि स्वामी तो निर्लज्ज भाव से सिर पर छाता लगाये खड़े है और स्त्री अपने को चादर से ढकती हुई चुपचाप भीग रही है और मन-ही-मन भी इस व्यवहार से दुखी नहीं है, और सारे स्टेशन के लोगों में किसी को भी इसमें कोई अनौचित्य नहीं दीखता, तभी से मैंने तय कर लिया है कि अब कभी मुंह से कविताई की वे सब झूठी बातें नहीं निकालूंगा कि हम लोग स्त्रियों का बहुत अधिक सम्मान करते हैं, उन्हें लक्ष्मी और देवी मानते हैं।

"हम लोग देश को मातृभूमि कहते हैं, लेकिन देश की इस नारी-मूर्ति की महिमा अगर हम देश की स्त्रियों में ही प्रत्यक्ष न करें—अगर बुद्धि से, शक्ति से, उदार कर्त्तव्य-बोध से स्त्रियों को उनके सरल, सतेज, संपूर्ण रूप में न देखें, अपने घरों में केवल दुर्बलता, संकीर्णता और अधूरापन ही देखते रहें तो देश का रूप कभी हमारे सम्मुख उज्ज्वल नहीं हो सकता।"

अपने ही उत्साह पर सहसा झेंपकर विनय ने अपने सहज-स्वाभाविक स्वर में कहा, "माँ, तुम सोच रही हो, विनय बीच-बीच में ऐसी बड़ी-बड़ी बातें करता हुआ लेक्चर झाड़ा करता है और आज भी उसको बुलास लगी है। मेरी बातें आदत के कारण लेक्चर-जैसी हो जाती हैं, लेकिन आज यह लेक्चर नहीं दे रहा हूँ। देश की लड़कियों का देश के लिए कितना महत्त्व है, यह मैं पहले अच्छी तरह नहीं समझता था—कभी सोचता भी नहीं था। माँ, और ज्यादा बकवास नहीं करूँगा—मैं ज्यादा बोलता हूँ इसीलिए कोई मेरी बात को मेरे मन की बात नहीं समझता। अब से कम बोला करूँगा।"

विनय और अधिक देर नहीं ठहरा, वैसा ही उत्साह-दीप्त मन लिये चला गया।

आनन्दमयी ने महिम को बुलवाकर कहा, "बेटा, अपनी शशिमुखी का विवाह विनय के साथ नहीं होगा।"

महिम—"क्यों—तुम्हारी राय नहीं है?"

आनन्दमयी—"यह सम्बन्ध अंत तक टिकेगा नहीं, इसलिए मेरी राय नहीं है, नहीं तो मेरी राय भला क्यों न होती।"

महिम—"गोरा राज़ी हो गया है, विनय भी राज़ी है, तब टिकेगा क्यों नहीं? यह जरूर है कि तुम्हारी राय न होगी तो विनय नहीं करेगा, यह मैं जानता हूँ।"

आनन्दमयी—"मैं विनय को तुमसे अधिक जानती हूँ।"

महिम—"गोरा से भी अधिक?"

आनन्दमयी—"हाँ, गोरा से भी अधिक जानती हूँ, इसीलिए सब तरफ़ से सोचकर ही मेरी राय नहीं होती।"

महिम—"अच्छा, गोरा वापस आ जाय।"

आनन्दमयी—"महिम, मेरी बात सुनो। इसे लेकर अधिक दबाव डालोगे तो आगे चलकर मुसीबत होगी। मैं नहीं चाहती कि गोरा इस मामले में विनय को कुछ कहे।"

"अच्छा देखा जायगा," कहते हुए महिम ने मुँह में और एक और पान रखा और गुस्से से भरे हुए कमरे में चले गए।

२६

गोरा जब यात्रा पर निकला तब उसके साथ अविनाश, मोतीलाल, वसन्त और रमापति, ये चार साथी थे। लेकिन गोरा के निर्दय उत्साह के साथ ये लोग ताल नहीं रख सके। अविनाश और वसन्त तो बीमार हो जाने का बहाना करके चार-पांच दिन में ही कलकत्ता लौट आए। केवल गोरा के प्रति श्रद्धा के कारण ही मोतीलाल और रमापति भी उसे अकेला छोड़कर चले नहीं जा सके, किन्तु उनके कष्टों की सीमा नहीं थी। गोरा न तो पैदल चलकर थकता था, न कहीं रुककर रह जाने से ऊबता था। गाँव का जो कोई गृहस्थ गोरा को ब्राह्मण जानकर श्रद्धापूर्वक घर में ठहराता, उसके यहाँ भोजन इत्यादि की चाहे जितनी असुविधा हो, गोरा वहीं टिका रहता था। उसकी बातचीत सुनने के लिए गाँव-भर के लोग उसके चारों ओर इकट्ठे हो जाते और उसे छोड़ना ही न चाहते।

पढ़े-लिखे भद्र समाज और कलकत्ता के समाज के बाहर हमारा देश कैसा है, यह गोरा ने अभी पहले-पहल देखा। यह विशाल अकेला ग्राम्य भारतवर्ष कितना अस्त-व्यस्त, कितना संकीर्ण और दुर्बल है, अपनी शक्ति के सम्बन्ध में कैसा अत्यन्त अचेतन और अपने मंगल के सम्बन्ध में अज्ञ और उदासीन, प्रत्येक पाँच-सात कोस की दूरी पर उसका समाज इतना बदल जाता है, संसार के बृहत् कर्म-क्षेत्र में चलने के उसके मार्ग में कितनी अपनी गढ़ी हुई या काल्पनिक अड़चन हैं, छोटी-छोटी बातों को वह कितना बढ़ा-चढ़ाकर देखता है और किसी भी रूढ़ि का बन्धन उस पर कितना कड़ा और अचल है, उसका मन कैसा सोया हुआ, उसके प्राण कितने दुर्बल और उसका उद्यम कितना क्षीण है — यह गोरा बिना ग्रामवासियों के बीच ऐसे रहे किसी तरह कल्पना भी न कर सकता था। उसके गाँव में रहते-रहते गाँव के एक हिस्से में आग लग गई थी। इतने बड़े संकट में भी दल बाँधकर प्राणपण से चेष्टा करके विपत्ति का सामना करने की शक्ति उनमें कितनी कम है, यह देखकर गोरा आश्चर्य में पड़ गया। सभी हक्के-बक्के से इधर-उधर दौड़ रहे थे और रो-चीख रहे थे, पर व्यवस्थित ढंग से कोई कुछ नहीं कर पा रहा था। गाँव के पास कोई जलाशय नहीं था। स्त्रियाँ रोज़ दूर से पानी लाकर घर का काम चलाती हैं, फिर भी रोज-रोज की इस मुसीबत से बचने के लिए घर ही में एक मामूली कुआँ खोद लेने की बात उन तक को न सूझी थी जो कि सम्पन्न थे। पहले भी इस गाँव में कई बार आग लगी है, उसे केवल भाग्य का उत्पात मानकर सभी निरुद्यम बैठ रहे हैं, पास कहीं पानी की कोई व्यवस्था कर रखने की कोई कोशिश किसी ने नहीं की। गाँव की सख्त ज़रूरत के बारे में भी जिनका बोध नहीं

देना, उनके सामने सारे देश की बात-चीत करना गोरा को बेवकूफ़ी ही लगा। गोरा को सबसे अधिक आश्चर्य इसी बात पर होता कि इन सब दृश्यों और घटनाओं से मोतीलाल और रमापति ज़रा भी विचलित न होते थे, बल्कि गोरा के क्षोभ को ही असंगत समझते थे। छोटे लोग तो ऐसा करते ही हैं, ऐसे ही सोचते हैं, इन सब कष्टों को वे कष्ट नहीं समझते, छोटे आदमियों के लिए ऐसा छोड़कर और कुछ कभी हो भी सकता है, ऐसा सोचने को ही वे अपनी हैसियत से बड़ी बात करना समझते हैं। इस अज्ञता, जड़ता और दुःख का बोझ कितना बड़ा और भयंकर है, और यह बोझ हमारे पढ़े-लिखे और अनपढ़, धनी और दरिद्र, सभी के कन्धों पर एक-सा है और किसी को भी आगे नहीं बढ़ने देता, यह बात आज अच्छी तरह समझकर गोरा का चित्त दिन-रात व्याकुल रहने लगा।

मोतीलाल भी घर में कोई शोक-संवाद पाने की बात कहकर चल दिया। गोरा के साथ केवल रमापति रह गया।

चलते-चलते दोनों एक जगह नदी के किनारे के एक मुसलमान गाँव में पहुँचे। आतिथ्य पाने की उम्मीद में घूमते-घूमते सारे गाँव में केवल एक घर हिन्दू नाई का मिला। दोनों ब्राह्मणों ने उसी के घर आश्रय लेने पहुँचकर देखा, बूढ़ा नापित और उसकी स्त्री एक मुसलमान लड़के को पाल-पोस रहे हैं। रमापति बड़ा निष्ठा-वान ब्राह्मण था, वह तो बहुत बेचैन हो उठा। गोरा ने नापित को उसके अनाचार के लिए फटकारा तो उसने कहा, "ठाकुर, हम लोग कहते हैं हरि, वे लोग कहते हैं अल्लाह, दोनों में कोई अन्तर नहीं है।"

धूप तेज़ हो उठी थी, फैली हुई रेती के पार नदी बहुत दूर थी। रमापति ने प्यास से व्याकुल होकर पूछा, "हिन्दू का पीने का पानी कहाँ मिलेगा?"

नापित के घर में एक कच्चा कुआँ था, लेकिन उस भ्रष्ट कुएँ का पानी रमापति कैसे पी सकता है? वह मुँह लटकाकर बैठा रहा।

गोरा ने पूछा, "इस लड़के के माँ-बाप नहीं हैं?"

नापित ने कहा, "दोनों हैं, लेकिन उनका होना-न-होना बराबर है।"

गोरा ने पूछा, "वह कैसे?"

नापित ने जो इतिहास सुनाया उसका सार यों है

"जिस ज़मींदारी के वे लोग रहते थे उस पर निलहे साहबों का इजारा था। वहाँ की प्रजा का नदी-किनारे की खादर ज़मीन को लेकर नील-कोठी के साहबों के साथ बराबर झगड़ा चल रहा था। और सब प्रजा हार मान चुकी थी, लेकिन खादर के इसी घोषपुर गाँव की प्रजा को साहब लोग किसी तरह नहीं दबा सके हैं। गाँव के सभी लोग मुसलमान हैं और उनका प्रधान फर्रू सरदार किसी से नहीं

डरता। नील कोठी वालों से झगड़े के सिलसिले में पुलिस से मार-पीट करके दो बार जेल हो आया है। घर की हालत ऐसी हो गई कि खाने को दो दाने भात नहीं जुटता, फिर भी वह किसी का रौब नहीं मानता। इस बार खादर में खेती करके गाँव के लोगों ने जल्दी ही कुछ बोरे धान पा लिया था—लेकिन कोई एक महीना होने को आया, नीलकोठी के मैनेजर साहब स्वयं लठैत लेकर आये और प्रजा का धान लूट ले चले। उसी झगड़े के समय फरूं सरदार ने साहब की दाहिनी बाँह पर ऐसी लाठी जमाई कि अस्पताल ले जाकर उसकी बाँह कटवानी पड़ गई। इतना बड़ा हौसला सारे इलाके में कभी किसी ने नहीं किया। तब से पुलिस का उत्पात आग की तरह गाँव-गाँव में फैल गया है। प्रजा के घरों में कहीं कुछ नहीं रहा, घरों की औरतों की इज्जत-आबरू भी नहीं बचती, फरूं सरदार और बहुत-से दूसरे लोग हवालात में दे दिए गए हैं और अनेकों गाँव छोड़कर भाग गए है। फरूं के परिवार के पास खाने को अन्न का दाना नहीं है, उसकी बहू की एकमात्र धोती का यह हाल है कि घर से बाहर नहीं निकल सकती। उनका इकलौता लड़का तमीज़ नापित की स्त्री को गाँव के नाते मौसी पुकारता था, उसकी मोहताज हालत देखकर नाइन उसे घर ले आई और उसका पालन कर रही है। नीलकोठी वालों की एक कचहरी वहाँ से कोई डेढ़ कोस पर लगी है, दारोगा दल-बल के साथ अब भी वहीं मौजूद है, वहाँ से कब किस बहाने गाँव पर धावा कर दे या क्या कर बैठे, कोई ठिकाना नहीं है। अभी कल ही नाई के पड़ोसी बूढ़े नाज़िम के घर पर पुलिस ने छापा मारा था—नाज़िम का जवान साला दूसरे इलाके से अपनी बहन से मिलने आया था—दारोगा ने बिलकुल बिना वजह यह कहकर कि 'यह पट्ठा अच्छा जवान दीखता है—छाती तो देखो पट्ठे की!' अपने हाथ की लाठी से उसे ऐसे धक्का दिया कि उसके दाँत टूट गए और खून बह निकला। यह अत्याचार देखकर बहन दौड़ी हुई आई तो उस बेचारी बुढ़िया को भी धक्का देकर गिरा दिया गया। पहले पुलिस इस इलाके में इतना जुल्म करने का साहस नहीं करती थी पर अब गाँव के सब तगड़े जवान या तो हवालात में है या गाँव छोड़कर भाग गए हैं। उन भागे हुए लोगों की तलाश का बहाना करके ही पुलिस गाँव पर ऐसा जुल्म ढा रही है, कब इससे छुटकारा होगा कुछ कहा नहीं जा सकता।'

गोरा उठने का नाम ही नहीं ले रहा था। उधर रमापति की प्यास के मारे जान निकल रही थी। नाई की कहानी समाप्त होने से पहले ही उसने फिर पूछा, "कोई हिन्दू घर यहाँ से कितनी दूर होगा?"

नाई ने कहा, "वहीं डेढ़ कोस पर नीलकोठी की जो कचहरी है, उसका तहसीलदार ब्राह्मण है—नाम है माधव चटर्जी।"

गोरा ने पूछा, "स्वभाव कैसा है ?"

नाई ने कहा, "ठीक जमदूत जैसा। ऐसा निर्दयी और पाजी खोजे से भी न मिलेगा। जितने दिन दारोगा को खिलाये-पिलायेगा उसका सब खर्चा हमीं लोगों से वसूल करेगा—बल्कि कुछ मुनाफ़ा भी तो कमायगा।"

रमापति ने कहा, "गोरा बाबू, अब चलिए—और नहीं सहा जाता।"

नाइन उस मुसलमान लड़के को अपने आँगन के कुएँ के पास खड़ा करके घड़े भर-भर पानी खींचकर उसे नहलाने लगी थी, इससे रमापति को और भी गुस्सा आ रहा था और उससे वहाँ बैठा नहीं जा रहा था। चलते समय गोरा ने नाई से पूछा, "इस दंगे-फ़साद के बीच तुम तो इसी गाँव में टिके हुए हो—तुम्हारे घर के और लोग कहीं नहीं है ?"

नाई ने कहा, "बहुत दिनों से यहीं रहता हूँ, इन सब से माया हो गई है। मैं हिन्दू नाई हूँ, खेती-बेती से मुझे कोई मतलब नहीं है इसीलिए नीलकोठी वाले मुझे नहीं छेड़ते। और अब गाँव-भर में कोई बड़ा तो और रहा नहीं, मैं भी अगर चल दूँ तो औरतें डर से मर जायँगी।'"

गोरा ने कहा, "अच्छा, खा-पीकर मैं फिर आऊँगा।"

भूखा-प्यासा रमापति नीलकोठी वालों के अत्याचार की इस लम्बी कहानी से गाँव वालों पर ही और बिगड़ उठा। ये मूर्ख बलवान के विरुद्ध सिर उठाना चाहते हैं, इसे उसने इन गँवार मुसलमानों की स्पर्द्धा और बेवकूफी की चरम-सीमा ही समझा। उसे इसमें सन्देह नहीं था कि उचित सजा देकर इनकी अकड़ तोड़ना ही इनके लिए ठीक होगा। ऐसे अभागों पर पुलिस अत्याचार करती ही है, करने को बाध्य होती है और उसकी जिम्मेदारी प्रधानतया इन्हीं लोगों पर होती है, यही उसकी धारणा थी। कर्मचारियों से समझौता ही कर लें, दंगा-फ़साद क्यों करते हैं ? उतनी ताकत भी कहाँ है ?

वस्तुतः रमापति की भीतरी सहानुभूति नीलकोठी के साहबों की ओर ही थी।

दोपहर की धूप में तपी हुई बालू पर चलते हुए गोरा ने सारे रास्ते-भर कोई बात नहीं की। अन्त में पेड़ों की ओट से जब कुछ दूर पर कचहरी की छत दिखाई देने लगी तब गोरा ने सहसा रुककर कहा, "रमापति, तुम जाकर कुछ खा-पी लो, मैं उसी नाई के घर जा रहा हूँ।"

रमापति बोला, "यह कैसी बात है· आप नहीं खायेंगे ? चटर्जी के यहाँ खा-पीकर फिर जाइएगा।"

गोरा ने कहा, "अपना कर्त्तव्य मैं करूँगा, तुम खा-पीकर कलकत्ता लौट जाना—मुझे शायद यहीं घोषपुर गाँव में कुछ दिन रहना होगा—तुमसे वह नहीं

निभेगा।"

रमापति के तो रोंगटे खड़े हो गए। गोरा-जैसा धर्म-प्राण हिंदू किस मुंह से उन म्लेच्छों के घर रहने की बात कह सकता है, वह सोच ही नहीं सका। गोरा ने क्या खाना-पीना छोड़कर भूख हड़ताल करने की ठानी है ? लेकिन तब सोचने का भी समय नहीं था, उसे एक-एक पल एक-एक युग जान पड़ रहा था। गोरा का साथ छोड़कर कलकत्ता भाग जाने के लिए उससे अधिक अनुरोध नहीं करना पड़ा। कुछ दूर से उसने घूमकर देखा, गोरा की लंबी देह अपनी छोटी-सी छाया को उलांघती हुई दोपहर की तीखी धूप में सुनसान गर्म रेती के पार अकेली बढ़ती जा रही है।

गोरा भी भूख-प्यास से अभिभूत हो रहा था पर उस पाजी अत्याचारी माधव चटर्जी का अन्न खाकर ही उसकी जाति बचेगी, इस बात को वह जितना ही सोचता उतना ही वह और असह्य हो जाती। उसका चेहरा और आंखें लाल हो गई थीं, सिर तप रहा था, उसके मन में तक तीव्र विद्रोह जाग रहा था। वह सोच रहा था, 'पवित्रता को बाहर की चीज़ बना देकर भारतवर्ष में हम यह कितना भयंकर अधर्म कर रहे हैं ! जो आदमी जान-बूझकर फसाद खड़ा करके इन मुसलमानों पर ज़ुल्म कर रहा है उसके घर में मेरी जाति बनी रहेगी, और जो उस ज़ुल्म को सहता हुआ मुसलमान के बच्चे की रक्षा कर रहा है और समाज की निन्दा सहने को तैयार है उसके घर में मेरी जाति चली जायेगी ? जो होता हो, आचार-विचार के भले-बुरे की बात फिर सोचूंगा ---अभी तो नहीं सोच सकता।'

नाई को गोरा को अकेला लौटते देखकर आश्चर्य हुआ। गोरा ने पहले तो आकर नाई का लोटा अपने हाथ से अच्छी तरह मांजकर कुएँ से पानी खींचकर पिया, फिर बोला, "घर में कुछ दाल-चावल हो तो दो, मैं रांधकर खाऊँगा।" नाई ने हड़बड़ाकर सब सामान जुटा दिया। गोरा ने खाने से निबटकर कहा, "मैं दो-चार दिन तुम्हारे पास रहूँगा।"

नाई ने डरकर हाथ जोड़ते हुए कहा, "आप इस अधम के घर रहेंगे इससे बड़ा सौभाग्य मेरे लिए क्या होगा —पर देखिए, हम लोगों पर पुलिस की नज़र है. आपके रहने से न जाने क्या उपद्रव खड़ा हो।"

गोरा ने कहा, "मेरे यहां रहते पुलिस को कोई उत्पात करने का साहस नहीं होगा। वह कुछ करेगी तो मैं रक्षा करूंगा।"

नाई ने कहा, "दुहाई है आपकी, आप रक्षा करने की कोशिश करेंगे तब तो और भी कोई सहारा न रहेगा। वे लोग सोचेंगे कि मैंने ही साठ-गांठ करके आपको बुलाया है और उनके खिलाफ़ गवाह जुटा रहा हूँ। अब तक तो किसी तरह टिका

हुआ था, फिर नहीं टिक सकूँगा। मुझे भी अगर यहाँ से उठ जाना पड़ा तब तो गाँव पामाल हो जायगा।"

गोरा हमेशा से शहर में ही रहता आया है, नाई क्यों इतना डर रहा था यह उसके लिए समझना भी कठिन था। वह यही जानता था कि इंसाफ़ के लिए डट-कर खड़े हो जाने से ही अन्याय का प्रतिकार होता है। उसकी कर्त्तव्य-बुद्धि किसी तरह उस विपन्न गाँव को असहाय छोड़कर जाने को राजी नहीं हो रही थी। तब नाई ने उसके पैर पकड़कर कहा, "देखिए, आप ब्राह्मण हैं, मेरे पुण्य-बल से मेरे घर अतिथि हुए है, आपको चले जाने को कहता हूँ, इसीसे मुझे पाप लगता है। लेकिन हम लोगों के प्रति आपके मन में दया है, यह जानकर ही कहता हूँ कि आप मेरे घर रहकर पुलिस के अत्याचार में कोई बाधा देंगे तो मुझे ही और बड़ी मुसी-बत में डाल देंगे।"

नाई के इस डर को निर्मूल कापुरुषता मानकर गोरा कुछ विरक्त होकर ही तीसरे पहर उसके घर से चल पड़ा। इस म्लेच्छाचारी के घर उसने भोजन किया है, यह सोचकर मन-ही-मन उसे बुरा भी लगने लगा। शरीर से थका हुआ और चित्त से विरक्त वह साँझ को नील-कोठी की कचहरी पर जा पहुँचा। खा-पीकर कलकत्ता रवाना हो जाने में रमापति ने ज़रा भी देर नहीं की थी इसलिए वह वहाँ नहीं दीखा। माधव चटर्जी ने बड़ी आव-भगत के साथ गोरा को भोजन के लिए निमंत्रित किया। गोरा ने आग-बबूला होकर कहा, "मैं आपके यहाँ का पानी भी नहीं पी सकता।"

माधव ने विस्मित होकर कारण पूछा, तो गोरा ने उसे अत्याचारी और अन्यायी कहकर फटकार दिया और बैठने से भी इंकार किया। दारोगा तख्तपोश पर तकिये के सहारे बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था, अब उठकर बैठते हुए उसने रुखाई से पूछा, "कौन हो जी तुम? घर कहाँ है?"

गोरा ने उसकी बात का उत्तर देकर कहा "तो तुम्हीं दारोगा हो? घोषपुर गाँव में तुमने जो जुल्म किया है मैंने सब सुना है। अब भी अगर न संभले तो···"

"तो क्या फाँसी दोगे? ज़रा इसका हौसला तो देखो। मैं तो समझा था भीख माँगने आया है, यह तो लाल-पीला होने लगा। अरे, तिवारी!"

माधव ने घबराकर दारोगा का हाथ दबाते हुए कहा, "अरे क्या करते है अच्छे घर का है—बेइज़्ज़त न करें···"

दारोगा ने गरम होकर कहा, "कहाँ का अच्छा घर? और वह जो तुम्हें जो मुँह में आया कह गया, वह क्या बेइज़्ज़ती नहीं है?"

माधव बोला, "वह जो कहते हैं बहुत झूठ तो नहीं कहते—गुस्सा करने से

क्या होगा ? नील-कोठी के साहबों की गुमाश्तागिरी करके खाता हूँ, इससे आगे तो कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है और दादा, तुम गुस्सा मत करो—तुम पुलिस के दारोगा हो, तुम्हें यम का दूत कहना कुछ गाली थोड़े ही है ? बाघ तो आदमी मार के खायगा ही—कोई वैष्णव तो है नहीं—जानी हुई बात है। उसे खाना तो होगा ही, वह और क्या करेगा ?"

माधव को बिना प्रयोजन क्रोध प्रकट करते कभी किसी ने नहीं देखा, किससे कब कौन-सा काम निकाला जा सकता है, या टेढ़े होने पर कौन क्या नुकसान पहुँचा जा सकता है, यह पहले से कौन जानता है ? किसी का भी बुरा या अपमान वह अच्छी तरह हिसाब जाँचने के बाद ही करता था गुस्से में किसी पर हमला करके अपनी क्षमता को फिज़ूल खर्च नही करता था।

तब दारोगा ने गोरा से कहा, "देखो जी, हम लोग यहाँ सरकारी काम करने आये हैं—इसमें टाँग अड़ाने या गोलमाल करने से मुसीबत मे पड जाओगे।"

गोरा बिना कुछ कहे मुडकर बाहर चला गया। माधव जल्दी से उठकर उसके पीछे-पीछे जाकर बोला, "महाशय, आप जो कहते है सही है—हमारा काम ही कसाई का है—और यह जो साला दारोगा है इसके तो साथ बैठने में भी पाप होता है—लेकिन उसके द्वारा जो-जो ज़ुल्म करवाने पड़ते है मैं जबान पर भी नही ला सकता। और अधिक दिन नहीं है, दो-तीन बरस और नौकरी करके लड़कियों को ब्याहने का संबल जुटाकर फिर स्त्री-पुरुष दोनों काशी-वास को चल देगे। मुझे खुद यह सब अच्छा नही लगता—कभी-कभी तो मन होता है, गले में फाँसी डालकर मर जाऊँ। खैर, अब आज रात आप कहाँ जायँगे—यहीं आहार करके विश्राम कर लें। उस दारोगा साले की छाया भी आप पर नहीं पड़ेगी—आपके लिए सब अलग बन्दोबस्त कर दूँगा।"

गोरा को साधारण लोगों मे अधिकतर भूख लगती थी, और आज दिन-भर उसे ठीक से खाने को नहीं मिला था। लेकिन उसका सारा शरीर गुस्से से जल रहा था। वह किसी तरह वहाँ न रुक सका। बोला "मुझे ज़रूरी काम है।"

माधव ने कहा, "तो रुकिये, एक लालटेन साथ कर दूँ।"

गोरा ने कोई जवाब नहीं दिया, तेज़ी से चला गया।

माधव ने लौटकर दारोगा से कहा, "दादा, यह आदमी ज़रूर सदर गया है। तुम अभी मजिस्ट्रेट के पास किसी को भेजो।"

दारोगा ने कहा, "क्यों, किसलिए ?"

माधव बोला, "और कुछ नहीं, बस एक बार उन्हें कह आए कि एक भद्र जन न जाने कहाँ से आकर गवाहों को तोड़ने की कोशिश करता हुआ फिर रहा है।"

२७

मजिस्टेट ब्राउनलो साहब शाम को नदी के किनारे की सड़क पर टहल रहे थे, हारान बाबू उनके साथ थे। कुछ दूर पर गाड़ी में उनकी मेम परेश बाबू की लड़कियों के साथ हवाखोरी कर रही थी।

ब्राउनलो साहब बीच-बीच में बंगाली भद्र-समाज के लोगों को अपने घर गार्डन-पार्टियों में निमंत्रित करते रहते थे। ज़िले के एंट्रेंस स्कूल के पुरस्कार-वितरण के समय सभापतित्व भी वही करते थे। सम्पन्न घरों में विवाह आदि शुभ-कर्मों के समय आमंत्रित किये जाने पर वह अनुग्रहपूर्वक उसे स्वीकार कर लेते थे। यहाँ तक कि यात्रा-अभिनय की मजलिस में निमंत्रित होने पर वह एक बड़ी आराम-कुर्सी पर बैठे-बैठे थोड़ी देर तक धैर्यपूर्वक गान सुनने का प्रयत्न भी करते थे। उनकी अदालत के सरकारी वकील के घर पिछले दशहरे की झाँकियों में जो लड़के भिश्ती और महतरानी बने थे, उनका अभिनय मजिस्ट्रेट साहब ने विशेष पसन्द किया था और उनकी फ़र्माइश पर झाँकियों के इस अंश की कई बार आवृत्ति की गई थी।

इनकी स्त्री मिशनरी की लड़की थीं। इसलिए उनके घर जब-तब मिशनरी औरतों की चाय-पान की सभा जुटती रहती थी। ज़िले में उन्होंने एक लड़कियों का स्कूल स्थापित किया था और इसके लिए बराबर कोशिश करती थीं कि उस स्कूल में छात्राओं का अभाव न हो। परेश बाबू के घर की लड़कियों में पढ़ाई की विशेष चर्चा होती देखकर वह बराबर उनका उत्साह बढ़ाती रहती थीं, दूर रहने पर भी बीच-बीच में चिट्ठी-पत्री देती रहती और क्रिसमस के समय उन्हें धर्म-ग्रन्थ उपहार भेजतीं।

मेला लग गया था। उसके लिए हारान बाबू, सुधीर और विनय को साथ लेकर वरदासुन्दरी और उनकी लड़कियाँ सभी आई थीं--उन सबको सरकारी इन्स्पेक्शन बंगले में ठहराया गया था। परेश बाबू को यह सब गोल-माल पसंद नहीं था इसलिए वह अकेले कलकत्ता में रह गए थे। सुचरिता ने उनका साथ देने के लिए वहीं रह जाने की बहुत कोशिश की थी, पर परेश बाबू ने मजिस्ट्रेट के निमंत्रण के संबंध में कर्त्तव्य का विशेष उपदेश देकर सुचरिता को भेज दिया था। यह तय हुआ था कि दो दिन बाद मजिस्ट्रेट के घर पर डिनर के बाद ईवनिंग पार्टी में कमिश्नर साहब और सस्त्रीक छोटे लाटसाहब के सम्मुख परेश बाबू की लड़कियों का अभिनय और काव्य-आवृत्ति आदि होगा। उसके लिए मजिस्ट्रेट ने अनेक अंग्रेज़-बन्धुओं को ज़िले और कलकत्ता तक से बुलाया था। कुछ गिने-चुने

बंगाली भद्र जनों के आने का भी प्रबन्ध किया गया था, उनके लिए बगीचे में एक अलग तम्बू में ब्राह्मण रसोइये द्वारा जल-पान तैयार कराने की व्यवस्था की जायगी, ऐसा सुना गया था।

हारान बाबू ने थोड़े समय में ही अपनी उच्चकोटि की बातचीत से मजिस्ट्रेट साहब को विशेष संतुष्ट कर लिया था। ख्रिस्तान धर्मशास्त्र के विषय में हारान बाबू की असाधारण अभिज्ञता देखकर साहब आश्चर्य-चकित हो गए थे। उन्होंने हारान बाबू से यहाँ तक पूछ लिया था कि ख्रिस्तान धर्म स्वीकार करने में ही वह क्यों चूक गए ?

आज शाम को नदी-किनारे की सैर में वह हारान बाबू के साथ ब्राह्मण समाज की कार्य-प्रणाली और हिंदू-समाज के सुधार के सम्बन्ध में गंभीर चर्चा कर रहे थे। इसी समय गोरा 'गुड ईवनिंग, सर' कहता हुआ उनके सम्मुख आ खड़ा हुआ।

उससे पहले दिन भी मजिस्ट्रेट साहब से मुलाकात की चेष्टा करने पर उसकी समझ में आ गया था कि साहब की देहरी पार करने से पहले उनके प्यादे को महसूल देना होता है। यह दण्ड और अपमान स्वीकार न करने का निश्चय करके वह आज साहब की हवाखोरी के समय उनके सामने उपस्थित हुआ है। इस साक्षात् के समय हारान बाबू अथवा गोरा की ओर से परिचय का कोई लक्षण नहीं देखा गया।

आगन्तुक को देखकर साहब कुछ विस्मित हो गए। ऐसा छः फुट से अधिक ऊँचा, लंबा-तगड़ा जवान उन्होंने बंगाल में उससे पहले कभी देखा हो, ऐसा उन्हें याद नहीं पड़ा। उसका रंग भी साधारण बंगालियों-जैसा नहीं था। शरीर पर खाकी रंग का कुर्ता, मोटी मैली धोती, हाथ में बाँस की लाठी, चादर सिर पर पगड़ी की तरह बँधी हुई थी।

गोरा ने मजिस्ट्रेट से कहा, "मैं घोषपुर गाँव से आया हूँ।"

मजिस्ट्रेट साहब ने विस्मय की हल्की-सी सीटी दी। घोषपुर के मामले में कोई ग़ैर आदमी टाँग अड़ा रहा है, इसकी सूचना उन्हें एक दिन पहले ही मिली थी। तब यही वह आदमी है। गोरा को सिर से पैर तक एक तीखी नज़र से देखकर उन्होंने पूछा, "तुम कौन जात हो ?"

गोरा बोला, "बंगाली ब्राह्मण हूँ।"

साहब बोले, "ओह ! किसी अखबार से सम्बन्ध है शायद ?"

गोरा ने कहा, "नहीं।"

मजिस्ट्रेट बोले, "तुम घोषपुर में क्या करने आये ?"

गोरा ने कहा, "घूमता हुआ वहाँ ठहरा था। पुलिस की ज़्यादती से गाँव की दुर्गति होती हुई देखकर और नये उपद्रव की सम्भावना जानकर उसे रोकने के

लिए आपके पास आया हूँ।"

मजिस्ट्रेट ने कहा, "घोषपुर गाँव के लोग बड़े बदमाश हैं, यह तुम्हें मालूम है ?"

"वे बदमाश नहीं हैं," गोरा बोला, "निर्भीक और आज़ाद-तबियत हैं। ज़ुल्म चुपचाप नहीं सह सकते।"

मजिस्ट्रेट बिगड़ उठे। मन-ही-मन उन्होंने सोचा, 'नये बंगाली इतिहास की पुस्तकें पढ़कर बहुत बातें सीख गए हैं---इनसफ़रेबल ··' गोरा को डपटकर बोले, "यहाँ की हालत का तुम्हें कुछ पता नहीं है।"

गोरा ने मेघ-गम्भीर स्वर मे जवाब दिया—"यहाँ की हालत का आपको और भी कम पता है।"

मजिस्ट्रेट ने कहा, "मैं तुम्हें खबरदार किये देता हूँ, घोषपुर के मामले में कोई दखल दोगे तो सस्ते नहीं छूटोगे।"

गोरा ने कहा, "आपने जब तय ही कर लिया है कि अत्याचार को रोकने की कार्यवाही नहीं करेंगे, और गाँव के लोगों के बारे में भी आपने पहले से धारणा बना ली है तब मेरे पास इसके सिवा और कोई चारा नहीं है कि गाँव के लोगों को खुद पुलिस के मुकाबले में खड़े होने के लिए बढ़ावा दूँ।"

मजिस्ट्रेट चलते-चलते रुक गए और बिजली की तरह गोरा की ओर पलट-कर गरज उठे, "क्या- तुम्हारी इतनी मजाल !"

गोरा और कुछ कहे बिना धीर-गति से चला गया। मजिस्ट्रेट बोले, "हारान बाबू, आपके देश के लोगों में ये सब कैसे लक्षण दीख रहे है ?"

हारान बाबू ने कहा, "पढ़ाई-लिखाई गम्भीर ढंग से नही होती, विशेष कर देश में आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा होती ही नहीं; इसीलिए ये सब बाते होती है। अंग्रेजी विद्या का जो उत्तम अंश है वह ग्रहण करने का अधिकार इन लोगों का नहीं है। भारतवर्ष में अंग्रेजों का राज्य ईश्वर का ही विधान है, ये अकृतज्ञ लोग अब भी इसे स्वीकार करना नहीं चाहते। इसका एक-मात्र कारण काण यही है कि इन लोगों ने केवल किताबें रट ली हैं, इनका धर्म-बोध बिलकुल अधूरा है।"

मजिस्ट्रेट बोले, "क्राइस्ट को स्वीकार किये बिना भारतवर्ष का धर्म-बोध कभी पूरा नही हो सकता।"

हारान बाबू ने कहा, "यह एक तरह से सच ही है।"

यों कहते हुए हारान बाबू ने ईसा को स्वीकार करने के बारे में एक ईसाई में और हारान बाबू में कहाँ तक एक मत है और कहाँ मतभेद, इसके सूक्ष्म विवेचन में मजिस्ट्रेट को इतना उलझा लिया कि मेमसाहब जब परेश बाबू की लड़कियों

को डाक-बंगले पहुँचाकर लौट आई और पति से बोलीं, "हैरी, अब वापस चलना चाहिए" तब उन्होंने चौंककर घड़ी निकालकर देखते हुए कहा, "बाई जोव ! यह तो आठ बजकर बीस मिनट हो गए।"

गाड़ी पर सवार होते समय हारान बाबू से हाथ मिलाकर विदा लेते हुए उन्होंने कहा, "आपके साथ बातचीत में साँझ बहुत अच्छी कट गई।"

डाक-बंगले पर लौटकर हारान बाबू ने मजिस्ट्रेट के साथ अपनी बातचीत विस्तारपूर्वक सुनाई। लेकिन गोरा के साथ साक्षात् होने का उन्होंने कोई उल्लेख नही किया।

२८

किसी अपराध के लिए पेशी किये बिना सिर्फ गाँव को सबक सिखाने के लिए सैंतालीस असामियों को हवालात मे बन्द कर दिया गया था।

मजिस्ट्रेट से भेंट होने के बाद गोरा वकील की खोज में निकला। किसी से उसने सुना कि सातकौड़ी हालदार यहाँ के एक नामी वकील हैं। सातकौड़ी के घर पहुँचते ही वकील साहब कह उठे, "अरे यह तो गोरा है ! तुम यहाँ कहाँ ?"

गोरा ने अनुमान किया था ठीक ही था - सातकौडी उसका सहपाठी था। गोरा ने कहा, "घोषपुर के असामियों को ज़मानत पर छुड़ाकर उनकी पैरवी करनी होगी।"

सातकौड़ी ने कहा, "जमानत कौन देगा ?"

गोरा बोला, "मैं दूँगा।"

सातकौड़ी ने कहा, "सैंतालीस आदमियों की जमानत देना तुम्हारे बूते का है ?"

गोरा ने कहा, "मुख्त्यार लोग अगर मिलकर ज़मानत दें तो उनकी फीस मैं दूँगा।"

सातकौड़ी ने कहा, "उसमें कुछ कम खर्च नही होगा।"

दूसरे दिन मजिस्ट्रेट के इजलास में ज़मानत की दरखास्त दी गई। मजिस्ट्रेट ने कल के मैले कपड़े और पगड़ी वाले दबंग आदमी की ओर एक नज़र डाली और दरख़ास्त नामंज़ूर कर दी। चौदह वर्ष के लड़के से लेकर अस्सी वर्ष के बूढ़े तक हवालात में सड़ने के लिए छोड़ दिए गए।

गोरा ने सातकौड़ी से उनकी ओर से लड़ने का अनुरोध किया।

सातकौड़ी ने कहा, "गवाह कहाँ मिलेंगे ? जो गवाह हो सकते वही सब तो असामी हैं। इनके अलावा साहब को मारने के इस मामले की जांच के मारे सारे इलाके के लोगों की नाक में दम है। मजिस्ट्रेट समझता है कि भीतर-ही-भीतर इसमें भद्र लोगों का भी हाथ है, शायद मुझ पर भी संदेह करता हो, कौन जाने। अंग्रेजी अखबार बराबर लिख रहे हैं कि देशी लोगों के हौसले इतने बढ़ जायँगे तो अरक्षित, असहाय अंग्रेजों का मुफ़स्सिल में रहना मुश्किल हो जायगा। इधर तो ऐसी हालत हो गई है कि देशी लोग देश में टिक नही पाते हैं। मैं जानता हूँ कि ज़्यादती हो रही है, लेकिन कोई उपाय नहीं है।"

गोरा ने गरजकर कहा, "उपाय क्यों नहीं है ?'

सातकौड़ी ने हँसकर कहा, "तुम स्कूल में जैसे थे अब तक ठीक वैसे-के-वैसे ही रहे। उपाय इसलिए नहीं है कि हम लोगों के घर में बीवी-बच्चे हैं— रोज़ कमाकर न लायँ तो कई लोगों को उपवास करना पड़ जाय। दूसरे का बोझ अपने ऊपर ओट लेने को राज़ी होने वाले लोग दुनिया में कम ही होते हैं— और उस देश में तो और भी कम जिसमें कुनबा भी ऐसा छोटा नही होता। जिसके घर दस खाने वाले हैं वह उन दस को छोड़कर दूसरे दस आदमियों की ओर देखने का मौका कहाँ पायगा ?"

गोरा ने कहा, "तो तुम इन लोगों के लिए कुछ नहीं करोगे ? हाईकोर्ट के सामने अगर···"

सातकौड़ी ने अधीर होकर कहा, "अरे, तुम यह नहीं देखते कि एक अंग्रेज ज़ख्मी हुआ है। हर अंग्रेज राजा है— छोटे अंग्रेज को मारना भी छोटे किस्म का राज-विद्रोह ही है। जिसका कोई फल नहीं निकलने वाला है उसके लिए व्यर्थ दौड़-धूप करके खामखाह मजिस्ट्रेट से भी बिगाड़ूँ, यह मुझसे नहीं होगा।"

गोरा ने तय किया कि अगले दिन साढ़े दस बजे की गाड़ी से कलकत्ता जाकर वह देखेगा कि वहाँ के किसी वकील की मदद से कुछ हो सकता है कि नहीं। लेकिन इसी समय एक और बाधा आ खड़ी हुई।

यहाँ के मेले के सिलसिले में कलकत्ता के विद्यार्थियों की एक टीम के साथ स्थानीय विद्यार्थियों का क्रिकेट-मैच तय हुआ था। अभ्यास के लिए कलकत्ता के लड़के आपस में खेल रहे थे, कि गेंद से एक लड़के के पैर में गहरी चोट लग गयी। मैदान से लगा हुआ एक बड़ा पोखर था, ज़ख्मी लड़के को किनारे पर लिटाकर उसके दो साथी कपड़ा फाड़कर पानी में भिगोकर उसके पैर में पट्टी बाँध रहे थे कि सहसा कहीं से एक पहरेदार ने आकर एक छात्र को ज़ोर से धक्का देकर

भद्दी गालियाँ देना शुरू कर दिया। पोखर पीने के पानी के लिए रिज़र्व था, उसमें उतरना मना था, यह कलकत्ता के विद्यार्थी नहीं जानते थे; जानते भी तो अकस्मात् ऐसा अपमान सहने का उन्हें अभ्यास नहीं था। उनके बदन भी गठे हुए थे। उन्होंने अपमान का यथोचित प्रतिकार शुरू कर दिया। यह दृश्य देखकर चार-पाँच सिपाही दौड़े हुए आ गए। ठीक इसी समय गोरा भी वहाँ से गुज़रा। छात्र गोरा को पहचानते थे—गोरा उनके साथ कई बार क्रिकेट खेल चुका था। गोरा ने जब देखा कि विद्यार्थियों को पकड़कर मारते-मारते ले जाया जा रहा है, तब वह नहीं सह सका। बोला, "खबरदार, मारा तो।"

पहरेदार और उसके साथियों ने उसे भी भद्दी गाली दीं, इस पर गोरा ने घूँसे और लातें जमाकर ऐसा मामला खड़ा कर दिया कि भीड़ लग गई। इधर देखते-देखते विद्यार्थियों का दल भी इकट्ठा हो गया था। गोरा के उत्साह से शह पाकर वे भी पुलिस पर टूट पड़े। पहरेदार और उसके साथी मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। राह चलते लोगों को सारी घटना में बड़ा मज़ा आया। लेकिन कहने की ज़रूरत नहीं कि यह तमाशा गोरा के लिए तमाशा न रहा।

कोई तीन-चार बजे, जब डाक-बंगले में विनय, हारान बाबू और लड़कियाँ रिहर्सल कर रही थीं, विनय के परिचित दो छात्रों ने आकर खबर दी कि गोरा और कुछ-एक विद्यार्थियों को पुलिस ने गिरफ्तार करके हवालात में बन्द कर दिया है, अगले दिन पहले इजलास में ही मजिस्ट्रेट साहब के सामने उनकी पेशी होगी।

गोरा हवालात में! खबर सुनकर हारान बाबू को छोड़ सब लोग चौंक उठे। विनय दौड़ा हुआ पहले अपने सहपाठी सातकौड़ी हवलदार के पास गया, उसे सारी बात सुनाकर उसके साथ हवालात पहुँचा।

सातकौड़ी ने गोरा की ओर से पैरवी करने और उसे ज़मानत पर छुड़ाने की कोशिश का प्रस्ताव किया तो गोरा ने कहा, "नहीं, मैं वकील भी नहीं करूँगा और मुझे ज़मानत पर छुड़ाने की कोशिश भी नहीं करनी होगी।"

"यह भी कोई बात है?" सातकौड़ी ने विनय की ओर मुड़कर कहा, "देखो इसको? कौन कहेगा कि गोरा स्कूल से निकल आया है! इसकी अक्ल अभी ठीक वैसी ही है!"

गोरा ने कहा, "संयोग से मेरे पास साधन हैं, दोस्त हैं, इसीलिए मैं हवालात-हथकड़ी से बच जाऊँ, यह मैं नहीं चाहता। हमारे देश की जो धर्मनीति है उसके अनुसार न्याय की ज़िम्मेदारी राजा की है, प्रजा के साथ अन्याय हो यह राजा का

ही अधर्म है। लेकिन इस राज में अगर वकील की फ़ीस न जुटा सकने पर प्रजा को हवालात में सड़ना या जेल में मरना पड़े, सिर पर राजा रहते भी पैसा देकर इन्साफ़ खरीदने की कोशिश में लुट जाना पड़े, तो ऐसे अन्याय के लिए मैं एक धेला भी खर्च करना नहीं चाहता।"

सातकौड़ी ने कहा, "लेकिन काज़ी के राज में तो घूस देने के लिए ही सिर बेचना पड़ता था।"

गोरा ने कहा, "लेकिन घूस देना राजा का विधान तो नहीं था। जो काज़ी बुरा होता था वह घूस लेता था— आजकल भी वही हाल है। लेकिन आजकल राजा के सामने इन्साफ़ के लिए दौड़ने पर चाहे वादी हो चाहे प्रतिवादी, चाहे दोषी हो चाहे निर्दोष, प्रजा को रोना ही पड़ता है। जो गरीब है, इन्साफ़ की लड़ाई में उसके लिए हार-जीत दोनों में ही सर्वनाश है। फिर जहाँ राजा वादी है और हम-जैसे लोग प्रतिवादी, वहाँ उनकी ओर से ही सब वकील बैरिस्टर हैं, और मैं अगर जुटा सकूँ तो ठीक है, नहीं तो मेरा भाग्य। इन्साफ़ के लिए अगर वकील की ज़रूरत नहीं है तो फिर सरकारी वकील किस लिए? और अगर ज़रूरत है तो फिर गवर्नमेंट के खिलाफ़ क्यों अपना वकील स्वयं खोजने की लाचारी हो? यह क्या प्रजा के साथ वैर है? यह कैसा राजधर्म है?"

सातकौड़ी ने कहा, "भाई, बिगड़ते क्यों हो। सिविलिज़ेशन सस्ती चीज़ तो नहीं है। इन्साफ़ में बारीकी के लिए कानून में भी बारीकी ज़रूरी है— कानून में बारीकी होने पर पेशेवर कानूनदाँ के बिना काम नहीं चलता। पेशे की बात आते ही बेच-खरीद की बात आ जाती है। इसलिए सभ्यता की अदालत में इन्साफ़ अपने-आप दुकानदारी हो जाती है। जिसके पास पैसा नहीं है उसके ठगे जाने की सम्भावना रहती ही है। तुम राजा होते तो क्या करते भला?"

गोरा बोला, "अगर ऐसा कानून बनाता कि हज़ार-डेढ़-हज़ार रुपया वेतन पाने वाले जज की अक्ल के लिए भी उससे पार पाना सम्भव न होता, तो अभागे वादी-प्रतिवादी दोनों पक्षों के लिए सरकारी खर्च पर वकील नियुक्त करता। इन्साफ़ ठीक होने का खर्चा प्रजा के मत्थे मढ़कर अपनी न्याय-व्यवस्था पर गर्व करता हुआ मुगल-पठान राजाओं को गालियाँ न देता।"

सातकौड़ी ने कहा, "ठीक है, लेकिन वह शुभ दिन जब नहीं आया—तुम जब राजा नहीं हुए, आज जब तुम सभ्य राजा की अदालत में असामी पेश हो तब तुम्हें या तो अपनी गाँठ से पैसा खर्च करना होगा या किसी दोस्त-वकील की शरण लेनी होगी, नहीं तो और किसी तरह तो मुसीबत टलती नहीं।"

गोरा ने हठ करके कहा, "कोई कोशिश न करने से जो सिर पर आयगी वही मेरे सिर पर आय। इस राज्य में बिलकुल असहाय की जो गति होगी वही मेरी भी हो।"

विनय ने बड़ी मिन्नतें कीं, लेकिन गोरा ने उनकी अनसुनी कर दी। उसने विनय से पूछा, "तुम अचानक यहाँ कैसे आ पहुँचे?"

विनय का चेहरा जरा तमक उठा। आज गोरा हवालात में न होता तो विनय शायद कुछ विद्रोह के स्वर में ही अपने वहाँ होने का कारण बता देता। लेकिन आज साफ बात उसके मुँह पर नहीं आई। वह बोला, "मेरी बात फिर होगी, अभी तो तुम्हारी···"

गोरा ने कहा, "मैं तो आज सरकारी मेहमान हूँ। मेरी चिन्ता तो सरकार स्वयं कर रही है, तुम लोगों को किसी को चिन्ता करने की जरूरत नहीं है!"

विनय जानता था कि गोरा को डिगाना सम्भव नहीं, इसीलिए वकील करने की कोशिश उसने छोड़ दी। बोला, "तुम यहाँ का तो खा नहीं सकोगे, बाहर से कुछ खाना भेजने की व्यवस्था कर दूँ।"

गोरा ने अधीर होकर कहा, "विनय, क्यों तुम व्यर्थ दौड़-धूप करते हो? बाहर से मुझे कुछ नहीं चाहिए। हवालात में सबके भाग्य में जो आना है उससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।"

विनय लाचार होकर डाक बंगले पर लौट आया। सुचरिता रास्ते की ओर के एक सोने के कमरे में दरवाजा बन्द करके खिड़की खोले विनय के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। किसी तरह भी दूसरों का साथ या उनकी बातचीत उसे सहन नहीं हो रही थी।

सुचरिता ने जब देखा कि विनय उदास और चिन्तित चेहरा लिये हुए डाक बंगले की ओर आ रहा है तब अनेक आशंकाएँ उसके हृदय में उठने लगीं। वह मुश्किल से अपने को शान्त करके एक किताब हाथ में लेकर वह बैठने के कमरे में आई। ललिता को सिलाई का काम बिलकुल नहीं रुचता, लेकिन आज वह एक कोने में चुपचाप बैठी सिलाई कर रही थी, लीला दर्शक बनी सुधीर के साथ अंग्रेजी शब्द बनाने का खेल खेल रही थी, लीला दर्शक बनी बैठी थी। हारान बाबू वरदासुन्दरी के साथ आगामी कल के उत्सव की बातचीत कर रहे थे। विनय ने आज सवेरे पुलिस के साथ गोरा के झगड़े का सारा इतिहास ब्यौरेवार सुना दिया। सुचरिता स्तब्ध बैठी रही, ललिता की गोद से सिलाई नीचे गिर गई और उसका मुंह लाल हो आया।

वरदासुन्दरी ने कहा, "आप कुछ चिन्ता न कीजिए, विनय बाबू---आज शाम

को ही मजिस्ट्रेट साहब की मेम से मैं गौर बाबू के लिए कहूँगी।"

सुधीर ने कहा, "उसके डिफ़ेंस के लिए तो कोई बन्दोबस्त करना होगा।"

ज़मानत पर छुड़ाने और वकील नियुक्त करने के सम्बन्ध में गोरा ने जो आपत्तियाँ की थीं विनय ने सब बता दीं। सुनकर हारान बाबू चिढ़कर बोले, "यह सब व्यर्थ की हेकड़ी है।"

हारान बाबू के प्रति ललिता के मन का भाव जो भी रहा हो, अब तक वह उनका सम्मान करती आई थी और कभी उनके साथ बहस में नहीं पड़ी थी। अब ज़ोर से सिर झटककर बोल उठी, "बिलकुल व्यर्थ नहीं है। गौर बाबू ने जो किया है बिलकुल ठीक किया है। मजिस्ट्रेट सिर्फ़ हमको दबाता रहेगा और हम अपनी रक्षा खुद करेंगे! उसकी मोटी तनख्वाह जुटाने के लिए टैक्स भी भरना होगा, और फिर उसीसे जान छुड़ाने के लिए गाँठ से वकील की फीस भी देनी होगी। ऐसा इन्साफ़ पाने से जेल जाना अच्छा है।"

हारान बाबू ललिता को बच्चा ही समझते आए थे—उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उसकी भी कोई राय हो सकती है। उसी ललिता के मुँह से तीखी बात सुनकर वह हक्के-बक्के हो गए। फिर उसे डाँटते हुए बोले, "तुम ये सब बातें क्या समझो! जो दो-चार किताबें रट करके कालिज पास कर आए हैं, जिनका न धर्म है, न धारणा, उनके मुँह से गैर-जिम्मेदार पागलपन की बकवास सुनकर तुम्हारा सिर फिर गया है।"

यह कहकर उन्होंने कल शाम को मजिस्ट्रेट के साथ गोरा के साक्षात् की खबर और उसके बारे में मजिस्ट्रेट की उनसे जो बातचीत हुई थी उसका ब्योरा सुना दिया। घोषपुर गाँव का मामला विनय को मालूम न था। बात सुनकर वह शंकित हो उठा, उसने समझ लिया कि मजिस्ट्रेट गोरा को सहज ही न छोड़ेंगे।

हारान ने जिस मतलब से बात सुनाई थी उससे ठीक उल्टा असर हुआ। उन्होंने गोरा को देखने की बात जो अब तक छिपा रखी थी, इससे जो क्षुद्रता झलकती थी वह सुचरिता को चुभ गई। उनकी प्रत्येक बात से गोरा के प्रति जो व्यक्तिगत ईर्ष्या टपकती थी, गोरा की इस मुसीबत के समय उसके कारण सभी को उनके प्रति एक अश्रद्धा हुई। सुचरिता अब तक चुप ही थी, कुछ कहने को उसका मन छटपटा रहा था, किन्तु अपने को रोककर वह किताब खोलकर काँपते हाथों से उसके पन्ने उलटने लगी। ललिता ने उद्धत भाव से कहा, "हारान बाबू की राय मजिस्ट्रेट की राय से चाहे जितनी मिलती हो, घोषपुर के मामले में गौर मोहन बाबू की बड़ाई ही सिद्ध होती है।"

२६

आज छोटे लाट साहब पधारेंगे, इसलिए मजिस्ट्रेट साहब ठीक साढ़े दस बजे अदालत पहुँच गए जिससे दिन का काम जल्दी निबटा लें।

कालेज के लड़कों की ओर से पैरवी करते हुए सातकौड़ी बाबू ने अपने दोस्त को भी बचाने की कोशिश की। मामले का रुख देखकर उन्होंने समझ लिया था कि यहाँ अपराध स्वीकार करना ही फ़ायदेमन्द होगा। लड़के मनचले होते ही हैं, वे अभी निर्बोध है, इत्यादि दलीलें देकर उन्होंने उनकी ओर से क्षमा-प्रार्थना की। मजिस्ट्रेट ने विद्यार्थियों को जेल ले जाकर प्रत्येक की उम्र और उसके अपराध के अनुसार पाँच से लेकर पच्चीस तक बेंत लगाने की सज़ा सुना दी। गोरा का कोई वकील नहीं था। अपनी पैरवी खुद करते हुए पुलिस के अत्याचार के बारे में उसके कुछ कहने की कोशिश करते ही मजिस्ट्रेट ने तिरस्कारपूर्वक उसे रोक दिया और पुलिस के काम में बाधा देने के अपराध में उसे एक मास के कठिन कारावास की सज़ा सुनाते हुए यह भी कहा कि इतनी हल्की सज़ा देकर वह विशेष दया दिखा रहे हैं।

सुधीर और विनय अदालत में उपस्थित थे। विनय गोरा के मुँह की ओर नहीं देख सका। उसका मानो दम घुटने लगा, वह जल्दी से कचहरी से बाहर निकल आया। सुधीर ने उससे डाक बंगले पर लौटकर स्नान-भोजन करने का अनुरोध किया, पर वह उसे अनसुना करके मैदान पार करते-करते राह में ही एक पेड़ के नीचे बैठ गए और सुधीर से बोला, "तुम डाक बंगले लौट जाओ, मैं पीछे आऊँगा।"

सुधीर चला गया।

ऐसे ही कितना समय बीत गया, विनय को इसका होश न रहा। सूर्य शिखर तक पहुँचकर पश्चिम की ओर उतरने लगा था जब एक गाड़ी ठीक उसके सामने आकर रुकी—विनय ने मुँह उठाकर देखा, सुधीर और सुचरिता गाड़ी से उतरकर उसकी ओर आ रहे थे। वह जल्दी से उठ खड़ा हुआ। सुचरिता ने पास आकर स्नेह-भरे स्वर से कहा, "विनय बाबू, चलिए!"

विनय ने सहसा लक्ष्य किया कि वे राह चलते लोगों के कौतूहल का विषय बन गए हैं। वह जल्दी से गाड़ी पर सवार हो गया। सारे रास्ते कोई कुछ बात न कर सका।

डाक बंगले पर पहुँचकर विनय ने देखा, "वहाँ लड़ाई चल रही है। ललिता

इस बात पर अड़ गई थी कि वह किसी तरह मजिस्ट्रेट के घर नहीं जायगी। वरदासुन्दरी बड़ी मुश्किल में पड़ गई थीं। हारान बाबू ललिता-जैसी बच्ची के इस असंगत विद्रोह से क्रोध से पागल हो रहे थे। वह बार-बार कहे जा रहे थे, आज-कल के लड़के-लड़कियाँ न जाने क्यों ऐसे बिगड़ रहे हैं, कोई डिसिप्लिन ही नहीं मानना चाहता। ऐरे-गैरे लोगों की संगत में फिजूल बातचीत करते रहने का ही यह फल है।

विनय के आते ही ललिता ने कहा, "विनय बाबू, मुझे माफ़ कर दीजिए, मैंने आपके निकट भारी अपराध किया है। आपने तब जो कहा था मैं कुछ समझ नहीं सकी थी। हम लोग बाहर की हालत बिलकुल नहीं जानतीं तभी ऐसा उलटा समझ लेती हैं। पानू बाबू कहते है कि भारतवर्ष में मजिस्ट्रेट का यह शासन विधाता का विधान है—ऐसा है तो फिर इस शासन को तन-मन-वचन से शाप देने की इच्छा जगाना भी उसी विधाता का ही विधान है।"

हारान बाबू बिगड़कर कहने लगे, "ललिता, तुम···"

ललिता ने हारान बाबू की ओर पीठ फेरकर खड़े होते हुए कहा, "चुप रहिए, मैं आपसे बात नहीं कर रही। विनय बाबू, किसी की मत सुनिएगा। आज अभिनय किसी तरह नहीं हो सकेगा।"

वरदासुन्दरी ने जल्दी से ललिता की बात काटते हुए कहा, "ललिता, तू तो बड़ी अजब लड़की है! विनय बाबू को आज नहाने-खाने नहीं देगी? डेढ़ बज गया है, इसकी भी खबर है? देख तो उनका चेहरा कैसा सूख रहा है।"

विनय ने कहा, "यहाँ हम लोग उसी मजिस्ट्रेट के मेहमान है—इस घर में मेरा स्नान-भोजन अब नहीं हो सकेगा।"

वरदासुन्दरी ने विनय को समझाने की बड़ी कोशिश की, मिन्नतें भी कीं। लड़कियों को चुप देखकर उन्होंने बिगड़कर कहा, "तुम सबको हुआ क्या है? सुचि, तुम्ही विनय को ज़रा समझाओ न। हम लोगों ने वायदा किया है—इतने लोग बुलाये गए हैं—आज तो किसी तरह निभाना ही होगा, नहीं तो वे लोग क्या सोचेंगे भला? फिर उनके सामने मुंह न दिखा सकेंगे।"

सुचरिता चुपचाप सिर झुकाये बैठी रही।

नदी दूर नहीं थी, विनय स्टीमर-घाट की ओर चला गया। स्टीमर लगभग दो घंटे बाद ही छूटेगा—कल आठ बजे के लगभग कलकत्ता पहुँच जायगा।

हारान बाबू उत्तेजित होकर विनय और गोरा की निन्दा करने लगे। सुचरिता ने जल्दी से कुर्सी से उठकर साथ के कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर लिये। थोड़ी देर बाद ही ललिता ने किवाड़ ठेलकर कमरे में प्रवेश किया तो देखा,

सुचरिता दोनों हाथों मे मुँह ढके बिस्तर पर पड़ी है।

ललिता ने भीतर से दरवाज़े बंद कर लिये और सुचरिता के पास बैठकर धीरे-धीरे उसके सिर के बालों को उँगलियों से सहलाने लगी। बहुत देर बाद जब सुचरिता शान्त हो गई तब जबरदस्ती उसके हाथ चेहरे के सामने से हटाकर ललिता उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहने लगी, "दीदी, चलो हम लोग यहाँ से कलकत्ता लौट चलें - आज मजिस्ट्रेट के यहाँ तो नहीं जा सकते।"

बहुत देर तक सुचरिता ने इस बात का कोई उत्तर न दिया। ललिता बार-बार कहने लगी तब वह बिस्तर पर उठ बैठी और बोली, "वह कैसे हो सकता है, भई। मेरी तो आने की एक बार भी इच्छा नही थी बाबा ने जब भेज दिया है तब जिस काम के लिए आई हूँ वह पूरा किये बिना कैसे लौट सकती हूँ ?"

ललिता ने कहा, "बाबा ये सब बातें थोड़े ही जानते थे ? जानते तो कभी हमें यहाँ रुकने को न कहते।"

सुचरिता ने कहा, "यह मैं कैसे जानूं, भई ?"

ललिता "दीदी, तू जा सकेगी ? कैसे जायगी भला ? फिर उस पर बन-ठनकर स्टेज पर खड़े होकर कविता बाँचनी होगी। मेरी तो ज़बान कट जाये तब भी बात नहीं निकलेगी !"

सुचरिता ने कहा, "वह तो जानती हूँ, बहन, लेकिन नरकयन्त्रणा भी सहनी ही होती है। अब तो और कोई उपाय नहीं है। आज का दिन जीवन-भर भूल नही सकूँगी।"

सुचरिता को इस बेचारगी पर बिगड़कर ललिता बाहर निकल गई। जाकर माँ से बोली, "माँ, तुम जा नहीं रही ?"

वरदासुन्दरी ने कहा, "तू पागल तो नहीं हो गई ? रात को नौ बजे के बाद जाना है।"

ललिता ने कहा, "मैं कलकत्ता जाने की बात कर रही हूँ।"

वरदासुन्दरी 'ज़रा इस लड़की की बात तो सुनो ?"

ललिता ने सुधीर से पूछा, "सुधीर, तो तुम भी यहीं रहोगे ?"

गोरा की सज़ा से सुधीर का मन व्याकुल था, लेकिन बड़े-बड़े साहबों के सामने अपनी विद्या दिखाने का लालच छोड़ देना उसके बस की बात नहीं थी। उसने कुछ अस्पष्ट गुनगुना दिया, जिससे यही समझ में आया कि उसे संकोच तो है, पर वह रह ही जायगा।

वरदासुन्दरी ने कहा, "गडबड़ी में इतनी देर हो गई। और देर करने से नही चलेगा। अब साढ़े पाँच बजे तक बिस्तर से कोई न उठ सकेगा—सबको आराम

करना होगा, नहीं तो रात को थकान से मुंह सूख जायगा --देखने में अच्छा नहीं लगेगा।"

यों कह-कहकर उन्होंने जबरदस्ती सबको सोने के कमरों में ले जाकर लिटा दिया। सभी सो गए, केवल सुचरिता को नींद न आई और दूसरे में ललिता भी अपने बिस्तर पर बैठी रही।

रह-रहकर स्टीमर की सीटी सुनाई देने लगी।

स्टीमर जब छूटने ही वाला था और खलासी सीढ़ी उठाने की तैयारी कर रहे थे, तब डेक पर से विनय ने देखा, एक भद्र महिला तेज़ी से जहाज़ की ओर बढ़ी आ रही है। उसकी वेश-भूषा से विनय को ललिता-सी ही जान पड़ी, लेकिन सहसा वह ऐसा विश्वास नहीं कर सका। अन्त में ललिता के निकट आ जाने पर जब और संदेह न रहा तब एक बार उसने सोचा कि ललिता शायद उसे लौटा ले जाने के लिए आई हो लेकिन ललिता ही तो मजिस्ट्रेट का निमन्त्रण मानने के विरुद्ध खड़ी हुई थी। ललिता स्टीमर पर सवार हो गई, खलासियों ने सीढ़ी उठा ली। शंकित-सा विनय ऊपरी डेक से नीचे उतरकर ललिता के सामने आ खड़ा हुआ। ललिता बोली, "मुझे ऊपर ले चलिए!"

विनय ने विस्मित होकर कहा, "जहाज़ तो छूट रहा है।"

ललिता बोली, "मैं जानती हूँ।" और विनय की प्रतीक्षा न करके सामने की सीढ़ी से ऊपर चली गई। स्टीमर सीटियाँ देता हुआ चल पड़ा।

ललिता को पहले दर्जे के डेक पर आराम-कुर्सी पर बिठाकर विनय चुपचाप प्रश्न-भरी आँखों से उसके चेहरे की ओर देखने लगा।

ललिता ने कहा, "मैं कलकत्ता जाऊँगी—मुझसे किसी तरह नहीं रहा गया।"

विनय ने पूछा, "और वे सब?"

ललिता ने कहा, "अभी तक किसी को मालूम नहीं है। मैं चिट्ठी रखकर आई हूँ पढ़ेंगे तो पता लगेगा।"

ललिता के इस दुःसाहस से विनय स्तम्भित हो गया। सकुचाता हुआ कहने को हुआ, "किन्तु···"

ललिता ने जल्दी से उसे टोकते हुए कहा, "जहाज़ तो छूट गया, अब और किन्तु को लेकर क्या होगा। लड़की होकर जन्मी हूँ, इसीलिए चुपचाप सब सह लेना होगा, ऐसा मैं नहीं मानती। हमारे लिए भी न्याय-अन्याय और सम्भव-असम्भव होता है। आज के न्योते में अभिनय करने जाने से आत्म-हत्या कर लेना मेरे लिए कहीं ज्यादा आसान है।"

विनय ने समझ लिया कि जो होना था हो गया है, अब इस काम की अच्छाई-बुराई सोचकर मन को सताने से कोई लाभ नहीं है।

कुछ देर चुप रहकर ललिता ने कहा, "देखिए, आपके बन्धु गौर मोहन बाबू के प्रति मैंने मन-ही-मन बड़ा अन्याय किया था। न जाने क्यों शुरू से ही उन्हें देखकर, उनकी बात सुनकर मेरा मन उनके विरुद्ध हो गया था। वह बहुत ज़्यादा ज़ोर देकर अपनी बात कहते थे, और आप सब लोग मानो उनकी हाँ-में-हाँ मिला देते थे यह देखकर मुझे गुस्सा आता रहता था। मेरा स्वभाव ही ऐसा है - जब देखती हूँ कि कोई बात में या व्यवहार में ज़ोर दिखा रहा है तो मैं बिल्कुल सह नहीं सकती। लेकिन गौरमोहन बाबू केवल दूसरों पर ज़ोर नहीं दिखाते, अपने को भी वैसे ही काबू में रखते हैं---यही सच्ची ताकत है। ऐसा आदमी मैंने और नहीं देखा।"

इस प्रकार ललिता बोलती ही गई। केवल गोरा के बारे में उसे अनुताप हो रहा हो इसलिए वह ये सब बातें कह रही हो, इतनी ही बात नहीं थी। असल में उसने जोश में जो काम कर डाला था उसका संकोच ही उसके मन के भीतर उमड़ आना चाहता था। बारम्बार यह द्विविधा मन में उभर आती थी कि वह काम शायद ठीक नहीं हुआ। स्टीमर पर विनय के साथ ऐसे अकेले बैठे रहना कितने असमंजस की बात हो सकती है, यह वह इससे पहले सोच भी नहीं सकी। लेकिन लज्जा दिखाने से यह मामला और भी लज्जाजनक हो जायगा, इसीलिए वह प्राण-पण से चेष्टा करके बातें किये जा रही थी। विनय के मुँह से कोई बात ही नहीं निकल रही थी। एक ओर गोरा का दुःख और अपमान, दूसरी ओर इस बात की ग्लानि कि वह यहाँ मजिस्ट्रेट के घर मौज करने आया था, इनके ऊपर ललिता को लेकर इस आकस्मिक परिस्थिति का संकट, सबने मिलकर विनय को अवाक् कर दिया था।

पहले कभी होता तो ललिता के इस दुःसाहस पर विनय के मन में तिरस्कार का भाव उदित होता, लेकिन आज वैसा नहीं हुआ। इतना ही नहीं, उसके मन में जो विस्मय उदित हुआ था उसके साथ श्रद्धा भी मिली हुई थी। साथ ही एक आनन्द भी था कि उनके सारे दल में गोरा के अपमान के प्रतिकार की - सामान्य प्रतिकार की भी - चेष्टा करने वाले केवल विनय और ललिता ही थे। इसके लिए विनय को तो विशेष कुछ मुसीबत नहीं उठानी पड़ेगी, लेकिन ललिता को अपने काम के फल में बहुत दिनों तक काफी कष्ट भोगना पड़ेगा। और इसी ललिता को विनय बराबर गोरा का विरोधी समझता आया था! विनय जितना ही सोचता रहा उतना ही ललिता के इस परिणाम-चिन्ताविहीन साहस पर और

अन्याय के प्रति एकान्त घृणा के भाव पर विनय को श्रद्धा होने लगी। कैसे, क्या कहकर वह इस श्रद्धा को प्रकाशित कर सकता है, वह सोच न सका। बार-बार उसके मन में यह बात आने लगी कि ललिता जो उसे साहसहीन और दूसरों का मुंह जोहने वाला कहकर तिरस्कार करती थी, वह उचित ही था। वह तो कभी किसी विषय में भी अपने सब आत्मीय-बन्धुओं की निन्दा-प्रशंसा की उपेक्षा करके साहसिक आचरण के द्वारा अपना मत प्रकाशित न कर सकता। उसने जो कई बार गोरा को कष्ट पहुँचने के डर से, अथवा कहीं गोरा उसे निर्बल न समझ ले इस आशंका से अपने स्वभाव का अनुसरण नहीं किया, और कई बार बाल की खाल उतारने वाली दलीलों से अपने को यह भुलावा देने की कोशिश की है कि गोरा की राय उसकी राय है, आज मन-ही-मन यह स्वीकार करके उसने ललिता को उसकी स्वाधीन बुद्धि-शक्ति के कारण अपने से कहीं श्रेष्ठ मान लिया। इससे पहले वह मन-ही-मन अनेक बार ललिता की बुराई करता रहा। वह याद करके उसे शर्म आने लगी। यहाँ तक कि उसने चाहा कि ललिता से क्षमा माँग ले, किन्तु कैसे क्षमा माँगे, यह वह नहीं सोच सका। ललिता की कमनीय स्त्री-मूर्ति अपने भीतरी तेज के कारण विनय की आँखों में ऐसी महिमामयी होकर दिखाई दी कि विनय ने नारी के इस अपूर्व परिचय से अपने जीवन को धन्य माना। अपने सारे अहंकार, सारी क्षुद्रता को उसने इस माधुर्य-मंडित शक्ति के आगे उत्सर्ग कर दिया।

२०

ललिता को साथ लिये हुए विनय परेश बाबू के घर पहुँचा।

ललिता के बारे में विनय के मन का भाव क्या है, यह वह स्टीमर पर सवार होने तक ठीक-ठीक नहीं जानता था। ललिता के साथ झगड़ा ही मानो उसके मन पर छाया रहता था। कैसे इस मनचली लड़की के साथ सुलह की जा सकती है, कुछ दिनों से तो मानो यही उसकी दैनिक चिंता हो गई थी। विनय के जीवन में सुचरिता ही पहले-पहल सन्ध्या-तारे की तरह स्त्री-माधुर्य की निर्मल दीप्ति लेकर प्रकट हुई थी। विनय यही समझता था। इसी आविर्भाव के अलौकिक आनन्द ने उसकी प्रकृति को परिपूर्णता दी है। लेकिन इस बीच और भी तारे निकल आए

हैं, और ज्योति के उत्सव की भूमिका पूरी करके पहला तारा धीरे-धीरे क्षितिज के पार चला गया है, यह बात वह स्पष्ट नहीं पहचान सका था।

जिस दिन विद्रोही ललिता स्टीमर पर सवार हो गई, उस दिन विनय के मन में आया, 'ललिता और मैं एक तरफ होकर मानो सारे संसार के प्रतिकूल खड़े हुए हैं।' इस घटना के द्वारा ललिता और सबको छोड़कर उसीके पार्श्व में आ खड़ी हुई है, इस बात को विनय किसी तरह नहीं भुला सका। चाहे जिस कारण हो, चाहे जिस उपलक्ष्य से हो, ललिता के लिए विनय आज केवल बहुत-से लोगों में एक जन-मात्र नहीं रहा है—ललिता के पार्श्व में अकेला वही है, एकमात्र वही है—सारे आत्मीय स्वजन दूर हैं, वही निकट है। इसी समीपता का पुलक-भरा स्पन्दन बिजली से आविष्ट मेघ की भाँति उसके हृदय में गड़गड़ाने लगा। जब ललिता पहले दर्जे के केबिन में सोने चली गई तब विनय अपनी जगह पर सोने के लिए नहीं आ सका। उसी केबिन के बाहर डेक पर वह जूते उतारकर निःशब्द पैरों से टहलता रहा। स्टीमर में ललिता पर कोई मुसीबत आने की कोई सम्भावना नहीं थी, किंतु विनय अपने अचानक मिले नये अधिकार का भरपूर अनुभव करने के लोभ से बिना जरूरत मेहनत किये बिना न रह सका।

गहरी अँधेरी रात, तारों से भरा हुआ मेघ-शून्य आकाश। किनारे की तरु-श्रेणी मानो रात के आकाश की घनी काली सुनसान दीवार की तरह स्तब्ध खड़ी थी। नीचे चौड़ी नदी की प्रबल धारा निःशब्द बह रही थी। उसीके बीच में ललिता सो रही है। और कुछ नहीं, यही सुन्दर विश्वास-भरी नींद ही ललिता ने आज विनय के हाथों में सौंप दी है विनय ने किसी महामूल्य रत्न की तरह इस नींद की ही रक्षा करने का भार लिया है। माता-पिता, भाई-बहन कोई वहाँ नहीं हैं, एक अपरिचित शय्या पर ललिता अपनी सुन्दर देह को लिटाकर निःश्चिन्त सो रही है। निश्वास-प्रश्वास मानो उसी निद्रा-काव्य को छन्द में बाँधते हुए शान्त भाव से आ-जा रहे हैं। उस निपुण कबरी की एक लट भी इधर-उधर नहीं हुई है, उस नारी-हृदय की कल्याण-कोमलता से मंडित दोनों हाथ परिपूर्ण विश्राम में बिस्तर पर पड़े हैं, दोनों कुसुम सुकुमार तलवे मानो किसी उत्सव के अवसान-संगीत की भाँति अपनी सब रमणीय गति-चेष्टाओं को स्तब्ध करके बिस्तर पर सटे हुए पड़े हैं। सम्पूर्ण विश्राम की इस छवि ने विनय की कल्पना को छा लिया। तारों-भरे निःशब्द अँधेरे से घिरे हुए इस आकाश-मण्डल के बीचों-बीच ललिता की यह नींद, यह सुन्दर, सुडौल, सम्पूर्ण विश्राम, मानो सीपी में मोती सो रहा हो, आज विनय को मानो संसार का एकमात्र ऐश्वर्य जान पड़ रहा था। 'मैं जाग रहा हूँ, मैं जाग रहा हूँ'— यह वाक्य विनय के भरे हुए हृदय से मानो

अभय की शंख-ध्वनि की भाँति उठकर अनन्त आकाश में अनिमेष जागृत परम पुरुष की नीरव वाणी के साथ घुलने लगा।

कृष्ण पक्ष की इस रात में एक और बात भी बार-बार विनय को कचोट रही थी--कि आज की रात गोरा जेल में है। आज तक विनय गोरा के सभी सुख-दुःख में भाग लेता आया है, यही पहला अवसर है कि ऐसा नहीं हुआ है। गोरा-जैसे व्यक्ति के लिए जेल की सज़ा कुछ नहीं है, यह विनय जानता था, लेकिन इस मामले में शुरू से अन्त तक कहीं भी गोरा के साथ विनय का योग नहीं रहा-गोरा के जीवन की यही एक प्रधान घटना ऐसी थी जिससे विनय का कोई सम्पर्क नहीं रहा। दोनों बन्धुओं के जीवन की धारा इसी जगह आकर अलग हो गई है--जब फिर मिलेगी तब क्या इस विच्छेद की शून्यता को भर सकेगी? बन्धुत्व की पूर्णता क्या यहाँ आकर खंडित नहीं हो गई? जीवन का ऐसा अखंड, ऐसा दुर्लभ बन्धुत्व! आज की रात विनय एक साथ ही अपने जीवन के एक पक्ष की शून्यता और एक दूसरे पक्ष की पूर्णता का अनुभव करता हुआ मानो प्रलय-सृजन के सन्धि-काल में स्तब्ध होकर अन्धकार की ओर ताकता रहा।

अगर यह बात सच होती कि गोरा की यात्रा में विनय संयोगवश ही साथ नहीं दे सका अथवा कि उसके जेल जाने पर दैवयोग के कारण ही विनय का उस दुःख में समभागी होना असम्भव हुआ है, तब इनसे उनके बन्धुत्व को क्षति न पहुँचती। किन्तु गोरा जो यात्रा पर निकला और विनय अभिनय करने गया, यह आकस्मिक घटना नहीं थी। विनय के सारे जीवन की धारा एक ऐसे पथ पर आ पड़ी है जो उनकी पहली दोस्ती का पथ नहीं है. इसी कारण इतने दिन बाद यह बाह्य-विच्छेद भी सम्भव हो सका है। किन्तु अब और कोई उपाय नहीं है-- सत्य को और अस्वीकार नहीं किया जा सकता। गोरा के साथ एक ही अविच्छिन्न पथ पर अनन्यमन होकर चलना आज विनय के लिए सत्य नहीं रहा। किन्तु गोरा और विनय के चिर जीवन का स्नेह क्या इस पथ-भेद से ही छिन्न हो जायगा, इस शंका ने विनय के हृदय को कँपा दिया। वह समझता था कि गोरा उसकी सारी दोस्ती और सारे कर्त्तव्य को एक ही लक्ष्य की ओर खींचे बिना न रह सकेगा। प्रचण्ड गोरा! उसकी इच्छा कितनी प्रबल होती है! जीवन के सब सम्बन्धों द्वारा अपनी उस एक इच्छा को ही सर्वोपरि करके वह जय-यात्रा पर बढ़ता जायगा--विधाता ने गोरा की प्रकृति को ऐसी ही राजमहिमा प्रदान की है।

भाड़ागाड़ी परेश बाबू के दरवाज़े पर आकर रुकी। उतरते समय ललिता के पैर काँप रहे थे; और घर में प्रवेश करते समय उसने ज़ोर लगाकर अपने को कड़ा

कर लिया है, यह विनय स्पष्ट देख सका। ललिता ने झोंक में आकर जो काम कर दिया है उसमें उसका अपराध कितना है इसका ठीक-ठीक अनुमान वह स्वयं नहीं कर पा रही थी। इतना ललिता जानती थी कि परेश बाबू उससे ऐसी कोई बात नहीं कहेंगे जिसे ठीक फटकार कहा जा सके, किन्तु परेश बाबू के इस चुप रह जाने का ही उसे सबसे अधिक भय था।

ललिता के इस संकोच को लक्ष्य करके विनय नहीं सोच सका कि ऐसे मौके पर उसका कर्त्तव्य क्या है। उसके साथ रहने पर ललिता के संकोच का कारण और अधिक होगा या नहीं, इसीकी पड़ताल के लिए उसने कुछ द्विविधा के स्वर में ललिता से कहा, "तो मैं अब चलूं ?"

ललिता ने जल्दी से कहा, "नहीं— चलिए, बाबा के पास चलिए !"

ललिता का यह व्यग्र अनुरोध विनय को मन-ही-मन बहुत अच्छा लगा। ललिता को घर पहुँचा देते ही उसका कर्त्तव्य समाप्त नहीं हो गया है, इस एक आकस्मिक घटना से ललिता के साथ उसके जीवन का एक विशेष गठबन्धन हो गया है यही ध्यान करके विनय मानो एक विशेष दृढ़ता के साथ ललिता के पार्श्व में खड़ा हुआ। उसके प्रति ललिता की इस निर्भरता की कल्पना मानो एक स्पर्श-सी उसके सारे शरीर में बिजली का संचार करने लगी। उसे लगा, जैसे ललिता ने उसका दाहिना हाथ कसकर पकड़ रखा हो। ललिता के साथ इस सम्बन्ध से उसका पौरुष जाग उठा। उसने मन-ही-मन सोचा, ललिता की इस असामाजिक हठकारिता के कारण परेश बाबू बिगड़ेंगे, ललिता को डाँटेंगे, उस समय विनय यथासम्भव सारा दायित्व अपने ऊपर ले लेगा सारी भर्त्सना निःसंकोच अपने ऊपर लेकर कवच की भाँति ललिता की रक्षा करने की चेष्टा करेगा।

लेकिन ललिता के मन का सही भाव विनय नहीं समझ सका। यह बात नही थी कि ललिता उसे भर्त्सना की ओट मानकर ही उसे छोड़ना नहीं चाहती थी। असल बात यह थी कि ललिता कुछ भी छिपाकर नहीं रख सकती। उसने जो कुछ किया है वह समूचा ही परेश बाबू आँखों से देख लें, और उनका जो फ़ैसला हो उसे ललिता पूरी तरह ग्रहण करेगी, यही वह सोच रही थी।

सबेरे से ही ललिता मन-ही-मन विनय पर नाराज हो रही थी, उसका क्रोध असंगत है यह वह खूब जानती थी, लेकिन इससे वह कम नहीं हो रहा था, बल्कि बढ़ ही रहा था।

जब तक वह स्टीमर पर थी तब तक उसके मन की हालत बिलकुल दूसरी थी। बचपन से ही वह कभी गुस्से में आकर, कभी हठ करके, कोई-न-कोई अजीब हरकत करती आई है, किन्तु इस बार का मामला कहीं गम्भीर था। इस निषिद्ध

कार्य में विनय भी उसके साथ मिल गया है, इससे जहाँ एक ओर उसे संकोच हो रहा था वहाँ दूसरी ओर एक निगूढ़ हर्ष भी हो रहा था। यह हर्ष मानो उस निषेध की भावना की चोट से और भी उमड़ उठा था। एक बाहर के व्यक्ति का उसने आज ऐसे आश्रय लिया है, उसके इतना समीप आ गई है, उन दोनों के बीच घर के लोगों की कोई ओट नहीं रही है, इसमें घबराहट का भी काफ़ी कारण था लेकिन विनय की स्वाभाविक भद्रता ने ऐसी एक संयत मर्यादा गढ़ दी थी कि इस आशंकनीय अवस्था में भी विनय के सुकुमार शील का परिचय पाकर ललिता बहुत आनन्दित हो रही थी। यह वह विनय नहीं था जो उनके घर पर बराबर सबके साथ हँसी-मज़ाक करता रहता था, जिसकी बातों का अन्त नहीं था, जो घर के नौकरों तक से निर्बाध आत्मीयता कर लेता था। जहाँ सतर्कता के नाम पर वह बड़ी आसानी से ललिता के और भी निकट आ सकता, वहाँ वह एक ऐसी दूरी का निर्वाह करता रहा था, यह बात उसे ललिता के हृदय के और भी निकट ले आई थी। रात को स्टीमर के केबिन में अनेक चिन्ताओं के कारण वह अच्छी तरह सो नहीं सकी थी। करवटें लेते-लेते अन्त में,जब उसे लगा कि रात अब तक समाप्त हो गई होगी, तब उसने धीरे-धीरे केबिन का दरवाज़ा खोलकर बाहर ताका। भोर का ओस-भीगा अन्धकार तब भी नदी के आकाश और किनारे की वन-श्रेणी को ढके हुए था, अभी-अभी एक शीतल झोंका नदी के जल में लहरों का कल-कल उठाने लगा था और निचले तल्ले में एंजिन-घर के खलासियों के काम शुरू करने की हलचल के लक्षण दीख रहे थे। ललिता ने केबिन से बाहर आकर देखा, पास ही एक बेंत की कुर्सी पर गर्म चादर ओढ़े बैठा-बैठा विनय सोया हुआ है। देखकर ललिता के हृदय का स्पन्दन तेज़ हो गया। सारी रात विनय वहीं बैठकर पहरा देता रहा है! इतना पास, फिर भी इतनी दूर! काँपते पैरों से ललिता डेक से केबिन की ओर लौट गई, दरवाज़े के पास खड़ी होकर उस हेमन्ती प्रत्यूष के अँधेरे में लिपटे अपरिचित नदी-दृश्य के बीच अकेले सोये हुए विनय की ओर देखती रही। सामने की ओर आकाश के तारे मानो विनय की नींद की रखवाली करते हुए-से जान पड़े, एक अनिर्वचनीय गम्भीर माधुर्य से उसका हृदय मानो किनारे तक भर गया। एकाएक उसकी आँखों में आँसू क्यों उमड़ आए, ललिता स्वयं न समझ सकी। मानो जिस ईश्वर की उपासना करना उसने पिता से सीखा है, उसीने ललिता को अपने दाहिने हाथ से छू दिया हो। मानो नदी के तरु-पल्लवों से छाये हुए निद्रित किनारे पर जब रात के अन्धकार के साथ नये आलोक का पहला रहस्यमय मिलन हो रहा हो, उसी पवित्र सन्धि-क्षण में नक्षत्रों की भरी सभा में कोई अनाहत महावीणा दुःसह आनन्द-वेदना के दिव्य संगीत में बज उठी हो।

विनय का हाथ नींद में ही अचानक कुछ हिला। ललिता जल्दी से कैबिन का दरवाज़ा बन्द करके बिस्तर पर लेट गई। उसके हाथ-पैर मानो ठण्डे हो गए, बहुत देर तक वह अपने हृदय की धड़कन को शान्त न कर सकी।

अँधेरा दूर हो गया। स्टीमर चल पड़ा था। ललिता हाथ-मुंह धोकर तैयार होकर बाहर आई और रेलिंग पकड़कर खड़ी हो गई। विनय भी पहले से ही जहाज़ की सीटी से जागकर और तैयार होकर पूर्वी किनारे पर प्रभात की पहली किरण के उदय की प्रतीक्षा में खड़ा था। ललिता के बाहर आते ही वह संकुचित होकर हट जाने का उपक्रम कर रहा था कि ललिता ने पुकारा, "विनय बाबू !"

विनय के पास आते ही ललिता ने कहा, "आप शायद रात को अच्छी तरह सो नहीं सके।"

विनय ने कहा, "मज़े में सोया।"

फिर दोनों में कोई बात नहीं हुई। ओस से भीगे हुए कास-वन के पीछे से आसन्न सूर्योदय की सुनहरी छटा फैलने लगी। इन दोनों ने जीवन में ऐसा प्रभात कभी नहीं देखा था। आलोक ने उन्हें ऐसे कभी नहीं छुआ था। आकाश निरा शून्य नहीं है, वह मौन विस्मय-भरे आनन्द से सृष्टि की ओर अनिमेष देख रहा है, यह उन्होंने पहले-पहल जाना। दोनों की आन्तरिक चेतना आज मानो ऐसी जाग गई थी कि सारे जगत् के अन्तर्निहित चैतन्य से मानो उनका अंग-अंग छू रहा था। दोनों में से कोई कुछ बोल न सका।

स्टीमर कलकत्ता पहुँचा तो विनय ने घाट पर गाड़ी ठीक की और ललिता को भीतर बैठाकर खुद कोचवान के पास बैठा। यही दिन के समय कलकत्ता की सड़क पर गाड़ी में जाते-जाते क्यों ललिता के मन में उलटी हवा बहने लगी, यह कौन बता सकता है। इस संकट के समय स्टीमर पर विनय का होना, विनय के साथ ललिता का इस प्रकार जुड़ जाना, विनय का अभिभावक की भाँति उसे गाड़ी में बिठाकर घर पहुँचाना, ये सब बातें उसे पीड़ा पहुँचाने लगीं। घटनावश विनय को उसके बारे में एक ज़िम्मेदारी का अधिकार मिल जाय, यह उसे असह्य जान पड़ रहा था। ऐसा क्यों हुआ ? रात का वह संगीत दिन में कर्म-क्षेत्र के सामने आने पर क्यों ऐसे कठोर सुर के साथ रुक गया ?

दरवाज़े पर आकर जब विनय ने संकोच करते हुए पूछा, 'तो मैं चलूं,' तो ललिता का क्रोध और भी भभक उठा। उसने सोचा, 'विनय बाबू समझ रहे हैं कि उन्हे साथ लेकर पिता के सामने जाती हुई मैं घबरा रही हूँ।' इस मामले में उसके मन में ज़रा भी संकोच नहीं है, इसी बात को बलपूर्वक प्रमाणित करने के लिए और सारी बात पिता के सामने पूरी-पूरी उपस्थित करने के लिए ही उसने विनय

को दरवाज़े से ही अपराधी की तरह विदा लेकर लौट जाने नहीं दिया।

विनय के साथ अपने सम्बन्ध को वह पहले-जैसा साफ़ कर देना चाहती है—बीच में कोई संकोच या कुण्ठा रहने देकर वह अपने को विनय के सम्मुख छोटा नहीं करना चाहती।

३१

विनय और ललिता को देखते ही सतीश कहीं से दौड़ा हुआ आया। दोनों के बीच खड़े होकर दोनों के हाथ पकड़ता हुआ बोला,"क्यों, बड़ी दीदी नहीं आईं ?"

विनय ने जेब टटोलते और चारों ओर देखते हुए कहा, "बड़ी दीदी! हाँ सचमुच तो—वह तो खो गईं।"

सतीश ने विनय को धक्का देते हुए कहा, "ऊँह, बड़े आए! बताओ न, ललिता दीदी।"

ललिता बोली, "दीदी कल आयेंगी।" और कहती-कहती परेश बाबू के कमरे की ओर बढ़ी।

सतीश ललिता और विनय के हाथ पकड़कर खींचता हुआ बोला, "चलो, देखो हमारे घर कौन आए हैं।"

ललिता ने हाथ छुड़ाते हुए कहा, "जो भी आये हों तेरे, अभी तंग मत कर। अभी बाबा के पास जाऊँगी।"

सतीश ने कहा, "बाबा बाहर गये हैं, उन्हें आने में देर होगी।"

यह सुनकर विनय और ललिता दोनों को क्षण-भर तसल्ली हुई। फिर ललिता ने पूछा, "कौन आया है ?"

सतीश ने कहा, "नहीं बताता। अच्छा, विनय बाबू, आप बताइये तो कौन आया है ? आप कभी नहीं बता सकेंगे—कभी नहीं—कभी नहीं!"

विनय बिलकुल असम्भव और असंगत नाम लेने लगा—कभी नवाब सिराजुद्दौला, कभी राजा नवकृष्ण, यहाँ तक कि एक बार उसने नन्दकुमार का भी नाम ले दिया। ऐसे अतिथियों का आना एकबारगी असम्भव है, इसका अकाट्य प्रमाण देते हुए सतीश चिल्ला-चिल्लाकर उनका खण्डन करने लगा। हार मानते हुए विनय ने नम्र स्वर से कहा, "हाँ यह तो है, सिराजुद्दौला को इस घर में आने

में कई-एक बड़ी मुश्किलें पेश आयेंगी यह बात तो मैंने अभी तक सोची ही नही थी। खैर, पहले तुम्हारी दीदी पड़ताल कर आयें, फिर अगर ज़रूरत होगी तो बुलाते ही मैं भी आऊँगा।"

सतीश ने कहा, "नहीं, आप दोनों चलिए!"

ललिना ने पूछा, "कौन से कमरे में जाना होगा?"

सतीश ने कहा, "तिमंज़िले में।"

तीसरी मंज़िल में छत के कोने पर एक छोटा कमरा है जिसके दक्खिन की ओर धूप-वर्षा से बचने के लिए एक ढालू छत की बरसाती है। सतीश के पीछे-पीछे दोनों ने वहाँ जाकर देखा, बरसाती में एक छोटा आसन बिछाकर अधेड़ उम्र की एक स्त्री आँखों पर चश्मा चढ़ाये कृत्तिवास की 'रामायण' पढ़ रही हैं। चश्मे की एक ओर की टूटी कमानी में डोरा बँधा हुआ था,जो कान पर लपेट लिया गया था। स्त्री की उम्र पैंतालीस के आस-पास होगी, सिर पर सामने की ओर बाल कुछ विरल हो चले थे, किन्तु पके फल से गोरे चेहरे पर अभी कोई झुर्रियाँ नहीं थीं। दोनों भौंहों के बीच गोदने का चिह्न था। शरीर पर कोई अलंकार नहीं था, वेष विधवा का था। पहले ललिता की ओर नज़र पड़ते ही उन्होंने चश्मा उतारकर किताब पटक दी, और उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखा, फिर फौरन ही उसके पीछे विनय को देखकर आँचल सिर पर ओढ़ते हुए खड़ी होकर कमरे की ओर जाने लगी। सतीश ने जल्दी से बढ़कर उनसे लिपटते हुए कहा, "मौसी कहाँ, भाग रही हो—यह हमारी ललिता दीदी हैं. और यह विनय बाबू। बड़ी दीदी कल आयेंगी।"

विनय बाबू का यह अत्यन्त संक्षिप्त परिचय ही काफी हुआ, निःसन्देह विनय बाबू के बारे में पहले ही बहुत काफी बातचीत होती रही थी। दुनिया में सतीश ने चर्चा के लिए जो दो-चार विषय जुटाए हैं, कोई भी मौका मिलते ही सतीश उनकी बात करने लगता है और कुछ भी बचाकर नहीं रखता।

मौसी कहने से यहाँ कौन समझा जाय, यह ठीक निश्चय न कर सकने से ललिता चुप होकर खड़ी रही। विनय ने उस प्रौढ़ा को प्रणाम करके उनकी चरण-धूलि लेते ही ललिता ने भी उसका अनुकरण किया।

मौसी जल्दी से एक चटाई निकाल लाई और बिछाते हुए बोलीं, "बैठो बेटा, बैठो बेटी।"

विनय और ललिता के बैठ जाने पर वह भी अपने आसन पर बैठ गई और सतीश उनसे सटकर बैठा। उन्होंने सतीश को दाहिने हाथ से घेरकर जकड़ते हुए

कहा, "मुझे तुम लोग नहीं जानते, मैं सतीश की मौसी हूँ। सतीश की माँ मेरी सगी बहन थीं।"

बस इतने में परिचय में अधिक कुछ नहीं कहा गया था, लेकिन मौसी के चेहरे और स्वर में ऐसा न जाने क्या था जिससे उनके जीवन की एक गम्भीर दुःख और आँसुओं से मँजी हुई पवित्रता का आभास मिल गया। 'मैं सतीश की मौसी हूँ' कहते हुए जब उन्होंने सतीश को गले से लगा लिया तब उनके जीवन का इतिहास कुछ न जानते हुए भी विनय का मन करुणा से भर उठा। विनय कह उठा,"अकेले सतीश की मौसी होने से नहीं चलेगा। नहीं तो इतने दिन बाद सतीश से मेरी लड़ाई हो जायगी। एक तो सतीश मुझे विनय बाबू कहता है, दादा नहीं कहता, इस पर अगर वह मुझे मौसी से भी वंचित करेगा तो किसी तरह उचित न होगा।"

विनय को किसी का मन लुभाते देर नहीं लगती थी। इस प्रियदर्शी,प्रियभाषी युवक ने देखते-देखते मौसी के मन पर सतीश के बराबर अधिकार कर लिया।

मौसी ने पूछा, "बेटा, तुम्हारी माँ कहाँ है ?"

विनय बोला, "अपनी माँ को तो बहुत दिन पहले खो दिया, लेकिन यह तो नहीं कह सकता कि मेरी माँ नहीं हैं।"

कहते-कहते आनन्दमयी की बात स्मरण करके उसकी आँखें मानों भावों के उद्रेक से गीली हो आईं। दोनों ओर से जमकर बातें होने लगीं। ऐसा बिलकुल नहीं लगता था कि इन दोनों का आज ही नया-नया परिचय हुआ है। बीच-बीच में सतीश भी बिलकुल अप्रासंगिक ढंग से अपना मन्तव्य प्रकट करने लगा। ललिता चुपचाप बैठी रही।

ललिता कोशिश करके भी आसानी से किसी से हिल-मिल नहीं सकती, नये परिचय की खाई लाँघने में उसे काफी समय लगता है। इसके अलावा आज उसका मन भी ठीक नहीं था। विनय जो अनायास ही अपरिचिता से बातों का सिलसिला जोड़ बैठा, यह भी उसे अच्छा नहीं लग रहा था। ललिता जिस संकट में पड़ी हुई है, विनय उसकी गुरुता न समझकर ही ऐसा निश्चिन्त हो रहा है, यह सोचकर वह मन-ही-मन विनय को ओछा कह कर कोसने लगी। लेकिन गम्भीर चेहरा बनाकर चुपचाप उदास बैठे रहने से ही विनय को ललिता के असन्तोष से छुटकारा मिल जाता, यह भी बात नहीं थी। वैसा होने पर ललिता निश्चय ही मन-ही-मन बिगड़ कर कहती, 'बाबा से समझना तो मुझे है; लेकिन विनय बाबू ऐसी शक्ल बनाये बैठे हैं, जैसे सारी जिम्मेदारी उन्हीं के सिर आ पड़ी हो।' असल बात यह थी

कि कल रात को जो आघात संगीत जगा गया था आज दिन के समय उससे केवल व्यथा जागती थी—कुछ भी ठीक नहीं लग रहा था। इसीलिए आज ललिता पग-पग पर विजय से मन-ही-मन लड़ती जा रही है, विनय के किसी व्यवहार से वह झगड़ा सुलझना नहीं—कहाँ इसकी जड़ है जहाँ सुधार होने से वह दूर होगा, यह अन्तर्यामी ही जानते हैं।

हाय रे, हृदय तक ही जिनका संसार सीमित है, उस नारी-जाति के व्यवहार को युक्ति-विरुद्ध कहकर दोष देने से क्या लाभ ! आरम्भ से ही ठीक स्थान पर उसकी प्रतिष्ठा हो जाय तब तो हृदय ऐसी सहज सुन्दर गति से चलता है कि युक्ति-तर्क को हार मानकर उसके सामने सिर झुकाना पड़ता है। किन्तु वैसे ही आरम्भ में लेश-मात्र भी विपर्यय हो जाने से यह बुद्धि के वश की बात नहीं रहती कि उसे सुधार दे। फिर राग-विराग, हँसी-क्रन्दन, किसी भी बात में क्या होने से क्या असर होता है इसका हिसाब चाहना व्यर्थ हो जाता है।

इधर विनय का हृदय-यन्त्र भी कुछ विशेष स्वाभाविक गति से नहीं चल रहा था। उसकी अवस्था अगर बिलकुल पहले-जैसी होती तो वह इसी क्षण दौड़ा हुआ आनन्दमयी के पास जाता। गोरा की जेल की सज़ा की खबर विनय के सिवा और कौन माँ को दे सकता है ? उसके सिवा माँ के पास सान्त्वना के लिए और है भी क्या ? इसी की व्यथा विनय के मन की गहराई में एक भार-सी उसे दबाये जा रही थी। लेकिन ललिता को अभी छोड़कर चले जाना भी उसके लिए असम्भव हो गया था। सारे संसार के विरुद्ध आज वही ललिता का रक्षक है। परेश बाबू के सम्मुख ललिता के सम्बन्ध में उसका कुछ कर्तव्य हो तो उसे वह पूरा करके ही जाना होगा, यह बात वह अपने मन को समझा रहा था। और मन ने भी थोड़े से प्रयत्न से ही यह बात समझ ली थी, प्रतिवाद की क्षमता ही उसमें नहीं थी। गोरा और आनन्दमयी के लिए विनय के मन में चाहे जितना दर्द हो, ललिता का अत्यन्त निकट अस्तित्व उसे आज ऐसा आनन्द दे रहा था, जैसे खुलेपन का, सारे संसार में एक ऐसे गौरव का बोध करा रहा था—अपनी एक विशिष्ट स्वतन्त्र सत्ता का उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि उसके मन की व्यथा मन के निचले तल पर ही दबी रह गई। ललिता की ओर आज वह देख नहीं पा रहा था, बीच-बीच में अपने-आप ही जितना नज़र पड़ जाता—ललिता के आँचल का अंश, गोद में निश्चल पड़ा हुआ एक हाथ—उतना ही उसे पुलकित कर जाता था।

देर होती गई। परेश बाबू नहीं लौटे। यह सोचकर चलने के लिए भीतर से ताक़ीद क्रमशः प्रबल होने लगी। उसे किसी तरह दबाने के लिए विनय सतीश की मौसी के साथ और भी मन लगाकर बातें करने लगा। अन्त में ललिता की विरक्ति

और दबी न रह सकी, वह विनय की बात को बीच ही में टोकती हुई कह उठी, "आप और देर किसलिए कह रहे हैं ? बाबा कब आयेंगे इसका कुछ ठीक नहीं है। आप एक बार गौर बाबू की माँ के पास नहीं जायँगे ?"

विनय चौंक उठा। ललिता की विरक्ति का स्वर उसका खूब पहचाना हुआ था। ललिता के चेहरे की ओर देखकर वह फ़ौरन उठ खड़ा हुआ। सहसा डोर टूट जाने से धनुष जैसे सीधा हो जाता है कुछ उसी ढंग से वह खड़ा हुआ ! वह देर क्यों करने लगा ? यहाँ उसकी कोई बड़ी ज़रूरत थी, ऐसा अहंकार तो उसने स्वयं नहीं किया था, वह तो दरवाज़े से ही विदा ले रहा था, ललिता ने ही तो उसे अनुरोध करके रोक लिया था और अब ललिता ही यह पूछ रही है !

विनय ऐसे हड़बड़ाकर आसन छोड़कर उठ खड़ा हुआ था कि ललिता ने विस्मित होकर उसकी ओर देखा। उसने लक्ष्य किया कि विनय के चेहरे की स्वाभाविक मुस्कराहट एकाएक ऐसे बुझ गई है मानो फूंककर दिया बुझा दिया गया हो। विनय का ऐसा व्यथित चेहरा, उसके भाव का ऐसे अकस्मात परिवर्तन ललिता ने पहले कभी नहीं देखा था। उसके विनय की ओर देखते ही तीखा अनुताप एक कोड़े की मार से बार-बार उसके हृदय को सालने लगा।

सतीश ने जल्दी से उठकर विनय बाबू का हाथ पकड़कर झूलते हुए मनुहार के स्वर में कहा, "विनय बाबू, बैठिए, अभी मत जाइए ! आज हमारे यहाँ खाना खाकर जाइएगा। मौसी, विनय बाबू को यहीं खाने को कह दो न ! ललिता दीदी, विनय बाबू को जाने को क्यों कहती हो ?"

विनय ने कहा, "भाई सतीश, आज नहीं। मौसी को याद रह जाय तो फिर एक दिन आकर प्रसाद पा लूंगा। आज तो देर हो गई।"

बात कुछ असाधारण नहीं थी, किन्तु स्वर मानो रुंधे हुए आँसू से भर्राया हुआ था। उसकी करुणा सतीश की मौसी के कानों में भी खटक गई। उन्होंने चकित-सी होकर एक बार विनय की ओर, एक बार ललिता के चेहरे की ओर देखा—समझ लिया कि अनदेखे ही भाग्य का कुछ खेल हो रहा है।

थोड़ी देर बाद ही कोई बहाना करके ललिता उठकर अपने कमरे में चली गई। कितनी बार उसने अपने को इस तरह रुलाया है !

३२

विनय उसी समय आनन्दमयी के घर की ओर चला। लज्जा और वेदना की एक मिश्रित भावना उसके मन को भारी कष्ट दे रही थी। अब तक क्यों नहीं माँ के पास गया—कैसी भूल की उसने ! उसने समझा था, ललिता को उसकी विशेष आवश्यकता है। सब आवश्यकताओं को उलाँघकर वह जो कलकत्ता पहुँचते ही दौड़ा हुआ आनन्दमयी के पास नहीं गया, इसलिए भगवान् ने उसे उचित दंड दिया—अन्त में उसे ललिता के मुँह से यह सुनना पड़ा कि 'एक बार गौर बाबू की माँ के पास नहीं जायँगे ?' कभी पल-भर के लिए भी ऐसा अन्धेर हो सकता है कि गौर बाबू की माँ की बात विनय की अपेक्षा ललिता के लिए अधिक महत्त्व की हो जाय ! ललिता तो उन्हें केवल गौर बाबू की माँ के रूप में पहचानती है, लेकिन विनय के लिए तो वह सारे जगत् की सब माताओं की एकमात्र प्रत्यक्ष प्रतिमा है।

आनन्दमयी अभी-अभी स्नान करके कमरे में फ़र्श पर आसन बिछाकर उस पर चुपचाप बैठी थीं, शायद मन-ही-मन जप कर रही थीं। विनय ने जल्दी से उनके पैरों पर गिरते हुए कहा, "माँ !"

आनन्दमयी ने उसके झुके हुए सिर पर दोनों हाथ रखते हुए कहा, "विनय !"

माँ जैसा स्वर और किसका हो सकता है ? इस स्वर से ही मानो एक करुणा विनय के सारे शरीर को सहला गई। उसने आँसुओं को रोकते हुए रुँधे गले से कहा, "माँ, मुझे देर हो गई।"

आनन्दमयी बोलीं, "मैंने सारी बात सुन ली है, विनय !"

विनय ने चकित स्वर से दुहराया, "सब बात सुन ली है !"

गोरा ने हवालात से ही माँ के नाम पत्र लिखकर वकील बाबू के हाथ भिजवा दिया था। उसने ठीक ही अनुमान किया था कि उसे अवश्य जेल की सज़ा होगी।

पत्र के अन्त में उसने लिखा था—

"कारावास से तुम्हारे गोरा का रत्ती-भर भी नुकसान नहीं होगा। किन्तु तुम्हें ज़रा-सा भी दुःख नहीं करना होगा तुम्हारा दुःख ही मेरी सज़ा होगी, और कोई दण्ड देना मजिस्ट्रेट के वश का नहीं है। माँ, तुम अकेले अपने बेटे की बात मत सोचना, और भी अनेक माँओं के बेटे जेलों में बेकसूर पड़े रहते हैं, एक बार उनके बराबर कष्ट के मैदान में खड़े होने की इच्छा थी। इस बार यह इच्छा पूरी हो जाय तो मेरे लिए दुःख न करना !

"माँ, न मालूम तुम्हें याद है या नहीं, जिस साल अकाल पड़ा था मैं एक बार सड़क के साथ वाले कमरे में मेज़ पर अपना बटुआ छोड़कर पाँच मिनट के लिए दूसरे कमरे में गया था। लौटकर देखा कि बटुआ चोरी हो गया है। बटुए में मेरी स्कालरशिप से जमा किये हुए पचासी रुपए थे। मैंने मन-ही-मन संकल्प कर रखा था कि कुछ रुपये जमा हो जाने पर तुम्हारे पैर धोने के जल के लिए एक चाँदी का लोटा बनवाऊँगा। रुपये चोरी जाने पर जब मैं चोर के प्रति व्यर्थ क्रोध से जल रहा था तब भगवान् ने हठात् मुझे एक सुबुद्धि दी। मैंने मन-ही-मन कहा, जिस किसी ने भी मेरे रुपये चुराये है, इस अकाल के दिन मे उसी को वे रुपये दान करता हूँ। मेरे ऐसा कहते ही मेरे मन का सारा निष्फल क्रोध शान्त हो गया। आज वैसे ही मैं अपने मन को बता रहा हूँ कि मैं जान-बूझकर ही जेल में जा रहा हूँ। मेरे मन में कोई कष्ट नही है, किसी के ऊपर गुस्सा नहीं है। मैं जेल में मेह-मानी करने ही जा रहा हूँ। वहाँ आहार-विहार की मुश्किल तो होगी किन्तु इस बार घूमते हुए मैंने कई घरों का आतिथ्य पाया है, उन सब जगहों पर अपने अभ्यास या आवश्यकता के अनुसार सुविधा नहीं पाता रहा। जान-बूझकर जो ग्रहण किया गया हो वह कष्ट तो कोई कष्ट नहीं है, आज जेल का आश्रय मैं इच्छा करके ही ले रहा हूँ। जितने दिन जेल में रहूँगा, एक दिन भी कोई मुझे जबरदस्ती वहाँ नहीं रख रहा है यह तुम निश्चय मानना।

"पृथ्वी पर जब हम लोग घर बैठे अनायास आहार-विहार पा रहे थे, निरन्तर अभ्यास के कारण ही यह सोच भी नहीं पा रहे थे कि खुले आकाश और प्रकाश में घूमने-फिरने का अधिकार अपने-आपमें कितना बड़ा अधिकार है, उसी समय में पृथ्वी पर कितने ही लोग अपने दोष से या बिना दोष के ही ईश्वर के दिये हुए विश्व के अधिकारों से वंचित होकर बन्धन और अपमान भोग रहे थे आज तक हमने उनकी बात नहीं सोची थी, उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखा था। अब मैं उन्हीं के दाग से उनके समान दागी होकर ही बाहर आना चाहता हूँ। पृथ्वी के अधिकतर नकली भलेमानस जो भद्र लोग बने बैठे हैं, उन्ही के दल में घुसकर अपना सम्मान बनाये रखना मैं नही चाहता।

"माँ, दुनिया से परिचय पाकर अब मैंने बहुत-कुछ सीखा है। ईश्वर जानते हैं, दुनिया में जिन लोगों ने न्याय करने का भार लिया है, अधिकतर वही दया के पात्र हैं। जो दण्ड पाते नहीं, देते हैं, उन्ही के पाप की सज़ा जेल के कैदी भोगते हैं। अपराध तो बहुत-से लोग मिलकर गढ़ते है और प्रायश्चित करते हैं ये बेचारे कैदी। जो लोग जेल के बाहर मज़े कर रहे है, सम्मान पा रहे हैं, उनके पाप का क्षय कब, कहाँ, कैसे होगा, यह तो नहीं जानता। पर मैं उस मज़े और उस सम्मान

को धिक्कारकर मनुष्य के कलंक का दाग छाती पर लगवाकर निकलूंगा—माँ, तुम मुझे आशीर्वाद दो, तुम आँसू मत बहाना ! भृगु के पदाघात का चिह्न श्रीकृष्ण सदा वक्ष पर धारण किये रहे, दुनिया में अत्याचारी लोग जहाँ जितना अन्याय करते हैं उससे भगवान् की छाती का यह चिह्न और गहरा होता जाता है। वह चिह्न अगर उनका आभूषण हो सकता है, तो फिर मुझे किस बात की चिन्ता है, और तुम्हें किस बात का दुःख ?"

यह चिट्ठी पाकर आनन्दमयी ने महिम को गोरा के पास भेजने की कोशिश की थी। महिम ने कह दिया कि उनकी नौकरी है और साहब किसी तरह छुट्टी नहीं देंगे। और यह कहकर गोरा की नासमझी और अक्खड़पन के लिए उसे कोसने लगे। बोले, "उसी के कारण किसी दिन मेरी नौकरी भी चली जायगी।" कृष्ण दयाल को इस बारे में कुछ भी कहना आनन्दमयी ने आवश्यक न समझा। गोरा को लेकर स्वामी से उन्हें गहरी शिकायत थी। वह जानती थीं कि कृष्णदयाल ने कभी अपने हृदय में गोरा को पुत्र का-सा स्थान नहींदिया है, बल्कि गोरा के सम्बन्ध में उनके अन्तःकरण में एक विरोधी भाव भी है। गोरा मानो आनन्दमयी के दाम्पत्य मम्बन्ध को विन्ध्याचल की भाँति विभाजित करता हुआ खड़ा था—उसके एक तरफ अपने अत्यन्त सतर्क शुद्धाचार को लेकर कृष्णदयाल अकेले थे और दूसरी ओर अपने म्लेच्छ बेटे गोरा के कारण आनन्दमयी अकेली थीं। गोरा के जीवन का इतिहास पृथ्वी पर जो दो जने जानते थे उनके बीच सम्पर्क का रास्ता मानो बन्द हो गया था। इन्हीं सब कारणों से गृहस्थी में गोरा के प्रति आनन्दमयी का स्नेह उनकी एकान्त अकेली सम्पत्ति था। इस परिवार में गोरा के अनधिकार रहने को वह चारों ओर से हलका करते रहने की कोशिश करती थीं। उन्हें बराबर यह चिन्ता रहती थी कहीं कोई उन्हें यह न कहे कि "तुम्हारे गोरा के कारण ऐसा हुआ," "तुम्हारे गोरा के कारण ही यह बात सुननी पड़ी," अथवा "तुम्हारे गोरा ने हमारा यह नुकसान कर दिया।" गोरा की सारी जिम्मेदारी उन्हीं को जो है। और फिर उनका गोरा कुछ कम दुर्दम भी तो नहीं है। जहाँ वह रहता है वहाँ उसके अस्तित्व को छिपा रखना कोई आसान काम नहीं है। इसी अपनी गोद के पगले गोरा को उन्होंने इस विरोधी परिवार के बीच इतने दिनों तक रात-दिन संभालकर इतना बड़ा किया है—बहुत कुछ सुना है जिसका उन्होंने कभी जवाब नहीं दिया, बहुत दुःख सहा है जिसका वह किसी से हिस्सा नहीं बँटा सकीं।

आनन्दमयी चुपचाप खिड़की के पास बैठी रहीं। वहीं बैठे-बैठे उन्होंने देखा, कृष्णदयाल प्रातःस्नान करके ललाट, भुजा और वक्ष पर गंगा की मिट्टी की छाप

लगाये मन्त्र उच्चारण करते-करते घर के भीतर आये, आनन्दमयी उनके पास नहीं जा सकीं। निषेध, निषेध, सब ओर निषेध—अन्त में लम्बी साँस लेकर अनन्दमयी उठीं और महिम के कमरे में गईं। महिम उस समय फ़र्श पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे और उनका नौकर उनके स्नान के पूर्व तेल से उनके बदन की मालिश कर रहा था। आनन्दमयी ने उनसे कहा, "महिम, मेरे साथ किसी को कर दो तो मैं ही जाकर देख आऊँ कि गोरा का क्या हुआ। वह तो यह सोचकर स्थिर होकर बैठा है कि वह जेल जायगा ही, उसे अगर जेल होती ही है तो मैं क्या एक बार उससे पहले जाकर मिल भी नहीं सकूँगी ?"

बाहर से महिम का व्यवहार चाहे जैसा रहा हो, गोरा के प्रति उन्हें एक तरह का स्नेह भी था। ऊपर से तो उन्होंने गरजकर कह दिया, ' जाय अभागा जेल ही जाय -- अब तक नहीं गया, यही अचरज है ! " लेकिन कहने के बाद ही उन्होंने अपने विश्वासी परान घोषाल को बुलाकर उसके हाथ वकील के खर्च के लिए कुछ रुपये देकर उसे तत्काल रवाना कर दिया और मन-ही-मन यह भी निश्चय कर लिया कि आफ़िस में अगर साहब से छुट्टी मिल गई और घर में अगर बहू राज़ी हुई तो वह स्वयं भी जायँगे।

आनन्दमयी भी जानती थीं कि गोरा के लिए कुछ किये बिना महिम कभी नहीं रह सकेंगे। महिम यथासम्भव व्यवस्था कर रहे है, यह जानकर वह अपने कमरे में लौट आई। वह अच्छी तरह जानती थी कि गोरा जहाँ है उस अपरिचित जगह इस संकट के समय लोगों के कौतूहल और मज़ाक और आलोचना का सामना करते हुए उन्हें साथ ले जाने वाला इस परिवार में कोई नहीं है। आँखों में नीरव वेदना की छाया बसाकर ओंठ भींचकर वह चुपचाप बैठ गईं। लछमिया जब धाड़ें मार-मारकर रोने लगी तब उन्होंने उसे डाँटकर दूसरे कमरे में भेज दिया। सभी उद्वेगों को चुपचाप पचा जाना ही उनका हमेशा का अभ्यास रहा है। सुख और दुःख दोनों को ही वह शान्त भाव से ग्रहण करती थी, उनके हृदय की अवस्था को केवल अन्तर्यामी ही जानते थे।

विनय आनन्दमयी को क्या कहे, वह सोच नहीं सका। लेकिन आनन्दमयी किसी से भी किसी प्रकार की सान्त्वना की आशा न रखती थीं, उनके जिस दुःख का कोई इलाज नहीं है उसे लेकर कोई दूसरा उनके साथ चर्चा करने आय इससे उन्हें संकोच होता था। और कोई बात उठने न देकर उन्होंने विनय से कहा, "विनय, अभी तक जान पड़ता है तुमने स्नान भी नहीं किया जाओ, जल्दी से नहा आओ, बड़ी देर हो गइ।"

स्नान करके जब विनय भोजन करने बैठा, तब उसके पास गोरा का स्था:

सूना देखकर आनन्दमयी का हृदय हाहाकार कर उठा। गोरा आज जेल का अन्न खा रहा है, वह अन्न माँ की सेवा द्वारा मधुर न होकर निर्मम शासन के द्वारा कितना कटु हो गया है, यह सोचकर आनन्दमयी को कोई बहाना करके वहाँ से उठ ही जाना पड़ा।

३३

घर आकर ललिता को असमय लौटे हुए देखकर ही परेश बाबू समझ गए कि उनकी इस उद्दाम लड़की ने कोई असाधारण करनी कर डाली है। उनके जिज्ञासु दृष्टि से उनकी ओर देखते ही वह बोल उठी, "बाबा, मैं तो चली आई। किसी तरह भी वहाँ नहीं रह सकी?"

परेश बाबू ने पूछा, "क्यों, क्या हुआ?"

ललिता ने कहा, "मजिस्ट्रेट ने गौर बाबू को जेल भेज दिया।"

गौर बाबू कहाँ से इसके बीच आ गए, या क्या हुआ, परेश कुछ भी समझ नहीं सके। ललिता से पूरा वृत्तान्त सुनकर वह कुछ देर स्तब्ध हुए रहे। फिर सहसा गोरा की माँ की बात सोचकर उनका हृदय व्यथित हो उठा। वह मन-ही-मन सोचने लगे, एक आदमी को जेल भेजने में कितने निरपराध लोगों को कितनी कठोर सज़ा दी जाती है, यह बात अगर दंड देने वाले अपने अन्तःकरण में अनुभव कर सकते, तो किसी को जेल भेजना ऐसा सहज अभ्यास का काम कभी न होता। एक चोर को जो सज़ा दी जाती, गोरा को भी वही सज़ा देना मजिस्ट्रेट के लिए उतना ही आसान हो गया, ऐसी बर्बरता तभी सम्भव हो सकती है जब विचार की धर्म-बुद्धि बिलकुल मर गई हो। दुनिया मे जितनी तरह की हिंसा होती है, मनुष्य के प्रति मनुष्य का दुरात्म भाव उनसे भी कितना अधिक भयानक है, उसके पीछे समाज की और राजा की शक्ति दलबद्ध खड़ी होकर उसे और भी कितना प्रचंड बना देती है, गोरा के कारावास की बात सुनकर यह मानो उनके सामने प्रत्यक्ष हो उठा।

परेश बाबू को चुप होकर सोचता देख ललिता ने उत्साह पाकर कहा, "अच्छा, बाबा, यह क्या भयानक अत्याचार नहीं है?"

परेश बाबू ने अपने स्वाभाविक शान्त स्वर में कहा, "गौर ने कितना क्या

किया है यह तो मैं ठीक नहीं जानता। लेकिन यह बात निश्चय ही कह सकता हूँ कि गौर अपनी कर्त्तव्य-भावना की झोंक में अपने कर्त्तव्य की सीमा का उल्लंघन तो कर सकता है; लेकिन अंग्रेज़ी भाषा में जिसे 'क्राइम' कहते हैं वह गोरा के स्वभाव के बिलकुल विरुद्ध है इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है, लेकिन क्या किया जाय बेटी—इस समय की न्याय-बुद्धि अभी इतना विवेक करने लायक नहीं हुई है। अभी तक अपराध के लिए जो दण्ड है भूल के लिए भी वही दण्ड है। दोनों के लिए एक ही जेल में कोल्हू चलाना पड़ता है। यह कैसे हुआ, इसके लिए किसी एक आदमी को दोष नहीं दिया जा सकता। समूची मानव-जाति का पाप ही इसका उत्तरदायी है।"

सहसा यह प्रसंग बन्द करते हुए परेश बाबू पूछ बैठे, "तुम किसके साथ आईं?"

ललिता ने सीधी होकर मानो विशेष ज़ोर देते हुए कहा, "विनय बाबू के साथ।"

बाहर से ललिता भले ही दृढ़ दीख रही हो, भीतर-ही-भीतर वह दुर्बलता का अनुभव कर रही थी। वह विनय बाबू के साथ आई है, यह बात वह सहज भाव से नहीं कह सकी, न जाने कहाँ से आकर एक लज्जा ने उसे घेर लिया। वह लज्जा उसके चेहरे पर पढ़ी जा सकती है, यह सोचकर वह और गढ़ी जाने लगी।

अपनी इस मनचली लड़की को परेश बाबू अपनी अन्य सब सन्तानों से कुछ अधिक स्नेह करते थे। उनका व्यवहार दूसरों की नज़रों में निन्दनीय हो सकता है, यह जानकर ही उसके आचरण में जो एक निर्भीक सत्यपरता थी उसे वह विशेष महत्त्व देते रहे थे। वह जानते थे कि ललिता का जो दोष है वही बहुत बड़ा होकर लोगों की नज़रों में पड़ेगा, और उसका गुण इतना दुर्लभ होने के बावजूद लोगों से सम्मान नहीं पायगा। परेश बाबू उसी गुण को यत्नपूर्वक सँजोते आए हैं, ललिता की अक्खड़ प्रकृति को कुचलकर उसके साथ ही उसके भीतर की इस महत्ता को कुचल देना उन्होंने नहीं चाहा। उनकी अन्य दोनों लड़कियों को देखते ही सब लोग सुन्दर मान लेते हैं—उनका रंग गोरा है, उनके चेहरे का गठन भी निर्दोष है··· लेकिन ललिता का रंग उनसे साँवला है और उसके चेहरे की कमनीयता के के बारे में भी लोगों में मतभेद रहता है। इसी बात को लेकर वरदासुन्दरी अक्सर पति के सामने इस बात की चिन्ता प्रकट किया करती है कि उसके लिए पात्र खोजना कठिन होगा। किन्तु परेश बाबू को ललिता के चेहरे में जो सौन्दर्य दीखता था वह रंग या गठन का सौन्दर्य नहीं था, वह अन्तर का गम्भीर सौन्दर्य था।

उसमें केवल लालित्य नहीं था, स्वतन्त्रता का तेज और शक्ति की दृढ़ता भी थी; वह दृढ़ता ही सबको आकर्षक नहीं लगती थी। वह कुछ विशेष व्यक्तियों के लिए आकर्षक हो सकती थी, किन्तु अधिकतर तो दूर ठेल देती थी। ललिता संसार में प्रिय नहीं होगी, किन्तु खरी उतरेगी; यह जानकर परेश बाबू मन-ही-मन एक दर्द देकर ललिता को अपने पास खींच लेते थे—उसे और कोई क्षमा नहीं करता यह समझकर ही उस पर करुणा के साथ विचार करते थे।

परेश बाबू ने जब सुना कि ललिता सहसा विनय के साथ अकेली चली आई, तब वह क्षण-भर में समझ गए कि इसके लिए उसे बहुत दिनों तक बहुत दुःख भोगना पड़ेगा, उसने जितना अपराध किया है उससे कहीं बड़े अपराध के दण्ड का विधान लोग उसके लिए करेंगे। वह चुपचाप यह बात सोच ही रहे थे कि बीच में ललिता बोल उठी, "बाबा, मुझसे गलती हुई है। लेकिन अब मैं यह अच्छी तरह समझ गई कि मजिस्ट्रेट के साथ हमारे देश के लोगों का ऐसा सम्बन्ध है कि उनके आतिथ्य में सम्मान जरा भी नहीं है, निरा अनुग्रह है। क्या यह सहकर भी मेरा वहाँ रहना ठीक था ?"

यह प्रश्न परेश बाबू को कुछ ऐसा आसान नहीं जान पड़ा। उन्होंने कोई उत्तर देने की कोशिश न करके दाहिने हाथ से उसके सिर पर हल्की-सी चपत लगाते हुए कहा, "पगली !"

इसी घटना के बारे में सोचते हुए परेश बाबू उसी दिन तीसरे पहर घर के बाहर टहल रहे थे कि विनय ने आकर उन्हें प्रणाम किया। गोरा की सजा के बारे में परेश बाबू उसके साथ बहुत देर तक बातचीत करते रहे, लेकिन ललिता के साथ स्टीमर में आने की कोई चर्चा उन्होंने नहीं उठाई। साँझ होती देखकर उन्होंने कहा, "चलो विनय, भीतर चलें !"

विनय ने कहा, "नहीं, अब मैं घर जाऊँगा।"

परेश बाबू ने दुबारा अनुरोध नहीं किया। विनय ने एक बार मानो चौंककर दुमंजिले की ओर नजर उठाई, और फिर धीरे-धीरे चला गया।

ललिता ऊपर से विनय को देख चुकी थी, जब परेश बाबू अकेले कमरे मे आये तो ललिता ने समझा कि पीछे-पीछे विनय भी आता ही होगा। जब वह कुछ देर बाद तक भी नहीं आया तब मेज पर से दो-एक किताबें और कागज इधर-उधर करके ललिता भी कमरे से चली गई। परेश बाबू ने उसे वापस बुला लिया और उसके उदास चेहरे पर स्नेह-भरी दृष्टि टिकाकर कहा, "ललिता, मुझे कुछ ब्रह्मसंगीत सुनाओ !"

कहते-कहते उन्होंने लैम्प को हटाकर ऐसे रख दिया कि उसका प्रकाश ललिता के चेहरे पर न पड़े।

३४

अगले दिन वरदासुन्दरी और उनके दल के बाकी लोग भी आ गए। हारान बाबू ललिता पर अपने गुस्से को संभाल न पाकर अपने घर न जाकर सीधे इन सबके साथ परेश बाबू के सम्मुख आ उपस्थित हुए। वरदासुन्दरी तो क्रोध के मारे ललिता की ओर देखे बिना या उससे कोई बात भी किये बिना अपने कमरे में चली गईं। लावण्य और लीला भी ललिता पर बहुत नाराज़ थीं। ललिता और विनय के चले आने से उनका आवृत्ति और अभिनय का कार्यक्रम ऐसा पंगु हो गया था कि उन्हें बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा था। सुचरिता हारान बाबू के क्रोध की उत्तेजना, वरदासुन्दरी के हँआसे आक्षेप अथवा लावण्य और लीला के निरुत्साह, किसी में कोई योग दिये बिना एकदम निस्तब्ध थी -अपना निर्दिष्ट काम उसने यन्त्र की तरह कर दिया था और आज भी यन्त्र-चालित-सी सबके पीछे-पीछे घर आ गई थी। सुधीर लज्जा और अनुताप से संकुचित होकर परेश बाबू के घर के दरवाज़े से ही लौट गया था-- लावण्य ने भीतर आने के लिए उससे बहुत आग्रह किया था और अन्त में किसी तरह सफल न होने पर उसने कुट्टी कर दी थी।

हारान परेश बाबू के कमरे में घुसते ही बोले, "एक बहुत बुरी बात हो गई है।"

ललिता परेश बाबू के कमरे में ही थी। यह बात उसके कान में पड़ते ही वह पिता की कुर्सी के पीछे दोनों हाथ रखकर खड़ी हो गई और एकटक हारान बाबू के चेहरे की ओर देखने लगी।

परेश बाबू बोले, "मैंने ललिता से सारी बात सुन ली है। जो बात हो गई है उसको लेकर अब बहस करने से कोई फायदा नहीं है।"

परेश के शान्त और संयत होने के कारण हारान उन्हें बहुत दुर्लभ समझते थे इसीलिए कुछ अवज्ञा से बोले, "बात तो होकर चुक जाती है, लेकिन चरित्र तो वही रहता है, इसीलिए जो हो चुका उस पर बहस करना जरूरी हो जाता है। ललिता ने आज जो हरकत की है वह कभी सम्भव न होती अगर उसे आपसे

बराबर बढ़ावा न मिलता रहता। आप ही उसका कितना अहित कर रहे हैं, यह आज की बात पूरी सुनकर आप अच्छी तरह समझ सकेंगे।"

परेश बाबू ने अपने पीछे कुर्सी के थोड़ा-सा हिलने का अनुभव करके जल्दी से ललिता को अपनी ओर खींच लिया और उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कुछ मुस्कराकर हारान से बोले, "पानू बाबू, जब समय आयगा तब आप भी समझ सकेंगे कि सन्तान को पालने-पोसने के लिए स्नेह की भी ज़रूरत होनी है।"

ललिता ने एक बाँह पिता के गले में डालते हुए झुककर उनके कान में कहा, "बाबा, पानी ठंडा हो रहा है, तुम जाकर नहा लो!"

परेश बाबू ने हारान की ओर संकेत करते हुए कहा, "अभी थोड़ी देर में जाऊँगा--अभी तो ऐसी देर नहीं हुई।"

ललिता ने स्निग्ध स्वर से कहा, "नहीं बाबा, तुम नहा आओ, तब तक पानू बाबू के पास हम लोग तो हैं ही।"

परेश बाबू जब कमरे में चले गए तब ललिता एक कुर्सी खींचकर उस पर जमकर बैठ गई और हारान बाबू के चेहरे पर नज़र जमाकर बोली, "आप समझते हैं, सभी को सब-कुछ कहने का आपको अधिकार है।"

ललिता को सुचरिता पहचानती थी। और कोई दिन होता तो ललिता का यह रूप देखकर वह मन-ही-मन उद्विग्न हो उठती। लेकिन आज वह खिड़की के पास एक कुर्सी पर बैठकर किताब खोलकर चुपचाप उसके पन्ने की ओर देखती रही। अपने को हमेशा बस में रखना ही सुचरिता का स्वभाव भी था और अभ्यास भी, पिछले कुछ दिनों से तरह-तरह के आघातों की व्यथा उसके मन में जितनी अधिक संचित होती रही थी उतना ही वह और भी अधिक नीरव होती गई थी। आज इस नीरवता का भार उसके लिए दूभर हो उठा था। इसीलिए ललिता जब हारान पर अपने मन का गुबार उतारने बैठ गई तब सुचरिता के हृदय के रुँधे हुए वेग को भी मानो फूट निकलने का अवसर मिल गया।

ललिता ने कहा, "हमारे बारे में बाबा का क्या कर्त्तव्य है, आप समझते है कि यह बाबा से आप ज्यादा जानते हैं! आप ही क्या सारे ब्राह्म-समाज के हेडमास्टर हैं?"

ललिता का ऐसा उद्धत रूप देखकर हारान बाबू पहले तो हतबुद्धि हो गए थे। अब वह ललिता को कोई बहुत बड़ा जवाब देना चाह रहे थे, पर ललिता ने उन्हें मौका न देते हुए कहा, "इतने दिनों से हम आपका बड़प्पन झेलते आए हैं लेकिन आप अगर बाबा से भी बड़ा होना चाहते हैं तो इस घर में कोई नहीं सहेगा—हमारा बैरा भी नहीं।"

हारान बाबू ने किसी तरह कहा, "ललिता, तुम···"

ललिता ने उनकी बात काटते हुए और भी तीखे स्वर से कहा, "चुप रहिए ! आपकी बात हम लोगों ने बहुत सुनी हैं, आज मेरी बात सुन लीजिए ! आपको विश्वास न हो तो सुचि दीदी से पूछ लीजिएगा—आप अपने को जितना बड़ा कल्पना करते हैं, मेरे बाबा उससे कहीं अधिक बड़े हैं। अब आपको जो कुछ उपदेश मुझे देना हो दे डालिए !"

हारान बाबू का चेहरा स्याह पड़ गया था। वह कुर्सी ठेलकर उठते हुए बोले, "सुचरिता !"

सुचरिता ने किताब की ओर से चेहरा उठाया। हारान बाबू बोले, "तुम्हारे सामने ललिता मेरा अपमान करेगी ?"

सुचरिता ने धीमे स्वर से कहा, "वह आपका अपमान करना नहीं चाहती—ललिता यही कहना चाहती है कि आप पिता जी का सम्मान करते रहें। उनके बराबर सम्मान के योग्य किसी दूसरे को हम तो नहीं जानतीं।"

एक बार तो ऐसा लगा कि हारान बाबू उसी वक्त चले जायेंगे। लेकिन वह गये नहीं। चेहरा अत्यन्त गम्भीर करके फिर बैठ गए। इस घर में धीरे-धीरे उनका मान घटता जा रहा है, जितना ही वह इसका अनुभव करते थे, उतना ही यहाँ अपना स्थान जमाये रखने की अधिक चेष्टा करते थे। यह वह भूल जाते थे कि जो सहारा कमजोर हो उसे ज़ोर से जकड़ना चाहने से वह और भी टूटता जाता है।

हारान बाबू यों गम्भीर होकर चुप हैं, यह देखकर ललिता उठकर सुचरिता के पास जा बैठी और उसके साथ ऐसे मृदु स्वर से बातें करने लगी मानो कुछ बात ही न हुई हो।

इसी बीच सतीश ने कमरे में आकर सुचरिता का हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा, "बड़ी दीदी, चलो !"

सुचरिता ने पूछा, "कहाँ जाना है ?"

सतीश बोला, "चलो न, तुम्हें एक खास चीज दिखानी है। ललिता दीदी, तुमने बता तो नहीं दिया ?"

ललिता ने कहा, "नहीं।"

सतीश का ललिता के साथ फैसला हुआ था कि उसकी मौसी की बात ललिता सुचरिता के आगे प्रकट नहीं कर देगी। ललिता ने अपना वायदा नहीं तोड़ा था।

सुचरिता अतिथि को छोड़कर नहीं जा सकती थी। बोली, "बख्त्यार, अभी थोड़ी देर में चलूंगी—बाबा ज़रा नहाकर आ जायें।"

सतीश उतावला हो उठा। किसी तरह हारान बाबू को आँखों से ओझल करने की कोशिश में उससे कभी चूक नहीं होती थी। हारान बाबू से वह बहुत डरता था इसलिए और कुछ नहीं कह सका। हारान बाबू भी बीच-बीच में सतीश को सुधारने की चेष्टा करने के अलावा उससे किसी तरह का सम्पर्क नहीं रखते थे।

परेश बाबू के स्नान करके आते ही सतीश अपनी दोनों दीदियों को खींच ले गया।

हारान बोले, "सुचरिता के बारे में वह जो प्रस्ताव था, उसमें और देर करना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ अगले रविवार को ही वह काम हो जाय।"

परेश बाबू बोले, "मुझे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है, सुचरिता की राय है तो ठीक है।"

"उनकी तो राय पहले ही ली जा चुकी है।"

"अच्छी बात है, तो फिर ऐसे ही सही।"

३५

उस दिन ललिता के पास से लौटकर विनय के मन में एक संशय रह-रहकर काँटे-सा चुभने लगा। वह सोचने लगा, 'परेश बाबू के घर में मेरा आना-जाना किसी को अच्छा लगता है या नहीं लगता, यह ठीक-ठीक जाने बिना मैं जबरदस्ती वहाँ जाता रहता हूँ, शायद यह ठीक नहीं है। शायद मैं कई बार बेवक्त पहुँचकर उन्हें मुश्किल में डालता रहा हूँ। उनके समाज का नियम मैं जानता नहीं, उस घर में मेरे प्रवेश की मर्यादा क्या है, मुझे मालूम नहीं। हो सकता है कि मैं बेवकूफ़ों की तरह ऐसी जगह दखल देता रहा हूँ, जहाँ घर के लोगों को छोड़कर किसी को नहीं जाना चाहिए।"

यह बात सोचते-सोचते सहसा उसके मन में यह बात याद आई कि शायद ललिता ने उसके चेहरे पर कोई ऐसा भाव देखा हो जो उसे अपमानजनक लगा हो। ललिता के प्रति विनय के मन का भाव क्या है, अब तक यह विनय के सामने ही स्पष्ट नहीं था, लेकिन अब वह उससे छिपा न रहा। हृदय के भीतर की इस नई अभिव्यक्ति का क्या किया जाय, इसके बारे में वह कुछ नहीं सोच सका। बाहर के साथ उसका मेल कैसे होगा, संसार के साथ उसका सम्बन्ध क्या है, वह क्या ललिता के प्रति असम्मान है या परेश बाबू के प्रति विश्वास-घात—इन सब प्रश्नों को

लेकर वह बड़ी उधेड़-बुन में पड़ गया। ललिता उसके मन की बात जान गई है और इसीलिए उस पर नाराज हुई है, यह कल्पना करके वह मानो धरती में समा जाना चाहने लगा।

परेश बाबू के घर जाना विनय के लिए असम्भव हो गया और अपने घर का सूनापन भी एक भार-सा उसे दबाने लगा। अगले दिन सबेरे ही वह आनन्दमयी के पास जा पहुँचा और बोला, "माँ, कुछ दिन मैं तुम्हारे यहाँ ही रहूँगा।" विनय के मन में कुछ यह बात भी थी कि गोरा की अनुपस्थिति में आनन्दमयी को वह कुछ सांत्वना दे सकेगा। यह समझकर आनन्दमयी का हृदय द्रवित हो उठा। कुछ कहे बिना उन्होंने एक बार स्नेहपूर्वक विनय के कन्धे पर हाथ रख दिया।

अपने खाने-पीने और सेवा-टहल के मामले में विनय तरह-तरह के नखरे करने लगा। कभी-कभी वह आनन्दमयी के साथ इस बात को लेकर झूठ-मूठ झगड़ा करने लगता कि उसकी वहाँ पूरी खातिर नहीं होती। हर वक्त बातचीत और हल्ला-गुल्ला करते रहकर वह आनन्दमयी को और स्वयं अपने को बहलाने की कोशिश करता। साँझ के समय जब मन को संभालना कठिन होता तब विनय जिद करके आनन्दमयी को घर के कामों से हटाकर अपने कमरे के सामने बरामदे में चटाई बिछाकर बिठा लेता और उनसे उनकी बचपन की और उनके पीहर की बातें सुना करता—जब उनका विवाह नहीं हुआ था और जब वह अपने अध्यापक पितामह के टोल (विद्यालय) के विद्यार्थियों की लाड़ली थीं, जब पितृ-हीना बालिका को सब लोग हर बात में इतना सिर चढ़ाये रखते थे कि उनकी विधवा माता को बड़ी चिन्ता होती रहती थी। विनय कहता, 'माँ, कोई समय ऐसा भी था जब तुम मेरी माँ नहीं थी, यह सोचकर ही मुझे अचरज होता है। मुझे लगता है, कि टोल के लड़के भी तुम्हें अपनी एक बहुत नन्हीं-सी माँ ही समझते रहे होंगे। बल्कि दादा महाशय को भी पालने-पोसने का जिम्मा तुम्हारा ही रहा होगा।"

एक दिन साँझ को चटाई पर फैले हुए आनन्दमयी के पैरों के पास सिर रखते हुए विनय बोला, "माँ, जी चाहता है, अपनी सारी विद्या, बुद्धि विधाता को लौटा-कर फिर शिशु होकर तुम्हारी गोद में आश्रय पाऊँ— दुनिया में तुम्हारे सिवा और मेरा कुछ न हो।"

विनय के स्वर में कुछ ऐसा भारीपन और थकान झलक रही थी कि आनन्द-मयी को व्यथा के साथ विस्मय भी हुआ। वह विनय के पास सरककर धीरे-धीरे उसके माथे पर हाथ फेरने लगीं। काफी देर चुप रहकर उन्होंने पूछा, "विनू, परेश

बाबू के घर तो सब अच्छी तरह है न ?"

प्रश्न से विनय एकाएक चौंककर शरमा गया। सोचने लगा, 'माँ से कुछ भी छिपा नहीं रहता, माँ मेरी अन्तर्यामी हैं।' कुछ हिचकिचाते हुए बोला, "हाँ, वे लोग तो सब ठीक ही है।"

आनन्दमयी बोली, "मेरा बहुत मन होता है कि परेश बाबू की लड़कियों के साथ मेरी जान-पहचान हो जाती। पहले तो उनकी तरफ़ से गोरा के मन का भाव अच्छा नहीं था, लेकिन अब अगर उन्होंने उस तक को वश कर लिया है तो वे सब मामूली लोग नही होंगी।"

विनय ने उत्साहित होकर कहा, "मैंने भी अनेक बार सोचा है कि किसी तरह परेश बाबू की लड़कियों के साथ तुम्हारा परिचय करा देता। लेकिन गोरा को कहीं बुरा न लगे, इस डर से मैंने कभी कुछ कहा नहीं।"

आनन्दमयी ने पूछा, "बड़ी लड़की का नाम क्या है ?"

इस तरह सवाल-जवाब द्वारा परिचय होते-होते जब ललिता की बात आई तब विनय ने उसे किसी तरह जल्दी से टालने की कोशिश की, लेकिन आनन्दमयी नही मानी। मन-ही-मन हँसकर उन्होंने कहा, "सुना है, ललिता की बुद्धि बड़ी तेज़ है ?"

विनय बोला, "तुमने किससे सुना ?"

आनन्दमयी ने कहा, "क्यो, तुम्ही से तो !"

पहले एक समय ऐसा भी था जब ललिता के सम्बन्ध में विनय के मन में किसी प्रकार का संकोच नहीं था। उन्ही मोह-मुक्त दिनों में विनय ने आनन्दमयी के सामने ललिता की तीव्र बुद्धि की कितनी अबाध चर्चा की थी, यह बात वह भूल गया था।

आनन्दमयी कुशल माँझी की तरह सब बाधाओं से बचाती हुई ललिता की बात की नाव को ऐसे चलाती ले गई कि विनय से उसके परिचय के इतिहास की मुख्य बातें प्रायः सभी जान गई। गोरा को सज़ा होने के मामले से दुःख पाकर ललिता स्टीमर में विनय के साथ अकेली भाग आई, यह बात भी विनय ने आज कह डाली। कहते-कहते उसका उत्साह भी बढ़ उठा --साँझ होते ही जिस अवसाद ने उसे धर दबाया था वह न जाने कहाँ उड़ गया। ललिता-जैसे एक आश्चर्यमय चरित्र को जानना और इस तरह उसकी बात कर सकना अपने-आप में उसे एक बहुत बड़ा लाभ जान पड़ने लगा। रात को जब भोजन का बुलावा आने से बातों का क्रम टूटा तब मानो हठात् स्वप्न से जागकर विनय ने जाना कि उसके मन में जो कुछ था वह सभी आनन्दमयी से कह दिया गया है। आनन्दमयी ने सारी बात

ऐसे सहज भाव से सुनी, ऐसे ढंग से ग्रहण की, कि विनय को ऐसा बिलकुल नहीं लगा कि इसमें कहीं कोई लज्जा करने की बात हो सकती है। आज तक विनय ने माँ से कभी कुछ नहीं छिपाया— छोटी-से-छोटी बात भी वह उन्हें बता देता रहा था। लेकिन परेश बाबू के परिवार से परिचय होने के बाद से कहीं कुछ अटक पड़ गई थी जो विनय के लिए स्वास्थ्यकर नहीं थी। आज ललिता के बारे में उसके मन की बात सूक्ष्मदर्शिनी आनन्दमयी के सामने इस प्रकार प्रकट हो गई है, यह सोचकर विनय का मन खिल उठा। माँ के सामने अपने जीवन के इस पहलू का पूरी तरह निवेदन किये बिना वह किसी तरह भी बिलकुल निर्मल न हो पाता— विनय के मन में कहीं कुछ मैल रह ही जाता।

रात को आनन्दमयी बहुत देर तक इन्हीं बातों को लेकर मन-ही-मन सोचती रहीं। गोरा के जीवन में जो समस्या उत्तरोत्तर और जटिल होती जा रही थी, शायद उसका कोई हल परेश बाबू के घर में मिल सकेगा, यह समझकर उन्होंने तय किया कि जैसे भी हो उन लड़कियों से एक बार मिलना ही होगा।

३६

महिम और उनके घर के लोग यही मानकर चल रहे थे कि शशिमुखी के साथ विनय का विवाह एक प्रकार से पक्का हो गया है। शशिमुखी तो अब विनय के सामने आती ही नहीं थी। शशिमुखी की माँ से विनय का परिचय लगभग नहीं था। यह बात नहीं थी कि वह स्वभाव से लजाती हों, लेकिन उनकी प्रवृत्ति हर बात को छिपाकर रखने की थी। उनके कमरे का दरवाज़ा अक्सर बन्द रहता था। पति को छोड़कर और सभी-कुछ को वह ताले में बन्द रखती थीं। पति को भी बहुत खुली छूट मिलती हो ऐसा नहीं था—पत्नी के आसन में उनकी गति-विधि बिलकुल निर्दिष्ट थी और उनकी आज़ादी के क्षेत्र की परिधि अत्यन्त संकीर्ण। सब-कुछ को इस तरह बाँध-घेरकर रखने की उनकी प्रवृत्ति के कारण शशिमुखी की माँ लक्खीमणि का संसार सम्पूर्णतया उनके वश में था। बाहर के व्यक्ति का भीतर आना अथवा भीतर से व्यक्ति का बाहर जाना एक-सा कठिन था। यहाँ तक कि लक्खीमणि के महल में गोरा की भी गति नहीं थी। इस राज्य की व्यवस्था में किसी तरह की कोई द्विविधा नहीं थी, क्योंकि यहाँ क़ानून बनाने वाली भी लक्खीमणि थीं और निचली अदालत से लेकर ऊँची अदालत तक भी

लक्खीमणि ही—एक्ज़ीक्यूटिव और ज्यूडिशियल का भेद तो नहीं ही था, लेजिस्लेटिव भी उसी के साथ मिला हुआ था। बाहर के लोगों के साथ व्यवहार में महिम बड़े कड़े जान पड़ते थे, लेकिन लक्खीमणि के इलाके में उन्हें अपनी इच्छानुसार चलने की कोई गुंजाइश नहीं थी, छोटी-छोटी बातों में भी नहीं।

लक्खीमणि ने विनय को ओट से देख रखा था और पसन्द भी किया था। महिम विनय को बचपन से ही गोरा के बन्धु के रूप में देखने के इतने अभ्यस्त हो गए थे कि शायद अति परिचय के कारण ही उन्होंने विनय को कभी अपनी कन्या के पात्र के रूप में नहीं देखा। लक्खीमणि ने जब उनकी दृष्टि विनय की ओर आकृष्ट की तब सहधर्मिणी की बुद्धि के प्रति उनकी श्रद्धा बढ़ गई। लक्खीमणि ने पक्का निश्चय कर लिया कि विनय के साथ ही उनकी कन्या का विवाह होगा। इस प्रस्ताव में एक बहुत बड़ी सुविधा की बात उन्होंने अपने पति के मन में अच्छी तरह बिठा दी कि विनय उन लोगों से कोई दहेज नहीं माँग सकेगा।

विनय को घर में पाकर भी दो-एक दिन महिम उससे विवाह की बात न कर सके। गोरा की सजा को लेकर उसका मन विषण्ण है, यह सोचकर वह चुप रहे।

आज रविवार था। पत्नी ने महिम की साप्ताहिक दिवा-निद्रा पूरी न होने दी। विनय बंकिम बाबू के नव-प्रकाशित 'बंग दर्शन' का नया अंक लेकर आनन्दमयी को सुना रहा था कि हाथ में पान का डिब्बा लिये हुए वहाँ पहुँच कर महिम धीरे-धीरे तख्तपोश पर बैठ गए।

पहले तो उन्होंने विनय को एक पान देकर गोरा की उच्छृंखलता और नामसझी पर विरक्ति प्रकट की। इसके बाद उसके छूटने में और कितने दिन बाकी हैं, यह गिनते-गिनते मानो बिलकुल अचानक उनको ध्यान आ गया कि अगहन का महीना तो लगभग आधा बीत गया।

वह बोले, "विनय, तुमने जो कहा था कि तुम्हारे वंश में अगहन के महीने में विवाह का निषेध है, वह बिलकुल बेकार की बात है। अव्वल तो पोथी-पत्रे में निषेध के सिवा कुछ मिलता ही नहीं, उस पर अगर घर में ही अपना शास्त्र बनाते रहोगे तो खानदान चलेगा कैसे?"

विनय का संकट देखकर आनन्दमयी बोलीं, "शशिमुखी को विनय छुटपन से ही देखता आ रहा है—उससे ब्याह करने की बात उसे नहीं जँचती। इसीलिए अगहन महीने का बहाना करके बैठा है।"

महिम बोले, "यह बात तो शुरू में कह देनी चाहिए थी।"

आनन्दमयी ने कहा, "अपना मन पहचानते भी तो देर लगती है, लेकिन महिम, पात्र की क्या कमी है ? गोरा लौट आये, वह तो अनेक अच्छे लड़कों को जानता है--किसी एक को ठीक कर देगा।"

महिम ने मुंह बनाते हुए कहा, "हुँ: !"

थोड़ी देर चुप रहकर फिर बोले, "माँ, तुम्हीं अगर विनय का मन न फेर देतीं तो वह इसमें कोई कोई आपत्ति न करता।"

विनय सकपकाकर कुछ कहने जा रहा था, लेकिन आनन्दमयी ने उसे टोकते हुए कहा, "तो, सच बात कहूँ, महिम, मैं उसे बढ़ावा नहीं दे सकी। विनय लड़का है, हो सकता है कि बिना समझे-बूझे यह कोई काम कर भी बैठता, लेकिन आगे चलकर वह अच्छा न होता।"

आनन्दमयी ने विनय को ओट देकर महिम के गुस्से की चोट अपने ऊपर ले ली है, यह समझकर विनय अपनी दुर्बलता पर लज्जित हो उठा। वह अपनी असहमति साफ-साफ प्रकट करने को उद्यत हो रहा था कि महिम और न रुक कर मन-ही-मन यह कहते हुए उठकर चले गए कि विमाता कभी अपनी नहीं होती।

महिम ऐसा सोच सकता है, और विमाता होने के नाते वह संसार की कचहरी में हमेशा के लिए अभियुक्त की श्रेणी में रख दी गई, यह आनन्दमयी जानती थीं। लेकिन लोग क्या कहेंगे या सोचेंगे, इस बात का विचार करते हुए चलने की उनकी आदत नहीं थी। जिस दिन से उन्होंने गोरा को गोद में उठा लिया था उसी दिन से उनकी प्रकृति लोगों के आचार और लोगों के विचार से बिलकुल स्वतन्त्र हो गई थी। उस दिन से वह ऐसी बहुत-सी बातें करती आ रही थी जिनके लिए लोग उनकी निन्दा ही करें। उनके जीवन के मर्मस्थान में एक सत्य को गुप्त रखने की जो बात उन्हें सर्वदा कष्ट देती रहती थी, उसकी पीड़ा से यह लोक-निन्दा ही उन्हें किसी हद तक मुक्त करती थी। लोग जब उन्हें ख्रिस्तान कहते थे तब वह गोरा को गले से लगाकर कहती थी, 'भगवान् जानते हैं कि ख्रिस्तान कहने से मेरा कोई अपमान नहीं होता।'

इस तरह धीरे-धीरे सभी मामलों में लोगों की बातों से अपने व्यवहार को अलग कर लेने का उनका अभ्यास हो गया था। इसीलिए महिम के मन-ही-मन या प्रकाश्य रूप से उन्हें विमाता कहकर लांछित करने पर भी वह अपने पथ से विचलित न होती थीं।

आनन्दमयी ने कहा, "विनू, तुम बहुत दिनों से परेश बाबू के घर नहीं गये!"

विनय बोला, "अभी बहुत दिन कहाँ हुए हैं ?"

आनन्दमयी, "स्टीमर से लौटने के अगले दिन से नहीं गये।"

यह तो कोई ज्यादा दिन नहीं होते, लेकिन विनय जानता था कि बीच में परेश बाबू के घर उसका आना-जाना इतना बढ़ गया था कि आनन्दमयी के लिए भी उसके दर्शन दुर्लभ हो उठे थे। इस हिसाब से तो जरूर उसे परेश बाबू के घर गये हुए लम्बा अरसा हो गया था और यह लोगों के लक्ष्य करने की बात थी।

विनय अपनी धोती के छोर से एक धागा खींचकर तोड़ता हुआ चुप हो गया।

तभी बैरे ने आकर खबर दी, "माँजी, काहाँ से माई लोक आया।"

विनय हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। कौन आया है, कहाँ से आया है, यह पूछते-पूछते ही सुचरिता और ललिता कमरे में आ पहुँचीं। विनय का कमरे से बाहर जाना नहीं हुआ, वह स्तम्भित-सा खड़ा रहा।

दोनों ने आकर आनन्दमयी के पैरों की धूल ली। ललिता ने विनय की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, सुचरिता ने उसे नमस्कार करते हुए पूछा, "अच्छी तरह है?" फिर आनन्दमयी की ओर मुड़कर कहा, "हम लोग परेश बाबू के यहाँ से आई हैं।"

आनन्दमयी ने उन्हें प्यार से बिठाते हुए कहा, "मुझे वह परिचय देने की जरूरत नहीं है। मैंने तुम लोगों को देखा नहीं, बेटी, लेकिन घर का-सा ही जानती हूँ।"

बातें होने लगीं। विनय को चुप बैठा देखकर सुचरिता ने उसे भी बातचीत में खींच लेने की कोशिश की। मृदु स्वर में बोली, "आप बहुत दिन से हमारे यहाँ नहीं गये?"

विनय ने एक बार ललिता की ओर देखकर कहा, "बार-बार तंग करके कहीं आपका स्नेह न खो दूँ, इस डर से।"

सुचरिता ने तनिक हँसकर कहा, "स्नेह भी बार-बार तंग किये जाने की आशा रखता है, यह शायद आप नहीं जानते?"

आनन्दमयी बोलीं, "यह वह खूब जानता है। तुम्हें क्या बताऊँ, उसकी फ़रमाइशों और नख़रों के मारे मुझे सारा दिन फुरसत ही नहीं मिलती।" कहते हुए स्निग्ध दृष्टि से उन्होंने विनय की ओर देखा।

विनय बोला, "ईश्वर ने तुम्हें धैर्य दिया है, मेरे द्वारा उस धैर्य की परीक्षा लेते रहते हैं।"

सुचरिता ने ललिता को हल्का-सा धक्का देते हुए पूछा, "सुन रही है, ललिता? हम लोगों की परीक्षा शायद हो चुकी हम लोग पास नहीं हुए न?"

ललिता ने इस बात में कोई योग नहीं दिया यह देखकर आनन्दमयी हँसकर बोलीं, "अब हमारे विनू बाबू अपने ही धैर्य की परीक्षा कर रहे हैं। तुम लोगों को वह किस नजर से देखता है यह तो तुम्हें नहीं मालूम—शाम से ही तुम लोगों की बात के सिवाय तो कोई बात ही नहीं होती। और परेश बाबू की बात उठने पर तो वह बिलकुल गद्‌गद् हो जाता है।"

आनन्दमयी ने ललिता के चेहरे की ओर देखा। वह हठ करके आँखें तो उठाये रही, लेकिन उसका चेहरा लाल हो गया।

आनन्दमयी ने कहा, "तुम्हारे पिता की ओर से, वह न जाने कितने लोगों से झगड़ा कर चुका है! उसके दल के लोग तो उसे 'ब्राह्म' कहकर जात-बाहर करने की सोच रहे हैं! विनू, इतना घबराने से तो काम नहीं चलेगा, बेटा—सच बात ही तो कह रही हूँ। और इसमें शर्माने की भी तो कोई बात नही है। तुम क्या कहती हो, बेटी?"

इस बार ललिता की ओर देखते ही उसने आँखें झुका लीं। सुचरिता ने कहा, "विनय बाबू हमें अपने ही लोग समझते हैं, यह हम जानती है। लेकिन ऐसा हमारे ही गुणों के कारण हो यह बात नहीं है, वह उनकी उदारता है।"

आनन्दमयी बोलीं, "यह तो मैं नहीं मानती। इसे तो छुटपन से ही देखती आ रही हूँ, इतने दिन तो उसका दोस्त एक मेरा गोरा ही था, यहाँ तक कि मैंने तो देखा है, अपने दल के लोगों से भी उसका मेल नहीं होता। लेकिन तुम लोगों से दो दिन की जान-पहचान में ही वह ऐसा हो गया है कि हमें ही उसका पता नहीं मिलता। मैंने तो सोचा था, इसके लिए तुम लोगों से झगड़ा करूँगी, लेकिन अब देख रही हूँ कि मुझे भी उसके दल में ही शामिल हो जाना होगा---तुमसे सभी को हार माननी होगी।" कहते-कहते आनन्दमयी ने एक बार ललिता और एक बार सुचरिता की ठोड़ी छूकर अपनी उँगलियाँ चूम ली।

विनय का बुरा हाल देखकर सुचरिता ने दया करके कहा, "विनय बाबू, बाबा भी आये हैं, बाहर के कमरे में कृष्णदयाल बाबू से बातें कर रहे हैं।"

सुनते ही विनय जल्दी से बाहर चला गया। तब आनन्दमयी गोरा और विनय की असाधारण दोस्ती की चर्चा करने लगीं। दोनों श्रोता उदासीन नहीं हैं, यह समझने में उन्हें देर न लगी। आनन्दमयी जीवन-भर इन्हीं दोनों लड़कों को मातृ-स्नेह का पूरा अर्घ्य देकर पूजती रही हैं, संसार में इनसे बढ़कर उनका कोई नहीं रहा है। छोटी लड़की की पूजा के शिव की भाँति उन्होंने इन दोनों को अपने हाथों से गढ़ा है ज़रूर, लेकिन इन दोनों को उनकी पूरी आराधना मिलती रहती है। आनन्दमयी के मुँह से उनकी गोद के इन दो देवताओं की कहानी स्नेह-रस

में ऐसी डूबी हुई थी कि सुचरिता और ललिता सुनते नहीं अघाती थीं। गोरा और विनय के प्रति उनमें श्रद्धा कम नही थी, लेकिन आनन्दमयी-जैसी माँ के गमे स्नेह के माध्यम से मानो दोनों से उनका एक नया और विशेष परिचय हुआ।

आज आनन्दमयी से जान-पहचान हो जाने पर मजिस्ट्रेट के प्रति ललिता का क्रोध मानो और बढ़ गया। ललिता के मुँह से गुस्से की बात सुनकर आनन्दमयी हँस दी। बोलीं "बेटा, गोरा आज जेल में है यह बात मुझे कितनी व्यथा दे रही है, यह अन्तर्यामी ही जानते है। लेकिन साहब पर मैं गुस्सा नहीं कर सकी। मैं गोरा को जानती हूँ, वह जिसे ठीक समझता है उसके सामने नियम-कानून कुछ नहीं मानता, जब नही मानता तो विचारक उसे जेल भेजेंगे ही -इसके लिए उन्हें क्यों दोष दिया जाय ? गोरा का कर्त्तव्य गोरा ने किया उनका कर्त्तव्य वे करेंगे, इसमें जिनको दु:ख मिलेगा उनको मिलेगा ही। मेरे गोरा की चिट्ठी पढ़कर देखो तो समझ सकोगी बिटिया, कि वह दु:ख से नही डरा, किसी पर व्यर्थ बिगड़ा भी नहीं किस बात का क्या फल होगा, सब समझ-बूझकर ही आगे बढ़ा।"

यह कहकर गोरा की बड़ी संभालकर रखी हुई चिट्ठी बक्स से निकालकर उन्होंने सुचरिता को दी। बोली, "बेटी, जोर-जोर से पढ़ो, मैं फिर एक बार सुनूं।"

गोरा की चिट्ठी पढ़ ली जाने पर तीनों थोड़ी देर स्तब्ध ही रहीं। आनन्दमयी ने आँचल से आँखें पोंछ ली। उनकी आँखों मे जो आसू थे उनमे केवल माँ के हृदय की व्यथा ही नहीं थी, उसके साथ आनन्द और गौरव भी मिला हुआ था। उनका गोरा क्या मामूली गोरा है! मजिस्ट्रेट उसका कसूर माफ करके दया करके छोड़ देंगे, वह क्या ऐसा है! उसने तो सारा अपराध स्वीकार करके जेल का दु:ख जान-बूझकर अपने कन्धों पर ओट लिया है। उसके इस दु:ख के लिए किसी से कोई झगड़ा करने की जरूरत नही है, गोरा धीरज से उसे सह रहा है और आनन्दमयी भी सह लेगी।

ललिता चकित होकर आनन्दमयी के चेहरे की ओर देखती रही। ललिता के मन पर ब्राह्म-परिवार का संस्कार बहुत दृढ़ था, जिन स्त्रियों को आधुनिक ढंग की शिक्षा नहीं मिली, और जिन्हें वह 'हिन्दू घर की औरतें' कहकर जानती थीं उनके प्रति ललिता में सम्मान नहीं था। बचपन से ही वरदासुन्दरी लड़कियों से कोई अपराध हो जाने पर उन्हें कहती, 'हिन्दू घर की लड़कियों की तरह ऐसे काम नहीं करते!' ऐसी बात सुनकर उस अपराध के लिए लज्जित होकर ललिता बराबर सिर नीचा कर लेती रही है। आनन्दमयी के मुँह से ये बातें सुनकर उसका हृदय बार-बार विस्मय से भर रहा था। जितना बल उतनी ही शान्ति और उतना ही आश्चर्यमय सद्-विवेक। आवेश की बाढ़ में ललिता अपने को आनन्दमयी के

सम्मुख बहुत ही हीन अनुभव कर रही थी। उसका मन भीतर-ही-भीतर बड़ा क्षुब्ध था, इसीलिए वह विनय के चेहरे की ओर देखती भी नहीं थी और उससे बोली भी नहीं थी। लेकिन आनन्दमयी के स्नेह, करुणा और शान्ति से मण्डित चेहरे की ओर देखकर उसके हृदय के भीतर के विद्रोह की गर्मी ठंडी पड़ गई और चारों ओर के लोगों से उसका सम्बन्ध सहज हो आया। ललिता ने आनन्दमयी से कहा, "गौर बाबू ने इतनी शक्ति कहाँ से पाई है, यह आज आपको देखकर समझी हूँ।"

आनन्दमयी ने कहा, "तब ठीक नहीं समझीं। गोरा अगर मेरे साधारण लड़के जैसा होता तो मैं कहाँ से बल पाती! तब क्या मैं उसका दुःख ऐसे सह सकती?"

ललिता का मन आज क्यों इतना विकल हो उठा था, उसका थोड़ा इतिहास जानना आवश्यक है।

पिछले कई दिन से रोज सवेरे बिस्तर से उठते ही पहली बात ललिता के मन में यही आती रही कि विनय बाबू आज नहीं आयेंगे। फिर भी सारा दिन उसके मन ने पल-भर के लिए भी विनय के आगमन की प्रतीक्षा करना नहीं छोड़ा। क्षण-क्षण पर उसे लगता रहा, शायद विनय आया है, शायद वह ऊपर न आकर निचले कमरे में परेश बाबू से बात कर रहा है। इसीलिए दिन में कितनी बार अकारण वह एक कमरे से दूसरे कमरे में जाती रही है, इसका कोई हिसाब नहीं है। अन्त में सारा दिन बीत जाने पर जब वह बिस्तर पर जा लेटती, तब सोच न पाती कि अपने मन का वह क्या करे। उसके भीतर रोना उमड़ता और छाती मानो फटने लगती, साथ-साथ गुस्सा भी आता—लेकिन गुस्सा किस पर, यह वह समझ न पाती—शायद अपने ही ऊपर। वह बार-बार सोचती, 'यह क्या हुआ? ऐसे कैसे चलेगा? किसी तरह कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। ऐसे कितने दिन रह सकूँगी?'

ललिता जानती है कि विनय हिन्दू है, किसी तरह भी विनय के साथ उसका विवाह नहीं हो सकता। फिर भी अपने हृदय को किसी तरह वश में न रख पाकर लज्जा और भय से उसके प्राण सूख रहे थे। विनय का हृदय उससे विमुख नहीं है यह बात उसने समझ ली थी, समझ लेने पर ही अपने मन को दबा रखना उसके लिए और कठिन हो गया था। इसीलिए जब वह उतावली होकर विनय की बाट जोह रही होती, तब साथ ही एक डर भी उसे लगा रहता कि कहीं विनय आ ही न जाय। इसी तरह अपने साथ खींच-तान करते-करते आज आखिर उसके धैर्य का बाँध टूट गया था। उसने सोचा, विनय के न आने से ही उसके प्राण इतने बेकल हैं, एक बार उसे देख लेने से ही यह अशान्ति दूर हो जायगी।

सवेरे ही वह सतीश को पकड़कर अपने कमरे में ले गई। आजकल मौसी को पाकर सतीश अपनी दोस्ती की बात एक तरह से भूला हुआ ही था। ललिता ने उससे कहा, "विनय बाबू से तेरा झगड़ा हो गया है क्या ?"

सतीश ने जोर-शोर से इस अपवाद का खण्डन किया। ललिता बोली, "बड़े आये तेरे दोस्त ! तू तो हर वक्त 'विनय बाबू विनय बाबू' लगाये रहता है, वह तो मुड़कर तेरी ओर देखते भी नहीं।"

सतीश ने कहा, "वाह, तुम्हारे कहने से ! कभी हो ही नहीं सकता !"

घर के सबसे छोटे सतीश को अपना बड़प्पन सिद्ध करने के लिए बार-बार गले के जोर से काम लेना पड़ता है। लेकिन आज पक्का प्रमाण देने के लिए वह उसी समय दौड़ा हुआ विनय के घर गया। लौटकर बोला, "वह तो घर पर नहीं है, इसीलिए आ भी नहीं सके।"

ललिता ने पूछा, "इतने दिन क्यों नहीं आये ?"

सतीश ने कहा, "इतने दिन से ही तो नहीं है।"

इस पर ललिता ने जाकर सुचरिता से कहा, "दीदी, हम लोगों को एक बार गौर बाबू की माँ के पास तो जाना चाहिए।"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन उनसे तो परिचय नहीं है।"

ललिता ने कहा, "वाह, गौर बाबू के बाप तो बाबा के बचपन के दोस्त हैं ?"

सुचरिता को भी याद आ गया। बोली, "हाँ, सो तो है।"

सुचरिता उत्साहित हो उठी। बोली, "भई ललिता, तुम जाकर बाबा से पूछो ?"

ललिता ने कहा, "नहीं, मैं नहीं कह सकूँगी, तुम जाकर कहो !"

अन्त में सुचरिता ने ही परेश बाबू के पास जाकर बात उठाई। उन्होंने कहा, "ठीक तो है, हमारा पहले ही जाना उचित था।"

जब भोजन के बाद जाने की बात तय हो गई, तब ललिता का मन प्रतिकूल हो उठा। न जाने कहाँ से मान और संशय आकर उसे उलटी तरफ खींचने लगे। उसने जाकर सुचरिता से कहा, "दीदी, तुम बाबा के साथ जाओ। मैं नहीं जाऊँगी।"

सुचरिता ने कहा, "यह कैसी बात है ? तू नहीं जायगी तो मैं भी अकेली नहीं जाऊँगी। बड़ी अच्छी लड़की है तू—चल, गड़बड़ मत कर !"

बहुत मनाने पर ललिता गई। लेकिन उसे लगा कि विनय के सामने उसकी हार हुई है। विनय तो बड़ी आसानी से उसके घर आये बिना रह गया और वह आज विनय को देखने दौड़ी है, अपनी इस हार के अपमान से उसे भारी गुस्सा हो

आया। विनय को वहाँ देख पाने की आशा में ही उसने आनन्दमयी के घर जाने का इतना आग्रह किया था. इस बात को वह मन-ही-मन बिलकुल अस्वीकार करने की चेष्टा करने लगी और अपनी इस हठ को सिद्ध करने के लिए उसने न विनय की ओर देखा, न उसके नमस्कार का जवाब दिया, न उसमे कोई बा ा की। विनय ने सोचा, 'ललिता ने उसके मन की गोपन बात ताड़ ली है, इसलिए वह उसकी ऐसी अवज्ञा करके उसका प्रत्याख्यान कर रही है, ललिता को उससे प्रेम भी हो सकता है, ऐसा अनुमान करने लायक आत्माभिमान विनय में नहीं था।'

विनय ने आकर संकोच से दरवाजे के पास खड़े-खड़े कहा, "परेश बाबू अब घर जाना चाहते हैं, इन सबको खबर देने को कहा है।"

विनय इस ढंग से खड़ा हुआ था कि ललिता उसे देख न सके।

आनन्दमयी ने कहा, "यह कैसे हो सकता है! जैसे मुंह मीठा किये बिना ही चले जायँगे! और ज्यादा देर नहीं होगी--विनय, तुम जरा यहाँ बैठो मैं एक बार देख आऊँ। बाहर ही क्यों खड़े हो, कमरे में आकर बैठो!"

विनय ललिता की ओर पीठ करके दूर पर जगह ठीक करके बैठा। विनय के प्रति उसके व्यवहार में कोई मैल कहीं है, ऐसे ही सहज भाव से ललिता ने कहा, "विनय बाबू, आपने अपने बन्धु सतीश का क्या बिलकुल त्याग कर दिया है यह जानने के लिए आज सवेरे वह आपके घर गया था।"

सहसा देववाणी सुनकर मनुष्य जैसे चकित हो जाय, ऐसे ही विस्मय से विनय चौंक उठा। उसका वह चौंकना दीख गया होगा, यह सोचकर वह अत्यन्त लज्जित हो गया। अपनी स्वाभाविक चतुराई का कोई जवाब नहीं दे सका, कानों तक लाल होता हुआ वह बोला, "सतीश गया था,क्या? मैं तो घर नही था।"

ललिता की इस साधारण-सी बात से विनय को अपार आनन्द हुआ। क्षण-भर में सारे विश्व पर छाया हुआ एक प्रकांड संशय एकदम टूटने वाले दुःस्वप्न-सा दूर हो गया। मानो और पृथ्वी पर उसके चाहने लायक कुछ बाकी न रहा। उसका मन कह उठा, 'मैं बच गया, मैं बच गया।' ललिता नाराज़ नहीं है, ललिता ने उस पर कोई सन्देह नही किया।

देखते-देखते सब बाधा दूर हो गई। सुचरिता ने हँसकर कहा, "विनय बाबू को सहसा सन्देह हो गया था कि हम लोग न जाने दाँतों, नाखूनों, सीगों वाले भयानक जानवर हैं, या हथियार लेकर आये हैं—या ऐसा ही कुछ।"

विनय बोला, "दुनिया में जो लोग शिकायत नहीं करते, चुप रह जाते हैं, उन्हींको दोषी ठहराया जाता है। दीदी, तुम्हारे मुँह से ऐसी बात नहीं सुहाती - तुम खुद कितनी दूर चली गई हो कि अब दूसरे तुम्हें दूर जान

पड़ते हैं।"

विनय ने आज पहले-पहल सुचरिता को दीदी कहा। सुचरिता के कानों को यह बहुत मीठा लगा। पहले परिचय के समय से ही विनय के प्रति उसके मन में जो सौहार्द्र उत्पन्न हुआ था, इस सम्बोधन से ही उसे मानो एक स्नेहपूर्ण आकार मिल गया।

परेश बाबू लड़कियों को लेकर जब विदा हुए तब दिन प्राय: शेष हो गया था। विनय ने आनन्दमयी से कहा, "माँ, आज तुम्हें कोई काम नहीं करने दूंगा। चलो, ऊपर चलें।"

विनय अपने हृदय की हलचल को संभाल नहीं पा रहा था। आनन्दमयी को ऊपर ले जाकर उसने अपने हाथ से फ़र्श पर चटाई बिछाकर उन्हें बैठाया। आनन्दमयी ने विनय से पूछा, "विनय, क्यों, आखिर बात क्या है?"

विनय ने कहा, "मुझे कोई बात नहीं कहनी, तुम्हीं बात कहो!"

परेश बाबू की लड़कियाँ आनन्दमयी को कैसी लगीं, यह सुनने के लिए विनय का मन छटपटा रहा था।

आनन्दमयी ने कहा, "वाह, तो इसीलिए तू मुझे बुला लाया? मैं तो समझी कि कोई काम की बात होगी।"

विनय ने कहा, "बुलाकर न लाता तो ऐसा सूर्यास्त कहाँ देख पातीं?"

उस दिन कलकत्ता की छतों पर अगहन का सूर्य मलिन भाव से ही अस्त हो रहा था, रंगों की कोई विचित्र छटा नहीं थी, आकाश में धूमिल बदली में एक सुनहली आभा फीकी-सी झलक रही थी। लेकिन आज विनय के मन को इस मुर्झाई हुई सांझ की धूसरता भी रंगीनी दे रही थी। उसे ऐसा लग रहा था मानो चारों दिशाएँ उसे निविड़ता से घेर रही हों, आकाश मानो उसे छू रहा हो।

आनन्दमयी ने कहा, "दोनों लड़कियाँ बड़ी लच्छमी हैं।"

विनय ने इस बात को रुकने नहीं दिया, तरह-तरह से इसकी चर्चा को आगे बढ़ाता रहा। परेश बाबू की लड़कियों के बारे में न जाने कब-कब की कौन-कौन-सी छोटी-बड़ी बातें सामने आईं, उनमें से कई बिलकुल अकिंचन थीं, लेकिन उस अगहन की म्लान अकेली साँझ में एकान्त कमरे में विनय के उत्साह और आनन्दमयी की उत्सुकता से घरेलू जीवन के अप्रसिद्ध इतिहास की ये छोटी-छोटी बातें भी गम्भीर महिमामयी हो उठी थीं।

आनन्दमयी ने सहसा एक लम्बी साँस लेकर कहा, "सुचरिता के साथ गोरा का विवाह हो सकता तो मुझे बड़ी खुशी होती।"

विनय उछल पड़ा। बोला, "माँ, यह बात मैंने अनेक बार सोची है। गोरा के बिलकुल उपयुक्त संगिनी है।"

आनन्दमयी - "लेकिन वह क्या हो सकेगा ?"

विनय -"क्यों नही हो सकेगा ? मुझे तो लगता है, गोरा को सुचरिता पसन्द न हो एसी बात तो नही है।"

यह बात आनन्दमयी से छिपी न थी कि गोरा का मन किसी ओर आकृष्ट हुआ है। और विनय की अनेक बातों से उन्होने यह भी समझ लिया था कि वह लड़की सुचरिता ही होगी। थोड़ी देर चुप रहने के बाद आनन्दमयी ने कहा, "लेकिन सुचरिता क्या हिन्दू घर में विवाह करेगी ?"

विनय ने पूछा, "अच्छा माँ, गोरा क्या ब्राह्म के घर विवाह नही कर सकता ? तुम क्या राज़ी न होओगी ?"

आनन्दमयी—"बिलकुल राज़ी होऊँगी।"

विनय ने फिर पूछा, "होओगी ?"

आनन्दमयी बोली, "क्यों नही होऊँगी विनू ? मन से मन का मेल होने से ही ब्याह होता है- उस समय कौन-सा मन्तर पढ़ा गया इससे क्या आना जाना है ? जैसे भी हो, भगवान् का नाम लेने से ही तो हो गया।"

विनय के मन पर से एक बोझ उतर गया। उसने उत्साहित होकर कहा, "माँ तुम्हारे मुँह से यह सब बातें सुनकर मुझे बड़ा अचरज होता है। इतनी उदार बुद्धि तुमने पाई कहाँ से ?"

आनन्दमयी ने हँसकर कहा, "गोरा से ही पाई है।"

विनय ने कहा, "गोरा तो इससे उलटी बात कहता है।"

आनन्दमयी-- "उसके कहने से क्या होता है ? मैंने जो कुछ सीखा है सब गोरा से ही सीखा है। मनुष्य नाम की चीज़ कितना बड़ा सत्य है, और मनुष्य जिन चीज़ों को लेकर दलबन्दी करता है, लड़ मरता है वे सब कितनी झूठी यह बात भगवान् ने जिस दिन गोरा को मुझे दिया उसी दिन समझा दिया था। बेटा, ब्राह्म भी कौन है, और हिन्दू कौन है ? मनुष्य के हृदय की तो कोई जात नही है--वही आकर भगवान् सबको मिलाते है और स्वय भी आ मिलते हैं। उन्हें हटाकर मन्तर और मतवाद पर मिलाने का भार छोड़ देने से थोड़े ही चलेगा ?"

विनय ने आनन्दमयी के पैरों की धूल लेकर कहा, "माँ, तुम्हारी बात मुझे बहुत अच्छी लगी। मेरा आज का दिन सार्थक हुआ।"

३७

सुचरिता की मौसी हरिमोहिनी को लेकर परेश बाबू के परिवार में एक भारी अशान्ति फैल गई। उसका ब्यौरा देने से पहले सुचरिता को हरिमोहिनी ने अपना जो परिचय दिया था वही संक्षेप मे बता दिया जाय--

मैं तुम्हारी माँ से दो बरस बड़ी थी। पिता के घर हम दोनों के लाड़-प्यार की सीमा नही थी, क्योंकि तब तक हमारे घर में केवल हम दोनों कन्याएँ ही जन्मी थी घर मे और कोई शिशु नहीं था। चाचा-काका लोगों के दुलार के मारे हम लोगों के पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे।

मेरी उम्र जब आठ बरस की थी तब पालसा के विख्यात राय चौधरी-परिवार में मेरा विवाह हुआ। उन लोगों का कुल जितना बड़ा था धन भी वैसा ही था। लेकिन भाग्य मे सुख नही था। विवाह के समय दहेज की बात को लेकर मेरे ससुर से पिता का झगड़ा हो गया था। मेरे पीहर के इस अपराध को ससुराल वाले कभी क्षमा नही कर सके। सभी कहते रहते, 'लड़के का फिर ब्याह कर दें तब देखेंगे कि इस लड़की की क्या हालत होती है।' मेरी दुर्दशा देखकर ही पिता ने प्रतिज्ञा की थी कि फिर कभी धनी के घर लड़की नही देंगे। तभी तुम्हारी माँ गरीब घर में ब्याही गई थी।

परिवार बहुत बड़ा था, मुझे आठ-नौ बरस की उम्र से ही रसोई करनी पड़ती थी। पचास-साठ जने खाने वाले थे। सबको खिलाकर मुझे किसी दिन निरे भात या कभी दाल-भात पर ही गुजारा करना पड़ता था। किसी दिन दो बजे खाना मिलता था तो किसी-किसी दिन शाम ही हो जाती थी। भोजन करते ही शाम की रसोई मे जुट जाना पड़ता था और रात को ग्यारह-बारह बजे खाने का मौका मिलता था। सोने की कोई निर्दिष्ट जगह नही थी, अन्तःपुर मे जिस दिन जिसके पास जगह मिल जाती उसीके पास पड़ी रहती। किसी-किसी दिन तो पीढ़े डालकर उन्हीं पर सोना पड़ता।

घर में मेरे प्रति सबका जो अनादर था उसका असर स्वामी के मन पर भी हुए बिना न रहा। बहुत दिन से वह मुझे दूर ही दूर रखते आ रहे थे।

इस बीच जब मैं सत्रह बरस की थी तब मेरे एक लड़की हुई मनोरमा। लड़की को जन्म देने के कारण ससुराल मे मेरी हालत और भी बुरी हो गयी। सारे अनादर और अपमान के बीच यह लड़की ही मेरी एकमात्र सान्त्वना और मेरा आनन्द थी। मनोरमा को उसके बाप या किसी दूसरे से कोई प्यार नहीं मिला, इसलिए वह और भी मेरे प्यार की सामग्री बन गई।

तीन बरस बाद जब मेरा एक लड़का हुआ तब से मेरी हालत कुछ सुधरने लगी। तब से मैं गृहिणी गिनी जाने लायक समझी गई। मेरी सास तो थी नहीं ससुर भी मनोरमा के जन्म के दो बरस बाद मर गए थे। उनकी मृत्यु के बाद जायदाद के बारे में देवरों से मुकद्दमेबाज़ी होने लगी। अन्त में बहुत-सी पूँजी लुटा देने के बाद बटवारा हो गया।

मनोरमा के विवाह का समय आया। कहीं वह बहुत दूर न चली जाय, कहीं उसे फिर देख न पाऊँ, इसी डर से पालसा से पाँच-छः कोस की दूरी पर सिमुल गाँव में उसे ब्याह दिया। लड़का देखने में कार्तिकेय-सा सुन्दर था—जैसा रंग वैसा रूप—घर भी अच्छा खाता-पीता था।

जैसे अपमान और कष्ट के दिन पहले बीतते रहे थे, सुहाग पुंछ जाने के पहले कुछ दिन विधाता ने मुझे वैसा ही सुख भी दिखाया। पिछले दिनों में पति मुझे बड़ा मान देने लगे थे और मुझसे सलाह किये बिना कोई काम नहीं करते थे। लेकिन इतना सौभाग्य मैं कैसे सहती! हैज़ा फैला, चार दिन के अन्तर पर लड़का और स्वामी दोनों मर गए। जिस दुःख की कल्पना भी असह्य जान पड़ती है वह भी मनुष्य सह लेता है, यही बताने के लिए ईश्वर ने मुझे बचा लिया।

धीरे-धीरे जमाई का परिचय मिलने लगा। सुन्दर फूल के भीतर ऐसा काला साप छिपा रह सकता है, यह कौन सोच सकता था? वह कुसंगति में पड़कर शराबी हो गया है, यह मेरी लड़की ने भी मुझे नहीं बताया था। जमाई जब-तब आकर तरह-तरह की ज़रूरतें बताकर मुझसे रुपया माँग ले जाता था। दुनिया में मुझे तो किसी के लिए पैसा जोड़ने की कोई ज़रूरत थी नहीं, इसलिए जमाई जब निहोरे करके मुझसे कुछ माँगता तो मुझे अच्छा ही लगता। बीच-बीच में मेरी लड़की मुझे टोकती भी, फटकारकर यह भी कहती कि तुम्हीं ऐसे उन्हें पैसा देकर उनकी आदतें और बिगाड़ रही हो—रुपया हाथ आते ही वह उसे कहाँ कैसे उड़ा देते हैं इसका कोई ठिकाना नहीं है। मैं सोचती, उसके स्वामी के मुझसे ऐसे रुपया लेने में उसकी ससुराल वालों का अपमान होगा इसी डर से शायद मनोरमा मुझे मना करती रहती है।

फिर न जाने मुझे क्या सूझी कि मैं अपनी लड़की से छिपाकर जमाई को उसकी शराब के पैसे देने लगी। मनोरमा को जब पता लगा तब एक दिन उसने आकर रो-रोकर अपने स्वामी के कलंक की पूरी कहानी मुझे सुना दी। मैं तो सिर पकड़कर बैठ गई। वह सब दुःख की बात और क्या बताऊँ, मेरे ही एक देवर की बुरी संगति और बढ़ावे के कारण जमाई इतना बिगड़ गया था।

मैंने जब रुपया देना बन्द कर दिया, और जब उसे यह शक हो गया कि मेरी लड़की ने ही मुझे मना किया है, तब वह और भी खुलकर खेलने लगा। उसने इतना अत्याचार आरम्भ किया और सभी के सामने मेरी लड़की का इतना अपमान करने लगा कि उससे बचने के लिए मैं फिर लड़की से छिपाकर उसे रुपया देने लगी। मैं जानती थी कि मैं उसे रसातल को भेज रही हूँ, लेकिन वह मनोरमा को कितना असह्य कष्ट दे रहा है यह सुनकर मैं रह नहीं सकती थी।

अन्त में एक दिन—मुझे बहुत अच्छी तरह याद है, माघ महीने के आखिरी दिन थे, उस साल गर्मी जल्दी ही पड़ने लगी थीं, हम लोग बातें कर रहे थे कि 'अभी से हमारे आँगन के आम के पेड़ में बौर आ गया है।' उसी माघ के एक तीसरे पहर दरवाज़े पर एक पालकी आकर रुकी। मैंने देखा, मनोरमा ने हँसते-हँसते आकर मुझे प्रणाम किया। मैंने पूछा, "कहो मनू, तुम लोगों की क्या खबर है?"

मनोरमा ने हँसकर कहा, "क्यों जब तक कोई खबर न हो यों ही क्या माँ के घर नहीं आ सकते?"

मेरी समधिन ऐसी बुरी नहीं थी। उन्होंने मुझे कहला भेजा कि बहू के सन्तान होने वाली है। सन्तान होने तक उसका माँ के पास रहना ही अच्छा है। मैं समझी कि यही बात होगी। यह मैं नहीं समझ सकी कि जमाई ने इस हालत में भी मनोरमा को मारना-पीटना शुरू कर दिया है और किसी आफ़त के डर से ही समधिन ने अपनी बहू को मेरे पास भेज दिया है। मनू और उसकी सास ने मिलकर मुझे ऐसे भुलावे में रखा। लड़की को मैं अपने हाथ से तेल मलकर नहलाना चाहती तो मनोरमा तरह-तरह के बहाने करके टाल देती। असल में उसकी कोमल देह पर मार के जो दाग़ थे उन्हीं को वह माँ की नज़रों से छिपाना चाहती थी।

जमाई बीच-बीच में आकर मनोरमा को लौटा ले जाने के लिए हल्ला-गुल्ला किया करता। लड़की के मेरे पास रहते उसे रुपये के लिए हठ करने में बाधा होती। लेकिन धीरे-धीरे यह झिझक भी उसने छोड़ दी और रुपये के लिए मनोरमा के सामने भी मुझे तंग करने लगा। मनोरमा हठ करके कहती, "बिलकुल रुपया मत दो!" लेकिन मेरा मन बड़ा दुर्बल था—कहीं जमाई मेरी लड़की पर और अधिक न बिगड़ उठे इस डर से उसे कुछ दिये बिना मुझसे न रहा जाता था।

एक दिन मनोरमा ने कहा, "माँ तुम्हारा रुपया-पैसा सब मैं रखूंगी।" और यह कहकर मेरे चाबी-बक्से पर कब्ज़ा कर बैठी। जमाई ने आकर जब मुझसे कुछ पाने का उपाय न देखा और जब मनोरमा को भी किसी तरह न पिघला सका तब

बोला, "मँझली बहू को घर ले जाऊँगा।" मैं मनोरमा से कहती, "दे दे, बेटी, उसे कुछ रुपया देकर विदा कर दे—नहीं तो न जाने क्या कर बैठेगा!" लेकिन मेरी मनोरमा एक तरफ़ जितनी नरम थी दूसरी तरफ़ उतनी ही कड़ी थी। वह कहती, "नहीं, रुपया किसी तरह नहीं दिया जायगा।"

जमाई एक दिन आकर आँखें लाल करके बोले, "कल मैं तीसरे पहर पालकी भेज दूंगा। बहू को अगर न भेजा तो अच्छा नही होगा, कहे देता हूँ।"

अगले दिन शाम से पहले ही पालकी आने पर मैंने मनोरमा से कहा, "बेटी, और देर करना ठीक नहीं है, अगले हफ़्ते ही फिर तुम्हें लाने के लिए किसी को भेज दूंगी।"

मनोरमा ने कहा, "आज रहने दो, माँ, आज मेरा जाने का मन नहीं होता, दो-एक दिन बाद आने को कह दो!"

मैंने कहा, "बेटी, पालकी लौटा देने से क्या बिगड़ैल जमाई छोड़ेगा? जाने दो, मनू, तुम आज ही चली जाओ!"

मनू ने कहा, "नहीं माँ, आज नही, मेरे ससुर कलकत्ता गये हुए हैं, फागुन के मध्य तक लौट आयँगे—तब जाऊँगी।"

मैंने फिर भी कहा, "नही बेटी, चली ही जाओ।'

तब मनोरमा तैयार होने गई।

मैं उसकी ससुराल के नौकर और पालकी वाले कहारों को खिलाने-पिलाने के प्रबन्ध में लगी रही। जाने से पहले थोड़ी देर उसके पास बैठ लूँ या उसे अपने हाथों से सजा लूं, या उसे जो खाना अच्छा लगता है वही उसे खिलाकर आदर-जतन के साथ उसे विदा करूँ, इसका अवकाश ही नही मिला। पालकी पर सवार होने से पहले मुझे प्रणाम करके पैरों की धूल लेते हुए उसने कहा, 'माँ, तो मैं जा रही हूँ।'

वह सचमुच ही जा रही थी, यह क्या मैं तब जानती थी। वह जाना नहीं चाहती थी, मैंने ही उसे ज़बरदस्ती विदा कर दिया—इस दुःख से मेरी छाती तक जल रही है—अब वह किसी तरह ठण्डी नहीं होगी।

उसी रात में गर्भ-पात होने से मनोरमा की मृत्यु हो गई। मुझे यह खबर मिलने से पहले ही छिपाकर बड़ी जल्दी से उसका दाह-संस्कार किया जा चुका था।

जिसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता, किया नहीं जा सकता, सोचकर पार नहीं पाया जा सकता, रोकर जिसे चुकाया नहीं जा सकता, वह दुःख भी कैसा दुःख है तुम नहीं समझ सकोगी—समझने की ज़रूरत भी नहीं है। मेरा

तो सब-कुछ चला गया, लेकिन फिर भी मुसीबत नहीं चुकी। स्वामी और पुत्र की मृत्यु के बाद से ही मेरी जायदाद पर देवरों की नजर थी। वे जानते थे कि मेरे मरने पर जमीन-जायदाद सब उन्हीं की होगी, लेकिन तब तक प्रतीक्षा करने का भी धीरज उनमें नहीं था। इसके लिए किसी को दोष क्या दूं, सचमुच मुझ-जैसा अभागिनी का जीते रहना ही अपराध है। दुनिया में जिनकी अनेक जरूरतें है, मुझ-जैसे प्रयोजनहीन जन के बिना वजह उनकी जगह घेरे रहना लोग कैसे सह सकते है ?

जब तक मनोरमा थी तब तक मैं देवरों की किसी बात के भुलावे में नहीं आई। जहाँ तक हो सका अपनी जायदाद पर अपने अधिकार के लिए लड़ती रही। मैं जब तक जीती हूँ मनोरमा के लिए रुपया जुटाती रहकर उसे दे जाऊँगी, यही मेरा निश्चय था। मैं अपनी लड़की के लिए रुपया जुटाने की कोशिश कर रही हूँ, यही मेरे देवरों के लिए असह्य हो रहा था। उन्हें लगता था कि मैं उनका ही धन चुरा रही हूँ। स्वामी का एक पुराना विश्वासी कर्मचारी था नीलकान्त, वही मेरा सहायक था। मै अगर अपना पावना कुछ छोड़कर आपस में कुछ निबटारा करने की कोशिश भी करती तो वह किसी तरह राजी न होता। वह कहता, "हमारे हक का एक पैसा भी कोई कैसे लेता है, देखूंगा।" इसी हक की लड़ाई के बीच में ही मेरी लड़की की मृत्यु हो गई। उसके अगले दिन ही मेरे मँझले देवर ने आकर मुझे वैराग्य का उपदेश दिया। बोले, "भाभी, ईश्वर ने तुम्हारी जो हालत कर दी है उसके बाद अब गृहस्थी में रहना ठीक नहीं है। जितने दिन जीना है तीर्थ में जाकर धर्म-कर्म में मन लगाओ। हम लोग तुम्हारे खाने-पहनने का बन्दोबस्त कर देंगे।"

मैंने अपने कुल-पुरोहित को बुला भेजा। उनसे कहा, "ठाकुर, इस असह्य दुःख से बचने का उपाय बता दो। मुझे उठते-बैठते कहीं कोई सान्त्वना नहीं है। मैं मानो चारों ओर आग से घिर गई हूँ। जहाँ जाती हूँ, जिधर फिरती हूँ, यन्त्रणा से मुक्ति का कहीं कोई रास्ता नहीं देख पाती।"

गुरु मुझे हमारे ठाकुरद्वारे के भीतर ले गए और बोले, "यह गोपीवल्लभ ही तुम्हारे स्वामी, पुत्र, कन्या सब-कुछ हैं। इनकी सेवा से ही तुम्हारे सब दुःख दूर होंगे।"

मैं दिन-रात ठाकुरघर में ही पड़ी रहती। मैंने बड़ी कोशिश की कि अपना सारा मन ठाकुर को ही सौंप दूं—लेकिन वही न अपनायें तो मैं दूं कैसे ? और उन्होंने अपनाया कहाँ ?

मैंने नीलकान्त को बुलाकर कहा, "नीलू दादा, मैंने तय कर लिया है कि अपनी

सब सम्पत्ति देवरों के ही नाम कर दूंगी। वे लोग खुराक के लिए हर महीने कुछ रुपया दे दिया करेंगे।"

नीलकान्त ने कहा, "यह कभी नहीं हो सकेगा। तुम औरत हो, इन सब बातों में न आ जाना।"

मैंने कहा, "मुझे और जायदाद का करना क्या है ?"

नीलकान्त ने कहा, "ऐसा कहने से नहीं चलेगा। हमारा जो हक है वह छोड़ेंगे क्यों ? ऐसा पागलपन मत करना !

नीलकान्त को हक से बड़ा और कुछ दीखता ही नहीं था। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई। जायदाद मुझे विष-सी लग रही थी, लेकिन संसार में मेरा एकमात्र विश्वासी यह नीलकान्त ही था, उसके मन को मैं चोट कैसे पहुँचाती ? वही तो इतने दुःख में मेरे उस एक हक की रक्षा करता आया था।

अन्त में एक दिन नीलकान्त से छिपाकर मैंने एक कागज पर सही कर दी। उसमें क्या लिखा था मैंने अच्छी तरह देखा-समझा भी नहीं। मैंने सोचा था, सही करने में हर्ज क्या है—मैं ऐसा रखना ही क्या चाहती हूँ जो किसी के ठग लेने का डर हो। सब-कुछ ही तो मेरे ससुर का था, उनके लड़के ले लेंगे तो ले लें।

लिखा-पढ़ी की रजिस्ट्री हो जाने पर मैंने नीलकान्त को बुलाकर कहा, "नीलू दादा, नाराज मत होना, मेरा जो कुछ था उसकी मैंने लिखा-पढ़ी कर दी है, मुझे किसी से लेना-देना नहीं है।"

नीलकान्त ने घबराकर कहा, "ऐं— क्या कर दिया तुमने ?"

जब कागज पढ़कर नीलकान्त ने देख लिया कि मैंने सचमुच अपना सब अधिकार छोड़ दिया है, तब उसके क्रोध की सीमा न रही। स्वामी की मृत्यु के बाद से मेरा हक बचाना ही उसके जीवन का एकमात्र अवलम्बन था, उसकी सारी बुद्धि, सारी शक्ति बराबर इसी में लगी रहती थी। इसी के लिए मामला-मुकदमा, वकील के घर दौड़ना, आईन-कानून खोज निकालना, इसी मत्रमें वह मुग्धी था—यहाँ तक कि अपना घर संभालने की भी उसे फुरसत न होती थी। वही हक जब एक निर्बोध स्त्री ने कलम के एक झटके से मिटा दिया तब नीलकान्त को शान्त करना असम्भव हो गया।

वह बोला, "खैर, अब यहाँ के साथ मेरा सम्बन्ध चुक गया, मैं चला।"

अन्त में नीलू दादा भी ऐसे नाराज होकर मुझे छोड़ जायँगे, मेरे ससुराल के भाग्य की आखिरी लिखत क्या यही थी ? मैंने उसकी बड़ी मिन्नतें कीं, उसे बुलाकर समझाया, "दादा, मुझ पर गुस्सा मत करो, मैंने कुछ रुपया जोड़ रखा था, उसमें

से यह पाँच सौ रुपया तुम्हें दे रही हूँ---जिस दिन तुम्हारे लड़के की बहू आयगी उस दिन इससे उसके गहने बनवाकर मेरे आशीर्वाद के साथ दे देना।"

नीलकान्त ने कहा, "मुझे और रुपया नहीं चाहिए। हमारी मिल्कियत का सब-कुछ जब चला गया तब यह पाँच सौ रुपया लेकर मुझे सुख नहीं होगा। वह रहने दो।" यह कहकर मेरे स्वामी का अन्तिम सच्चा बन्धु भी मुझे छोड़कर चला गया।

मैंने ठाकुरद्वारे में आश्रय लिया। देवरों ने कहा, "तुम तीर्थ करने जाओ!"

मैंने कहा, "मेरी ससुराल की भीत ही मेरा तीर्थ है, और जहाँ ठाकुर हैं वहीं मेरा आश्रय है।"

लेकिन घर के किसी कोने पर भी मैं अधिकार किये रहूँ, यह भी उनके लिए असह्य होने लगा। इस बीच ही उन्होंने हमारे घर में अपना माल-असबाब लाकर तय कर लिया था कि कौन-सा कमरा किस काम में लाया जायगा। अन्त में उन्होंने कहा, "अपने ठाकुर को तुम ले जा सकती हो---उसमें हम लोग आपत्ति नहीं करेंगे।"

जब मैंने इसमें आनाकानी की तब वे बोले, "यहाँ तुम्हारा खर्चा कैसे चलेगा?"

मैंने कहा, "क्यों तुम लोगों ने जो खूराक तय की है वही मेरे लिए यथेष्ट होगी।"

उन्होंने कहा, "कहाँ, खूराक की तो कोई बात नहीं है।"

इसके बाद अपने विवाह के ठीक चौंतीस बरस बाद एक दिन मैं ठाकुर को लेकर ससुराल से निकल पड़ी। नीलू दादा की खोज करने जाने पर पता लगा कि वह मुझसे पहले ही वृन्दावन चले गए हैं।

गाँव के तीर्थ-यात्रियों के साथ मैं काशी पहुँची। लेकिन पापी मन को कहीं शान्ति नहीं मिली। ठाकुर को रोज पुकारकर कहती, "ठाकुर, मेरे पति, मेरे बेटा-बेटी मेरे लिए जितने सत्य थे तुम भी मेरे लिए उतने ही सत्य हो जाओ!" लेकिन वह मेरी प्रार्थना कहाँ सुनते थे! मेरा हृदय किसी तरह न संभलता, मेरा सारा शरीर-मन रोता रहता। बाप रे बाप! मनुष्य की जान भी कितनी सख्त होती है!

वही आठ वर्ष की उम्र में ससुराल गई थी, तब से एक दिन के लिए भी पीहर नहीं आ सकी। तुम्हारी माँ के विवाह के समय आने की बड़ी कोशिश की थी, कोई फल नहीं हुआ। फिर भ्राता की चिट्ठी से ही तुम लोगों के जन्म की और

फिर बहन की मृत्यु की खबर मिली। माँ की गोद से बिछुड़े हुए तुम लोगों को मैं एक बार अपनी गोद में बिठा सकूं, ईश्वर ने अब तक ऐसा सुयोग नहीं दिखाया।

तीर्थ घूमकर जब देख लिया कि माया अब भी मन को छाये हुए है, किसी अपनी चीज को पाने के लिए हृदय की तृष्णा अभी नहीं मरी—तब तुम लोगों की खोज करने लगी। सुना था कि तुम्हारे पिता धर्म छोड़कर, समाज छोड़कर अलग हो गए थे। लेकिन उससे क्या होता—तुम्हारी माँ मेरी सगी बहन जो थी।

काशी में एक भले आदमी थे। तुम लोगों का पता पाकर यहाँ आई हूँ। परेश बाबू, सुना है, ठाकुर-देवता कुछ नहीं मानते, लेकिन ठाकुर उन पर प्रसन्न है, यह उनका चेहरा देखते ही पता लग जाता है। पूजा पाकर ही ठाकुर भूल नहीं जाते, यह मैं खूब जानती हूँ। परेश बाबू ने कैसे उन्हें वश में कर लिया इसका पता लगाऊँगी। जो हो, बिटिया, मेरे अकेले रहने का समय अभी नहीं आया—वह मैं कह नहीं सकती—ठाकुर जब दया करें·· लेकिन तब तक तुम्हें गोद से लगाये रखे बिना मैं नहीं रह सकूंगी।

३८

परेश बाबू ने वरदासुन्दरी की अनुपस्थिति में हरिमोहिनी को आश्रय दिया था। छत पर अकेले कमरे में उसे स्थान देकर ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि अपने आचार का पालन करने में उसे कोई विघ्न न हो।

वरदासुन्दरी लौटकर अपनी गृह-व्यवस्था के बीच यह अकल्पित प्रादुर्भाव देखकर बिलकुल जल-भुन गई। उन्होंने बड़े तीखे स्वर से परेश से कहा, "यह मुझ से नहीं होगा।"

परेश ने कहा, "तुम हम सबको सह सकती हो, और उस एक अनाथिनी विधवा को नहीं सह सकोगी?"

वरदासुन्दरी जानती थी कि परेश को लोक-व्यवहार का ज्ञान बिलकुल नहीं है, दुनिया में किस बात से क्या सुविधा या असुविधा होती है इस बारे में वह कभी कुछ सोचते ही नहीं, सहसा एक-न-एक काम कर बैठते हैं। उसके बाद कोई चाहे गुस्सा करे बिगड़े या रोये-धोये, वह एकदम पत्थर की मूर्ति बने बैठे रहते हैं। ऐसे आदमी से भला कौन निबाह सकता है? जरूरत होने पर जिसके साथ झगड़ा भी

न किया जा सके उसके साथ गृहस्थी कौन स्त्री चला सकती है !

सुचरिता और मनोरमा की लगभग एक ही उम्र थी। हरिमोहिनी को लगने लगा कि सुचरिता देखने में भी बहुत-कुछ मनोरमा-सी ही है, और स्वभाव भी उससे मिलना-जुलता है --वैसी ही शान्त और वैसी ही दृढ़। कभी-कभी सहसा पीठ से उसे देखकर हरिमोहिनी का हृदय एकाएक चौंक उठता। किसी-किसी दिन साँझ के अन्धकार में अकेली बैठकर वह निःशब्द रो रही होती, तब सुचरिता के पास आने पर आँखें बन्द करके उसे दोनों हाथों से खींचकर छाती से लगाकर वह कहतीं, "अहा, मुझे लग रहा है कि मैं उसी को छाती से लगाये हूँ। वह जाना नहीं चाहती थी, मैंने उसे जबरदस्ती भेज दिया दुनिया में क्या कभी किसी तरह मेरी यह सजा पूरी न होगी। शायद जो दण्ड मिलना था, मिल चुका - अब वह फिर आ गई है - यहीं तो लौट आई है --वैसी ही हँसती हुई लौट आई है - मेरी बिटिया, मेरी मणि-माणिक, मेरा धन !"

ऐसा कहकर सुचरिता के सारे चेहरे पर हाथ फेरकर उसे चूमकर वह आँसुओं में डूबी रहती, सुचरिता के आँखों में भी आँसू आ जाते। वह मौसी के गले में हाथ डालकर कहती, "मौसी, मैं भी तो माँ का प्यार बहुत दिन नहीं पा सकी, वही खोई हुई माँ आज फिर लौट आई हैं। कितनी बार कितने दुःख के समय जब ईश्वर को पुकारने की शक्ति नहीं रही, जब मन भीतर-ही-भीतर सूख गया है, तब मैंने माँ को पुकारा है। वही माँ आज मेरी पुकार सुनकर आ गई है।"

हरिमोहिनी कहती, "ऐसे मत कर, मत कह ? तेरी बात सुनकर मुझे इतना आनन्द होता है कि मैं डर जाती हूँ। हे ठाकुर, इधर ध्यान न देना, ठाकुर ! सोचती हूँ कि और माया नहीं करूँगी---मन को पत्थर करके रखूँगी-- लेकिन मुझसे होता नहीं। मैं बड़ी दुर्बल हूँ, मुझ पर दया करो, मुझे और मारो मत ! नहीं, राधारानी, तू जा, चली जा, मुझे छोड़ जा मुझे फिर मत बाँध, मत बाँध ! मेरे गोपीवल्लभ, मेरे जीवननाथ, मेरे गोपाल, मेरे नीलमणि, मुझे फिर किस विपत्ति में डाल रहे हैं···!"

सुचरिता कहती, "मुझे तुम जबरदस्ती नहीं हटा सकोगी, मौसी, मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगी- बराबर इसी तरह तुम्हारे पास ही रहूँगी।"

यह कहकर वह मौसी की छाती में सिर छिपाकर शिशु-सी चुप बैठी रहती।

दो दिन में ही सुचरिता के साथ उसकी मौसी का ऐसा गहरा सम्बन्ध हो गया कि उस थोड़े-से समय से उसकी माप नहीं हो सकती।

वरदासुन्दरी इससे भी विरक्त हुई। "इस लड़की को तो देखो ! जैसे हमने कभी इसको लाड़-प्यार ही नहीं दिया। मैं पूछती हूँ, इतने दिन मौसी कहाँ थी ?

बचपन से ही पाल-पोसकर हमने बड़ा किया, और आज मौसी का नाम सुनते ही मानो पहचानती ही नहीं। मैं उनसे बराबर कहती रही हूँ, तुम लोग जो सब सुचरिता को अच्छा-अच्छा कहते हो, वह बाहर से ही भलीमानस दीखती है, लेकिन उसके मन की थाह पाना आसान नहीं है। हमने इतने दिन उसके लिए जो कुछ किया, सब व्यर्थ ही गया है।"

परेश बाबू वरदासुन्दरी का दर्द नहीं समझेंगे, यह वह जानती थी। इतना ही नहीं, हरिमोहिनी के प्रति विरक्ति प्रकट करने से वह परेश की नज़रों में गिर जायगी, इसमें भी उन्हें सन्देह नहीं था। इससे उनका गुस्सा और भी बढ़ गया था। परेश जो कहें, लेकिन अधिकांश बुद्धिमान लोगों की राय वरदासुन्दरी से ही मिलती है, यही सिद्ध करने के लिए वह अपना दल बढ़ाने की चेष्टा करने लगी। अपने समाज के प्रधान-अप्रधान सभी लोगों के साथ हरिमोहिनी के मामले की चर्चा वह करने लगीं। हरिमोहिनी का हिन्दूपन, उसकी ठाकुर-पूजा, घर में लड़के-लड़कियों पर उसका बुरा प्रभाव, इन सबको लेकर उनके अभियोगों का अन्त नहीं था।

केवल दूसरों के सामने नालिश तक की बात नहीं थी, वरदासुन्दरी सभी तरह से हरिमोहिनी को तंग भी करने लगीं। हरिमोहिनी के चौका-बासन के लिए जो अहीर बैरा पानी खींच देता था, उसे ठीक समय पर वह दूसरे काम में लगा देतीं। उस सम्बन्ध में कोई बात उठने पर वह कह देती, "क्यों, रामदीन तो है?" रामदीन जात का दुसाध था, वह जानती थीं कि उसके हाथ का पानी हरमोहिनी काम में न लायेंगी। कोई यह बात कहता तो वह जवाब देतीं, "इतनी बह्मनाई करनी हो तो हमारे ब्राह्म घर में क्यों आईं? हमारे यहाँ यह सब जात-पाँत विचारने से नहीं चलेगा। मैं किसी तरह इसे नहीं सहूँगी।" ऐसे मामलों को लेकर उनकी कर्त्तव्य-भावना बड़ी तीव्र हो उठती। वह कहतीं, ब्राह्म-समाज में धीरे-धीरे सामाजिक शैथिल्य बहुत बढ़ता जा रहा है, इसीलिए ब्राह्म-समाज काफ़ी काम नहीं कर पा रहा है। जहाँ तक उनका बस चलेगा वह इस शैथिल्य में योग नहीं देंगी—कभी नहीं। इस पर अगर कोई उन्हें गलत समझे तो वह भी उन्हें स्वीकार है, और अगर घर के लोग ही विरोधी हो जायँ तो उसे भी वह सिर झुकाकर सह लेंगी। दुनिया में जिन महापुरुषों ने कोई भी बड़ा काम किया है, उन सभी को निन्दा और विरोध सहना पड़ा है, इस बात की वह सभी को याद दिलाने लगीं।

लेकिन हरिमोहिनी को कोई असुविधा नहीं हरा सकता थी। उन्होंने मानो प्रण कर लिया था कि वह कृच्छ्र-साधना की चरम-सीमा तक पहुँच जायँगी।

उन्होंने भीतर जो असह्य दुःख पाया है मानो बाहर भी उससे सामंजस्य बनाये रखने के लिए वह कठोर आचार के द्वारा प्रतिदिन नये कष्टों का सृजन करती हुई चलती थीं। इस तरह दुःख को स्वेच्छा से वरण करके उसे आत्मीय बनाकर उसे वश में करने की ही उनकी साधना थी।

हरिमोहिनी ने जब देखा कि पानी की असुविधा होती है तब उन्होंने रांधने का काम बिलकुल छोड़ ही दिया, ठाकुर के सामने निवेदन करके प्रसाद-स्वरूप दूध और फल पर ही दिन काटने लगीं। सुचरिता को इससे बहुत दुःख हुआ; पर मौसी ने यह कहकर उसे समझा-बुझा दिया कि, "यह मेरे लिए बहुत अच्छा हुआ है, बेटी ! ऐसा ही मुझे चाहिए था। इसमें मुझे कोई कष्ट नहीं है, बल्कि आनन्द ही है।"

सुचरिता ने पूछा, "मौसी, मैं अगर दूसरी जाति के हाथ का खाना-पानी न लूं तो मुझे तुम अपना काम करने दोगी ?"

हरिमोहिनी बोलीं, "क्यों बेटी, तुम जो धर्म मानती हो उसीके अनुसार तुम चलो— मेरे लिए तुम्हें दूसरे रास्ते पर नहीं चलना होगा। मैंने तुम्हें पाया है, तुम मेरे पास हो, रोज तुम्हें देख पाती हूं, यही मेरा आनन्द है। परेश बाबू तुम्हारे गुरु हैं, पिता के बराबर हैं, उन्होंने तुम्हें जो शिक्षा दी है, तुम उसीको मानकर चलो, उसीसे भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे।"

हरिमोहिनी वरदासुन्दरी के सारे अत्याचार ऐसे सहने लगीं मानो वह कुछ समझी ही न हों। परेश बाबू जब आकर उनसे पूछते, "कैसी हैं, कोई असुविधा तो नहीं है न ?" तब वह कह देतीं, "मैं बहुत सुख से हूं।"

लेकिन वरदासुन्दरी के अत्याचार सुचरिता को बराबर अखरते रहते। वह शिकायत करने वाली नहीं थी, और परेश बाबू के सम्मुख वरदासुन्दरी के व्यवहार की बात तो वह किसी तरह न कह सकती। वह भी चुपचाप सब-कुछ सहती रही, इन सब मामलों में किसी तरह का विरोध प्रकट करने में उसे बड़ा संकोच होता।

इसका फल यही हुआ कि सुचरिता धीरे-धीरे सम्पूर्णतया अपनी मौसी के साथ हो गई। मौसी के बार-बार मना करने पर भी खाने-पीने के सम्बन्ध में वह सम्पूर्णतया हरिमोहिनी की अनुवर्ती होकर चलने लगी। अन्त में यह देखकर कि सुचरिता को कष्ट होता है, हरिमोहिनी ने लाचार होकर फिर रसोई करना आरम्भ कर दिया। सुचरिता ने कहा, "मौसी, तुम मुझे जैसे रहने को कहोगी मैं वैसे ही रहूंगी, लेकिन तुम्हारे लिए पानी मैं स्वयं खींच लाऊंगी— वह मैं किसी तरह नहीं छोड़ूंगी।"

हरिमोहिनी ने कहा, "बेटी, तुम बुरा मत मानना, लेकिन उसी जल से मुझे ठाकुर का भोग भी तो लगाना होता है।"

सुचरिता ने कहा, "मौसी, तुम्हारे ठाकुर भी क्या जाति मानते हैं ? उन्हें भी क्या पाप लगता है—उनका भी क्या समाज है ?"

अन्त में एक दिन सुचरिता की निष्ठा के आगे हरिमोहिनी को हार माननी ही पड़ी। सुचरिता की सेवा को उन्होंने सम्पूर्ण भाव से ग्रहण कर लिया। सतीश भी दीदी की देखा-देखी 'मौसी की रसोई खाऊँगा' की पकड़ में आ गया। इस प्रकार इन तीनों के मिल जाने से परेश बाबू के घर के कोने में अलग एक छोटी-सी गृहस्थी जुट गई। इन दोनों के बीच अकेली ललिता ही सेतु-सी बनी रह गई। वरदासुन्दरी अपनी और किसी लड़की को इधर फटकने भी न देतीं, लेकिन ललिता को मना कर देने की हिम्मत उनमें नहीं थी।

३९

वरदासुन्दरी अपनी ब्राह्म सहेलियों को जब-तब निमन्त्रण देने लगीं। बीच-बीच में छत पर ही उनकी सभा जुटती। हरिमोहिनी अपनी स्वाभाविक देहाती सरलता से स्त्रियों की आव-भगंत करतीं, लेकिन यह उनसे छिपा न रहता कि वे सब उनकी अवज्ञा करती हैं। यहाँ तक कि वरदासुन्दरी उनके सामने ही हिन्दुओं के सामाजिक आचार-व्यवहार के बारे में तीखी आलोचना शुरू कर देतीं और उनकी साथिनें भी विशेष रूप से हरिमोहिनी को लक्ष्य करके उसमें योग देतीं।

सुचरिता मौसी के पास रहकर चुपचाप ये सब आक्रमण सह लेती : बल्कि हठ करके वह यही दिखाने की चेष्टा करती कि वह भी अपनी मौसी के पक्ष की है। जिस दिन कुछ खाने-पीने का आयोजन होता उस दिन बुलाई जाने पर सुचरिता कहती, "नहीं, मैं नहीं खाती !"

"यह क्या बात ? तुम हम लोगों के साथ बैठकर नहीं खाओगी ?"

"नहीं।"

वरदासुन्दरी कहतीं, "आजकल सुचरिता बड़ी हिन्दू हो गई है, यह शायद तुम्हें नहीं मालूम ? वह तो हमारा छुआ हुआ नहीं खाती।"

हरिमोहिनी घबराकर कहतीं, "राधारानी, बेटी, जाओ—तुम जाओ, खाओ बेटी !"

दल के लोगों में सुचरिता की उन्हीं के कारण ऐसी बदनामी होती है, इससे उन्हें बहुत कष्ट होता था। लेकिन सुचरिता अटल रहती। एक दिन किसी ब्राह्म लड़की के कौतूहलवश हरिमोहिनी के कमरे में जूता पहने हुए प्रवेश करने जाने पर सुचरिता ने रास्ता रोककर खड़े होते हुए कहा, "इस कमरे में मत जाओ!"

"क्यों ?"

"उस कमरे में उनके ठाकुर हैं।"

"ठाकुर हैं! तो तुम रोज ठाकुर-पूजा करती हो ?"

हरिमोहिनी ने कहा, "हाँ बेटी, पूजा तो करती ही हूँ।"

"ठाकुर पर विश्वास है ?"

"मुझ हतभागिनी में विश्वास कहाँ! विश्वास होता तो तर न जाती।"

उस दिन ललिता भी उपस्थित थी। मुंह लाल करके प्रश्न करने वाली लड़की से पूछ उठी, "तुम जिसको उपासना करती हो उस पर विश्वास करती हो ?"

"वाह! विश्वास नहीं करती तो क्या!"

ललिता ने जोर से सिर हिलाकर कहा, "विश्वास तो करती ही नहीं, यह भी नहीं जानती कि विश्वास नहीं करतीं।"

सुचरिता आचार-व्यवहार के मामले में अपने समाज के लोगों से अलग न हो, हरिमोहिनी इसकी बड़ी कोशिश करतीं, लेकिन सफलता उन्हें किसी तरह न मिली।

अब तक हारान बाबू और वरदासुन्दरी में भीतर-ही-भीतर एक विरोध का भाव रहता आया था। लेकिन इन घटनाओं से दोनों का खूब मेल हो गया। वरदासुन्दरी ने कहा, "कोई कुछ भी क्यों न कहे, ब्राह्म समाज के आदर्श को शुद्ध रखने की ओर अगर किसी की दृष्टि है तो पानूबाबू की।" हारान बाबू ने भी सबके सामने अपना यह विचार प्रकट किया कि ब्राह्म-परिवार को सब तरह निष्कलंक रखने के लिए वरदासुन्दरी की एकान्त दर्द-भरी सजगता ब्राह्म गृहिणी-मात्र के लिए एक उत्तम उदाहरण है। उनकी इस प्रशंसा में परेश बाबू पर एक चोट भी थी।

हारान बाबू ने एक दिन परेश बाबू के सामने ही सुचरिता से कहा, "मैंने सुना है कि आजकल तुमने ठाकुर जी का प्रसाद खाना शुरू किया है ?"

सुचरिता का चेहरा लाल हो आया, लेकिन वह ऐसे ढंग से मेज पर रखे हुए कलमदान में कलम सजाकर रखने लगी मानो उसने यह बात सुनी ही न हो। परेश बाबू ने एक और करुणा-भरी नजर से उसकी ओर देखकर हारान बाबू से कहा, "पानूबाबू, हम लोग जो कुछ खाते हैं सभी तो ठाकुर का प्रसाद है।"

हारान बाबू बोले, "लेकिन सुचरिता तो हमारे ठाकुर का परित्याग करने

की कोशिश कर रही है।"

परेश बाबू ने कहा, "ऐसा भी अगर सम्भव हो तब उसके बारे में उत्पात खड़ा करने से क्या उसका प्रतिकार होगा ?"

हारान बाबू ने कहा, "जो बाढ़ में बहा जा रहा हो क्या उसे किनारे पर लगाने की कोशिश न की जाय ?"

परेश बाबू ने कहा, "सब मिलकर उसके सिर पर ढेले फेंकने लगें, इसे किनारे लगाने की कोशिश नहीं कहा जा सकता। पानू बाबू, आप निश्चिन्त रहिए, मैं सुचरिता को उसके छुटपन से ही देखता आ रहा हूँ—वह अगर पानी में ही गिरी होती तो आप सब लोगों से पहले ही जान पाता, और उदासीन भी न रहता।"

हारान बाबू बोले, "सुचरिता तो यहीं मौजूद हैं—आप उनसे ही पूछ लीजिए न। सुनता हूँ वह हर किसी का छुआ नहीं खातीं—यह बात क्या झूठ है ?"

सुचरिता ने कलमदान पर अनावश्यक मनोयोग छोड़कर कहा, "बाबा तो जानते हैं, मैं हर किसी का छुआ नहीं खाती। मेरे इस आचरण को वह सह लेते हैं तो इतना ही काफ़ी है। आप लोगों को अच्छा न लगे तो आप मेरी चाहे जितनी निन्दा कर लीजिए, बाबा को क्यों तंग करते हैं ? वह आप लोगों को कितना कुछ क्षमा कर देते हैं, वह क्या आप जानते हैं ? यह क्या उसी का प्रतिफल है ?"

हारान बाबू अचम्भे में आ गए। सोचने लगे, 'आजकल सुचरिता भी जवाब देना सीख गई है !'

परेश बाबू स्वभाव से शान्तिप्रिय थे, अपने या दूसरों के सम्बन्ध में अधिक चर्चा उन्हें पसन्द नहीं थी। अभी तक ब्राह्म समाज में उन्होंने किसी काम में कोई प्रधान पद स्वीकार नहीं किया, अपने को किसी तरह सामने न लाकर एकान्त में ही जीवन-यापन करते रहे। परेश बाबू की इस प्रवृत्ति को हारान उत्साह-हीनता और उदासीनता समझते रहे हैं और इसके लिए परेश बाबू की बुराई भी करते रहे हैं। उत्तर में परेश बाबू ने इतना ही कहा है कि "ईश्वर ने सचल और अचल दो प्रकार के पदार्थ रचे हैं, मैं बिलकुल अचल हूँ। मुझ-जैसे आदमी से जो काम लिया जा सकता है, ईश्वर वह पूरा करा लेंगे। और जो सम्भव नहीं है, उसकी चिन्ता से क्या लाभ ? मेरी उम्र काफ़ी हो गई है, मुझमें किस काम की शक्ति है और किसकी नहीं, इसका फ़ैसला हो चुका है। अब मुझे ठेल-ठाल कर कहीं ले जाने की कोशिश व्यर्थ है।"

हारान बाबू की धारणा थी कि वह शिथिल हृदय में भी उत्साह का संचार कर दे सकते हैं, जड़मति को भी रास्ता लगा देने और पथभ्रष्ट जीवन को अनुताप

से विगलित कर देने की उनमें सहज क्षमता है। उनका विश्वास था कि उनकी शुभ-इच्छा इतनी एकाग्र और बलवती है कि उसके विरुद्ध कोई अधिक नहीं टिक सकता। उन्हें निश्चय था कि उनके समाज के लोगों के व्यक्तिगत चरित्र में जो सब अच्छे परिवर्तन हुए हैं, किसी-न-किसी तरह वह स्वयं उसके मुख्य कारण रहे हैं। उन्हें इसमें कोई सन्देह न था कि उनका अलक्षित प्रभाव भी भीतर-ही-भीतर असर करता रहता है। अभी तक जब भी किसी ने उनके सामने सुचरिता की विशेष प्रशंसा की है, उन्होंने उसे ऐसे भाव से ग्रहण किया है मानो वह उन्हींकी प्रशंसा हो। उन्हें आशा रही है कि उपदेश, दृष्टान्त और संगति के प्रभाव से वह सुचरिता के चरित्र को ऐसा गठित कर देंगे कि इसी सुचरिता के जीवन के द्वारा लोक-समाज में उनका आश्चर्यमय प्रभाव प्रमाणित हो जायगा।

उसी सुचरिता के इस शोचनीय पतन से स्वयं अपनी क्षमता के बारे में उनका गर्व कुछ भी कम नहीं हुआ, इसका सारा दोष उन्होंने परेश बाबू के सिर मढ़ दिया। लोग बराबर परेश बाबू की प्रशंसा करते आए हैं, लेकिन हारान बाबू ने कभी उसमें योग नहीं दिया, इसमें भी उन्होंने कैसी दूरदर्शिता का परिचय दिया है, यह अब सब पर विदित हो जायगा, इसकी भी उन्हें आशा थी।

हारान बाबू जैसे लोग और सब-कुछ कह सकते हैं, लेकिन जिन्हें वह विशेष रूप से हित के पथ पर चलाना चाहते हों वे अपनी बुद्धि के अनुसार स्वतन्त्र पथ का अवलम्बन करें, इस अपराध को किसी तरह क्षमा नहीं कर सकते। उन्हें सहज ही छोड़ देना भी उनके लिए असम्भव होता है; जितना ही वह देखते हैं कि उपदेश का फल नहीं हो रहा है उतना ही उनकी जिद बढ़ती जाती है और वह लौट-लौट-कर आक्रमण करते जाते है। जैसे जब तक चाभी न चुक जाय तब तक मशीन नहीं रुकती, वैसे ही वे भी किसी तरह अपने को नहीं संभाल सकते--जो कान उनसे विमुख हैं उनमें एक ही बात हज़ार बार दुहराकर भी हार मानना नहीं चाहते।

सुचरिता को इससे बड़ा कष्ट होता – अपने लिए नहीं, परेश बाबू के लिए। परेश बाबू सारे ब्राह्म समाज में टीका-टिप्पणी के विषय हो गए है, इस अशान्ति को कैसे दूर किया जा सकता है? दूसरी ओर सुचरिता की मौसी भी प्रतिदिन समझती जा रही थीं कि वह जितना ही झुककर अपने को ओट रखने की कोशिश करती हैं, उतना ही इस परिवार के लिए और भी समस्या बनती जाती हैं। इसको लेकर मौसी की लज्जा और संकोच सुचरिता को सालते रहते। इस संकट से कैसे उद्धार हो, यह सुचरिता किसी तरह सोच नहीं पाती थी।

इधर जल्दी से सुचरिता का विवाह कर डालने के लिए वरदासुन्दरी परेश

बाबू पर बहुत दबाव डालने लगीं। उन्होंने कहा, "सुचरिता की ज़िम्मेदारी अब हम लोग और नहीं उठा सकते, वह अब मनमाने ढंग से चलने लगी है। उसके विवाह में अगर अभी देर हो तो लड़कियों को लेकर मैं और कहीं चली जाऊँगी —सुचरिता का अद्भुत उदाहरण लड़कियों के लिए बहुत ही बुरा सिद्ध होगा। तुम देखना, इसके लिए आगे चलकर तुम्हें पछताना पड़ेगा। ललिता पहले ऐसी नहीं थी, अब वह जो उसके मन में आता है कर बैठती है, किसी की नहीं सुनती, उसकी जड़ में क्या है? उस दिन जो करनी कर बैठी जिसके लिए मैं शर्म से मरी जा रही हूँ, तुम्हारा क्या ख्याल है कि उसमें सुचरिता का कोई हाथ नहीं था? तुम अपनी लड़कियों से भी सुचरिता को हमेशा अधिक चाहते रहे हो, इस पर मैंने कभी कुछ नहीं कहा, लेकिन और ऐसा नहीं चलेगा यह मैं साफ़ कहे देती हूँ।"

सुचरिता के लिए तो नहीं लेकिन पारिवारिक अशान्ति के कारण परेश बाबू चिन्तित हो उठे। वरदासुन्दरी जिस बात को पकड़ लेंगी उसे पूरा करने की कोई कोशिश बाकी न रखेंगी। और जितना ही देखेंगी कि आन्दोलन से कोई परिणाम नहीं निकलता है उतना ही और हठ पकड़ती जायेंगी, इसमें उन्हें कोई सन्देह नहीं था। सुचरिता का विवाह किसी तरह जल्दी हो सके तो वर्तमान अवस्था में सुचरिता के लिए भी वह शान्ति-जनक हो सकता है, इसमें भी सन्देह नहीं। उन्होंने वरदासुन्दरी से कहा, "पानू बाबू अगर सुचरिता को राज़ी कर सकें तो विवाह के बारे में मैं कोई आपत्ति नहीं करूँगा।"

वरदासुन्दरी ने कहा, "और कितनी बार राज़ी करना होगा? तुम तो हद करते हो! और इतनी खुशामद भी किस लिए? मैं पूछती हूँ, पानू बाबू जैसा पात्र उन्हें और मिलेगा कहाँ? तुम चाहे गुस्सा ही करो, सच बात यही है कि सुचरिता पानू बाबू के लायक नहीं है!"

परेश बाबू बोले, "पानू बाबू के प्रति सुचरिता के मन का भाव कैसा है, यह मैं ठीक-ठीक नहीं समझ सका। इसीलिए जब तक वे लोग आपस में ही बात साफ़ न कर लें, तब तक मैं इसमें कोई दखल नहीं दे सकता।"

वरदासुन्दरी ने कहा, "नहीं समझ सके! इतने दिन बाद आखिर स्वीकार करना पड़ा। उस लड़की को समझना आसान नहीं है— वह बाहर से कुछ और है, भीतर से कुछ और!

वरदासुन्दरी ने हारान बाबू को बुला भेजा।

उस दिन अखबार में ब्राह्म-समाज की वर्तमान दुर्गति की आलोचना थी। उसी में परेश बाबू के परिवार की ओर ऐसे इशारा किया गया था कि कोई नाम न रहने पर भी यह बिलकुल स्पष्ट हो गया था कि किस पर आक्रमण किया गया

है। और लिखने के ढंग से यह अनुमान करना भी कठिन न था कि उसका लेखक कौन है। उसे एक बार सरसरी नजर से देखकर सुचरिता अखबार के टुकड़े-टुकड़े कर रही थी। उसे इतना क्रोध आ रहा था मानो फाड़ते-फाड़ते अखबार की धिज्जियों को जब तक परमाणुओं में परिणत न कर लेगी तब तक न रुकेगी।

ऐसे समय में हारान बाबू आकर एक कुर्सी खींचकर सुचरिता के पास बैठ गए। सुचरिता ने एक बार चेहरा उठाकर भी नहीं देखा, जैसे अखबार फाड़ रही थी वैसे ही फाड़ती रही। हारान बाबू बोले, "सुचरिता, आज एक गंभीर बात करनी है। मेरी बात ज़रा ध्यान से सुननी होगी।"

सुचरिता कागज फाड़ती रही। हाथों से और टुकड़े करना जब असम्भव हो गया, तब कैंची निकालकर कैंची से और टुकड़े करने लगी। ठीक इसी समय ललिता ने कमरे में प्रवेश किया।

हारान बाबू ने कहा, "ललिता, मुझे सुचरिता से कुछ बात करनी है।"

ललिता कमरे से जाने लगी तो सुचरिता ने उसका आंचल पकड़ लिया। ललिता ने कहा, "पानू बाबू को तुमसे कुछ बात जो करनी है।"

सुचरिता कोई जवाब दिये बिना ललिता का आंचल पकड़े रही। इस पर ललिता सुचरिता के आसन के कोने पर बैठ गई।

हारान बाबू किसी भी बाधा से दबने वाले नहीं हैं। उन्होंने और भूमिका बांधे बिना सीधे ही बात छेड़ दी। बोले, "विवाह में और देर करना मैं ठीक नहीं समझता। मैंने परेश बाबू से कहा था, उन्होंने कहा है कि तुम्हारी सम्मति मिलते ही और कोई बाधा न रहेगी। मैंने तय किया है कि इस रविवार से अगले रविवार को ही···"

सुचरिता ने उन्हें बात पूरी न करने देकर कहा, "नहीं।"

सुचरिता के मुंह से यह अत्यन्त संक्षिप्त लेकिन स्पष्ट और उद्धत 'नहीं' सुनकर हारान बाबू चौंक गए। वह सुचरिता को अत्यन्त आज्ञाकारिणी ही जानते आए थे। वह अपनी एकमात्र 'नहीं' के बाण से उनके प्रस्ताव को आधे रास्ते में ही बेधकर गिरा देगी, इसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। उन्होंने रुखाई से पूछा, "नहीं ! नहीं माने क्या ? तुम और देर करना चाहती हो ?"

सुचरिता ने कहा, 'नहीं।"

हारान बाबू ने विस्मित होकर कहा, "तो फिर ?"

सुचरिता ने सिर झुकाकर कहा, "विवाह में मेरी सम्मति नहीं है !"

हारान बाबू ने हतबुद्धि-सा होकर पूछा, "सम्मति नहीं इसके माने ?"

ललिता ने व्यंग्यपूर्वक कहा, "पानू बाबू, आप आज बङ्गला भाषा भूल गए हैं क्या ?"

हारान बाबू ने एक कठोर दृष्टि से ललिता को चुप करना चाहते हुए कहा, "मातृभाषा भूल गया हूँ यह बात स्वीकार करना उतना कठिन नहीं है जितना यह स्वीकार करना कि जिस व्यक्ति की बात पर बराबर विश्वास करता आया हूँ उसे मैंने ग़लत समझा।"

ललिता ने कहा, "व्यक्ति को समझने में समय लगता है, यह बात शायद आपके बारे में भी कही जा सकती है।"

हारान बाबू बोले, "मेरी बात या राय या व्यवहार में शुरू से ही कभी कोई भेद नहीं रहा है—मैंने कभी किसी को ग़लत समझने का कोई कारण नहीं दिया, यह बात मैं ज़ोर देकर कह सकता हूँ। सुचरिता ही कहे कि मैं सही कह रहा हूँ या नहीं।"

ललिता फिर कुछ जवाब देने जा रही थी कि सुचरिता ने उसे रोकते हुए कहा, "आप ठीक कहते हैं। आपको मैं कोई दोष नहीं देती।"

हारान बाबू ने कहा, "अगर दोष नहीं देतीं तो फिर मेरे साथ ऐसी ज़्यादती क्यों करती हैं ?"

सुचरिता ने दृढ़ स्वर से कहा, "इसे अगर आप ज़्यादती कहते हैं तो मेरी ज़्यादती ही है—लेकिन···"

तभी बाहर से पुकार आई, "दीदी, आप कमरे में हैं ?"

सुचरिता ने खिलकर जल्दी से उठते हुए कहा, "आइए, विनय बाबू, आइए।"

"आप भूल रही हैं, दीदी—विनय बाबू नहीं आए हैं, निरा विनय आया है, मुझे मान देकर शर्मिन्दा न करें," कहते हुए विनय ने कमरे में प्रवेश करते ही हारान बाबू को देखा। हारान बाबू के चेहरे पर अप्रसन्नता देखकर बोला, "मैं इतने दिन आया नहीं, इसलिए नाराज़ हो रहे हैं ?"

हारान बाबू ने हँसी में योग देने की कोशिश करते हुए कहा, "नाराज़ी की बात तो है ही। लेकिन आज आप ज़रा असमय में आए हैं—सुचरिता के साथ मेरी कुछ ख़ास बात हो रही थी।"

विनय हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। बोला, "यही देखिए न, मेरे कब आने से असमय आना नहीं होगा यह मैं आज तक समझ ही नहीं सका। इसीलिए कभी आने का ही साहस नहीं होता।" कहकर विनय बाहर जाने को मुड़ा।

सुचरिता ने कहा, 'विनय बाबू, जाइए नहीं, हमारी जो बात थी ख़त्म हो गई है। आप बैठिए !"

विनय समझ सका कि उसके आने से सुचरिता को एक विशेष संकट से छुटकारा मिल गया है। वह खुश होकर एक कुर्सी पर बैठ गया और बोला, "मुझे प्रश्रय देने से मैं किसी तरह नहीं रह सकता—मुझे बैठने को कहने पर मैं ज़रूर बैठूंगा ऐसा ही मेरा स्वभाव है। इसीलिए दीदी से मेरा निवेदन यही है कि ऐसा बात मुझे सोच-समझकर ही कहें, नहीं तो मुश्किल में पड़ जायेंगी।"

हारान बाबू कुछ कहे बिना आंधी से पहले के सन्नाटे-से स्तब्ध बैठे रहे। उनका मौन मानो कह रहा था, 'अच्छी बात है, मैं बैठकर इन्तज़ार करता हूं—मुझे जो कहना है वह पूरा कहकर ही उठूंगा।'

द्वार के बाहर से ही विनय का कंठ-स्वर सुनकर ललिता के हृदय में मानो खलबली मच गई थी। वह अपना सहज स्वाभाविक भाव बनाये रखने की बड़ी कोशिश कर रही थी पर सफल नहीं हो रही थी। विनय के कमरे में आने पर ललिता सहज भाव से परिचित बन्धु की तरह कोई बात उससे न कह सकी। वह किधर देखे, अपने हाथों को क्या करे, यही मानो एक समस्या हो गई थी। एक बार उसने उठकर चलने की भी कोशिश की, किन्तु सुचरिता ने किसी तरह उसका पल्ला न छोड़ा।

विनय ने भी जो कुछ बातचीत की, सुचरिता से ही—ललिता से कोई बात चलाना आज उस-जैसे वाक्-पटु व्यक्ति के लिए भी कठिन हो उठा। मानो इसीलिए वह दुगुने ज़ोर से सुचरिता के साथ बातचीत करने लगा—बातों का क्रम उसने कहीं टूटने न दिया।

लेकिन ललिता और विनय का यह नया संकोच हारान बाबू से छिपा न रहा। जो ललिता उनके प्रति आजकल इतनी प्रगल्भ हो उठी है वह आज विनय के सामने इतनी सकुचा रही है, यह देखकर वह मन-ही-मन जल उठे। 'ब्राह्म-समाज के बाहर के लोगों से लड़कियों को मिलने की खुली छुट्टी देकर परेश बाबू अपने परिवार को कैसे गलत रास्ते पर ले जा रहे हैं,' यह सोचकर परेश बाबू के प्रति उनकी घृणा और भड़क उठी और अभिशाप-सी यह कामना मन में जाग उठी कि एक दिन परेश बाबू को इसका विशेष पश्चात्ताप करना पड़े।

बहुत देर तक ऐसे ही रहने पर यह स्पष्ट हो गया कि हारान बाबू टलने वाले नहीं हैं। तब सुचरिता ने विनय से कहा, "मौसी से आप बहुत दिन से नहीं मिले है, वह अक्सर आपके बारे में पूछती हैं। एक बार उनसे नहीं मिलेंगे?"

विनय ने कुर्सी छोड़कर खड़े होते हुए कहा, "मौसी की बात मुझे याद नहीं है, ऐसा झूठा इलज़ाम मुझ पर न लगाइए!"

सुचरिता जब विनय को अपनी मौसी के पास ले गई तब ललिता ने कहा,

"पानू बाबू, मैं समझती हूँ, मुझसे तो आपका कोई खास काम नहीं होगा।"

हारान बाबू ने कहा, "नहीं। लेकिन जान पड़ता है तुम्हें और कहीं कुछ खास काम है—तुम जा सकती हो।"

ललिता यह इशारा समझ गई। तत्काल ही उद्धत भाव से सिर उठाकर इशारे को बिलकुल स्पष्ट करते हुए कहा, "विनय बाबू आज बहुत दिन बाद आये हैं, उनसे बातें करने जा रही हूँ। तब तक आप अपना ही लिखा हुआ पढ़ना चाहते हों तो—लेकिन नहीं, वह अखबार तो देखती हूँ जो दीदी ने काट-कूटकर फेंक दिया है। दूसरे का लिखा हुआ कुछ आप सह सकते हों तो ये चीजें देख सकते हैं।" कहकर कोने की मेज पर से संभालकर रखी हुई गोरा की रचनाएँ हारान बाबू के सामने रखती हुई वह तेजी से बाहर निकल गई।

विनय को पाकर हरिमोहिनी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। वह केवल इसलिए नहीं कि इस प्रियदर्शन युवक के प्रति स्नेह था, इसलिए भी कि इस घर के जो लोग हरिमोहिनी के पास आये हैं, सभी उसे मानो किसी एक दूसरी ही श्रेणी के प्राणी की तरह देखते रहे हैं। वे सभी कलकत्ता के लोग रहे हैं, अंग्रेजी और बँगला की लिखाई-पढ़ाई में प्राय: सभी उससे श्रेष्ठ; उनकी दूरी और अवज्ञा के आघात से वह अत्यन्त संकुचित होती रही हैं। विनय में मानो उन्हें इससे आश्रय मिल गया हो। विनय भी कलकत्ता का ही है, और हरिमोहिनी ने सुन रखा है कि पढ़ने में वह किसी से पीछे नहीं है—फिर भी विनय उनके प्रति अश्रद्धा नहीं रखता, उनके प्रति अपनापा रखता है, इससे उनके आत्म-सम्मान को एक सहारा मिला। इसीलिए थोड़े से परिचय से ही विनय उसके निकट आत्मीय-सा हो गया। उन्हें ऐसा लगने लगा कि विनय उनका कवच होकर दूसरों की उद्धतता से उनकी रक्षा करेगा। इस घर में वह मानो सभी की आँखों में बहुत अधिक खटकती रही थीं—विनय मानो उन्हें ओट देकर बचाये रखेगा।

विनय के हरिमोहिनी के पास जाने के तुरन्त बाद ललिता वहाँ कभी न जाती—लेकिन आज हारान बाबू के विद्रूप की चोट से वह सारा संकोच छोड़कर मानी हठपूर्वक ऊपर के कमरे में गई। केवल गई ही नहीं, जाते ही उसने विनय के साथ बातचीत की झड़ी लगा दी। उनकी सभा खूब जम गई, यहाँ तक कि बीच-बीच में उनकी हँसी का स्वर निचले कमरे में अकेले बैठे हुए हारान बाबू के कानों से होता हुआ उनके मर्म को बेधने लगा। वह अधिक देर तक अकेले न बैठ सके। वरदासुन्दरी से बातचीत करके अपना गुस्सा प्रकट करने की कोशिश करने लगे। वरदासुन्दरी ने सुना कि सुचरिता ने हारान बाबू के साथ विवाह के बारे में अपनी असहमति प्रकट की है। यह सुनकर उनके लिए धैर्य रखना असम्भव हो गया।

बोलीं, "पानू बाबू, यहाँ भलमनसाहत दिखाने से नहीं चलेगा। वह जब बार-बार सम्मति दे चुकी है और सारा ब्राह्म-समाज जब इस विवाह की प्रतीक्षा कर रहा है, तब आज उसके सिर हिला देने से ही यह सब उलट जाय, ऐसा होने देने से नहीं चलेगा। अपना अधिकार आप किसी तरह न छोड़ें, मैं कहे देती हूँ। देखूँ वह क्या कर लेगी।"

इस मामले में हारान बाबू को बढ़ावा देने की कोई ज़रूरत नहीं थी। वह पहले ही काठ की तरह अकड़ कर बैठे हुए सिर उठाये मन-ही-मन कह रहे थे, 'आन प्रिंसिपल अपना दावा छोड़ने से नहीं चलेगा—सुचरिता का त्याग मेरे लिए कोई बड़ी बात नहीं है, लेकिन ब्राह्म-समाज का सिर नीचा नहीं होने दूँगा।'

विनय हरिमोहिनी से साथ आत्मीयता पक्की करने के लिए कुछ खाने की ज़िद लगाये बैठा था। हरिमोहिनी ने हड़बड़ाकर एक छोटी थाली में थोड़े-से भिगोये हुए चने, छैना, मक्खन, थोड़ी-सी चीनी और एक केला, और काँसे के कटोरे में कुछ दूध लाकर विनय के सामने रख दिया। विनय ने हँसकर कहा, "मैंने तो सोचा था बेवक्त भूख की बात कहकर मौसी को मुश्किल में डालूँगा, लेकिन मैं ही पकड़ा गया।"

यह कहकर बड़े आडम्बर के साथ विनय ने खाना शुरू किया ही था कि उसी समय वरदासुन्दरी आ पहुँची। विनय ने अपनी थाली पर भरसक झुककर नमस्कार करते हुए कहा, "मैं तो बहुत देर से नीचे था, आपसे भेंट नहीं हुई।"

वरदासुन्दरी ने उसे कोई उत्तर न देकर सुचरिता की ओर लक्ष्य करके कहा, "यह तो यहाँ बैठी हैं। मैं पहले ही समझ गई थी, यहाँ मजलिस जमी है—मज़े हो रहे हैं। उधर बेचारे हारान बाबू सवेरे से इनका रास्ता देखते बैठे हैं, जैसे वह इनके बगीचे के माली हों। बचपन से सबको पाल-पोसकर बड़ा किया—उनमें से तो किसी को ऐसा व्यवहार करने कभी नहीं देखा। न जाने आजकल यह सब कहाँ से सीख रही हैं। हमारे परिवार में जो कभी न हो सकता, आजकल वही सब शुरू हो गया है- समाज में मुँह दिखाने लायक न रहे। इतने दिन से इतनी मेहनत से जो कुछ सिखाया सब दो दिन में चौपट कर दिया! कैसा अन्धेर!"

हरिमोहिनी ने हड़बड़ाकर उठते हुए सुचरिता से कहा, "नीचे कोई बैठे हैं, मुझे तो मालूम नहीं था। यह तो बड़ी ग़लती हो गई। बेटी, तुम जाओ, जल्दी जाओ—मुझसे बड़ा अपराध हो गया।"

अपराध हरिमोहिनी का बिलकुल नहीं है, यह कहने के लिए ललिता उसी क्षण तैयार हो गई, लेकिन सुचरिता ने छिपे-छिपे उसका हाथ पकड़कर ज़ोर से दबाकर उसे चुप करा दिया और कोई जवाब दिये बिना नीचे चली गई।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि विनय ने वरदासुन्दरी का स्नेह आकर्षित किया था। उनके परिवार के प्रभाव में आकर विनय आगे चलकर ब्राह्म-समाज में प्रवेश करेगा, इसमें वरदासुन्दरी को सन्देह नहीं था। विनय को वह मानो अपने हाथों से गढ़कर बना रही हैं, इसका गर्व भी उन्हें था, वह गर्व उन्होंने अपने किसी किसी बन्धु के सामने प्रकट भी किया था। उसी विनय को आज दुश्मन के शिविर में प्रतिष्ठित देखकर उनके मन में जलन हुई, और अपनी ही लड़की ललिता को विनय के फिर से पतन में सहायता करते देखकर उनके भीतर की ज्वला और भी धधक उठी। उन्होंने रूखे स्वर से कहा, "ललिता, यहाँ क्या तुम्हारा कोई काम है?"

ललिता ने कहा, "हाँ, विनय बाबू आए हैं इसलिए···"

वरदासुन्दरी ने कहा, "विनय बाबू जिनके पास आए हैं वही उनकी खातिर करेंगी। तुम नीचे चलो, काम है।"

ललिता ने मन-ही-मन तय किया कि हारान बाबू ने जरूर विनय का और उसका नाम लेकर माँ से ऐसी कुछ बात कही हैं जो कहने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। इस अनुमान से उनका मन अत्यन्त कड़ा पड़ गया और उसने अनावश्यक ढिठाई से कहा, "विनय बाबू बहुत दिनों के बाद आए हैं, उनसे दो-चार बातें कर लूं, फिर आती हूं।"

ललिता के बात कहने के ढंग से वरदासुन्दरी समझ गईं कि जबर्दस्ती नहीं चलेगी। कहीं हरिमोहिनी के सामने ही उनकी हार न हो जाय, इस डर से कुछ और कहे बिना और विनय से कोई बात किये बिना वह चली गईं।

ललिता ने विनय के साथ बातें करने का उत्साह माँ के सामने तो प्रकट किया किन्तु वरदासुन्दरी के जाते ही उस उत्साह का और कोई लक्षण न दीखा। तीनों जने कुछ कुण्ठित-से हो रहे। थोड़ी देर बाद ही ललिता उठकर चली गई, अपने कमरे में जाकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया।

इस घर में हरिमोहिनी की अवस्था कैसी हो गई है यह विनय अच्छी तरह समझ गया। बातों-ही-बातों में हरिमोहिनी का पिछला सारा इतिहास भी उसने जान लिया। सारी बात सुनकर हरिमोहिनी ने कहा, "बेटा, मुझ जैसी अनाथिनी के लिए दुनिया में रहना ठीक नहीं है। किसी तीर्थ में जाकर देव-सेवा में मन लगा सकती तो वही मेरे लिए ठीक होता। मेरी जो थोड़ी बहुत पूंजी बची है उससे कुछ दिन कट जाते, उसके बाद भी बची रहती तो किसी घर के चौका-बासन करके भी दिन किसी तरह कट जाते। काशी में तो देख आयी हूं, इसी तरह बहुतों का जीवन कट जाता है। लेकिन मैं पापिनी हूं इसीलिए वैसा नहीं कर सकी। अब

अकेली होती हूँ तो मेरे सारे दुःख मुझे घेर लेते हैं—देवता-ठाकुर को भी मेरे पास नहीं आने देते। डरती हूँ कि कहीं पागल न हो जाऊँ। डूबते हुए को तख्ते का जैसा सहारा होता है, मेरे लिए राधारानी और सतीश भी वैसे ही हो गये हैं—उन्हें छोड़ने की बात सोचते ही प्राण मुँह को आ जाते हैं। इसीलिए मुझे दिन-रात डर रहता है कि उन्हें छोड़ना ही होगा, नहीं तो सब खोकर फिर कुछ-एक दिनों में उनसे इतनी ममता क्यों हो जाती! बेटा, तुम से कहने में मुझे कोई लाज नहीं है, जब से इन दोनों पाया है तब से ठाकुर की पूजा पूरे मन से कर सकी हूँ—ये चले गये तो मेरे ठाकुर भी निरे पत्थर हो जायेंगे।"

कहते-कहते हरिमोहिनी ने आँचल से आँखें पोंछ लीं।

४०

सुचरिता निचले कमरे में आकर हारान बाबू के सामने खड़ी हो गई। बोली, "आपको क्या कहना है, कहिए।"

हारान बाबू बोले, "बैठो!"

सुचरिता बैठी नहीं, वैसे ही खड़ी रही।

हारान बाबू ने कहा, "सुचरिता, तुमने मेरे साथ अन्याय किया है।"

सुचरिता ने कहा, "आपने भी मेरे साथ अन्याय किया है।"

हारान बाबू ने कहा, "क्यों, मैंने तुम्हें वचन दिया था अब भी···"

सुचरिता ने बात काटते हुए कहा, "न्याय-अन्याय क्या केवल वचन से ही होता है? उसी वचन पर ज़ोर देकर आप मुझ पर अत्याचार करना चाहते हैं? एक सत्य क्या हज़ार मिथ्या से बड़ा नहीं है? मैंने अगर सौ बार भी भूल की हो तब भी क्या आप ज़बरदस्ती उस भूल को ही आगे रखेंगे? आज जब मैंने अपनी वह भूल जान ली है तब मैं अपनी पहले की कोई बात नहीं मानूँगी—उसे मानना ही अन्याय होगा।"

सुचरिता में ऐसा परिवर्तन कैसे हो सकता है, हारान बाबू किसी तरह नहीं समझ सके। सुचरिता की स्वाभाविक नम्रता और मौन के इस तरह टूट जाने का कारण वह स्वयं है, यह समझने की उनमें न शक्ति थी, न विनय। मन-ही-

मन सुचरिता के नये साथियों को दोष देते हुए उन्होंने पूछा, "तुमने क्या भूल की थी ?"

सुचरिता ने कहा, "यह मुझसे क्यों पूछते हैं ? पहले मेरी राय थी और अब मेरी राय नहीं है, इतना ही क्या काफ़ी नहीं है ?"

हारान बाबू ने कहा, "ब्राह्म-समाज के सामने भी तो हम जवाबदेह हैं। समाज के लोगों के सामने तुम क्या कहोगी, मैं भी क्या कहूँगा ?"

सुचरिता ने कहा, "मैं तो कुछ भी नहीं कहूँगी। आप कहना चाहें तो कह दीजिएगा—सुचरिता की उम्र कम है, उसे अक्ल नहीं है, उसकी मति चंचल है। जो चाहें सो कह दीजिएगा। लेकिन इस बारे में हमारी बातचीत यहीं समाप्त हो गई।"

हारान बाबू बोले, "बात समाप्त कैसे हो सकती है ? अगर परेश बाबू···"

उनके यह कहते-कहते परेश बाबू आ गए। बोले, "क्या है पानू बाबू, मेरी क्या बात हो रही है ?"

सुचरिता कमरे से बाहर चली जा रही थी। हारान बाबू ने पुकार कर कहा. "सुचरिता, जाओ मत, परेश बाबू के सामने ही बात हो जाय।"

सुचरिता लौटकर खड़ी हो गई। हारान बाबू ने कहा, "परेश बाबू, इतने दिन बाद आज सुचरिता कह रही हैं, विवाह में उनकी सम्मति नहीं है। इतनी बड़ी, इतनी गम्भीर बात को लेकर इतने दिन तक खिलवाड़ करना क्या उचित हुआ है ? और इस लज्जाजनक बात के लिए आप भी क्या उत्तरदायी नहीं हैं ?"

परेश बाबू ने सुचरिता के सिर पर हाथ फेरते हुए स्निग्ध स्वर से कहा, "बेटी, तुम्हारे यहाँ रहने की जरूरत नहीं है, तुम जाओ।"

इस छोटी-सी बात से क्षण-भर में सुचरिता की आँखों में आँसू भर आये और वह जल्दी से चली गई।

परेश बाबू ने कहा, "सुचरिता ने अपने मन को अच्छी तरह समझे बिना ही विवाह की सम्मति दी थी, यह सन्देह बहुत दिन से मेरे मन में था। इसीलिए समाज के लोगों के सामने आपका सम्बन्ध पक्का करने के बारे में आपका अनुरोध मैं अभी तक नहीं मान सका था।"

हारान बाबू ने कहा, "सुचरिता ने तब अपना मन ठीक समझकर ही राय दी थी और अब बिना समझे 'ना' कह रही है, ऐसा सन्देह आपको नहीं होता ?"

परेश बाबू बोले, "दोनों ही बातें हो सकती हैं, लेकिन सन्देह की हालत में तो विवाह नहीं हो सकता।"

हारान बाबू बोले, "आप सुचरिता को कोई नेक सलाह न देंगे ?"

परेश बाबू ने कहा, "आप निश्चिय ही जानते हैं कि सुचरिता को मैं भरसक ग़लत सलाह नहीं दूंगा ।"

हारान बाबू ने कहा, "अगर यही बात होती तो सुचरिता की यह हालत कभी न होती। आपके परिवार में आजकल जैसी-जैसी बातें होने लगी हैं सब आपकी लापरवाही का ही फल है, यह बात मैं आपके मुंह पर कहता हूं ।"

परेश बाबू मुसकराकर बोले, "आपकी यह बात तो ठीक ही है। अपने परिवार की अच्छाई-बुराई की सारी ज़िम्मेदारी मैं नहीं लूंगा तो कौन लेगा ?"

हारान बाबू बोले, "इसके लिए आपको पछताना पड़ेगा—यह मैं कहे देता हूँ ।"

परेश बाबू ने कहा, "पछतावा तो ईश्वर की दया है, पानू बाबू ! मैं अपराध से ही डरता हूँ, अनुताप से नहीं ।"

सुचरिता ने कमरे में आकर परेश बाबू का हाथ पकड़कर कहा, "बाबा, उपासना का समय हो गया है ।"

परेश बाबू ने पूछा, "पानू बाबू, आप ज़रा बैठेंगे ?"

हारान बाबू बोले, "नहीं !" और तेज़ी से चले गये ।

४१

एक साथ ही अपने अन्तर के और बाहरी परिस्थिति के साथ सुचरिता का जो संघर्ष आरम्भ हो गया था उससे वह डर गई थी। गोरा के प्रति उसके मन का जो भाव इतने दिनों से उसके जाने बिना गहरा होता था, और गोरा के जेल जाने के बाद से जो उसके सामने बिलकुल स्पष्ट और दुर्निवार हो उठा था, उसे वह कैसे संभाले, उसका परिणाम क्या होगा, यह सोच नहीं पा रही थी ; न इसकी बात वह किसी से कह सकती थी, भीतर-ही-भीतर कुण्ठित होकर रह जाती थी। इस गहरी वेदना को लेकर वह अकेली बैठकर अपने साथ किसी तरह का समझौता कर सके, इसका भी अवकाश उसे नहीं मिला था, क्योंकि हारान बाबू सारे समाज को जगाकर उसके द्वार पर जुटाने का उपक्रम कर रहे थे। यहाँ तक समाचार-पत्रों में ढोंडी पिटवाने के भी लक्षण दीख रहे थे। इन सबके ऊपर सुचरिता की

मौसी की समस्या ने भी ऐसा रूप ले लिया था कि बहुत जल्दी उसका कोई हल निकाले बिना काम नहीं चल सकता था। सुचरिता ने समझ लिया था कि अब उसका जीवन एक सन्धि-स्थल पर आ पहुँचा है जहाँ से आगे चिर-परिचित पथ पर अपने अभ्यस्त निश्चिन्त भाव से और नहीं चला जा सकेगा।

उससे इस संकट के समय परेश बाबू ही उसके एकमात्र अवलम्बन थे। उसने उनसे कोई सलाह या उपदेश नहीं माँगा; बहुत-सी बातें ऐसी थीं जिन्हें वह परेश बाबू के सम्मुख नहीं रख सकती थी, और कुछ बातें ऐसी थीं जो अपनी लज्जास्पद हीनता के कारण ही इस लायक नहीं थीं कि परेश बाबू का संग ही चुपचाप उसे मानो पिता की गोद में या माता के वक्ष की ओर खींच लेता था।

जाड़े के दिन होने के कारण अब परेश बाबू साँझ को बगीचे में नहीं जाते थे। घर के पश्चिम की ओर के छोटे कमरे में खुले दरवाज़े के सामने आसन बिछा कर वह उपासना के लिए बैठते थे, पके बालों से मंडित उनके शान्त चेहरे पर सूर्यास्त की आभा पड़ती रहती थी। उस समय सुचरिता नीरव पैरों से आकर चुपचाप उनके पास बैठ जाती थी। अपने अशान्त व्यथित चित्त को वह मानो परेश बाबू की उपासना की गहराई में डुबा देती थी। आजकल उपासना के बाद परेश बाबू प्राय: ही देखते कि उनकी यह कन्या, यह छात्री चुपचाप उनके पास बैठी है, उस समय वह इस बालिका को एक अनिर्वचनीय आध्यात्मिक मधुरता से घिरी हुई देखकर पूरे अन्तःकरण से उसे नीरव आशीर्वाद देने लगते थे।

भूमा से मिलन ही परेश बाबू के जीवन का एकमात्र लक्ष्य था, इसलिए उनका चित्त सर्वदा उसी की ओर उन्मुख रहता था जो सत्यतम और श्रेयतम हो। इसीलिए संसार उनके लिए कभी दूभर नहीं होता था। इस प्रकार उन्होंने अपने भीतर ही एक स्वाधीनता प्राप्त कर ली थी। इसी कारण मत अथवा आचरण के मामले में वह किसी दूसरे के प्रति किसी तरह की ज़बरदस्ती नहीं कर सकते थे। मंगलमय के प्रति निर्भरता और समाज के प्रति धैर्य उनके लिए अत्यन्त स्वाभाविक था। यह धैर्य उनमें इतना अधिक था कि साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के लोग उनकी निन्दा करते थे। लेकिन वह निन्दा को ऐसे ग्रहण कर सकते थे कि वह उन्हें चोट भले ही पहुँचाए, उन्हें विचलित नहीं कर सकती थी। वह रह-रहकर मन-ही-मन एक ही बात की आवृत्ति किया करते थे, "मैं और किसी के हाथ से कुछ नहीं लूँगा, सब कुछ उसी ईश्वर के हाथ से लूँगा।"

परेश के जीवन की इस गम्भीर निस्तब्ध शान्ति का स्पर्श पाने के लिए

सुचरिता जब-तब कोई-न-कोई कारण निकालकर उनके पास आ जाती। इस अनभिज्ञ कच्ची उम्र में एक ओर अपने विद्रोही मन और दूसरी ओर विरुद्ध परि-स्थितियों से बिलकुल उद्‌भ्रांत होकर वह बार-बार मन-ही-मन कह उठती, 'बाबा के पैरों में सिर रखकर थोड़ी देर धरती पर पड़ी रह सकूँ तो मेरा मन शान्ति से भर जाय।'

सुचरिता सोचती थी कि मन की समूची शक्ति को जगाकर अविचलित धैर्य से वह सब आघातों को सह लेगी, और अन्त में सभी विरोधी परिस्थित्तियाँ अपने आप परास्त हो जायेंगी। लेकिन वैसा नहीं हुआ। उसे अपरिचित पथ पर ही चलना पड़ा।

वरदासुन्दरी ने जब देखा कि गुस्से से और डाट-फटकार से सुचरिता को डिगाना सम्भव नहीं है, और परेश बाबू की सहायता मिलने की भी कोई आशा नहीं है, तब हरिमोहिनी के प्रति उनका क्रोध बहुत ही भड़क उठा। उनके घर में हरिमोहिनी की उपस्थिति उन्हें उठते-बैठते हर समय अखरने लगी।

उस दिन पिता की बरसी की उपासना के लिए उन्होंने विनय को भी बुलाया था। उपासना सन्ध्या समय होगी, उसके लिए वह पहले से ही सभागृह सजाकर रख रही थीं, सुचरिता और अन्य लड़कियाँ भी उनकी सहायता कर रही थीं।

इसी समय उन्होंने देखा, विनय पास की सीढ़ी से ऊपर हरिमोहिनी की ओर जा रहा है। मन जब भाराक्रान्त होता है तब छोटी-सी घटना भी बहुत तूल पकड़ लेती है। विनय का सीधे ऊपर के कमरे की ओर जाना भी पलभर में ही उनके लिए ऐसा असह्य हो उठा कि घर सजाना छोड़कर वह फ़ौरन हरिमोहिनी के पास जा खड़ी हुईं। उन्होंने देखा, विनय चटाई पर बैठा आत्मीयों की भाँति घुल-मिल कर हरिमोहिनी से बातें कर रहा है।

वरदासुन्दरी बोल उठीं, "देखो, तुम हमारे यहाँ जितने दिन रहना चाहो रहो, मैं तुम्हें अच्छी तरह ही रखूँगी। लेकिन यह मैं कहे देती हूँ कि तुम्हारे उस ठाकुर को यहाँ नहीं रखा जा सकता।"

हरिमोहिनी सदा से गाँव-देहात में ही रही थीं। ब्राह्म लोगों के बारे में उनकी यही धारणा थी कि वे ख़िस्तानों की ही कोई शाखा हैं। इसलिए उनके सम्पर्क में आने के बारे में हरिमोहिनी को सोच-विचार होना तो स्वाभाविक ही था। लेकिन उन लोगों को भी हरिमोहिनी से मिलने-जुलने में संकोच हो सकता है, यह बात कुछ दिनों से ही धीरे-धीरे उनकी समझ में आ रही थी। उन्हें क्या करना चाहिए, वह इसी की व्याकुल चिन्ता कर रही थीं। ऐसे समय में आज एका-

एक वरदासुन्दरी के मुंह से यह बात सुनकर उन्होंने समझ लिया कि अब और चिन्ता करने का समय नहीं है, कुछ-न-कुछ निश्चय उन्हें कर लेना होगा। पहले उन्होंने सोचा, कलकत्ता में ही कहीं मकान लेकर रहेंगी, जिससे बीच-बीच में सुचरिता और सतीश को देखती रह सकें। लेकिन उनकी थोड़ी-सी पूंजी में कलकत्ता का खर्च कैसे चलेगा?

वरदासुन्दरी यों अकस्मात् आंधी की तरह आकर चली गईं तब विनय सिर झुकाकर चुपचाप बैठा रहा।

थोड़ी देर चुप रहकर हरिमोहिनी बोल उठी, "मैं तीर्थ जाऊंगी---तुम में से कोई मुझे पहुंचा आ सकेगा, 'बेटा?"

विनय ने कहा, "ज़रूर सकूंगा। लेकिन उनकी तैयारी में तो दो-चार दिन लग जाएंगे---तब तक, मौसी, तुम चलकर मेरी मां के पास रहो "

हरिमोहिनी ने कहा,"बेटा, मेरा बोझ बहुत बड़ा बोझ है। विधाता ने मेरे सिर पर न जाने क्या बोझ लाद दिया है कि मुझे कोई संभाल नहीं सकता। मेरी ससुराल भी जब मेरा भार नहीं उठा सकी तभी मुझे समझ लेना चाहिए था। लेकिन, बेटा, मन बड़ा ही ढीठ है---इस सूनी छाती को भरने के लिए मैं इधर-उधर भटक रही हूं और मेरा यह खोटा भाग्य भी मेरे साथ-साथ है। अब रहने दो बेटा, और किसी के घर जाने की ज़रूरत नहीं है---जो सारी दुनिया का बोझा ढोते है अब उन्हीं के चरणों में मैं भी आश्रय लूंगी---और मुझसे अब नहीं होता।" कहती हुई हरिमोहिनी बार-बार आंखें पोंछने लगी।

विनय ने कहा, "ऐसा कहने से नहीं होगा, मौसी! मेरी मां से और किसी की तुलना नहीं की जा सकती। जो अपने जीवन का सारा भार भगवान् को सौंप दे सकते हैं उन्हें दूसरों का भार लेते कोई क्लेश नहीं होता। जैसे मेरी मां है, या जैसे यहां आपने परेश को देखा है। मैं कुछ नहीं सुनूंगा---एक बार तुम्हें अपनी तीर्थ की सैर करा लूंगा, फिर मैं तुम्हारा तीर्थ देखने चलूंगा।"

हरिमोहिनी ने कहा, "तब पहले उन्हें एक बार खबर तो देनी···"

विनय ने कहा, "हम लोगों के पहुंचते ही मां को खबर हो जाएगी---वही तो पक्की खबर होगी।"

हरिमोहिनी ने कहा, "तो फिर कल सवेरे···"

विनय ने कहा, "क्या ज़रूरत है? आज रात को ही चला जाये।"

संध्या हो रही थी; सुचरिता ने आकर कहा, "विनय बाबू, मां ने आपको बुला भेजा है। उपासना का समय हो गया है।"

विनय ने कहा, "मुझे मौसी से बात करनी है, आज तो नहीं जा सकूंगा।"

असल में आज विनय वरदासुन्दरी की उपासना का निमन्त्रण किसी तरह स्वीकार नहीं कर पा रहा था। उसे जान पड़ रहा था कि यह सब एक विडम्बना है।

हरिमोहिनी ने घबराकर कहा, "बेटा विनय, तुम जाओ। मेरे साथ बातचीत फिर हो जाएगी। पहले तुम्हारा काम हो जाये, फिर आ जाना।"

विनय ने समझ लिया कि उसका सभा में न जाना, इस परिवार में जिस विप्लव का सूत्रपात हो चुका है, उसे कुछ और बढ़ावा देना ही होगा। इसलिए वह उपासना में चला गया, किंतु उसमें पूरा मन नहीं दे सका।

उपासना के बाद भोज भी था। विनय ने कहा, "आज मुझे भूख नहीं है।"

वरदासुन्दरी बोलीं, "भूख का क्या दोष है? आप तो ऊपर ही खा-पी आये हैं।"

विनय ने हँसकर कहा, "हाँ, लालची लोगों का यही हाल होता है। जो सामने है उसके लालच में भविष्य खो बैठते हैं।" कहकर वह जाने लगा।

वरदासुन्दरी ने पूछा, "ऊपर जा रहे हैं शायद?"

विनय संक्षेप से 'हाँ' कहकर बाहर हो गया। दरवाजे के पास ही सुचरिता थी, मृदु स्वर से उससे बोला, "दीदी, एक बार मौसी के पास आइयेगा, कुछ खास बात करनी है।"

ललिता आतिथ्य में लगी थी। एक बार उसके हारान बाबू के निकट आते ही वह अकारण कह उठे, "विनय बाबू तो यहाँ नहीं हैं, वह तो ऊपर गये हैं।"

यह सुनकर ललिता वहीं खड़ी हो गई और उनके चेहरे की ओर आँखें उठाती हुई बिना संकोच बोली, "मुझे मालूम है। वह मुझसे मिले बिना नहीं जाएँगे। मैं यहाँ का काम चुकाकर अभी ऊपर जाऊँगी।"

ललिता को वह जरा भी कुंठित न कर सके, इससे हारान के भीतर घुटती हुई जलन और भी बढ़ गई। विनय सुचरिता को सहसा क्या कह गया जिसके थोड़ी देर बाद ही सुचरिता भी उसके पीछे चली गई, यह भी हारान बाबू ने देख लिया। आज वह सुचरिता से बात करने का मौका पाने में कई बार अकृतार्थ हो चुके थे—दो-एक बार तो सुचरिता उनका स्पष्ट आह्वान ऐसे टाल गई थी कि हारान बाबू ने सभा में जुटे हुए लोगों के सामने अपने को अपदस्थ अनुभव किया था। इससे उसका मन और भी बेचैन था।

सुचरिता ने ऊपर जाकर देखा, हरिमोहिनी अपना सब सामान समेटकर इस तरह बैठी थीं मानो उसी समय कहीं जाने वाली हों। सुचरिता ने पूछा, "मौसी, यह क्या?"

हरिमोहिनी उसे कोई उत्तर न दे सकीं, रोती हुई बोलीं, "सतीश कहाँ है— उसे एक बार बुला दो, बेटी !"

सुचरिता ने विनय के चेहरे की ओर देखा। विनय ने कहा, "इस घर में मौसी के रहने से सभी को असुविधा होती है, इसीलिए मैं उन्हें माँ के पास ले जा रहा हूँ।"

हरिमोहिनी ने कहा, "वहाँ से मैं तीर्थ जाने की सोच रही हूँ। मुझ जैसी का किसी के घर में यों रहना ठीक नहीं है। कोई मुझे हमेशा के लिए ऐसे रखने भी क्यों लगा ?"

सुचरिता स्वयं यह बात कुछ दिनों से सोच रही थी। इस घर में रहना उसकी मौसी के लिए अपमानजनक है, यह उसने अनुभव किया था। इसलिए वह कोई उत्तर न दे सकी, चुपचाप उनके पास जाकर बैठ गई। रात हो गई थी, कमरे में दिया नहीं जलाया गया था। कलकत्ता के हेमन्त के गँदले आकाश में तारे धुँधले हो रहे थे। किस-किस की आँखों में आँसू झरते रहे, यह अन्धकार में देखा न जा सका।

सीढ़ियों पर से सतीश की तीखी पुकार सुन पड़ी, "मौसी !"

"क्या बेटा, आओ बेटा," कहती हुई हरिमोहिनी हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई।

सुचरिता ने कहा, "मौसी, आज रात तो कहीं जाना नहीं हो सकता। कल सवेरे सब तय होगा। बाबा से ठीक से कहे बिना तुम कैसे जा सकती हो भला ? वह तो बड़ी ज्यादती होगी।"

वरदासुन्दरी के हाथों हरिमोहिनी के अपमान से उत्तेजित विनय ने यह बात नहीं सोची थी। उसने तय किया था कि इस घर में मौसी का और एक रात भी रहना उचित नहीं है। कहीं आसरा न होने के कारण ही हरिमोहिनी सब कुछ सहती हुई इस घर में रहती हैं, वरदासुन्दरी की यह धारणा दूर करने के लिए विनय हरिमोहिनी को यहाँ से ले जाने में जरा भी देर करना नहीं चाहता था। सुचरिता की बात सुनकर विनय को सहसा ध्यान आया, इस घर में हरिमोहिनी का सम्बन्ध एकमात्र अथवा प्रधान रूप से वरदासुन्दरी के साथ नहीं है। जिसने अपमान किया है उसी को बड़ा मान लेना, और जिसने उदारता से आत्मीय मानकर सहारा दिया है उसे भूल जाना— यह तो ठीक न होगा।

विनय कह उठा, "यह बात तो ठीक है। परेश बाबू को बताये बिना किसी तरह नहीं जाया जा सकता।"

सतीश ने आते ही कहा, "जानती हो, मौसी ? रूसी लोग भारतवर्ष पर हमला करने आ रहे हैं। बड़ा मजा रहेगा।"

विनय ने पूछा, "तुम किसकी ओर हो ?"

सतीश बोला, "मैं— रूसियों की ओर।"

विनय ने कहा, "तब तो रूसियों को कोई फ़िकर नहीं है।"

इस प्रकार सतीश के बातचीत फिर जमा देने पर सुचरिता धीरे-धीरे वहाँ से उठकर नीचे चली गई।

सुचरिता जानती थी, सोने को जाने से पहले परेश बाबू अपनी कोई प्रिय पुस्तक लेकर थोड़ी देर पढ़ते थे। कई बार ऐसे समय सुचरिता उनके पास आकर बैठती रही है और सुचरिता के अनुरोध से परेश बाबू उसे पढ़कर सुनाते रहे हैं।

आज भी परेश बाबू अपने कमरे में अकेले बत्ती जलाकर एमर्सन का ग्रन्थ पढ़ रहे थे। सुचरिता धीरे-धीरे कुर्सी खींचकर उनके पास बैठ गयी। परेश बाबू ने पुस्तक रखकर एक बार उसके चेहरे की ओर देखा। सुचरिता का संकल्प टूट गया- वह घर की कोई बात न कर सकी। बोली, "बाबा, मुझे भी पढ़कर सुनाओ।"

परेश बाबू पढ़कर उसे समझाने लगे। दस बज जाने पर पढ़ाई समाप्त हुई। तब सुचरिता यह सोचकर कि सोने से पहले परेश बाबू के मन में किसी प्रकार का क्षोभ उत्पन्न न हो, कोई बात कहे बिना धीरे-धीरे जाने लगी।

परेश बाबू ने स्नेह-भरे स्वर से उसे पुकारा, "राधे!"

वह लौट आई। परेश बाबू ने कहा, "तुम अपनी मौसी की बात कहने आई थीं ?"

परेश बाबू उसके मन की बात जान गये हैं, इससे विस्मित होते हुए सुचरिता ने कहा, "हाँ बाबा, लेकिन आज रहने दो, कल सवेरे बात होगी।"

परेश बाबू ने कहा, "बैठो।"

सुचरिता के बैठ जाने पर वह बोले, "तुम्हारी मौसी को यहाँ कष्ट होता है, यह बात मैं सोचता रहा हूँ। उनका धर्म-विश्वास और आचरण लावण्य की माँ के संस्कारों को इतनी अधिक चोट पहुँचायेगा, यह मैं पहले ठीक नहीं जान सका। जब देख रहा हूँ कि इससे उन्हें दुःख होता है तब इस घर में तुम्हारी मौसी को रखने से वह घुटती ही रहेंगी।"

सुचरिता ने कहा, "मौसी यहाँ से जाने के लिए ही तैयार बैठी हैं।"

परेश बाबू ने कहा, "मैं जानता था कि वह जाएँगी। तुम दोनों ही उनके एकमात्र अपने हो—तुम लोग उन्हें ऐसे अनाथ होकर नहीं जाने दे सकोगे, यह भी मैं जानता हूँ। इसीलिए मैं कुछ दिनों से इस बारे में सोच रहा था।"

उसकी मौसी किस मुसीबत में पड़ी है, यह परेश बाबू समझते हैं और इस वारे में सोचते भी रहे हैं, यह बात सुचरिता ने बिलकुल नहीं सोची थी। कहीं वह जानकर दुःख न पायें इस डर से वह इतने दिनों से बड़ी सावधान रहती आई थी। परेश बाबू की बात सुनकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ और उसकी आंखें डबडबा आयीं।

परेश बाबू ने कहा, "तुम्हारी मौसी के लिए मैंने मकान ठीक कर रखा है।"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन वह तो···"

"किराया नहीं दे सकेंगी—यही न, लेकिन किराया वह क्यों देंगी—किराया तुम दोगी।"

सुचरिता अवाक् होकर परेश बाबू के चेहरे की ओर ताकती रही। परेश बाबू ने हंसकर कहा, "अपने ही घर में उन्हें रहने देना, किराया नहीं देना होगा।"

सुचरिता और भी विस्मित हो गई। परेश बाबू ने कहा, "कलकत्ता में तुम्हारे दो मकान हैं, नहीं जानतीं ? एक तुम्हारा, एक सतीश का। मरते समय तुम्हारे पिता मुझे कुछ रुपया सौंप गये थे। मैंने उसी पर सूद जोड़कर कलकत्ता में दो मकान खरीदे हैं। अब तक जो उनका किराया आता रहा है, वह भी जमा होता रहा है। तुम्हारे मकान के किरायेदार अभी कुछ दिन पहले छोड़ गये हैं—वहां रहने में तुम्हारी मौसी को कोई दिक्कत न होगी।"

सुचरिता ने कहा, "वहां वह क्या अकेली रह सकेंगी ?"

परेश बाबू ने कहा, "उनके अपने तुम लोगों के रहते हुए वह अकेली क्यों रहेंगी ?"

सुचरिता ने कहा, "यही बात कहने आज आई थी। मौसी चले जाने के लिए बिलकुल तैयार हैं, मैं सोच रही थी कि मैं उन्हें अकेली कैसे जाने दूंगी। इसीलिए तुम्हारा उपदेश लेने आई थी। तुम जो कहोगे वहीं करूंगी।"

परेश बाबू ने कहा, "हमारे घर से लगी हुई यह जो गली है, इसी गली में दो-तीन मकान छोड़कर तुम्हारा मकान है—इस बरामदे में खड़े होने से वह मकान दीख जाता है। तुम लोग वहां रहोगे तो ऐसे अरक्षित नहीं रहोगे—मैं बराबर देखता-सुनता रहूंगा।"

सुचरिता की छाती पर से एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। 'बाबा को छोड़कर कैसे जाऊंगी ?' यह चिन्ता उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी. लेकिन जाना ही होगा, यह भी उसे बिलकुल निश्चित जान पड़ता है।

सुचरिता आवेगपूर्ण हृदय लिये चुपचाप परेश बाबू के पास बैठी रही। परेश

बाबू भी मानो अपने को अन्तःकरण की गहराई में डुबाये हुए स्तब्ध बैठे रहे। सुचरिता उनकी शिष्या थी, उनकी कन्या थी, उनकी सुहृद थी—वह उनके जीवन से और यहाँ तक कि उनकी ईश्वरोपासना से भी गुंथ गई थी। जिस दिन वह चुपचाप आकर उनकी उपासना में योग देती उस दिन मानो उनकी उपासना एक विशेष पूर्णता पा लेती। प्रतिदिन अपने मंगलपूर्ण स्नेह से सुचरिता के जीवन को गढ़ते-गढ़ते उन्होंने मानो अपने जीवन को भी एक विशेष परिणति दे दी थी। सुचरिता जैसी भक्ति और एकान्त नम्रता के साथ उनके निकट आ खड़ी हुई थी वैसे और कोई उनके पास नहीं आया था। फूल जैसे आकाश की ओर ताकता है उसी तरह उसने अपनी सम्पूर्ण प्रकृति उनकी ओर उन्मुख और उद्‌घाटित कर दी थी। ऐसे एकाग्र भाव से किसी के पास आने से मनुष्य की दान करने की शक्ति अपने आप बढ़ जाती है—अन्तःकरण जल-भार से झुके हुए मेघ की भाँति अपनी परिपूर्णता के कारण ही झुक जाता है। अपना जो कुछ सत्य है, श्रेष्ठ है उसे किसी अनुकूल चित्त को प्रतिदिन दान करते रहने के सुयोग के बराबर कोई दूसरा शुभ योग मनुष्य के लिए नहीं हो सकता, वही दुर्लभ सुयोग सुचरिता ने परेश को दिया था। इसीलिए सुचरिता के साथ उनका सम्बन्ध अत्यन्त गम्भीर हो गया था। आज उसी सुचरिता के साथ उनके बाह्य सम्पर्क के टूटने का अवसर आ गया है—अपने जीवन-रस से फल को पूरी तरह पकाकर उसे पेड़ से मुक्त कर देना ही होगा। इसके लिए वह मन-ही-मन जिस गहरी वेदना का अनुभव कर रहे थे उसे वह अन्तर्यामी के सामने निवेदित करते जा रहे थे। सुचरिता का पाथेय जुट गया है, वह अपनी शक्ति से प्रशस्त पथ पर सुख-दुःख, आघात-प्रतिघात और नये अनुभव की प्राप्ति का जो आह्वान उसे मिलेगा उसकी तैयारी परेश बाबू कुछ दिन पहले से ही देख रहे थे। वह मन-ही-मन कह रहे थे, 'जाओ वत्से, यात्रा करो—तुम्हारे चिर जीवन को मैं केवल अपनी बुद्धि और अपने आश्रय से छाये रखूं, यह कभी नहीं हो सकता—ईश्वर तुम्हें मुझसे मुक्त करके विचित्र के भीतर से तुम्हें चरम परिणाम की ओर खींच ले जावें—उन्हीं में तुम्हारा जीवन सार्थक हो।' यह कहकर शैशव से ही स्नेह में पली हुई सुचरिता को वह मन-ही-मन अपनी ओर से ईश्वर को अर्पित की गई पवित्र उत्सर्ग सामग्री की भाँति सौंप रहे थे। परेश बाबू ने वरदासुन्दरी पर क्रोध नहीं किया, न अपनी गृहस्थी के प्रति मन में किसी विरोध-भाव को कोई स्थान दिया। वह जानते थे कि तंग किनारों के बीच नई वर्षा की जल-राशि सहसा आ जाने से बड़ी खलबली मचती है—उसका एकमात्र प्रतिकार यही है कि उसे खुले क्षेत्र की ओर बह जाने दिया जाये। वह जानते थे कि कुछ दिनों से सुचरिता के आसपास इस छोटे-से परिवार में जो अप्रत्याशित घटनाएँ

घटित होती रही हैं, उन्होंने इसके बँधे हुए संस्कारों को हिला दिया है, उसे यहाँ रोक रखने की चेष्टा न करके उसे मुक्ति देने से ही उसके स्वभाव के साथ सामंजस्य स्थापित होगा और शान्ति हो सकेगी। यह जानकर वह चुपचाप ऐसा आयोजन कर रहे थे कि जिससे सहज ही यह शान्ति और सामंजस्य स्थापित हो सके।

दोनों के थोड़ी देर चुपचाप बैठे-बैठे ही घड़ी में ग्यारह बजे। तब परेश बाबू उठ खड़े हुए और सुचरिता का हाथ पकड़कर उसे दुमंज़िले के बरामदे में ले गये। साँझ के आकाश की धुन्ध तब तक छँट गई थी और निर्मल अन्धकार में तारे जगमगा रहे थे। सुचरिता को पास खड़ी कर परेश बाबू निस्तब्ध रात में प्रार्थना करते रहे, 'संसार का सारा असत्य काटकर हमारे जीवन में परिपूर्ण सत्य की निर्मल मूर्ति उद्भासित हो उठे।'

४२

दूसरे दिन सवेरे ही हरिमोहिनी भूमिष्ट होकर परेश बाबू को प्रणाम करने गईं। वह हड़बड़ाकर हटते हुए बोले, "यह आप क्या कर रही हैं ?"

हरिमोहिनी ने आँखों में आँसू भरते हुए कहा, "आपका ऋण मैं कई जन्मों में भी नहीं चुका सकूँगी। मेरे-जैसी इतनी निरुपाय स्त्री का उपाय आपने कर दिया, वह और कोई न कर सकता। चाह कर भी मेरा भला कोई नहीं कर सकता, यह मैंने देखा है—आप पर भगवान् का बड़ा अनुग्रह है इसीलिए आप मुझ-जैसी अभागिन पर अनुग्रह कर सके हैं।"

परेश बाबू ने बहुत ही सकुचाते हुए कहा, "मैंने तो खास कुछ नहीं किया - यह सब तो राधारानी···"

हरिमोहिनी ने बात काटकर कहा, "वह तो मैं जानती हूँ—लेकिन राधारानी ही तो आपकी है—वह जो करती है, वह आप ही का किया हुआ तो है। उसकी जब माँ मरी, जब बाप भी नहीं रहे, तब मैंने सोचा था लड़की बड़ी अभागिनी है। लेकिन उसके भाग्य के दुःख को भगवान् ऐसे धन्य कर देंगे यह मैं कैसे जानती ? घूम-फिर कर अन्त में जब आपको देखा तब से समझने लगी हूँ कि भगवान् ने मुझ पर भी दया की है।"

"मौसी, माँ आई है तुम्हें लेने के लिए···" कहता हुआ विनय आ बढ़ा

हुआ। सुचरिता ने हड़बड़ाकर उठते हुए कहा, "कहाँ हैं?"

विनय ने कहा, "नीचे आपकी माँ के पास बैठी हैं।"

सुचरिता जल्दी से नीचे चली आई।

परेश बाबू ने हरिमोहिनी से कहा, "मैं आपके घर में सब सामान ठीकठाक कर आऊँ ज़रा!"

परेश बाबू के चले जाने पर विस्मित विनय ने कहा, "मौसी, आपके घर की बात तो नहीं जानता था।"

हरिमोहिनी ने कहा, "मैं भी कहाँ जानती थी, बेटा? जानते थे केवल परेश बाबू! हमारी राधारानी का घर है।"

विनय ने सारी बात सुनाकर कहा, "मैंने सोचा था, विनय दुनिया में किसी के तो किसी काम आ सकेगा—वह भी रह गया। आज तक माँ के लिए तो कुछ कर नहीं सका, जो कुछ करने को था वह माँ ही मेरे लिए करती रही हैं—मौसी के लिए भी कुछ नहीं कर सकूँगा, उनसे ही वसूल करूँगा। मेरी किस्मत में लेना ही लेना लिखा है, कुछ देना नहीं।"

थोड़ी देर बाद ही ललिता और सुचरिता के साथ आनन्दमयी आ गयीं। हरिमोहिनी ने आगे बढ़कर कहा, "भगवान् जब दया करते हैं तब फिर कंजूसी नहीं करते—दीदी, आज मैं तुम्हें भी पा गई।" कहते हुए उन्होंने हाथ पकड़कर आनन्दमयी को चटाई पर बिठाया।

हरिमोहिनी ने कहा, "दीदी, विनय तुम्हारी बात के सिवाय कोई बात ही नहीं करता।"

आनन्दमयी ने हँसकर कहा, "उसे बचपन से यही रोग है, जो बात पकड़ लेता है छोड़ता ही नहीं। जल्दी ही मौसी की बारी भी आ जायेगी।"

विनय ने कहा, "वह तो होगा ही, मैं पहले से ही कहे रखता हूँ। मैंने बड़े होकर मौसी को अपने आप ढूंढ़ निकाला है, इतने दिन जो वंचित रहा उसकी कसर तो किसी तरह पूरी करनी होगी।"

आनन्दमयी ने ललिता की ओर देखते हुए मुसकराकर कहा, "हमारे विनय को जिस चीज़ की कमी हो उसे ढूंढ़ लेना भी वह जानता है, और ढूंढ़ लेने पर जी-जान से प्यार करना भी जानता है। तुम लोगों को वह किस दृष्टि से देखता है यह मैं ही जानती हूँ—मानो जो कभी सोच भी नहीं सकता था वह सामने पा गया है। तुम लोगों से उसकी जान-पहचान हो जाने से मुझे कितनी खुशी हुई है, यह तुम्हें क्या बताऊँ, बेटी! तुम लोगों के यहाँ विनय का मन ऐसा बस जाने से उसका बड़ा उपकार हुआ है। यह बात वह अच्छी तरह समझता है, और स्वीकार करने

से भी नहीं चूकता।"

ललिता जवाब में कुछ कहने की कोशिश करके भी कोई बात नहीं पा सकी। उसका चेहरा लाल हो गया। सुचरिता ने ललिता की मुश्किल देखकर कहा, "हर किसी के भीतर की अच्छाई विनय बाबू देख पाते हैं, इसीलिए जिसमें जितनी भलाई होती है वही उसके हिस्से आ जाती है। यह बहुत-कुछ उनका अपना गुण है।"

विनय ने कहा, "माँ, तुम विनय को बातचीत करने के लिए जितना बड़ा विषय समझती हो, दुनिया की दृष्टि में उसका उतना महत्त्व नहीं है। यह बात तुम्हें समझाने की मैं कई बार सोचता हूँ, लेकिन अहंकार वश ही अभी तक नहीं कर पाया। लेकिन अब बस— अब विनय की बात छोड़कर और कुछ बात की जाय।"

इसी समय सतीश अपने कुत्ते के पिल्ले को छाती से चिपटाये उछलता-कूदता आ पहुँचा। हरिमोहिनी ने घबराकर कहा, "बेटा सतीश, तू बड़ा राजा बेटा है, इस कुत्ते को बाहर ले जा।"

सतीश बोला, "वह कुछ नहीं करेगा, मौसी— तुम्हारे कमरे में नहीं जाएगा! तुम उसे जरा प्यार कर लो, वह कुछ कहेगा नहीं।"

हरिमोहिनी ने और भी दूर हटते हुए कहा, "नहीं बेटा नहीं—उसे ले जाओ।"

तब आनन्दमयी ने कुत्ते समेत सतीश को अपनी ओर खींच लिया। कुत्ते को गोद में लेते हुए आनन्दमयी ने पूछा, "तुम सतीश हो न— हमारे विनय के दोस्त?"

अपने को विनय का दोस्त कहकर परिचय देना सतीश को जरा भी असंगत न लगता था, इसलिए उसने झिझके बिना कहा, "हाँ।" और आनन्दमयी के चेहरे की ओर देखता रहा।

आनन्दमयी ने कहा, "मैं विनय की माँ होती हूँ।"

पिल्ला आनन्दमयी के हाथ का कड़ा चबाने की कोशिश से अपना मनोरंजन करने लगा। सुचरिता ने कहा, "बख्त्यार, माँ को प्रणाम कर!"

सतीश ने सकपका कर जैसे-तैसे प्रणाम कर दिया।

इतने में वरदासुन्दरी आ गई। हरिमोहिनी की ओर देखे बिना उन्होंने आनन्दमयी से पूछा, "आप क्या हमारे यहाँ कुछ खायेंगी?"

आनन्दमयी ने कहा, "खान-पान और छूत-छात के बारे में मैं कुछ सोच-विचार नहीं करती, लेकिन आज रहने दीजिए— गोरा लौट आये तब खाऊँगी।"

आनन्दमयी गोरा की अनुपस्थिति में ऐसा कोई काम करना नहीं चाहती थी जो गोरा को अच्छा न लगे।

वरदासुन्दरी ने विनय की ओर देखकर कहा, "अरे, विनय बाबू भी तो यहाँ हैं। मैं भी कहूँ आप क्यों नहीं आये!"

विनय ने फ़ौरन कहा, "मैं जो आया हूँ आप समझती हैं कि आपको बताये बिना ही चला जाता?"

वरदासुन्दरी ने कहा, "कल तो निमन्त्रण के समय आप खिसक गये; आज चलिए, बिना निमन्त्रण के ही खा लीजिएगा।"

विनय ने कहा, "मुझे तो वही ज्यादा रुचेगा। तनख्वाह से बख्शीश का आकर्षण ज्यादा है।"

हरिमोहिनी को मन-ही-मन विस्मय हुआ। विनय उस घर में खाता-पीता है, आनन्दमयी भी खान-पान का विचार नहीं करती, यह उसे अच्छा नहीं लगा।

वरदासुन्दरी के चले जाने पर हरिमोहिनी ने सकुचाते हुए पूछा, "दीदी, तुम्हारे स्वामी क्या···?"

आनन्दमयी ने कहा, "मेरे स्वामी कट्टर हिन्दू हैं।"

हरिमोहिनी अवाक् हो रही। आनन्दमयी ने उसके मन का भाव समझकर कहा, "बहन, जब तक समाज मेरे लिए सबसे बड़ा था, तब तक समाज को ही मानकर चलती थी। लेकिन एक दिन भगवान् हठात् मेरे घर में ऐसे रूप में प्रकट हुए कि उन्होंने मुझे समाज को और नहीं मानने दिया। जब उन्होंने स्वयं आकर मेरी जात छीन ली, तब मुझे और किसी का क्या डर!"

हरिमोहिनी इस कैफ़ियत का अर्थ नहीं समझ सकीं। बोलीं, "और तुम्हारे स्वामी?"

आनन्दमयी ने कहा, "मेरे स्वामी नाराज़ होते हैं।"

हरिमोहिनी—"और लड़के?"

आनन्दमयी—"लड़के भी खुश नहीं हैं, लेकिन उन्हें खुश करके भी क्या होगा? बहन, मेरी यह बात किसी की समझ में नहीं आ सकती—जो सब जानते हैं वही समझते हैं।" कहते-कहते आनन्दमयी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

हरिमोहिनी ने सोचा, 'शायद कोई मिशनरी औरत आकर आनन्दमयी को फुसलाकर खिरस्तान बना गई है।' उसका मन एक गहरे संकोच से भर उठा।

४३

सुचरिता को यह बात सुनकर बड़ी तसल्ली हुई थी कि वह परेश बाबू के घर के पास ही और बराबर उनकी देखरेख में रह सकेगी। लेकिन जब उसके नये घर की सजावट का काम पूरा हो गया और वहाँ चले जाने का समय आ गया, तब सुचरिता के हृदय में रह-रहकर एक टीस उठने लगी। बात केवल पास रहने या न रहने की नहीं है, जीवन के साथ जीवन का जो सर्वांगीण योग था उसमें आज इतने दिन बाद एक विच्छेद घटित होने जा रहा है, यह सोचकर सुचरिता को ऐसा लग रहा था मानो उसके एक अंश की मृत्यु होने वाली हो। इस परिवार में सुचरिता का जितना भी स्थान था, उसका जो कुछ भी काम था, नौकरों से भी उसका जितना सम्पर्क था, सभी सुचरिता के हृदय को व्याकुल करने लगे।

सुचरिता का अपना भी कुछ है, और उसी के सहारे आज वह स्वाधीन होने जा रही है, इस संवाद से वरदासुन्दरी बार-बार यही भाव प्रकट करने लगीं कि यह अच्छा ही हुआ; इतने दिनों से इतनी सावधानी से जो उत्तरदायित्व वह निबाहती आ रही थीं उससे मुक्त होकर वह निश्चिन्त ही हुई हैं। लेकिन मन-ही-मन सुचरिता के प्रति उनमें एक शिकायत का भाव ही उत्पन्न हुआ। सुचरिता आज उनसे अलग होकर अपने भाग्य के सहारे खड़ी हो सकती है, यह मानो उसका एक अपराध है। उनके सिवा सुचरिता की और कोई गति नहीं है, यह सोचकर वरदासुन्दरी कई बार सुचरिता को अपने परिवार के लिए एक मुसीबत मानकर स्वयं अपने ऊपर करुणा करती रही हैं, लेकिन सहसा यह समाचार पाकर कि सुचरिता के भार से उन्हें छुटकारा मिल गया है, उन्हें जरा भी अच्छा नहीं लगा। सुचरिता के लिए उनका आश्रय जरूरी नहीं है, यह जानकर सुचरिता गर्व करने लग सकती है। उनकी अनुगत रहना अपने लिए अनावश्यक समझ सकती है, यह सोचकर उन्होंने पहले से ही उसे अपराधी ठहरा दिया। पहले वह जैसे घर के काम-काज के समय सुचरिता को बुलाती थीं, उसे बिलकुल छोड़कर वह अस्वाभाविक ढंग से उसके प्रति सम्मान दिखाने लगीं। विदा होने से पहले सुचरिता मन-ही-मन दुःखित होकर वरदासुन्दरी के घर के काम-काज में कुछ ज्यादा ही हाथ बँटाने का प्रयत्न कर रही थी, तरह-तरह के बहाने करके उनके आसपास घूमती रहती थी। लेकिन वरदासुन्दरी कुछ ऐसा भाव दिखाकर कि कहीं सुचरिता का असम्मान न हो जाये, उसे दूर ही दूर रखती थीं। इतने दिनों से जिन्हें माँ कहती हुई जिनके पास रहकर सुचरिता बड़ी हुई है, आज विदा के समय भी उन्होंने अपने मन को प्रतिकूल कर लिया, इसकी व्यथा सुचरिता को

सबसे अधिक कष्ट दे रही थी।

लावण्य, ललिता और लीला हर समय सुचरिता के आसपास मँडराती रहतीं। वे सुचरिता का नया घर सजाने बड़े उत्साह से गईं, लेकिन उस उत्साह के भीतर मानो अव्यक्त वेदना के आँसू छिपे हुए थे।

अब तक सुचरिता अनेक बहाने करके परेश बाबू के कई छोटे-छोटे काम करती आई थी। फूलदानों में फूल सजाना, मेज पर किताबें सँवारना, बिस्तर धूप में फैलाना, स्नान के समय उन्हें पानी रखे जाने की सूचना देना—इन सब रोज के अभ्यस्त कामों को उसने कभी कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया था। लेकिन इन्हीं सब अनावश्यक कामों को छोड़कर चले जाने का समय आ जाने पर ये सब छोटी-मोटी सेवाएँ ही, जिन्हें किसी एक के बदले सहज ही दूसरा कर सकता है, और जिनके न करने से भी किसी की कोई विशेष क्षति नहीं होती, दोनों पक्षों के मन में कसकने वाली हो गई थीं। सुचरिता परेश बाबू के कमरे में कोई मामूली-सा काम करने भी आती तो वह काम परेश बाबू के लिए बड़ा हो जाता और उनकी छाती भर उठती। दूसरी ओर, यह सोचकर कि यही काम अब से किसी दूसरे के हाथों सम्पन्न हुआ करेगा, सुचरिता की आँखें छलछला उठतीं।

जिस दिन दोपहर को भोजन के बाद सुचरिता के अपने नये घर चले जाने की बात थी, उस दिन सबेरे परेश बाबू अपने एकान्त कमरे में उपासना करने गए तो उन्होंने देखा, उनके सामने की जगह फूलों से सजाकर सुचरिता कमरे के एक कोने में प्रतीक्षा करती हुई बैठी है। लावण्य, लीला वग़ैरह भी आज उपासना में आयेंगी, ऐसी उन्होंने सलाह की थी, लेकिन ललिता ने उन्हें रोक दिया था। ललिता जानती थी कि परेश बाबू की उपासना में अकेली योग देकर उनका आशीर्वाद पाकर सुचरिता को विशेष आनन्द होगा। आज सुचरिता उस आशीर्वाद के लिए विशेष उत्सुक होगी, यह अनुभव करके ललिता ने उन्हें आज की उपासना की निर्जनता भंग करने से रोक दिया।

उपासना पूरी हो गई। सुचरिता की आँखों से आँसू झर रहे थे। परेश बाबू ने कहा, "बेटी, पीछे की ओर मत देखो, सामने पथ पर बढ़ती जाओ—मन में कुछ संकोच मत करो। जो भी घटे, जो भी सामने उपस्थित हो, उसमें से अपनी सारी शक्ति से अच्छाई को ग्रहण करने का प्रण करके आनन्दपूर्वक चल पड़ो। सम्पूर्ण रूप से ईश्वर को आत्म-समर्पण करके उसी को अपना एकमात्र सहायक मानो—तब भूल-चूक और क्षति के बीच भी लाभ का रास्ता पाती रह सकोगी। और अगर अपने को आधा-आधा बाँटना चाहोगी—थोड़ा-सा ईश्वर को और थोड़ा-सा और कहीं—तब सभी कुछ कठिन हो जायगा। ईश्वर ऐसा ही करें कि तुम्हारे लिए हम

लोगों के इस क्षुद्र सहारे का भी प्रयोजन न रहे।"

उपासना के बाद दोनों ने बाहर आकर देखा कि बैठने के कमरे में हारान बाबू प्रतीक्षा कर रहे हैं। आज वह किसी के प्रति कोई विरोधी-भाव मन में नहीं आने देगी, यह ठानकर सुचरिता ने हारान बाबू को नम्र भाव से नमस्कार किया। हारान बाबू फ़ौरन कुर्सी पर कठोर होकर बैठ गये और अत्यन्त गम्भीर स्वर से बोले, "सुचरिता, इतने दिनों तुम जिस सत्य के आश्रय में थीं आज उससे पिछड़ने जा रही हो, आज हम लोगों के लिए शोक का दिन है।"

सुचरिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन उसके मन में शान्ति की जो करुणामिश्रित रागिनी बज रही थी उसमें एक बेसुरा स्वर भी आ मिला।

परेश बाबू ने कहा, "कौन बढ़ रहा है और कौन पिछड़ रहा है, यह तो अन्तर्यामी ही जानते हैं, हम लोग बाहर से विचार करके व्यर्थ बेचैन होते हैं।"

हारान बाबू बोले, "तो आप क्या कहना चाहते हैं कि आपके मन में कोई आशंका नहीं है? और ऐसी भी कोई बात नहीं हुई जिस पर आपको अनुताप हो?"

परेश बाबू ने कहा, "पानू बाबू काल्पनिक आशंका को मैं मन में स्थान नहीं देता। और अनुताप की कोई बात हुई है या नहीं, यह तो तभी जानूंगा जब अनुताप होगा।"

हारान ने बाबू कहा, "यह जो आपकी कन्या ललिता अकेली विनय बाबू के साथ स्टीमर में चली आई, यह भी क्या काल्पनिक है?"

सुचरिता का मुंह लाल हो गया। परेश बाबू ने कहा, "पानू बाबू, आपका मन इस समय चाहे जिस कारण से उत्तेजित है, इसलिए इस समय इस सम्बन्ध में आपसे बातचीत करना आप ही के प्रति अन्याय होगा।"

हारान बाबू ने सिर उठाकर कहा, "मैंने उत्तेजना की झोंक में कोई बात नहीं कही—मैं जो कह रहा हूं उसके बारे में अपनी ज़िम्मेदारी का मुझे पूरा ज्ञान है, उसकी चिन्ता आप न करें। आप से जो कुछ कह रहा हूं व्यक्तिगत अपनी ओर से नहीं कह रहा, ब्राह्म-समाज की तरफ़ से ही कह रहा हूं—न कहना अन्याय होगा इसीलिए कह रहा हूं। आप अगर अन्धे न हुए रहते तो यही जो विनय बाबू के साथ ललिता अकेली चली आई इसी एक घटना से समझ सकते कि आपका यह परिवार ब्राह्म-समाज का लंगर तोड़कर बह जाने वाला है। इससे केवल आप ही को अनुताप करने का कारण मिले सो बात नहीं है, इसमें सारे ब्राह्म-समाज के अपमान की बात है।"

परेश बाबू ने कहा, "बुराई तो बाहर से की जा सकती है, लेकिन न्याय

करने के लिए भीतर पैठना होता है। केवल घटना के कारण किसी को दोषी न ठहरा दें।"

हारान बाबू ने कहा, "घटना यों ही तो घटित होती, उसे आप लोग भीतर से ही घटित किये दे रहे हैं। आप ऐसे-ऐसे लोगों को आत्मीय बनाकर परिवार में खींच रहे हैं जो आपके परिवार को ही आपके आत्मीय समाज से दूर ले जाना चाहते हैं। बल्कि दूर तो ले ही गये, यह क्या आप नहीं देख रहे है ?"

परेश बाबू ने कुछ विरक्त होकर कहा, "मेरा देखने का ढंग आपके साथ मेल नहीं खाता।"

हारान बाबू बोले, "मेल न खाता होगा। लेकिन मैं सुचरिता को ही साक्षी करके पूछता हूँ, वही सच-सच बता दें कि ललिता के साथ विनय का जो सम्बन्ध है वह क्या बिल्कुल बाहर का ही सम्बन्ध है ? क्या उसने उनके अन्तर को बिलकुल नहीं छुआ ? नहीं, सुचरिता, तुम्हारे चले जाने से नहीं होगा — इस बात का जवाब देना ही होगा। यह बड़ी गम्भीर बात है।"

सुचरिता ने कड़े पड़कर कहा, "चाहे जितनी गम्भीर हो, आपका इसमें कोई दखल नहीं है।"

हारान बाबू ने कहा, "दखल न होता तो मैं केवल चुप ही न रहता बल्कि इस बारे में सोचता भी नहीं। तुम लोगों को समाज की परवाह नहीं हो सकती है, लेकिन जब तक समाज में हो तब तक समाज तुम लोगों के मामले में विचार करने को बाध्य है।"

ललिता ने आँधी की तरह प्रवेश करते हुए कहा, "समाज ने अगर आप ही को विचारक के पद पर नियुक्त किया है, तब तो इस समाज से निर्वासित होना ही हम लोगों के लिए अच्छा है।"

हारान बाबू ने कुर्सी पर से उठकर खड़े होते हुए कहा, "ललिता, तुम आ गयी यह अच्छा ही हुआ। तुम्हारे बारे में जो अभियोग है उसका विचार तुम्हारे सामने ही होना चाहिए।"

क्रोध से सुचरिता का चेहरा और आँखें जल उठीं। उसने कहा, "हारान बाबू, अपनी कचहरी घर कीजिएगा। गृहस्थ घर में घुसकर उसका अपमान करें, आपका यह अधिकार हम लोग किसी तरह नहीं मानेंगे। चल ललिता, चल यहाँ से !"

ललिता नहीं हिली। बोली, "नहीं दीदी, मैं भागूँगी नहीं। पानू बाबू को जो कुछ कहना है मैं सब सुनकर ही जाना चाहती हूँ। कहिए, आपको क्या कहना है,

कह डालिए !"

हारान बाबू सन्नाटे में आ गये। परेश बाबू ने काहा, "बेटी ललिता, आज सुचरिता हमारे घर से जा रही है—आज मैं किसी तरह की अशान्ति होने देना नहीं चाहता। हारान बाबू, हम लोगों का अपराध चाहे जितना बड़ा हो, आज-भर के लिए आपको हमें माफ़ कर देना होगा।"

हारान बाबू गम्भीर होकर चुपचाप बैठे रहे। सुचरिता जितना ही उन्हें बरजती थी, सुचरिता को बाँध रखने की उनकी जिद उतना ही बढ़ती जाती थी। उनका ध्रुव विश्वास था कि अपने असाधारण नैतिक बल के कारण अवश्य उनकी जीत होगी। अब भी उन्होंने पतवार छोड़ दी हो, ऐसा नहीं था; लेकिन इस आशंका से उनका मन क्षुब्ध था कि मौसी के साथ सुचरिता के दूसरे मकान में चले जाने पर वहाँ उनकी शक्ति में कुछ बाधा आ जाएगी। इसीलिए आज वह अपने सब ब्रह्मास्त्रों को सान पर चढ़ाकर लाये थे। किसी तरह आज सबेरे ही बड़ी कड़ाई के कुछ निबटारा कर लेने की उन्होंने ठान रखी थी। आज उन्होंने सब संकोच छोड़ दिया था—लेकिन दूसरा पक्ष भी ऐसे संकोच को दूर कर देगा, ललिता और सुचरिता भी सहसा म्यान में से तलवार निकालकर खड़ी हो जाएँगी, इसकी उन्होंने कल्पना नहीं की थी। उन्होंने समझ रखा था कि जब वह अपने प्रबल नैतिक अग्नि-बाण छोड़ेंगे तब दूसरे पक्ष का सिर फ़ौरन झुक जाएगा। ठीक वैसा नहीं हुआ, और अवसर भी निकल गया। लेकिन हारान बाबू हार मानने वाले नहीं थे। उन्होंने मन-ही-मन कहा, सत्य की जय होगी ही—अर्थात् हारान बाबू की जय होगी ही। लेकिन जय तो यों ही नहीं हो जाती—लड़ना तो होगा ही। हारान बाबू कमर कसकर मैदान में उतर आये थे।

सुचरिता ने कहा, "मौसी, आज मैं सबके साथ बैठकर खाऊँगी—तुम कुछ बुरा मत मानना।"

हरिमोहिनी चुप हो रहीं। उन्होंने मन-ही-मन तय कर लिया था कि सुचरिता सम्पूर्णतया उनकी हो गई है—विशेष रूप से जब वह अपनी सम्पत्ति के बल पर स्वाधीन होकर स्वतन्त्र घर चलाने लगी है—और अब हरिमोहिनी को और कोई संकोच नहीं करना होगा, सोलह आने अपने मत से वह चल सकेंगी। इसीलिए जब सुचरिता ने शुचिता भुलाकर फिर सबके साथ बैठकर खाने का प्रस्ताव किया तब उन्हें अच्छा नहीं लगा—वह चुप हो रहीं।

सुचरिता ने उनके मन का भाव समझकर कहा, "तुम निश्चय जानो, मौसी, ठाकुर इससे खुश होंगे। मेरे अन्तर्यामी ठाकुर ने ही आज मुझे सबके साथ बैठकर खाने को कहा है। उनकी बात न सुनने से वह नाराज़ होंगे। और उनके क्रोध से

तो मैं तुम्हारे क्रोध से भी अधिक डरती हूँ।"

जब-तब हरिमोहिनी वरदासुन्दरी के हाथों अपमानित होती रहती थीं। तब तक सुचरिता ने उनके अपमान में हिस्सा बँटाने के लिए उनका आचार अपना रक्खा था, और अब उस अपमान से छुटकारा मिल जाने पर सुचरिता को आचार के सम्बन्ध में स्वाधीन होने में द्विविधा नहीं रही, यह बात हरिमोहिनी नहीं समझ सकीं। हरिमोहिनी सुचरिता को पूरी तरह नहीं समझ सकीं थी, समझना भी उनके लिए कठिन था।

हरिमोहिनी ने सुचरिता को साफ़-साफ़ मना तो नहीं किया, लेकिन मन-ही-मन नाराज हुईं। सोचने लगी, 'मैया री, कैसे उसकी उधर प्रवृत्ति हो सकती है मैं तो सोच ही नहीं सकती। ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर!'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद उन्होंने कहा, "एक बात कहूँ, बेटी, तुम जो करो सो करो, लेकिन उस बैरा के हाथ का पानी मत पीना।"

सुचरिता ने कहा, "क्यों मौसी, वही रामदीन बैरा तो अपनी गाय दुहकर तुम्हारे लिए दूध दे जाता है।"

हरिमोहिनी ने आँखें बड़ी-बड़ी करके कहा, "तू तो हद करती है। दूध और पानी क्या बराबर है?'

सुचरिता ने हँसकर कहा, "अच्छा मौसी, रामदीन का छुआ जल मैं आज नहीं पीऊँगी। लेकिन अगर तुमने सतीश को रोका तो वह उससे ठीक उलटा करेगा ही।"

हरिमोहिनी ने कहा, "सतीश की बात अलग है।"

हरिमोहिनी मानती थीं कि पुरुषों के मामले में नियम-संयम की चूक माफ़ करनी ही पड़ती है।

४४

हारान बाबू लड़ाई के मैदान में उतर आये।

ललिता को स्टीमर में विनय के साथ आये हुए प्राय: पन्द्रह दिन हो गये थे। यह बात दो-एक जनों के कानों मे पड़ चुकी थी और धीरे-धीरे फैल रही थी। लेकिन अब दो ही दिन में यह समाचार फूस में लगी आग की तरह चारों ओर फैल गया।

हारान बाबू ने बहुत लोगों को यह समझाया था कि ब्राह्म-समाज के धर्म-

नैतिक जीवन को ध्यान में रखते हुए इस ढंग के कदाचार का दमन करना उनका कर्त्तव्य है। यों ऐसी बातें समझाने के लिए अधिक मेहनत भी नहीं करनी पड़ती। 'सत्य के अनुरोध', 'कर्त्तव्य के अनुरोध' से प्रेरित होकर जब हम दूसरों की चूक पर घृणा प्रकट करने या दंड-विधान करने को तैयार होते हैं, तब सत्य और कर्त्तव्य के अनुरोध को मानना हमारे लिए बहुत कठिन नहीं होता। इसीलिए ब्राह्म-समाज में जब हारान बाबू ने 'अप्रिय' सत्य की घोषणा की और 'कठोर' कर्त्तव्य की पुकार उठाई, तब इतनी बड़ी अप्रियता और कठोरता के डर से भी अधिकतर लोग उत्साहपूर्वक उनकी मदद करने से न घबराये। ब्राह्म-समाज के हितैषी लोग गाड़ी-पालकी किराये पर लेकर भी एक दूसरे के घर जाकर कह आये कि आजकल जब ऐसी सब बातें होनी शुरू हो गई हैं तब ब्राह्म-समाज का भविष्य बहुत अँधेरा है। साथ ही यह बात भी तरह-तरह से अलंकृत होकर फैलने लगी कि सुचरिता हिन्दू हो गई है और हिन्दू मौसी के घर आश्रय लेकर जप-तप, यज्ञ-अनुष्ठान और ठाकुर-पूजा में ही दिन काटने लगी है।

कई दिन से ललिता के मन में एक लड़ाई चल रही थी। रोज़ रात को सोने जाने से पहले वह कहती, 'मैं कभी हार नहीं मानूँगी' और रोज सबेरे नींद खुलते ही बिस्तर पर बैठे-बैठे ही दुहराती थी, 'कभी किसी तरह हार नहीं मानूँगी।' यह जो विनय की चिन्ता उसके सारे मन पर छा गई थी—निचले कमरे में विनय बैठा बातचीत कर रहा है, यह सुन पाते ही उसके हृदय में जो खलबली मच जाती थी—विनय के दो दिन लगातार उनके घर न आने पर वह जैसे रूठ कर अपने ही को सताने लगती थी, बीच-बीच में कई बहानों से सतीश को विनय के घर जाने के लिए प्रोत्साहित करती थी और उसके लौटने पर विनय क्या कर रहा था और उससे क्या बात हुई, इसका पूरा ब्योरा जानने की कोशिश करती थी· ललिता इन सबके लिए जितना ही अपने को विवश पाती, उतना ही अपनी हार की ग्लानि उसे और बेचैन कर देती। कभी-कभी उसे इस पर भी गुस्सा हो आता कि परेश बाबू ने क्यों विनय और गोरा के साथ उनके मेल-मिलाप में बाधा नहीं दी। लेकिन वह अन्त तक लड़ती ही रहेगी, मर जायेगी पर हारेगी नहीं, यही उसकी प्रतिज्ञा थी। उसका जीवन कैसे कटेगा, इस सम्बन्ध में उसके मन में तरह-तरह की कल्पनाएँ उदित होती रहती थीं। यूरोप की लोकहितैषिणी स्त्रियों के जीवन-चरित्र और कीर्ति की जो सब बातें उसने पढ़ रखी थीं, वे सब स्वयं उसके लिए साध्य और सम्भव हैं, ऐसा उसे लगने लगा था।

एक दिन उसने जाकर परेश बाबू से कहा, "बाबा, मैं क्या किसी लड़कियों के स्कूल में पढ़ाने का काम नहीं कर सकती ?" परेश बाबू ने स्थिर दृष्टि से

अपनी लड़की के चेहरे की ओर देखा। उसकी दो करुण आँखें मानो हृदय की भूख की वेदना के कारण कंगाल-सी होकर यह प्रश्न पूछ रही थीं। उन्होंने स्निग्ध स्वर से कहा, "क्यों नहीं कर सकती, बेटी? लेकिन लड़कियों का ऐसा स्कूल है कहाँ?"

जिस समय की बात हो रही है उस समय लड़कियों के स्कूल अधिक नहीं थे; साधारण पाठशालाएँ थीं और भद्र घरों की लड़कियों ने अभी मास्टरनी का काम करना शुरू नहीं किया था। ललिता ने उदास होकर कहा, "स्कूल नहीं है, बाबा?"

परेश बाबू ने कहा, "कहाँ—मैंने तो नहीं देखा!"

ललिता ने कहा, "अच्छा बाबा, लड़कियों का स्कूल क्या शुरू नहीं किया जा सकता?"

परेश बाबू ने कहा, "बहुत खर्च का मामला है, और बहुत लोगों की मदद की ज़रूरत भी पड़ेगी।"

ललिता समझती थी, अच्छे काम का संकल्प कर लेना ही कठिन है, उसके साधन जुटाने के मार्ग में भी इतनी बाधाएँ होंगी यह उसने नहीं सोचा था। वह थोड़ी देर चुपचाप बैठी रही, फिर उठकर धीरे-धीरे चली गई। अपनी इस सबसे प्यारी बेटी के हृदय में कहाँ कौन-सी व्यथा है, परेश बाबू बैठकर यही सोचने लगे। विनय के बारे में हारान बाबू उस दिन जो इशारा कर गये थे, वह भी उन्हें याद आया। लम्बी साँस लेकर उन्होंने अपने आप से पूछा, 'मैंने क्या नासमझी का काम किया है?' अपनी किसी दूसरी लड़की की बात होती तो उन्हें विशेष चिन्ता न होती, लेकिन ललिता का जीवन ललिता के लिए मानो बहुत ही सच्चा पदार्थ है, वहाँ अधूरी बात करना वह जानती ही नहीं—उसके लिए सुख-दुःख, आधे सत्य और आधे धोखा नहीं होते।

ललिता अपने जीवन में प्रतिदिन यह व्यर्थ धिक्कार सहती हुई कैसे जी सकेगी? उसे सामने कहीं कोई प्रतिष्ठा, कोई मंगल परिणाम नहीं दीखता, और इस प्रकार निरुपाय बहते चले जाना भी उसके स्वभाव में नहीं है।

उसी दिन तीसरे पहर ललिता सुचरिता के घर जा पहुँची। सुचरिता के घर में सजावट खास कुछ नहीं थी। फ़र्श पर एक मामूली दरी, जिसकी एक तरफ़ सुचरिता का बिस्तर लगा था और दूसरी तरफ़ हरिमोहिनी का। हरिमोहिनी खाट पर नहीं सोतीं, इसलिए सुचरिता भी उनके साथ एक ही कमरे में फ़र्श पर ही बिस्तर लगाती है। दीवार पर परेश बाबू का चित्र टँगा था। साथ के छोटे कमरे में सतीश की खाट पड़ी थी और एक तरफ़ एक छोटी मेज़ पर कलम-दवात,

किताब-कापियाँ और स्लेट आदि इधर-उधर बिखरी हुई थीं। सतीश स्कूल गया हुआ था, घर में सन्नाटा था।

भोजन के बाद हरिमोहिनी अपनी चटाई पर लेटी सोने की तैयारी कर रही थीं और सुचरिता पीठ पर खुले बाल फैलाये दरी पर बैठी हुई गोद में तकिया रक्खे मगन होकर कुछ पढ़ रही थी। उसके सामने और भी दो-एक किताबें बिखरी हुई थीं।

ललिता को सहसा कमरे में आते देखकर सुचरिता ने मानो लज्जित होकर पहले किताब बन्द कर दी, फिर मानो अपनी लज्जा पर ही लज्जित होकर पुस्तक को ज्यों का त्यों रख दिया। ये पुस्तकें सब गोरा की रचनाएँ थीं।

हरिमोहिनी ने उठकर बैठते हुए कहा, "आओ, आओ, ललिता बेटी, आओ! तुम लोगों का घर छोड़कर सुचरिता का जी कैसा होता रहता है, यह मैं जानती हूँ। जब उसका मन खराब होता है तभी वह किताबें लेकर पढ़ने बैठ जाती है। मैं अभी लेटी-लेटी सोच रही थी कि तुम लोगों में से कोई आ जाता तो अच्छा होता—तभी तुम आ गईं—बड़ी लम्बी उम्र है तुम्हारी।"

ललिता के मन में जो बात थी, उसने सुचरिता के पास बैठते ही वही शुरू कर दी। बोली, "सुचि दीदी, हमारे मुहल्ले में लड़कियों के लिए एक स्कूल शुरू किया जाए तो कैसा रहे?"

हरिमोहिनी ने हक्का-बक्का होकर कहा, "लो और सुनो! तुम लोग स्कूल चलाओगी?"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन चलेगा कैसे, यह तो बता। कौन हमारी मदद करेगा! बाबा से बात की थी?"

ललिता ने कहा, "हम दोनों तो पढ़ा सकेंगी। शायद बड़ी दीदी भी राज़ी हो जायें।"

सुचरिता बोली, "सिर्फ़ पढ़ाने की ही तो बात नहीं है। कैसे स्कूल का काम चलाया जाएगा, इसके सब नियम बनाने होंगे, मकान ठीक करना होगा, छात्रा जुटानी होंगी, खर्चे के लिए पैसा जुटाना होगा। हम दो लड़कियाँ यह सब कैसे करेंगी?"

ललिता ने कहा, "दीदी, ऐसा कहने से नहीं चलेगा। लड़की होकर जन्म लिया है, इसीलिए क्या जीवन-भर मन मारकर घर में पड़ी-पड़ी कुढ़ती रहेंगी? दुनिया के किसी काम न आयेंगी?"

ललिता की बात में जो दर्द था सुचरिता के हृदय में भी गूँज गया। वह कुछ उत्तर न देकर सोचने लग गई।

ललिता ने कहा, "मुहल्ले में ही अनेक लड़कियां हैं। हम अगर उन्हें यों ही पढ़ाना चाहें तो माँ-बाप खुश ही होंगे। उनमें से जितनी मिल जायें उन्हें जुटाकर इसी घर में पढ़ाया जा सकता है—इसमें खर्च भी कौन-सा है ?

मुहल्ले-भर की अपरिचित घरों की लड़कियों को जुटाकर घर ही में पढ़ाने के प्रस्ताव से हरिमोहिनी उद्विग्न हो उठीं। वह तो अपनी पूजा-अर्चना लेकर अलग-थलग शुद्ध होकर रहना चाहती हैं, उसमें व्याघात की सम्भावना से वह आपत्ति करने लगीं।

सुचरिता ने कहा, "मौसी, डरो मत, छात्रा मिल गई तो उनका काम हमारे निचले तल्ले के कमरे में भी चल जायेगा, उन्हें हम ऊपर तुम्हारे कमरे में उत्पात करने नहीं लावेंगी। अच्छा, ललिता, पढ़ने वाली लड़कियाँ मिल जायें तो मैं राज़ी हूँ।"

ललिता ने कहा, "अच्छा, देख ही लिया जाय न !"

हरिमोहिनी बार-बार कहती रहीं, "बेटी, हर मामले में तुम लोग खिस्तानों की तरह हो जाओगी तो कैसे चलेगा? अच्छे घर की लड़कियां जाकर स्कूल में पढ़ायेंगी, यह तो आज तक कभी नहीं सुना !"

परेश बाबू के घर की छत पर से आस-पास के घरों की छतों पर की लड़कियों से बातचीत होती रहती थी। इस परिचय में एक काँटा भी था, क्योंकि आसपास के घरों की लड़कियां अक्सर इस बारे में सवाल पूछतीं और विस्मय प्रकट करती थीं कि इस घर की लड़कियों का इतनी उम्र हो जाने पर भी अभी तक विवाह क्यों नहीं हुआ। इसीलिए ललिता छत पर की इस बातचीत में हिस्सा नहीं लेती थी। छतों के बीच दोस्ती के इस विस्तार में लावण्य का ही उत्साह सबसे अधिक था। दूसरी गृहस्थियों के हालचाल के बारे में उसके कौतूहल की सीमा नहीं थी। पड़ोसियों के रोज़मर्रा जीवन की प्रधान और अप्रधान अनेक बातों की चर्चा दूर से ही हवा के सहयोग से उसके साथ होती रहती थीं। अक्सर तीसरे पहर खुले आकाश के नीचे हाथ में कंघी लिये बाल सँवारते-सँवारते उसकी और उसकी सहेलियों की सभा जुटा करती थी।

अपने संकल्पित लड़कियों के स्कूल के लिए छात्राएँ जुटाने का भार ललिता ने लावण्य को सौंप दिया। लावण्य ने जब छतों ही छतों पर से इस प्रस्ताव की घोषणा कर दी तब कई लड़कियां उत्साहित हो उठीं। ललिता प्रसन्न होकर सुचरिता के घर की निचली मंज़िल का कमरा झाड़-पोंछकर, धोकर, सजाकर तैयार करने में लग गई।

लेकिन उसका स्कूल सूना ही रह गया। अपनी लड़कियों को फुसलाकर

पढ़ाने के बहाने ब्राह्म घर में ले जाने के प्रस्ताव पर पड़ोसी गृह-स्वामी बहुत बिगड़ उठे। यहाँ तक कि इसी तरह जब उन्हें पता लगा कि परेश बाबू की लड़कियों के साथ उनकी लड़कियों की जान-पहचान है और उनमें बातचीत होती रहती है, तब इसे रोकना भी उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा। उन्हें लड़कियों का छत पर जाना बन्द करने का मौका मिल गया। ब्राह्म पड़ोसी की लड़कियों के साधु संकल्प के बारे में भी उन्होंने जो बातें कहीं वे कुछ प्रशंसा की नहीं थी। बेचारी लावण्य ने कंघी हाथ में लिये यथा-समय छत पर पहुँचकर देखा, आस-पास की छतों पर नवीनाओं का स्थान प्रवीणाओं ने ले लिया है, और उनमें से किसी से भी वह दो मधुर बोल न पा सकी।

ललिता इससे भी हताश न हुई। उसने कहा, बहुत-सी ग़रीब ब्राह्म लड़कियाँ ऐसी हैं जिनके लिए बेथ्यून स्कूल पढ़ने जाना साध्य नहीं है, उन्हीं को पढ़ाने का भार लेने से उपकार हो सकता है।

ऐसी छात्राओं की खोज में वह स्वयं भी लगी और सुधीर को भी उसने लगा दिया।

उन दिनों परेश बाबू की लड़कियों के पढ़ने-लिखने की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। यहाँ तक कि वह ख्याति सच्चाई को भी बहुत पीछे छोड़ गई थी। इसलिए यह सुनकर कि ये लड़कियाँ पढ़ाने का अवेतन भार लेंगी, ~नेक माता-पिता प्रसन्न हो उठे।

शुरू में तो दो-चार दिन के भीतर ही पाँच-छः लड़कियों को लेकर ही ललिता का स्कूल चल पड़ा। परेश बाबू के साथ स्कूल की चर्चा करके उसके नियम रचने, उसकी व्यवस्था करने आदि में ललिता ने अपने लिए कोई समय ही नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि वर्ष के अन्त में परीक्षा के बाद लड़कियों को प्राइज कैसे दिये जायँगे, इसके बारे में लावण्य के साथ ललिता की बाकायदा बहस भी छिड़ गई—ललिता जो पुस्तकें सुझाती थी वे लावण्य को पसंद नहीं थीं और लावण्य की पसंद ललिता को नहीं रुचती थी। परीक्षा कौन-कौन लेंगे, इस पर भी बहस हो गई। लावण्य को यद्यपि हारान बाबू बिलकुल अच्छे नहीं लगते थे, तथापि उनके पांडित्य की ख्याति से वह अभिभूत थी। उनके विद्यालय की परीक्षा या शिक्षा या किसी एक काम में हारान बाबू के नियुक्त होने से वह स्कूल के लिए विशेष गौरव की बात होगी, इस बारे में उसे जरा भी संदेह नहीं था, किंतु ललिता ने सारी बात ही उड़ा दी—हारान बाबू के साथ उनके इस विद्यालय का किसी प्रकार का संबंध नहीं हो सकेगा। दो-तीन दिन के भीतर ही उसकी छात्राओं की संख्या कम होते-होते क्लास सूनी हो गई। ललिता क्लास में अकेली बैठी पैरों की आहट सुनते ही

छात्राओं के आने की संभावना से सजग हो उठती, लेकिन कोई आता ही नहीं। इस प्रकार जब दोपहर कट गई तब उसने समझ लिया कि कहीं कुछ गड़बड़ है।

जिस छात्रा का घर सबसे पास था, ललिता उससे मिलने गई। उसने रुँआसी-सी होकर कहा, "माँ मुझे जाने नहीं देतीं।" माँ ने बताया, असुविधा होती है, लेकिन क्या असुविधा, यह उन्होंने स्पष्ट नहीं बताया। ललिता स्वाभिमानिनी थी; दूसरी ओर से अनिच्छा का जरा-सा भी लक्षण देखने पर जिद करना या कारण पूछना उससे नहीं बनता था।

उसने कहा, "असुविधा होती है तो जाने दीजिए।"

इसके बाद ललिता जिस दूसरे घर में गई वहाँ साफ़-साफ़ बात सुनने को मिली। उन्होंने कहा, "सुचरिता आजकल हिंदू हो गई है, जात-पाँत मानने लगी है, उसके घर ठाकुर पूजा होती है" इत्यादि।

ललिता ने कहा, "अगर इस बात पर आपत्ति हो तो स्कूल हम लोगों के घर भी जुट सकता है।"

लेकिन इससे भी आपत्ति का खंडन होता नहीं दीखा—और भी कुछ बात थी। ललिता ने और किसी के घर न जाकर सुधीर को बुला भेजा और पूछा, "सुधीर क्या हुआ है, सच-सच बताओ तो ?"

सुधीर ने कहा, "पानू बाबू तुम्हारे इस स्कूल का विरोध करने पर तुले हुए हैं।"

ललिता ने पूछा, "क्यों ? दीदी के घर मूर्ति-पूजा होती है, इसलिए ?"

सुधीर ने कहा, "केवल इसलिए नहीं।"

ललिता ने अधीर होकर पूछा, "और क्या, कह ही डालो !"

सुधीर ने कहा, "बहुत-सी बातें हैं।"

ललिता ने पूछा, "मेरा भी कुछ अपराध है ?"

सुधीर चुप हो रहा। ललिता का चेहरा लाल हो उठा। उसने कहा, "यह मेरी उस स्टीमर-यात्रा की सजा है। अगर मैंने ग़लत काम भी किया हो तो अच्छा काम करके उसका प्रायश्चित करने का रास्ता हमारे समाज में क्या बिलकुल बन्द हो गया है ? मेरे लिए क्या इस समाज में सब शुभ कर्म निषिद्ध हैं ? मेरी और हमारे समाज की आध्यात्मिक उन्नति का यही रास्ता तुम लोगों ने निकाला है ?"

सुधीर ने बात को कुछ नरम करने के लिए कहा, "ठीक इसलिए नहीं। उन्हें यह भी डर है कि आगे चलकर कहीं विनय बाबू वगैरह भी इस स्कूल के साथ न जुड़ जायें।"

ललिता ने एकाएक आग की तरह भड़ककर कहा, "वह डर की नहीं, भाग्य की बात होगी। योग्यता में विनय बाबू की बराबरी कर सकने वाले उनमें कितने होंगे?"

ललिता का गुस्सा देखकर सुधीर संकुचित होता हुआ बोला, "यह बात तो है। लेकिन विनय बाबू तो···"

"ब्राह्म-समाज के नहीं हैं, यही न! इसीलिए ब्राह्म-समाज उन्हें दण्ड देगा। ऐसे समाज पर मैं गर्व नहीं कर सकती!"

छात्राओं के बिलकुल गायब हो जाने से सुचरिता समझ गई थी कि क्या मामला है और कौन उसकी जड़ में है। वह इस बारे में कोई बात न कहकर ऊपर के कमरे में सतीश को उसकी परीक्षा की तैयारी कराने में लग गई थी।

सुधीर से बात होने पर ललिता सुचरिता के पास गई और बोली, "सुना?"

सुचरिता ने मुसकराकर कहा, "सुना तो नहीं, लेकिन सब समझ लिया।"

ललिता ने कहा, "यह सब क्या सह लेना होगा?"

सुचरिता ने ललिता का हाथ पकड़कर कहा, "सह लेने में तो अपमान नहीं है। बाबा कैसे सब सह लेते हैं, नहीं देखा?"

ललिता ने कहा, "लेकिन सुचि दीदी, मुझे कई बार लगता है कि अन्याय को सहकर उसे स्वीकार कर लिया जाता है। अन्याय के प्रति उचित व्यवहार यही है कि उसे सहा न जाये।"

सुचरिता बोली, "तो तू क्या करना चाहती है, वह बता!"

ललिता ने कहा, "वह तो मैंने कुछ नहीं सोचा—मैं कर क्या सकती हूँ वह भी नहीं जानती—लेकिन कुछ न-कुछ तो करना ही होगा। हम-जैसी लड़कियों के साथ जो ऐसी नीचता बरत रहे हैं वह, अपने को चाहे जितना बड़ा आदमी समझते हों, हैं डरपोक ही। उनसे मैं किसी तरह हार नहीं मानूँगी—किसी तरह नहीं, वह जो करना चाहें कर लें।" कहते हुए ललिता ने जोर से पैर पटक दिया।

सुचरिता कोई उत्तर दिये बिना धीरे-धीरे ललिता के हाथ पर हाथ फेरती रही। थोड़ी देर बाद उसने कहा, "भई ललिता, एक बार बाबा से बात करके तो देख।"

ललिता उठ खड़ी हुई, "मैं अभी उनके पास जाती हूँ।"

ललिता ने अपने घर के द्वार के पास पहुँचकर देखा, विनय सिर झुकाये हुए वहाँ से निकल रहा था। ललिता को देखकर विनय चौंककर क्षण-भर खड़ा रहा—मन-ही-मन वितर्क करता रहा कि ललिता से दो-एक बात कर ले या नहीं—फिर अपने को रोककर ललिता की ओर आँखें उठाये बिना उसे नमस्कार करके सिर झुकाये हुए ही चला गया।

ललिता को मानो किसी ने गर्म सलाख से दाग़ दिया हो। वह तेज़ी से भीतर गई और सीधे अपने कमरे में पहुँची। वरदासुन्दरी मेज़ के पास बैठी एक लम्बा खाता लिये हिसाब में मन लगाने की कोशिश कर रही थीं।

ललिता का चेहरा देखकर ही वरदासुन्दरी के मन में खटका हुआ। उन्होंने हड़बड़ाकर हिसाब की कापी में बिलकुल डूब जाने का ऐसा प्रयत्न किया मानो उसमें कोई रकम है जो ठीक-ठीक मिल न जाने से उनकी सारी गृहस्थी छिन्न-भिन्न हो जायेगी।

ललिता कुर्सी खींचकर मेज़ के पास बैठ गई। वरदासुन्दरी ने तब भी चेहरा नहीं उठाया। ललिता ने कहा, "माँ!"

वरदासुन्दरी बोलीं, "ठहर, बेटी, मैं यह···" और कापी की ओर और भी झुक गईं।

ललिता ने कहा, "मैं ज़्यादा देर तंग नहीं करूँगी। एक बात जानना चाहती हूँ। विनय बाबू आये थे?"

वरदासुन्दरी ने कापी पर से आँखें हटाये बिना कहा, "हाँ।"

"उनसे तुम्हारी क्या बात हुई?"

"वह लम्बी बात है।"

"मेरे बारे में कोई बात हुई कि नहीं?"

वरदासुन्दरी ने बच निकलने का कोई रास्ता न देखकर कलम रख दी और कापी से आँखें उठाकर कहा, "हुई तो थी। मैंने देखा कि बात बढ़ती ही जा रही है, समाज के लोग चारों ओर बुराई कर रहे हैं, इसीलिए चेतावनी देने की ज़रूरत पड़ी।"

लज्जा से ललिता का चेहरा लाल हो आया, उसका सिर मानो झनझना उठा। उसने पूछा, "बाबा ने क्या विनय बाबू को यहाँ आने से मना किया है?"

वरदासुन्दरी बोली, "वह क्या ये सब बातें सोचते हैं? सोचते होते तो शुरू से ही यह सब न हो पाता।"

ललिता ने पूछा, "पानू बाबू हमारे यहाँ आ सकेंगे?"

वरदासुन्दरी ने अचम्भे में आकर कहा, "ये और सुनो! पानू बाबू क्यों नहीं आयेंगे?"

"विनय बाबू ही क्यों नहीं आयेंगे?"

वरदासुन्दरी ने फिर कापी अपनी ओर खींचते हुए कहा, "ललिता, तुझ से मैं पार नहीं पा सकती। तू जा, अभी मुझे जला मत—मुझे बहुत काम है।"

ललिता दोपहर के समय सुचरिता के घर स्कूल जुटाने जाती है, इसी अव-

काश से लाभ उठाकर वरदासुन्दरी ने विनय को बुलवाकर जो कहना था कह-सुन लिया था। उन्होंने सोचा था, ललिता को पता भी न लगेगा। सहसा ऐसे पकड़ी जाकर वह मुश्किल में पड़ गईं। उन्होंने समझ लिया कि इसका परिणाम शान्ति नहीं होगा और यह मामला अब आसानी से सुलझेगा भी नहीं। उनका गुस्सा जाकर अपने गैर-ज़िम्मेदार स्वामी पर ही पड़ा। ऐसे बुद्धू के साथ गृहस्थी चलाना स्त्री की कैसी मुसीबत है!

ललिता हृदय में उमड़ती हुई आँधी समेटे चली गई। निचले कमरे में परेश बाबू बैठे चिट्ठी लिख रहे थे, वहाँ आकर ललिता एकाएक उनसे पूछ उठीं, "बाबा, विनय बाबू क्या हम लोगों से मिलने के योग्य नहीं हैं?"

प्रश्न सुनते ही परेश बाबू सारी परिस्थिति समझ गये। उनके परिवार को लेकर आजकल उनके समाज में जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था वह परेश बाबू से छिपा हुआ न था। उनको लेकर वह काफी चिन्तित भी थे। अगर विनय के प्रति ललिता के मन के भाव के बारे में उन्हें कोई सन्देह न होता, तो केवल बाहर की बातों की ओर वह ज़रा भी कान न देते। लेकिन अगर विनय के प्रति ललिता के मन में अनुराग हो तब उस अवस्था में उनका क्या कर्त्तव्य है, यह प्रश्न वह बार-बार अपने से पूछते थे। ब्राह्म-धर्म में दीक्षा लेने के समय से उनके परिवार में यही एक संकट का अवसर आया है। इसीलिए जहाँ एक तरफ भय और कष्ट उन्हें भीतर-ही-भीतर सता रहे थे, वहाँ दूसरी ओर उनकी सारी चित्त-शक्ति जागृत होकर कह रही थी, 'ब्राह्म-धर्म ग्रहण करते समय जैसे एकमात्र ईश्वर की ओर ध्यान रखकर कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ था, जैसे सुख, सम्पत्ति, समाज, सभी के ऊपर केवल सत्य को स्वीकार करने से जीवन सदा के लिए धन्य हो गया, अब भी अगर वैसी ही परीक्षा का दिन उपस्थित हो तो उसी को धारण करके उत्तीर्ण होऊँगा।'

ललिता के प्रश्न के उत्तर में परेश बाबू ने कहा, "विनय को मैं तो अच्छा ही समझता हूँ। उनकी जितनी विद्या-बुद्धि है, उतना ही ऊँचा चरित्र भी है।"

थोड़ी देर चुप रहकर ललिता ने फिर कहा, "गौर बाबू की माँ इस बीच दो बार हमारे घर आ चुकी हैं। आज सुचि दीदी के साथ ज़रा उधर हो आऊँ?"

परेश बाबू क्षण-भर उत्तर न दे सके। वह निश्चय जानते थे कि इस चर्चा के समय इस तरह आने-जाने से उनकी निन्दा को और भी सहारा मिलेगा। लेकिन उनके मन ने कहा, 'जब तक यह अन्याय न हो मैं इसका निषेध नहीं कर सकता।' वह बोले, "अच्छी बात है, हो आओ। मुझे काम है, नहीं तो मैं भी तुम लोगों के साथ चलता।"

४५

विनय जिस जगह पर इतने दिनों से यों निश्चिन्त भाव से अतिथि और बन्धु के रूप में आता-जाता रहा है, उसी के नीचे समाज का ज्वालामुखी फूट पड़ने की तैयारी कर रहा है, इसका उसे स्वप्न में भी गुमान न था। शुरू में परेश बाबू के परिवार से मिलने-जुलने में उसे काफ़ी संकोच होता था, कहाँ कितनी दूर तक उसके अधिकार की मर्यादा है, यह निश्चयपूर्वक न जानने के कारण वह सदा डरा-डरा रहता था। धीरे-धीरे जब उसका डर मिट गया, तब वह यह भूल ही गया कि कहीं भी कुछ भी विपत्ति की शंका हो सकती है। आज हठात् यह सुनकर कि उसके व्यवहार के कारण समाज के लोगों में ललिता को निन्दित होना पड़ा है, उसके सिर पर मानो वज्र गिर पड़ा। उसके क्षोभ का एक विशेष कारण यह भी था कि वह स्वयं जानता था, ललिता के सम्बन्ध में उसके भाव साधारण बन्धुत्व की सीमा पार करके कहीं आगे बढ़ गए थे, और वर्तमान परिस्थिति में दोनों समाजों का विभेद देखते हुए इसे वह मन-ही-मन अपना अपराध ही समझता था। उसने अनेक बार सोचा था, इस परिवार में विश्वस्त अतिथि के रूप में आकर वह अपने ठीक स्थान पर नहीं रह सका—एक स्थल पर वह कपट कर रहा है और उसके मन का भाव इस परिवार के लोगों पर ठीक-ठीक प्रकट हो जाने पर उसको लज्जित होना पड़ेगा।

ऐसे समय जब एक दिन दोपहर को वरदासुन्दरी ने चिट्ठी लिखकर विनय को विशेष रूप से बुला भेजा और पूछा, "विनय बाबू, आप तो हिन्दू हैं?" और विनय के स्वीकार करने पर फिर पूछा, "आप हिन्दू-समाज को छोड़ तो नहीं सकेंगे?" और विनय के यह कहने पर कि वह उसके लिए असम्भव होगा, जब वह फिर कह उठी, "तब क्यों आप···?" तब इस 'तब क्यों' का कोई उत्तर विनय से नहीं बन पड़ा। वह सिर झुकाये बैठा ही रह गया। उसे लगा, वह पकड़ा गया है, उसकी एक ऐसी बात सबके सामने प्रकट हो गई है जिसे वह चन्द्र-सूर्य-वायु तक से छिपाये रखना चाहता था। वह बार-बार यही सोचने लगा कि परेश बाबू न जाने क्या समझते होंगे, ललिता न जाने क्या समझती है, सुचरिता भी उसे न जाने क्या समझती होंगी। देवदूतों की किस भूल के कारण इस स्वर्ग-लोक में उसे थोड़े दिन स्थान मिल गया था, आज अपने अनधिकार प्रवेश की शरम का बोझ सिर पर लादकर उसे यहाँ से निर्वासित हो जाना होगा।

इसके बाद ही परेश बाबू की देहरी पार करते ही जब उसने ललिता को देखा

तब उसने सोचा, 'ललिता से अन्तिम विदा के इस क्षण में अपना भारी अपराध स्वीकार के और अपमानित होकर पिछले परिचय का एक समाधान कर देना चाहिए।' लेकिन यह कैसे किया जाय यह वह सोच न सका, इसलिए ललिता के चेहरे की ओर देखे बिना चुपचाप नमस्कार करके चला गया।

अभी उस दिन तक विनय परेश के परिवार के बाहर ही तो था, आज फिर वैसे ही बाहर आ खड़ा हुआ। लेकिन कितना अन्तर! यही बाहर आज इतना सूना क्यों है? उसके पहले जीवन में तो कोई कमी नहीं हुई, उसके गोरा, उसकी आनन्दमयी तो वही हैं। फिर भी उसे लग रहा था मानो वह जल से बिछुड़ी हुई मछली है, किसी ओर उसके जीवन का कोई अवलम्बन उसे नहीं दीख रहा था। घरों से पटे हुए इस शहर के भीड़-भरे राजपथ पर सर्वत्र विनय को अपने जीवन के सर्वनाश का एक धुंधला पीला चेहरा दीखने लगा। इस विश्वव्यापी सन्नाटे और सूनेपन से वह स्वयं चकित हो गया। क्यों और कब ऐसा हुआ, क्योंकर यह सम्भव हुआ, यही प्रश्न वह एक हृदयहीन निरुत्तर शून्य से बार-बार पूछने लगा।

"विनय बाबू! विनय बाबू!"

विनय ने पीछे मुड़कर देखा, सतीश था। विनय ने उसे गले से लगा लिया, बोला, "क्यों भाई, क्या है, बन्धु!"

विनय का स्वर भर्रा उठा था। परेश बाबू के घर के माधुर्य में इस बालक की भी कितनी देन थी यह विनय ने आज जैसे अनुभव किया वैसे मानो पहले कभी नहीं किया था।

सतीश ने कहा, "आप हमारे यहाँ क्यों नहीं आते? कल लावण्य दीदी और ललिता दीदी हमारे यहाँ आयेंगी. मौसी ने आपको निमन्त्रण देने के लिए मुझे भेजा है।"

विनय ने समझ लिया कि मौसी को कुछ खबर नहीं है। बोला, "सतीश बाबू, मौसी को मेरा प्रणाम कहना—लेकिन मैं आ तो नहीं सकूँगा।"

सतीश ने अनुनयपूर्वक विनय का हाथ पकड़ते हुए कहा, "क्यों नहीं आ सकेंगे? आपको आना ही पड़ेगा, मैं किसी तरह नहीं छोड़ूँगा।"

सतीश के इतने अनुरोध का एक विशेष कारण भी था। स्कूल में उसे 'पशुओं के प्रति व्यवहार' विषय पर एक निबन्ध लिखने को मिला था, उस निबन्ध पर उसे पचास में से बयालीस नम्बर मिले थे, यह निबन्ध विनय को दिखाने की उसकी बड़ी इच्छा थी। विनय बड़े भारी विद्वान और समझदार है, यह वह जानता था, उसे निश्चय था कि विनय जैसा रसज्ञ आदमी ही उसके

लेख का ठीक मूल्य समझ सकेगा। विनय यदि स्वीकार कर लेगा कि उसकी रचना श्रेष्ठ हुई है तो अरसिक लीला के सतीश की प्रतिभा के बारे में अवज्ञा प्रकट करने पर स्वयं उसी की हँसी होगी। निमन्त्रण उसी ने मौसी को कहकर भिजवाया था; जिस समय विनय उसके लेख के विषय में अपनी राय प्रकट करे उस समय उसकी दीदियाँ वहाँ उपस्थित हों, यही उसकी इच्छा थी।

विनय किसी तरह निमन्त्रण पर नहीं आ सकेगा, यह सुनकर सतीश बिलकुल मुर्झा गया।

विनय ने उसके गले में बाँह डालकर कहा, "सतीश बाबू, तुम्हीं हमारे घर चलो।"

सतीश का लेख उसकी जेब में ही था, इसलिए विनय का निमन्त्रण वह अस्वीकार न कर सका। कवियश:प्रार्थी बालक स्कूल की परीक्षा निकट होने पर भी समय नष्ट करने का अपराध स्वीकार करके विनय के घर चल पड़ा।

विनय मानो उसे किसी तरह छोड़ना ही न चाहता था। सतीश का निबन्ध तो सुना ही, जो प्रशंसा भी की उसमें समालोचक की निरपेक्षता नहीं दिखाई दी। बाजार से मिठाई मँगाकर उसने सतीश को जलपान भी कराया।

फिर सतीश को उसके घर के पास तक पहुँचाकर उसने अनावश्यक बेचैनी दिखाते हुए कहा, "अच्छा सतीश बाबू, चलूं!"

सतीश उसका हाथ पकड़कर खींचने लगा।

"नहीं आप हमारे घर चलिए।"

पर आज इस अनुनय का कोई असर नहीं हुआ।

विनय मानो स्वप्न में चलता हुआ-सा आनन्दमयी के घर आ पहुँचा, लेकिन उनके सामने न जा सका। छत पर के उस सूने कमरे में चला गया जो गोरा का सोने का कमरा था। इसी कमरे में उनकी बचपन की दोस्ती के कितने सुखमय दिन, कितनी सुखद रातें कटी हैं—कितनी आनन्द-भरी बातें, कितने संकल्प, कितने गम्भीर विषयों की चर्चा यहाँ हुई है—कितने दोस्ताना झगड़े और उसके बाद कितनी प्रीतिपूर्ण सुलह! विनय ने चाहा, अपने को भूलकर फिर उसी पुराने जीवन में प्रवेश कर जाय, लेकिन कुछ दिनों का नया परिचय उसका रास्ता रोक कर खड़ा हो गया; उसने ठीक उसी जगह न लौटने दिया। जीवन का केन्द्र कब सरक गया है और उसकी कक्षा में कितना परिवर्तन हो गया है, यह विनय इतने दिनों से स्पष्ट नहीं समझ सका था, आज जब इसमें कोई सन्देह न रहा तब वह भीत हो उठा।

छत पर कपड़े सूखने के लिए डाले गये थे, तीसरे पहर धूप ढलने पर

आनन्दमयी उन्हें उठाने आईं तो गोरा के कमरे में विनय को देखकर अचम्भे में आ गईं। जल्दी से उसके पास आकर उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोलीं, "विनय, क्या हुआ है विनय? तेरा चेहरा ऐसा सफ़ेद क्यों हो गया है?"

विनय उठ बैठा। बोला, "माँ, मैंने जब परेश बाबू के घर आना-जाना शुरू किया तब गोरा नाराज़ होता था। तब उसके ग़ुस्से को मैं ज़्यादती समझता था। लेकिन उसकी ज़्यादती नहीं थी, मेरी बेवकूफ़ी थी।"

आनन्दमयी ने ज़रा हँसकर कहा, "तू बड़ा समझदार लड़का है यह तो मैं नहीं कहूँगी, लेकिन इस मामले में तेरी बुद्धि में क्या दोष तुझे दीखा?"

विनय ने कहा, "माँ, हमारा समाज बिलकुल दूसरा ही जो है—यह बात मैंने तब बिलकुल नहीं सोची। उनकी दोस्ती से, व्यवहार से और उदाहरण से मुझे बड़ा आनन्द होता था और लगता था कि उपकार भी होता है, इसी से मैं आकृष्ट हुआ था। और भी बातें सोचने की हो सकती हैं, यह मुझे कभी सूझा ही नहीं।

आनन्दमयी बोलीं, "मुझे तो तेरी बात अब सुनकर भी वह नहीं सूझता।"

विनय ने कहा, "माँ, तुम नहीं जानतीं, मैंने समाज में उन सबके बारे में बड़ी अशान्ति पैदा कर दी है—लोग ऐसी बुराई करने लगे हैं कि मैं अब वहाँ···"

आनन्दमयी ने कहा, "गोरा एक बात बार-बार कहा करता है, वह मुझे बहुत खरी लगती है। वह कहता है, जहाँ भीतर कहीं अन्याय हो वहाँ बाहर शान्ति रहना ही सबसे बड़ा अमंगल है। उनके समाज में अशान्ति फैली भी हो तो तेरे पछताने की कोई ज़रूरत मुझे नहीं लगती—उससे फ़ायदा ही होगा, देख लेना। तेरा अपना व्यवहार सच्चा रहे तो काफ़ी है।" लेकिन इसी के बारे में तो विनय के मन में खटका था। उसका अपना व्यवहार निन्दा से परे है कि नहीं, यही तो वह किसी तरह तय नहीं कर पा रहा था। ललिता जब दूसरे समाज की है, उसके साथ विवाह जब सम्भव ही नहीं है, तब उसके प्रति उसका अनुराग ही उसे एक गोपन पाप-सा अखर रहा था। और यह सोच कर कि इसी घोर पाप के प्रायश्चित्त का समय आ उपस्थित हुआ है, वह मन-ही-मन दुखी हो रहा था।

वह हठात् कह उठा, "माँ, शशिमुखी के साथ जो मेरे विवाह का प्रस्ताव हुआ था वह हो-हुआ गया होता तो अच्छा ही हुआ होता। जो मेरी ठीक जगह है वहीं बाँध रखना ही ठीक है—ऐसा हो कि मैं वहाँ से ज़रा भी हिल न सकूँ।"

आनन्दमयी ने हँसकर कहा, "यानी शशिमुखी को अपने घर की बहू न बना-

कर अपने गले की फाँसी बनाकर रखना चाहता है—वह तो शशि का बहुत बड़ा सौभाग्य होगा न !"

इसी समय बैरा ने आकर खबर दी कि परेश बाबू के घर से दो लड़कियाँ आई हैं। खबर सुनकर विनय का दिल धड़कने लगा। उसने समझा, वे आनन्दमयी के पास अभियोग लेकर आई हैं कि विनय को चेतावनी दे दी जाये। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं जा रहा हूँ, माँ !"

आनन्दमयी ने भी उठकर उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, "बिलकुल घर से ही मत चले जाना, विनय ! निचले कमरे में चल के थोड़ी देर बैठ !"

नीचे जाते-जाते विनय बार-बार कहने लगा, "इसकी तो कोई जरूरत नहीं थी। जो हो गया सो तो हो गया, अब तो मैं मरकर भी वहाँ जाने वाला नहीं था। अपराध की सजा जब आग की तरह भड़क उठती है तब अपराधी के जलकर राख हो जाने पर भी सजा की आग मानो बुझना ही नहीं चाहती !"

निचली मंज़िल में सड़क की ओर गोरा का जो कमरा था, विनय उसमें प्रवेश करने ही जा रहा था कि महिम अपनी चपकन के बटनों के बन्धन से अपनी तोंद को मुक्त करते-करते ऑफ़िस से घर लौट आये। विनय का हाथ पकड़कर बोले, "अरे, यह तो विनय है ! बहुत अच्छा हुआ—मैं तुम्हीं को खोज रहा था।" कहते-कहते वह विनय को गोरा के कमरे में ले गये और उसे कुर्सी पर बैठाकर स्वयं भी बैठ गये। जेब से डिब्बा निकालकर उन्होंने फ़ौरन एक पान विनय को दिया। "अरे, तम्बाकू लाना रे !" की हाँक लगाकर उन्होंने फ़ौरन काम की बात उठाई। पूछा, "उस मामले का क्या तय हुआ ? और तो···"

उन्होंने लक्ष्य किया, विनय का भाव पहले से कहीं नरम है। कोई विशेष उत्साह लक्ष्य हो ऐसा तो नहीं है, लेकिन जैसे-तैसे बहाना करके बात को टाल देने की कोशिश भी नहीं जान पड़ती। महिम ने उसी समय तिथि-मुहूर्त सब पक्का कर लेना चाहा। विनय ने कहा, "गोरा तो लौट आवे।"

महिम ने आश्वस्त होकर कहा, "वह तो अब दो-चार दिन की बात है। विनय, कुछ जलपान लाने को कह दूँ—क्या राय है ? तुम्हारा चेहरा आज बहुत सूखा हुआ जान पड़ता है। तबियत तो ठीक है न ?"

जलपान के बोझ से विनय ने छुटकारा पा लिया तो महिम अपनी क्षुधा-निवृत्ति के लिए भीतर चले गये। विनय गोरा की मेज़ पर से यों ही कोई पुस्तक उठाकर पन्ने उलटने लगा, फिर किताब फेंककर कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलने लगा।

बैरा ने आकर कहा, "माँ बुला रही हैं।"

विनय ने पूछा, "किसे बुला रही हैं ?"

बैरा बोला, "आपको।"

विनय ने पूछा, "और सब लोग हैं ?"

बैरा ने कहा, "हाँ, हैं।"

विनय ऐसे ही ऊपर चला जैसे परीक्षा भवन की ओर जाते हैं। कमरे के दरवाज़े तक पहुँचकर वह कुछ इधर-उधर कर ही रहा था कि सुचरिता ने सदा की भाँति सहज सौहार्द-भरे स्निग्ध स्वर से कहा, "आइये, विनय बाबू !"

यह स्वर सुनकर विनय को लगा मानो उसने कोई अप्रत्याशित निधि पा ली हो।

विनय के कमरे में आने पर सुचरिता और ललिता उसे देखकर अचम्भे में आ गईं। उसे सहसा कितनी गहरी चोट पहुँची है, इसके चिह्न थोड़े समय में ही उसके चेहरे पर अंकित हो गये थे। विनय का सदा हँसते रहने वाला चेहरा सहसा ऐसा हो गया था मानो लहलहाते खेत पर अचानक टिड्डी-दल आक्रमण करके आगे बढ़ गया हो। ललिता के मन में व्यथा और करुणा के साथ-साथ एक आनन्द का भी आभास दिखाई पड़ा।

और दिन ललिता सहसा विनय के साथ बातचीत शुरू नहीं करती थी, आज जैसे ही विनय ने कमरे में प्रवेश किया वैसे ही वह कह उठी, "विनय बाबू, आपसे हमें एक सलाह करनी है।"

विनय के हृदय में मानो हठात् कहीं से आनन्द का एक शब्द-वेधी बाण आ लगा। वह उल्लास से भर उठा। उसका फीका उदास चेहरा क्षण-भर में ही चमक उठा।

ललिता ने कहा, "हम सब बहनें मिलकर लड़कियों का एक छोटा स्कूल चलाना चाहती हैं।"

विनय ने उत्साहित होकर कहा, "लड़कियों का स्कूल चलाना तो मेरे जीवन का एक बहुत पुराना संकल्प है।"

ललिता ने कहा, "आपको इस मामले में हम लोगों की सहायता करनी होगी।"

विनय ने कहा, "मुझसे जो कुछ हो सकता है उसमें कोई चूक नहीं होगी। मुझे क्या करना होगा, बताइये !"

ललिता ने कहा, "हम लोग ब्राह्म हैं, यह सोचकर हिन्दू अभिभावक हमारा विश्वास नहीं करते। इसके लिए आपको यत्न करना होगा।"

विनय ने खिलकर कहा, "आप बिलकुल चिन्ता न करें—यह मैं देख लूँगा।"

आनंदमयी ने कहा, "यह सब वह अच्छी तरह कर सकता है। लोगों को बातों में उलझाकर मोह लेने में उसके बराबर कोई नहीं है।"

ललिता ने कहा, "विद्यालय का काम जिस नियम से, जिस ढंग से चलाना चाहिए, समय का विभाजन, क्लासों की व्यवस्था, कौन-कौन सी पुस्तकें पढ़ाई जायेंगी, यह सब आपको करना होगा।"

यह काम भी विनय के लिए मुश्किल नहीं था। लेकिन वह उलझन में पड़ गया। वरदासुन्दरी ने अपनी लड़कियों से मिलने-जुलने से उसे मना कर दिया है, और समाज में उसके विरुद्ध आन्दोलन चल रहा है, यह बात क्या ललिता बिलकुल नहीं जानती ? इस स्कूल के बारे में ललिता का अनुरोध मानकर विनय वचन दे दे तो वह अनुचित होगा या नहीं और ललिता के लिए अनिष्टकर होगा या नहीं, ये प्रश्न उसे कचोटने लगे। दूसरी तरफ़ अगर ललिता किसी शुभ काम में उसका सहयोग चाहती है तो यह कैसे हो सकता है कि वह पूरी चेष्टा से उस अनुरोध का पालन न करे ?

इधर सुचरिता भी अचम्भे में आ गई थी। उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि ललिता हठात् इस ढंग से विनय से लड़कियों के स्कूल के बारे में अनुरोध कर उठेगी। एक तो यों ही विनय को लेकर काफ़ी उलझन पैदा हो गई है, उस पर और नई समस्या ! ललिता सब समझकर जान-बूझकर ऐसा कर रही है, यह देखकर सुचरिता डर गई। ललिता के मन में विद्रोह उदित हुआ है, यह तो उसने समझा, लेकिन इस गड़बड़ में विनय को घसीटना क्या उसके लिए उचित है ? सुचरिता ने कुछ चिंतित होकर कहा, "इस बारे में एक बार बाबा से भी तो सलाह करनी होगी। कहीं विनय बाबू अभी से यह आशा न लगा बैठें कि उन्हें लडकियों के स्कूल की इन्स्पेक्टरी मिल गई !"

सुचरिता कौशल से प्रस्ताव को टालना चाह रही है, यह विनय समझ गया। इससे उसके मन में और भी खटका हुआ। यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि जो संकट आ खड़ा हुआ है उसे सुचरिता जानती है, तब निश्चय ही वह ललिता से भी छिपा नहीं है, तब ललिता क्यों —कुछ भी उसकी समझ में नहीं आया।

ललिता ने कहा, "बाबा से तो पूछना ही होगा। विनय बाबू राज़ी हैं, यह जानकर ही तो उनसे कहूँगी। वह कभी आपत्ति नहीं करेंगे—उन्हें भी हमारे इस विद्यालय में शामिल होना होगा।।"

फिर उसने आनन्दमयी की ओर मुड़कर कहा, "आपको भी हम नहीं छोड़ेंगी।"

आनन्दमयी ने हँसकर कहा, "मैं तुम्हारे स्कूल में झाड़ू लगा आया करूँगी। इससे ज्यादा मैं क्या कर सकती हूँ भला !"

विनय ने कहा, "इतना ही बहुत होगा माँ ! तब विद्यालय बिल्कुल निर्मल

हो जायेगा !

सुचरिता और ललिता के विदा लेकर चले जाने पर विनय भी फ़ौरन पैदल ही ईडन गार्डन की सैर को निकल पड़ा। महिम ने आनन्दमयी के पास जाकर कहा, "विनय तो, देखता हूँ काफ़ी राज़ी हो चला है, अब जितनी जल्दी हो सके काम निबटा देना ही अच्छा है—कौन जाने कब फिर राय बदल जाये।"

आनन्दमयी ने विस्मित होकर कहा, "यह कैसी बात—विनय फिर कब राज़ी हो गया ? मुझ से तो उसने कुछ नहीं कहा ?"

महिम ने कहा, "आज ही मेरे साथ उसकी बातचीत हो गई है, उसने कहा है, गोरा के आते ही दिन ठीक किया जायेगा।"

आनन्दमयी ने सिर हिलाकर कहा, "महिम, तुम ग़लत समझते हो, मैं निश्चय से कह सकती हूँ।"

महिम ने कहा, "मेरी अकल कितनी भी मोटी हो, सीधी-सीधी बात समझने लायक उमर मेरी हो गई है, यह तुम मानो।"

आनन्दमयी ने कहा, "बेटा, मुझ पर तुम नाराज़ होगे यह मैं जानती हूँ, लेकिन मुझे दीख रहा है कि इसको लेकर एक मुश्किल खड़ी होगी।"

महिम ने गम्भीर चेहरा बनाकर कहा, "मुश्किल खड़ी करने से ही मुश्किल खड़ी होती है।"

आनन्दमयी ने कहा, "महिम, मुझे तुम लोग चाहे जो कहो मैं सह लूंगी, लेकिन जिस बात से कोई अशान्ति हो सकती है उसमें योग नहीं दे सकती। यह तुम्हीं लोगों के भले के लिए है।"

महिम ने कठोर होकर कहा, "हम लोगों के भले का भार हमारे ही ऊपर छोड़ दो तो तुम्हें भी कुछ न सुनना पड़े और शायद हमारा भी भला ही हो। बल्कि शशिमुखी का ब्याह हो जाने दो, उसके बाद ही हमारे भले की चिन्ता करो तो कैसा रहे ?"

आनन्दमयी ने और कुछ न कहकर एक लम्बी साँस ली। महिम जेब से डिब्बा निकाल एक पान मुंह में रखकर चबाते-चबाते चले गये।

४६

ललिता परेश बाबू के पास आकर बोली, "हम लोग ब्राह्म हैं, इसलिए कोई

हिन्दू लड़की हम दोनों से पढ़ने नहीं आती—इसलिए मैं सोचती हूँ, हिन्दू-समाज से किसी को शामिल करने से सुभीता रहेगा। क्या राय है, बाबा ?"

परेश बाबू ने पूछा, "हिन्दू-समाज से किसी को पाओगी कहाँ ?"

ललिता बिलकुल कमर कसकर आई थी, फिर भी विनय बाबू का नाम लेने में उसे संकोच हो आया, ज़बरदस्ती उसे हटाती हुई बोली, "क्यों, क्या कोई नहीं मिलेगा ? यही विनय बाबू हैं—या—" यह 'या' एक बिलकुल व्यर्थ प्रयोग था—एक अव्यय का निरा अपव्यय, वाक्य अधूरा ही रह गया।

परेश बोले, "विनय ! विनय क्यों राज़ी होंगे ?"

ललिता के अभिमान को ठेस लगी। विनय बाबू राज़ी नहीं होंगे ! ललिता अच्छी तरह समझती है कि विनय बाबू को राज़ी करना ललिता के लिए असंभव नहीं है।

ललिता ने कहा, "वाह राज़ी हो भी सकते हैं।"

परेश थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "सारी बात सोचकर देखने पर वह कभी राज़ी नहीं होंगे।"

ललिता के कान लाल हो गये। वह आँचल में बँधा हुआ चाभियों का गुच्छा लेकर झुलाने लगी।

अपनी इस मुश्किल में पड़ी हुई लड़की के चेहरे की ओर देखकर परेश का हृदय व्यथित हो उठा। लेकिन सान्त्वना का कोई शब्द उन्हें ढूंढ़े न मिला। थोड़ी देर बाद ललिता ने धीरे-धीरे मुंह उठाकर कहा, "बाबा, तब हमारा यह स्कूल किसी तरह नहीं चल सकेगा ?"

परेश ने कहा, "अभी तो चलने में बहुत बाधाएँ दीखती हैं। कोशिश करते ही बहुत-सी कड़वी चर्चाएँ उठेंगी।"

अन्त में पानू बाबू की जीत होगी और अन्याय के सामने चुपचाप हार मान लेनी होगी—ललिता के लिए इससे बड़ा दुःख और कुछ नहीं हो सकता, इस मामले में वह अपने पिता को छोड़ और किसी का शासन क्षण-भर के लिए भी न मानती। वह किसी कटुता से नहीं डरती, लेकिन अन्याय को कैसे सह ले ? वह धीरे-धीरे उठकर परेश बाबू के पास चली गई। अपने कमरे में पहुँचकर उसने देखा, डाक से उसके नाम की एक चिट्ठी आई है। लिखावट से उसने पहचाना, उसकी बचपन की सखी शैलबाला की चिट्ठी है। शैलबाला का विवाह हो चुका है, पति के साथ बाँकीपुर रहती है।

चिट्ठी में लिखा था—

"तुम लोगों के बारे में तरह-तरह की बातें सुनकर मन बहुत खराब हो रहा

था। बहुत दिनों से सोच रही थी, चिट्ठी लिखकर हाल-चाल जानूं। लेकिन समय ही नहीं मिल पा रहा था। लेकिन परसों एक आदमी से (उसका नाम नहीं बताऊँगी) जो सब समाचार मिले उनसे तो मानो सिर पर बिजली गिरी। ऐसा सम्भव हो सकता है, यह तो मैं सोच भी नहीं सकती। लेकिन जिन्होंने लिखा है उन पर विश्वास न करना भी मुश्किल है। सुनती हूँ कि तुम्हारी किसी हिन्दू युवक के साथ विवाह की सम्भावना हो रही है। यह बात अगर सच हो तो···" इत्यादि, इत्यादि।

क्रोध से ललिता का सारा शरीर जल उठा। वह क्षण-भर भी रुक न सकी, उसने तत्काल चिट्ठी का उत्तर लिखा :

"खबर सच है कि नहीं, यह जानने के लिए तुमने मुझसे सवाल पूछा है, मुझे तो इसी पर आश्चर्य हो रहा है। ब्राह्म-समाज के आदमी ने तुम्हें जो खबर दी उसकी सच्चाई की भी पड़ताल करनी होगी! इतना अविश्वास? फिर, किसी हिन्दू युवक से मेरे विवाह की सम्भावना हो रही है, इस खबर से तुम्हारे सिर पर बिजली गिरी है, लेकिन मैं तुम्हें निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि ब्राह्म-समाज में भी ऐसे-ऐसे सुविख्यात साधु युवक हैं जिनसे विवाह की आशंका वज्र गिरने के बराबर भयानक है, और मैं ऐसे दो-एक हिन्दू युवकों को जानती हूँ जिनके साथ विवाह किसी भी ब्राह्म-कुमारी के लिए गौरव की बात हो सकती है। इससे अधिक कोई भी बात मैं तुमसे कहना नहीं चाहती।"

इधर परेश बाबू का काम उस दिन के लिए रुक गया। वह चुपचाप बैठे बहुत देर तक सोचते-सोचते ही धीरे-धीरे सुचरिता के घर जा पहुँचे। परेश का चिंतित मुँह देखकर सुचरिता का हृदय व्यथित हो उठा। उनकी चिन्ता का क्या कारण है वह वह जानती थी और इसी चिन्ता के कारण स्वयं कई दिन से उद्विग्न थी। परेश बाबू सुचरिता के साथ अकेले कमरे में बैठकर बोले, "बेटी, ललिता के बारे में सोचने का समय आ गया है।"

सुचरिता ने अपनी करुणा-भरी आँखें परेश बाबू के चेहरे पर टिकाकर कहा, "जानती हूँ, बाबा।"

परेश बाबू ने कहा, "मैं समाज की निन्दा की बात नहीं सोच रहा। मैं सोच रहा हूँ—अच्छा, ललिता क्या···?"

परेश बाबू का संकोच देखकर सुचरिता ने स्वयं ही उनकी बात स्पष्ट कर लेने की कोशिश की। बोली, "ललिता हमेशा अपने मन की बात मुझे बताती रही है। लेकिन कुछ दिन से वह मुझसे वैसे खुलती नहीं है। मैं समझ सकती हूँ कि···"

परेश बाबू बीच ही में बोले, "ललिता के मन में कोई ऐसा भाव उदित हुआ है जिसे वह अपने सामने भी स्वीकार करना नहीं चाहती। मैं सोच नहीं पाता कि क्या करने से उसका हित होगा—तुम्हारी क्या राय है, विनय को हमारे परिवार में आने-जाने देने से ललिता का कोई अनिष्ट हुआ है?"

सुचरिता ने कहा, "बाबा, तुम तो जानते हो कि विनय बाबू में कोई दोष नहीं है—उनका स्वभाव निर्मल है, उन जैसे स्वभाव का भद्र पुरुष बहुत कम मिलता है।" परेश बाबू को मानो कोई नई बात मालूम हुई हो। वह बोल उठे, "ठीक कहती हो राधे, ठीक कहती हो। वह अच्छे आदमी हैं कि नहीं, वही देखने की बात है, अन्तर्यामी ईश्वर भी उतना ही देखते हैं। विनय अच्छा आदमी है, उसे पहचानने में मैंने भूल नहीं की, इसके लिए मैं उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूँ।"

मानो एक जाल कट गया, परेश बाबू मानो छुटकारा पा गये। उन्होंने देवता के निकट कोई अपराध नहीं किया, ईश्वर जिस तुला पर मनुष्य को तौलते हैं, उन्होंने नित्य धर्म की उसी तुला को माना है, उस पर उन्होंने अपने समाज के बनाए हुए कोई नकली बाट नहीं रक्खे, यह सोचकर उनके मन की ग्लानि दूर हो गई। इस इतनी सीधी बात को अब तक न समझकर वह क्यों इतना कष्ट पा रहे थे, इसी पर उन्हें आश्चर्य हो उठा। उन्होंने सुचरिता के सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "तुमसे मुझे आज एक सीख मिली, बेटी!"

सुचरिता ने तत्काल उनके पैर छूते हुए कहा, "नहीं-नहीं, बाबा, यह तुम क्या कह रहे हो!"

परेश बाबू ने कहा, "सम्प्रदाय ऐसी चीज है कि लोगों को यह जो सबसे सीधी बात है कि इनसान इनसान है, यही भुला देता है। इनसान ब्राह्म है कि हिन्दू, समाज की गढ़ी हुई इस बात को विश्व-सत्य से बड़ा बनाकर एक झमेला खड़ा कर देता है। मैं भी अब तक इसी झूठ के भँवर में फँसा हुआ था।"

थोड़ी देर चुप रहकर परेश बाबू बोले, "ललिता अपने लड़कियों के स्कूल का संकल्प छोड़ नहीं पा रही है। उसने इसके लिए विनय से मदद लेने के बारे में मेरी राय पूछी थी।"

सुचरिता ने कहा, "नहीं बाबा, अभी कुछ दिन रहने दीजिए।"

उनके ललिता को मना करते ही वह अपने आहत हृदय का आवेग दबाकर जैसे उठकर चली गई थी, उसकी याद परेश बाबू के स्नेह-भरे हृदय को बराबर क्लेश पहुँचा रही थी। वह जानते थे कि उनकी तेजस्विनी कन्या को समाज के उत्पीड़न और अन्याय से उतना कष्ट नहीं हुआ था जितना उस अन्याय के विरुद्ध संग्राम करने में बाधा पाने से—विशेषकर पिता से बाधा पाने से। इसीलिए वह

चाहते थे कि किसी तरह अपनी मनाही उठा ले सकें। वह बोले, "क्यों, राधे, अभी रहने क्यों दें ?"

सुचरिता ने कहा, "नहीं तो माँ को बहुत बुरा लगेगा।"

परेश बाबू ने विचार करके देखा, यह बात तो ठीक है।

सतीश ने कमरे में आकर सुचरिता के कान में कुछ कहा। सुचरिता ने उसे उत्तर दिया, "नहीं, भई बख्त्यार खाँ, अभी नहीं। कल देखा जायेगा।"

सतीश ने अप्रतिभ होकर कहा, "कल तो मेरा स्कूल है।"

परेश ने स्नेह से हँसकर पूछा, "क्यों सतीश, क्या चाहिए ?"

सुचरिता ने कहा, "उसका एक···"

सतीश ने हड़बड़ाकर सुचरिता का मुंह हाथ से बन्द करते हुए कहा, "नहीं-नहीं, बताना मत, बताना मत !"

परेश बाबू ने कहा, "अगर छिपाने की बात होगी तो सुचरिता बतायेगी ही क्यों !"

सुचरिता ने कहा, "नहीं बाबा, वह जरूर बहुत चाहता है कि यह छिपाने की बात किसी तरह आपके कानों में पड़ जायें !"

सतीश ने चिल्लाकर कहा, "कभी नहीं—बिलकुल नहीं !" और बाहर भाग गया।

बात यह थी कि विनय ने जिस लेख की प्रशंसा की थी वही वह सुचरिता को दिखाना चाहता था। कहने की जरूरत नहीं कि परेश के सामने सुचरिता को इसकी याद दिलाने का जो उद्देश्य था वह सुचरिता ने ठीक-ठीक समझ लिया था। मन की ऐसी गम्भीर बातें इस दुनिया में इतनी आसानी से भाँप ली जाती हैं, यह बेचारा सतीश नहीं जानता था।

४७

चार दिन बाद एक चिट्ठी हाथ में लिये हारान बाबू वरदासुन्दरी के पास आ पहुँचे। आजकल परेश बाबू से कोई आशा करना उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया था।

हारान बाबू चिट्ठी वरदासुन्दरी के हाथ में देकर बोले, "मैंने शुरू से ही आप लोगों को सावधान कर देने की बड़ी कोशिश की थी और इसके लिए आपकी नाराजी भी सही थी। अब इस चिट्ठी से ही आप समझ सकेंगी, भीतर-

ही-भीतर मामला कहाँ तक बढ़ गया है।"

ललिता ने शैलबाला के नाम जो चिट्ठी लिखी थी वही चिट्ठी वरदासुन्दरी ने पढ़ डाली। पढ़कर बोलीं, "मैं कैसे जान सकती थी, आप ही बताइये! कभी जो सोचा भी नहीं था वही हो रहा है। लेकिन इसके लिए मुझे दोष मत दीजिएगा, यह मैं कहे रखती हूँ। आप ही सब ने मिलकर सुचरिता की तारीफ़ कर-करके उसका सिर फिरा दिया—कि ब्राह्म-समाज में ऐसी दूसरी लड़की ही नहीं है—अब अपनी उस आदर्श ब्राह्म लड़की की कीर्ति संभालिए न! विनय और गोर को तो यही इस घर में लाये। विनय को तो मैंने फिर भी बहुत-कुछ हम लोगों के मार्ग की ओर खींच लिया था, फिर न जाने कहाँ से उन्होंने उसकी एक मौसी को लाकर हमारे ही घर में ठाकुर-पूजा शुरू करा दी। विनय को भी ऐसा बिगाड़ दिया कि वह अब मुझे देखते ही भाग खड़ा होता है। अब यह सब जो कुछ हो रहा है आपकी वही सुचरिता ही इसकी जड़ में है। वह कैसी लड़की है, यह तो मैं शुरू से ही जानती थी, लेकिन मैंने कभी कोई बात नहीं कही, उसे बराबर ऐसे ही पालती-पोसती रही कि कोई यह न समझ न सके कि वह मेरी अपनी लड़की नहीं है। आज उसका यह फल मिला! अब मुझे यह चिट्ठी दिखाकर क्या होगा—अब आप लोग ही जो समझें करें।"

हारान बाबू ने एक समय वरदासुन्दरी को समझने में भूल की थी, आज यह बात स्पष्ट स्वीकार करते हुए उन्होंने बड़ी उदारता के साथ इस पर खेद प्रकट किया। अन्त में परेश बाबू को बुलाया गया।

"लो, देख लो," कहते हुए वरदासुन्दरी ने चिट्ठी उनके सामने मेज़ पर पटक दी। परेश बाबू ने चिट्ठी दो-तीन बार पढ़कर कहा, "तो क्या हुआ?"

वरदासुन्दरी ने उत्तेजित होकर कहा, "क्या हुआ! और क्या चाहते हो कि हो जाय? और बाकी ही क्या रहा है! मूर्ति-पूजा, जाति-पाँति, छूआछूत, सभी तो हो गया, अब बस हिन्दू के घर अपनी लड़की को ब्याह देना ही बाकी रह गया है। इसके बाद तुम भी प्रायश्चित्त करके हिन्दू समाज में जा बैठना—लेकिन मैं कहे देती हूँ..."

परेश बाबू ने थोड़ा हँसकर कहा, "तुम्हें कुछ भी कहना नहीं होगा—कम-से-कम अभी तो कह देने का समय नहीं है। सवाल यह है कि तुम लोगों ने कैसे तय कर लिया कि हिन्दू के घर ललिता का विवाह तय हो गया है। इस चिट्ठी में तो ऐसी कोई बात मुझे नहीं दीखती।"

वरदासुन्दरी ने कहा, "क्या होने से तुम्हें कुछ दीखता है, यह तो मैं आज तक समझ नहीं पाई। समय रहते देख पाते तो आज यह मामला न उठ खड़ा हुआ होता।

चिट्ठी में कोई इससे साफ़ और क्या लिख सकता है भला ?"

हारान बाबू ने कहा, "मैं समझता हूँ, ललिता को यह चिट्ठी दिखाकर पूछना चाहिए कि उसकी मंशा क्या है। आप लोग अनुमति दें तो मैं ही उससे पूछ सकता हूँ।"

इसी समय आंधी-सी कमरे में आकर ललिता ने कहा, "बाबा, यह देखो, ब्राह्म-समाज से आजकल ऐसी गुमनाम चिट्ठियां आती हैं !"

परेश ने चिट्ठी पढ़ी। विनय के साथ ललिता का विवाह गुप्त रूप से निश्चय हो चुका है, यह मानकर चिट्ठी लिखने वाले ने बहुत-सी फटकार और उपदेशों से चिट्ठी भर दी थी। साथ ही इसकी भी चर्चा थी कि विनय की नीयत अच्छी नहीं है और वह दो दिन बाद ही अपनी ब्राह्म पत्नी को छोड़कर फिर हिन्दू घर में विवाह करेगा।

परेश बाबू के पढ़ चुकने पर चिट्ठी हारान ने लेकर पढ़ी। बोले, "ललिता, यह चिट्ठी पढ़कर तुम्हें गुस्सा आ रहा है। लेकिन ऐसी चिट्ठी लिखने का हेतु क्या है, यह तुमने नहीं सोचा। तुम ही अपने हाथ से यह चिट्ठी कैसे लिख सकीं, बताओ तो ?"

ललिता क्षण-भर स्तब्ध रहकर बोली, "तो शैल के साथ इस बारे में आप ही की चिट्ठी-पत्री हो रही है ?"

हारान बाबू ने सीधे जवाब न देकर कहा, "ब्राह्म-समाज के प्रति अपना कर्तव्य सोचकर शैल ने तुम्हारी यह चिट्ठी लाचार होकर ही मुझे भेजी है।"

ललिता ने सीधी खड़ी होकर कहा, "अब ब्राह्म-समाज क्या कहना चाहता है, कहिये।"

हारान बोले, "विनय बाबू और तुम्हारे बारे में यह समाज में जो शोर हो रहा है, उस पर मैं तो बिलकुल विश्वास नहीं करता, लेकिन फिर भी तुम्हारे मुंह से मैं उसका स्पष्ट प्रतिवाद सुनना चाहता हूँ।"

ललिता की आँखें सुलगने लगीं। काँपते हाथों से कुर्सी की पीठ पकड़कर उसने कहा, "क्यों, बिलकुल विश्वास नहीं कर सकते ?"

परेश बाबू ललिता की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले, "ललिता, अभी तुम्हारा मन स्थिर नहीं है, यह बात फिर मेरे साथ होगी—अभी रहने दो।"

हारान ने कहा, "परेश बाबू, आप बात को दबाने की कोशिश न करें।"

ललिता ने फिर भड़ककर कहा, "बाबा दबाने की कोशिश करेंगे ? आप लोगों की तरह बाबा सच्चाई से नहीं डरते—सत्य को वह ब्राह्म-समाज से भी बड़ा मानते हैं। मैं आपसे साफ़ कहती हूँ, विनय बाबू से विवाह को मैं जरा भी असम्भव या अनुचित नहीं मानती।"

हारान बोल उठे, "लेकिन यह क्या तय हो गया है कि वह ब्राह्म-धर्म की दीक्षा ले लेंगे ?"

ललिता ने कहा, "कुछ भी तय नहीं हुआ है, और उन्हें दीक्षा लेनी ही होगी, ऐसी भी क्या बात है !"

वरदासुन्दरी अब तक कुछ नहीं बोली थी। मन-ही-मन वह चाह रही थीं कि आज हारान बाबू की जीत हो और परेश बाबू को अपना दोष स्वीकार करके अनुताप करना पड़े। अब वह और नहीं रह सकीं, कह उठीं, "ललिता, तू पागल हो गई है क्या ? क्या कह रही है ?"

ललिता ने कहा, "नहीं माँ, यह पागल की बात नहीं है—जो कह रही हूँ सोच-समझ कर कह रही हूँ। मुझे चारों ओर से ऐसे बाँधना चाहेंगे तो मैं नहीं सह सकूँगी— हारान बाबू के इस समाज से मुक्ति पा लूँगी।"

हारान ने कहा, "उच्छृंखलता को ही तुम मुक्ति कहती हो ?"

ललिता ने कहा, "नहीं, नीचता के आक्रमण से, झूठ की गुलामी से मुक्ति को ही मैं मुक्ति कहती हूँ। जहाँ मैं कोई अन्याय, कोई अधर्म नहीं देखती, वहाँ ब्राह्म-समाज मुझे क्यों छेड़े, क्यों रोके ?"

हारान ने स्पर्द्धा दिखाते हुए कहा, "देख लीजिये, परेश बाबू ! मैं जानता था कि आखिर में ऐसा ही कुछ काण्ड होगा। मैं तो जहाँ तक कर सका आपको सावधान करने की कोशिश करता रहा, लेकिन नतीजा कुछ नहीं हुआ।"

ललिता ने कहा, "देखिये, पानू बाबू, एक जगह आपको भी सावधान करने की ज़रूरत है—जो आपसे हर बात में कहीं बड़े हैं उनको सावधान करने चलने का अहंकार आप न करें।" इतना कहकर ललिता कमरे से चली गई।

वरदासुन्दरी ने कहा, "यह सब क्या हुआ जा रहा है ! अब क्या करना होगा, ज़रा बैठकर सोचो।"

परेश बाबू ने कहा, "जो कर्त्तव्य है वही करना होगा, और क्या, लेकिन ऐसे हड़बड़ाकर सोचने से कर्त्तव्य स्थिर नहीं होता। मुझे माफ़ करो, इस बारे में अभी कुछ मत कहो—मैं ज़रा अकेला रहना चाहता हूँ।"

४८

ललिता ने यह क्या समस्या खड़ी कर दी, सुचरिता बैठकर सोचने लगी।

थोड़ी देर चुप रहकर ललिता के गले में बाँह डालकर बोली, "लेकिन भई, मुझे तो डर लगता है।"

ललिता ने पूछा, "किसका डर ?"

सुचरिता बोली, "ब्राह्म-समाज में तो चारों ओर हलचल मच गई है—लेकिन अन्त में अगर विनय बाबू राजी न हुए तो ?"

ललिता ने सिर झुकाकर लेकिन दृढ़ता से कहा, "वह जरूर राजी होंगे।"

सुचरिता ने कहा, "तू तो जानती है, पानू बाबू माँ को यही भरोसा दे गये हैं कि विनय कभी अपना समाज छोड़कर विवाह करने को राजी नहीं होगा। ललिता, क्यों तूने सब बातें सोचे बिना पानू बाबू से ऐसी बात कह डाली !"

ललिता ने कहा, "मैंने जो कहा, उसके लिए अब भी मुझे पछताना नहीं है। पानू बाबू समझे थे, वह और उनका समाज मुझे शिकार के जानवर की तरह घेरे डालकर बिलकुल अतल समुद्र के किनारे तक ले आये हैं, वहाँ मुझे पकड़े जाना ही होगा। वह नहीं जानते कि मैं इस समुद्र में कूद पड़ने से नहीं डरती बल्कि उनके शिकारी कुत्तों से घिरकर उनके पिंजरे में घुसते ही घबराती हूँ।"

सुचरिता ने कहा, "एक बार बाबा से सलाह करके देखा जाय।"

ललिता ने कहा, "बाबा कभी शिकारियों का साथ नहीं देंगे, यह मैं निश्चय से कह सकती हूँ। उन्होंने तो कभी हमें बाँधकर रखना नहीं चाहा। जब कभी उनकी राय से हमारी राय कुछ अलग हुई है, तब क्या वह जरा भी नाराज़ हुए हैं ? ब्राह्म-समाज के नाम की दुहाई देकर उन्होंने कभी हमारा मुंह बन्द करने की कोशिश की है ? इस पर माँ कितनी बार बिगड़ी हैं, लेकिन बाबा को यही एक डर रहा है कि कहीं हम लोग खुद सोचने का साहस न खो दें। जब उन्होंने हमें इस तरह सीख देकर बड़ा किया है, तब क्या अन्त में पानू बाबू जैसे समाज के जेल-दारोगा के हाथ हमें सौंप देंगे ?"

सुचरिता ने कहा, "अच्छा, मान लो कि बाबा कोई बाधा नहीं देते, फिर तू क्या करेगी बता ?"

ललिता ने कहा, "तुम लोग अगर कोई कुछ नहीं करोगे तो फिर मैं ही···"

सुचरिता ने घबराकर कहा, "नहीं-नहीं, तुझे कुछ नहीं करना होगा, भई ! मैं कुछ उपाय करती हूँ।"

सुचरिता परेश बाबू के पास जाने की तैयारी कर ही रही थी कि परेश बाबू स्वयं ही उसके यहाँ आ गये।

साँझ के इस समय प्रतिदिन परेश बाबू अपने घर की बगिया में अकेले सिर झुकाये मन-ही-मन सोचते हुए टहला करते हैं, साँझ के पवित्र अन्धकार से धीरे-

धीरे मन को माँजकर काम-काज के दिन के दाग मानो धो डालते हैं और अन्त में निर्मल शान्ति का संचय करके रात के विश्राम के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। आज परेश बाबू जब अपने शाम के एकान्त ध्यान की शान्ति छोड़कर, चिन्तित मुख लेकर सुचरिता के पास आ खड़े हुए तब सुचरिता के स्नेहपूर्ण चित्त को वैसी ही ठेस लगी जैसे, जिस शिशु को खेल में लगे रहना चाहिए उसे दर्द से चुपचाप पड़ा देखकर लगती है।

परेश बाबू ने मृदु स्वर से कहा, "राधे, सब सुन लिया है न ?"

सुचरिता ने कहा, "हाँ बाबा, सब सुना है, लेकिन तुम इतना सोचते क्यों हो ?"

परेश बाबू बोले, "मैं और तो कुछ नहीं सोचता, मेरी सारी सोच यही है कि ललिता ने जो तूफ़ान खड़ाकर दिया है उसकी पूरी चोट वह सह सकेगी कि नहीं। उत्तेजना के वश में कई बार हम लोगों के मन में अन्धी स्पर्द्धा जाग उठती है, लेकिन जब उसका फल मिलना आरम्भ होता है तब किसी-किसी की उसका भार सहने की शक्ति चली जाती है। ललिता ने क्या सब भला-बुरा अच्छी तरह सोच-कर तय कर लिया है कि क्या उसके लिए श्रेय है ?"

सुचरिता ने कहा, "समाज की तरफ़ से कोई उत्पीड़न ललिता को कभी नहीं हरा सकेगा, यह मैं दावे से कह सकती हूँ।'

परेश बाबू ने कहा, "मैं यह बात बहुत पक्की तरह जान लेना चाहता हूँ कि ललिता केवल ग़ुस्से में आकर विद्रोह या ज़िद तो नहीं कर रही है ?"

सुचरिता ने सिर झुकाकर कहा, "नहीं बाबा, ऐसी बात होती तो मैं उसकी बात पर ज़रा भी कान न देती। उसके मन में बहुत गहरे में जो बात थी, वही अचानक चोट खाकर बाहर आ गई है। अब इसे किसी तरह दबा देने की कोशिश करने से ललिता-जैसी लड़की के लिए अच्छा नहीं होगा। बाबा, विनय बाबू आदमी तो बहुत अच्छे हैं !"

परेश बाबू ने कहा, "अच्छा, विनय क्या ब्राह्म-समाज में आने को राज़ी होगा ?"

सुचरिता ने कहा, "यह तो ठीक-ठीक नहीं बता सकती। अच्छा बाबा, एक बार गौर बाबू की माँ से मिल आऊँ।"

परेश बाबू ने कहा, "मैं भी सोच रहा था, तुम हो आओ तो अच्छा हो।"

४६

आनन्दमयी के घर से रोज सबेरे एक बार विनय अपने घर का चक्कर लगाता था। आज सबेरे आने पर उसे एक चिट्ठी मिली। चिट्ठी पर किसी का नाम नहीं था। ललिता से विवाह करने पर विनय किसी तरह सुखी नहीं हो सकेगा और ललिता का भी उससे अमंगल होगा, यह बताकर चिट्ठी में लम्बा उपदेश दिया गया था और अन्त में यह भी लिखा था कि इस सबके बाद भी विनय ललिता से विवाह का इरादा न छोड़े तो एक बात और भी सोचकर देख ले—कि ललिता के फेफड़े कमजोर हैं और डाक्टरों ने यक्ष्मा की आशंका बताई है।

विनय चिट्ठी पाकर हक्का-बक्का हो रहा। ऐसी बातें कोई झूठ-मूठ भी गढ़ सकता है, यह विनय ने कभी नहीं सोचा था। समाज की बाधा के कारण ललिता के साथ विनय का विवाह होना किसी तरह सम्भव नहीं है, यह तो जानी हुई बात थी। इसीलिए तो ललिता के प्रति अपने हृदय के अनुराग को वह अब तक अपराध ही मानता आया था। लेकिन उसे ऐसी चिट्ठी मिली है तो निश्चय ही समाज में इस बारे में विस्तार से चर्चा होती रही है। इससे समाज के लोगों के सामने ललिता कितनी अपमानित हुई है, यह सोचकर उसका मन अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा। उसके नाम के साथ ललिता का नाम खुल्लमखुल्ला समाज के लोगों के मुंह पर रहता रहा है, इससे वह बहुत ही लज्जित और संकुचित होने लगा। उसे बार-बार यही लगने लगा कि उसके साथ परिचय को ललिता अभिशाप मानकर धिक्कार रही होगी। उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि ललिता अब कभी उसकी ओर आंख उठाकर देखना भी पसन्द नहीं करेगी।

हाय रे मानव हृदय! इस तीव्र ग्लानि के बीच भी विनय के चित्त के भीतर एक निविड़ गम्भीर, सूक्ष्म और तीव्र आनन्द लहरा रहा था जिसे वह संभाल नहीं पाता था, जो सारी लज्जा और अपमान को अस्वीकार कर देता था। इसी आनन्द को किसी तरह दबा देने के लिए वह अपने घर के बरामदे में तेजी से टहलने लगा। लेकिन सबेरे के प्रकाश से झरता हुआ एक मदिर भाव मानो उसके मन पर छा गया। राह पर जो फेरी वाले हांक लगाते हुए चले जा रहे थे उनकी हांक के सुर भी मानो उसके हृदय में एक गहरी चंचलता जगाने लगे। बाहर के लोगों की निन्दा ही मानो एक बाढ़ की तरह ललिता को बहाकर उसके हृदय के किनारे पर छोड़ गई, समाज से बहकर आई हुई ललिता की इस मूर्ति को वह और दूर न हटा सका। उसका मन केवल यही पुकारने लगा कि

'ललिता मेरी है, एकमात्र मेरी है।' और कभी उसके मन ने दुर्दम होकर इतने ज़ोर से यह बात कहने का साहस नहीं किया था, आज जब बाहर ही ऐसी ध्वनि इस प्रकार अचानक उठी तब विनय किसी तरह अपने मन को और 'चुप-चुप' कहकर दबाये न रख सका।

विनय जब इस प्रकार चंचल होकर अपने बरामदे में चक्कर काट रहा था तब उसने सहसा देखा, सड़क पर हारान बाबू चले आ रहे हैं। वह फ़ौरन समझ गया कि वह उसी के पास आ रहे हैं; यह भी उसने निश्चित जान लिया कि उस गुमनाम चिट्ठी के पीछे एक भारी षड्यन्त्र है। विनय ने रोज़ की तरह अपनी स्वभाव-सिद्ध प्रगल्भता नहीं दिखाई, हारान बाबू को कुर्सी पर बिठाकर चुपचाप उनकी बात की प्रतीक्षा करता रहा।

अन्त में हारान बाबू बोले, "विनय बाबू, आप तो हिन्दू हैं न ?"

विनय ने कहा, "हाँ, हिन्दू तो हूँ ही।"

हारान बाबू ने कहा, "मेरे इस सवाल का बुरा न मानें। कई बार हम लाग चारों तरफ़ की हालत सोचे-विचारे बिना अन्धे होकर चलने लगते हैं—इससे संसार में दुःख फैलता है। ऐसी हालत में अगर कोई ये सवाल उठाये कि हम क्या हैं, हमारी सीमा कहाँ है. हमारे आचरण का फल कहाँ-कहाँ तक पहुँचता है, तब ये सवाल बुरे लगने पर भी उस आदमी को दोस्त ही समझना चाहिए।"

विनय ने हँसने की कोशिश करते हुए कहा, "आप व्यर्थ इतनी भूमिका बाँध रहे हैं। कोई अप्रिय सवाल सामने आने पर मैं किसी तरह का अत्याचार कर बैठूं, ऐसा मेरा स्वभाव नही है। आप बेखटके होकर मुझसे चाहे जो सवाल पूछ सकते हैं।"

हारान बाबू ने कहा, "मैं आप पर जान-बूझकर कोई अपराध करने का दोष लगाना नहीं चाहता। लेकिन बिना सोचे-समझे ग़लती करने का परिणाम भी विषम हो सकता है, यह तो शायद आपको समझाने की ज़रूरत न होगी।"

विनय ने मन-ही-मन विरक्त होते हुए कहा, "ज़रूरत नही है तो छोड़िए—असल बात कहिए।"

हारान बाबू ने कहा, "आप जब हिन्दू-समाज में हैं और हिन्दू-समाज छोड़ना भी आपके लिए असम्भव है, तब परेश बाबू के परिवार में आपका इस ढंग से आना-जाना क्या उचित है जिससे समाज में उनकी लड़कियों के बारे में कोई चर्चा उठ सकती हो ?"

विनय ने गम्भीर होकर कुछ देर चुप रहकर कहा, "देखिए, पानू बाबू, समाज

के लोग किस बात से कौन-सी बात गढ़ लेते हैं, वह बहुत कुछ उनके अपने स्वभाव पर निर्भर करता है—उसकी सारी ज़िम्मेदारी मैं नहीं ले सकता। अगर परेश बाबू की लड़कियों के बारे में आप लोगों के समाज में किसी तरह की आलोचना उठ खड़ी हो सकती है, तो इसमें लज्जा की बात उनके लिए उतनी नहीं है जितनी आपके समाज के लिए।"

हारान बाबू ने कहा, "किसी कुमारी को अपनी माँ का साथ छोड़कर किसी ग़ैर आदमी के साथ अकेले, जहाज़ में सैर करने दिया जाये तो इसकी चर्चा करने का अधिकार कौन-से समाज को होगा, यही मैं पूछता हूँ।"

विनय ने कहा, "बाहर की घटना को भीतर के अपराध के साथ आप लोग भी अगर एक आसन पर बिठाने लगे, तब फिर हिन्दू-समाज छोड़कर आपको ब्राह्म-समाज में आने की क्या ज़रूरत थी? खैर, पानू बाबू, ये सब बातें लेकर बहस करने की कोई ज़रूरत मैं नहीं देखता। मेरा क्या कर्तव्य है यह मैं स्वयं सोच-विचार कर तय करूँगा, आप इस बारे में मेरी कोई मदद नहीं कर सकते।"

हारान बाबू ने कहा, "मैं आपको अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, मुझे अन्त में इतना ही कहना है कि आपको अब दूर ही रहना होगा नहीं, तो यह आपका बड़ा अन्याय होगा। आप लोगों ने परेश बाबू के परिवार में प्रवेश करके केवल एक अशान्ति की सृष्टि की है, उनका कितना अनिष्ट आप लोगों ने किया है आप नहीं जानते।"

हारान बाबू के चले जाने पर एक वेदना काँटे-सी विनय के मन में चुभने लगी। सरल-हृदय, उदार-चित्त परेश बाबू कितने समादर के साथ उन दोनों को अपने घर और परिवार के बीच बुला ले गये थे—विनय ने चाहे बिना जाने-बूझे ही इस ब्राह्म-परिवार में अपने अधिकार की मर्यादा का पद-पद पर उल्लंघन किया था फिर भी उनके स्नेह से वह कभी वंचित नहीं हुआ, इस परिवार के बीच विनय की प्रकृति ने एक ऐसा गहरा सहारा पाया था जैसा उसे और कहीं नहीं मिला, इन सबसे परिचय होने के बाद से विनय मानो अपनी एक अलग और विशेष सत्ता को पहचान सका है, जिस परिवार में उसे इतना आदर, इतना आनंद, ऐसा आश्रय मिला, उसी परिवार के लिए विनय की स्मृति ऐसी हो जायेगी कि हमेशा काँटे-सी चुभती रहे! परेश बाबू की लड़कियों पर उसने अपमान की कालिख पोत दी। ललिता के समूचे भविष्य-जीवन पर उसने कलंक का इतना बड़ा टीका आँक दिया! इसका क्या प्रतिकार हो सकता है? हाय रे हाय, समाज नाम की चीज़ ने सच्चाई के मार्ग में कितनी बड़ी बाधा खड़ी कर दी है! ललिता के साथ विनय के मिलन में सच्ची बाधा कोई नहीं है, जो वैषता दोनों के हृदय

में बसे हैं वही जानते हैं कि विनय ललिता के सुख और मंगल के लिए अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर देने को तैयार है—वही देवता तो प्रेम के आकर्षण में विनय को ललिता के इतना निकट ले आये हैं, उनकी शाश्वत धर्म-विधि में तो कहीं कोई बाधा नहीं है। तब ब्राह्म-समाज के जिस देवता की पूजा पानू बाबू जैसे लोग करते हैं, वह क्या कोई दूसरे हैं ? वह क्या मनुष्य के चित्त के अन्तरतम के विधाता नहीं हैं ? ललिता के साथ उसके मिलन की राह में कोई निषेध अपना कराल मुँह बाये खड़ा हो, और वह केवल समाज को ही मानकर मानव-मात्र को प्रभु का आदेश न माने, तो वही निषेध क्या पाप न होगा ? लेकिन क्या जाने, ललिता के लिए भी यह निषेध ही बलवान हो। फिर शायद ललिता विनय को—कितने संशय हैं, कहाँ इनका हल मिलेगा !

५०

जिस समय विनय के घर हारान बाबू प्रकट हुए थे उसी समय अविनाश आनन्दमयी को यह खबर दे रहा था कि विनय के साथ ललिता का विवाह तय हो गया है।

आनन्दमयी ने कहा, "यह कभी सच नहीं हो सकता।"

अविनाश बोला, "क्यों नहीं सच हो सकता ? विनय के लिए क्या यह असंभव है ?"

आनन्दमयी ने कहा, "वह मैं नहीं जानती। लेकिन इतनी बड़ी बात विनय कभी मुझसे छिपाकर न रखता।"

अविनाश ने बार-बार दुहराया कि उसने यह खबर ब्राह्म-समाज के लोगों से ही सुनी है, और इस पर पूरा विश्वास किया जा सकता था। विनय की अन्त में ऐसी ही शोचनीय गति होगी, यह अविनाश बहुत पहले ही जानता था, यहाँ तक कि उसने गोरा को भी इस बारे में सतर्क कर दिया था। आनन्दमयी को यह सब जताकर वह बड़े आनन्द से भर कर निचली मंजिल में महिम को भी यह संवाद सुना गया।

आज विनय के आने पर उसका चेहरा देखकर ही आनन्दमयी समझ गईं कि उसके हृदय में कोई भारी क्षोभ पैदा हुआ है। उसे भोजन कराकर उन्होंने अपने

कमरे में ले जाकर बैठाया और उससे पूछा, "विनय, तुझे क्या हुआ है बता तो ?"

विनय ने कहा, "माँ, यह मेरी चिट्ठी पढ़ के देखो।"

आनन्दमयी के चिट्ठी पढ़ चुकने पर विनय ने कहा, "आज सबेरे पानू बाबू मेरे यहाँ आये थे—मुझे बहुत डाँट-फटकार कर चले गये।"

आनन्दमयी ने पूछा, "क्यों ?"

विनय ने कहा, "उन्होंने कहा, मेरे आचरण के कारण उनके समाज में परेश बाबू की लड़कियों की निन्दा हो रही है।"

आनन्दमयी ने कहा, "लोग कहते हैं कि ललिता के साथ तेरा विवाह पक्का हो गया है—इसमें मैं तो निन्दा की कोई बात नहीं देखती।"

विनय ने कहा, "विवाह होने का कोई रास्ता होता तो निन्दा की कोई बात न होती। लेकिन जहाँ उसकी कोई संभावना नहीं है वहाँ ऐसी अफ़वाह फैलाना कितना बड़ा अन्याय है! खासकर ललिता के बारे में ऐसी बात उड़ा देना तो निरी कायरता है।"

आनन्दमयी ने कहा, "तुझ में ज़रा भी पौरुष हो, वीनू, तू तो इस कायरता के चंगुल से ललिता को अनायास ही बचा ले सकता है।"

विनय ने विस्मित होकर कहा, "कैसे, माँ ?"

आनन्दमयी ने कहा, "कैसे क्या! ललिता से विवाह करके, और कैसे ?"

विनय ने कहा, "तुम क्या चाहती हो, माँ! अपने विनय को तुम न जाने क्या समझती हो। तुम सोचती हो, विनय के एक बार 'मैं ब्याह करूँगा' कहने से ही दुनिया में और किसी को कुछ कहने को नहीं रहेगा, सब मेरे इशारे की प्रतीक्षा में मेरा मुँह ताकते बैठे हैं।"

आनन्दमयी ने कहा, "तेरे फ़ालतू बातें सोचने की कोई ज़रूरत मुझे नहीं दीखती। तू अपनी तरफ़ से जितना कर सकता है उतना कर दे, बस! तू इतना तो कह सकता है कि 'मैं विवाह करने को तैयार हूँ' ?"

विनय ने कहा, "मेरी ऐसी असंगत बात कहना क्या ललिता के लिए और भी अपमानजनक न होगा ?"

'तू इसे असंगत क्यों कहता है ? जब तुम दोनों के विवाह की चर्चा होने ही लगी है तो ज़रूर विवाह को संगत मानकर ही तो उठी है ? मैं कहती हूँ, तुझे कोई संकोच करने की ज़रूरत नहीं है।"

विनय ने कहा, "लेकिन माँ, गोरा की बात भी सोचनी होगी।"

आनन्दमयी ने दृढ़ स्वर से कहा, "न, बेटा, इसमें गोरा की बात सोचने की कोई बात नहीं है। मैं जानती हूँ वह नाराज़ होगा, मैं नहीं चाहती कि वह तुझ

पर नाराज़ हो, लेकिन तू करेगा क्या ? ललिता के प्रति अगर तुझ में श्रद्धा है, तो तू यह कैसे देख सकता है कि वह समाज में हमेशा के लिए अपमानित हो जाये ?"

लेकिन यह तो बड़ी कठिन बात थी। जेल की सज़ा पाये हुए जिस गोरा के प्रति विनय के स्नेह की धारा दुगने वेग से बहने लगी थी, उसके लिए वह इतना बड़ा आघात कैसे तैयार करके रख सकेगा ? फिर उसके संस्कार ! बुद्धि से समाज का लंघन कर जाना आसान है, लेकिन कर्म से उसका लंघन करने का मौका आने पर छोटी-बड़ी कितनी अड़चनें दीखती हैं ! एक तरफ़ अज्ञात का डर, दूसरी तरफ़ जो अभ्यस्त नहीं है उसका विरोध, दोनों कोई युक्ति दिए बिना पीछे की ओर ठेलने लगते हैं।

विनय ने कहा, "माँ, तुम्हें जितना ही देखता हूँ, अचरज बढ़ता जाता है। तुम्हारा मन इतना एकदम साफ़ हो गया ? तुम्हें क्या ज़मीन पर चलना नहीं पड़ता—भगवान् ने तुम्हें क्या पंख दिये हैं ? तुम्हें कहीं कोई अटक ही नहीं जान पड़ती।"

आनन्दमयी ने हँसकर कहा, "ईश्वर ने मुझे अटकाने लायक कुछ रखा ही नहीं। सब बिलकुल साफ़ कर दिया है !"

विनय ने कहा, "लेकिन माँ, मैं मुंह से चाहे जो कहूँ, मन तो अटकता है। इतना समझ-बूझ, पढ़-सुनकर, तर्क करके, सहसा दीखता है कि मन तो निरा मूर्ख ही रह गया है।"

इसी समय महिम ने कमरे में आकर एकाएक विनय से ऐसे भद्दे ढंग से ललिता के बारे में प्रश्न किया कि वह तिलमिला उठा। लेकिन किसी तरह अपने को दबाकर वह सिर झुकाये चुप बैठा रहा। इस पर महिम सभी पक्षों के बारे में तीखे व्यंग्य से भरी और अपमानजनक बातें कहकर चले गये। जाते-जाते बता गये, "विनय को इस तरह जाल में फँसाकर उसका सर्वनाश करने के लिए ही परेश बाबू के घर में बड़ी निर्लज्जता से आयोजन होता रहा था, विनय भोला था इसीलिए उनके फन्दे में फँस गया—गोरा को वे लोग फँसा सकते तब तो देखते। लेकिन वह तो टेढ़ी खीर है !"

विनय चारों ओर से ऐसे लांछित होकर स्तब्ध बैठा रह गया। आनन्दमयी ने कहा, "जानता है विनय, इस समय तेरा क्या कर्तव्य है ?"

विनय ने मुंह उठाकर उनकी ओर देखा। आनन्दमयी बोलीं, "तुझे चाहिए एक बार परेश बाबू के पास जाना। उनसे बात होते ही मामला साफ़ हो जाएगा।"

५१

आनन्दमयी को सहसा आये देखकर सुचरिता ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "मैं तो अभी आपकी तरफ़ जाने के लिए तैयार हो रही थी।"

आनन्दमयी ने हँसकर कहा, "तुम तैयार हो रही हो यह तो मैं नहीं जानती थी, लेकिन जिस लिए तैयार हो रही थीं वह खबर पाकर मुझसे रहा नहीं गया—चली आई।" आनन्दमयी को खबर मिल गई है, यह जानकर सुचरिता को और भी अचरज हुआ। आनन्दमयी बोलीं, "बेटी, विनय को मैं अपने बेटे-सा ही मानती हूँ। उसी विनय के नाते, जब तुम लोगों को नहीं भी जानती थी तब भी मन-ही-मन अनेक आशीर्वाद दिया करती थी। तुम लोगों के साथ कोई अन्याय हो रहा है, यह खबर सुनकर मैं कैसे रह सकती हूँ? मुझसे तुम लोगों का कोई उपकार हो सकेगा कि नहीं, यह तो नहीं जानती—लेकिन मन न जाने कैसा हो रहा था, इसीलिए तुम्हारे पास दौड़ी आई। बेटी, विनय की ओर से तो कोई अन्याय नहीं हुआ?"

सुचरिता ने कहा, "बिलकुल नहीं। जिस बात को लेकर सबसे ज्यादा आन्दोलन हो रहा है, उनके लिए ललिता ही उत्तरदायी है। ललिता अचानक किसी से कुछ कहे बिना स्टीमर पर सवार हो जायेगी, इसकी विनय बाबू ने कल्पना भी नहीं की थी। लोग इस ढंग से बातें बना रहे हैं मानो उन दोनों ने चोरी-चोरी सलाह कर रखी हो। उधर ललिता ऐसी तेजस्विनी लड़की है कि वह प्रतिवाद करने या असल में बात कैसे हुई थी, इसकी कोई सफ़ाई देने कभी नहीं जायेगी।"

आनन्दमयी ने कहा, "लेकिन इसका कुछ तो उपाय करना होगा। यह सब बातें जब से विनय ने सुनी हैं उसका मन बड़ा बेचैन हो गया है, वह तो अपने को ही अपराधी माने बैठा है।"

सुचरिता ने अपना लाल होता हुआ चेहरा कुछ झुकाकर कहा, "अच्छा, आप क्या सोचती हैं, विनय बाबू···"

सकुचाती हुई सुचरिता को उसकी बात पूरी न करते देखकर आनन्दमयी ने कहा, "देखो बेटी, यह मैं कह सकती हूँ कि ललिता के लिए विनय को जो भी करने को कहोगी वह वही करेगा। विनय को बचपन से ही देखती आ रही हूँ—उसने जब एक बार आत्मसमर्पण कर दिया तब कुछ बचाकर नहीं रख सकेगा। बल्कि इसीलिए मैं बार-बार डरती रही हूँ कि कहीं उसका मन उसे ऐसी जगह न ले जाये जहाँ से उसे कुछ मिलने की कोई आशा न हो।"

सुचरिता के मन से एक बोझ उतर गया। वह बोली, "ललिता की सम्मति के लिए आपको कोई चिन्ता न करनी होगी—उसका मन मैं जानती हूँ। लेकिन विनय बाबू क्या अपना समाज छोड़ देने को राज़ी होंगे ?"

आनन्दमयी ने कहा, "समाज हो सकता है कि उसे छोड़ दे, लेकिन वह क्यों खामहखाह आगे बढ़कर समाज को छोड़ने जायेगा ? उसकी क्या ज़रूरत है ?"

सुचरिता ने कहा, "यह आप क्या कह रही हैं, माँ ! विनय बाबू हिन्दू समाज में रहकर ब्राह्म घर की लड़की से ब्याह करेंगे ?"

आनन्दमी ने कहा, "वह अगर करने को राज़ी हो तो तुम लोगों को इसमें क्या आपत्ति है ?"

सुचरिता बड़ी उलझन में पड़ गई। बोली,"यह कैसे हो सकेगा, मेरी तो समझ में नहीं आ रहा।"

आनन्दमयी ने कहा,"मुझे तो यह बिलकुल सीधी बात जान पड़ती है, बेटी ! देखो, मेरे ही घर में जो नियम चलता है उस नियम से मैं नहीं चल सकती, इसीलिए मुझे बहुत से लोग ख़िस्तान कहते हैं। किसी काज-कर्म के समय मैं जानबूझकर अलग ही रहती हूँ। तुम सुनकर हँसोगी—गोरा मेरे कमरे में पानी नहीं पीता। लेकिन इसीलिए मैं क्यों यह कहने जाऊँगी कि 'यह घर मेरा घर नहीं है, यह समाज मेरा समाज नहीं है' ? मैं तो ऐसा कह ही नहीं सकती, गालियाँ और निन्दा सब सिर-माथे पर लेकर भी मैं इस घर, इस समाज को अपनाये हुए हूँ, इसमें मुझे तो ऐसी कोई कठिनाई नही दीखती। कभी ऐसी मुश्किल आ ही गई कि और ऐसे न चल सका, तब ईश्वर जो रास्ता दिखायेंगे उसी पर चल पड़ूँगी—लेकिन अन्त तक, जो मेरा है उसको अपना ही कहूँगी, वही यदि मुझे स्वीकार न करे तो वह जाने।"

सुचरिता के सामने बात अब भी साफ़ नहीं हुई। उसने कहा, "लेकिन देखिए, ब्राह्म-समाज की तो राय है अगर विनय बाबू की···"

आनन्दमयी ने कहा, "उसकी राय भी तो वैसी ही है। ब्राह्म-समाज की राय कोई दुनिया से निराली तो नहीं है ? तुम लोगों के पत्रों में जो सब उपदेश छपते हैं, वह तो अक्सर उन्हें पढ़कर मुझे सुनाता है, कहीं कोई अनोखी बात तो मुझे नहीं जान पड़ी।"

इसी समय 'सुचि दीदी !' पुकारती हुई ललिता कमरे में आकर आनन्दमयी को देखकर लज्जा से लाल हो गई। सुचरिता का चेहरा देखकर ही वह समझ गई कि अब तक उसी की बात हो रही थी, किसी तरह कमरे से भाग जाना सम्भव होता तो उसकी जान बचती, लेकिन अब भाग सकना सम्भव नहीं था।

आनन्दमयी कह उठीं, 'आओ, ललिता बेटी, आओ !" और ललिता का हाथ पकड़कर उन्होंने उसे अपने बहुत पास खींचकर बिठा लिया, मानो ललिता उनकी कुछ विशेष अपनी हो गई है।

आनन्दमयी ने अपनी पहली बात का सिलसिला बढ़ाते हुए सुचरिता से कहा, "देखो, बेटी, अच्छे के साथ बुरे का मेल बैठना ही सबसे कठिन काम है, लेकिन फिर भी दुनिया में वह भी हो जाता है, और उसमें भी सुख से, दुख से दिन कटते जाते हैं--सब समय उसमें बुरा ही होता हो ऐसा नहीं है, भला भी होता है। यह भी जब सम्भव हो सकता है तब मत में थोड़ा-सा फ़रक होने से ही क्यों दो जनों का मेल नहीं हो सकेगा, यह मेरी तो समझ में ही नहीं आता। मनुष्यों का असली मेल क्या मतवाद में है ?"

सुचरिता सिर झुकाये बैठी रही। आनन्दमयी ने कहा, "तुम्हारा ब्राह्म-समाज भी क्या मनुष्य से मनुष्य को नहीं मिलने देगा ? ईश्वर ने भीतर से जिनको एक बनाया है, तुम्हारा समाज बाहर से उन्हें अलग कर रखेगा ? जो समाज छोटे अनमेल नहीं मानता, वह बड़े मेल में सभी को मिला देता है, वह समाज क्या दुनिया में कहीं नहीं है ? ईश्वर के साथ मनुष्य क्या ऐसे झगड़ा ही करता रहेगा ? समाज नाम की चीज़ क्या केवल इसीलिए बनी है ?"

आनन्दमयी जो इस विषय को लेकर इतने आन्तरिक उत्साह से उसकी विवेचना करने लगी, वह क्या केवल ललिता के साथ विनय के विवाह की कठिनाई दूर करने के लिए ही ? सुचरिता के मन में इस सम्बन्ध में एक द्विविधा को पहचानकर उनका समूचा मन जो उस द्विविधा को दूर कर देने के लिए उद्यत हो उठा, उसमें क्या और भी एक उद्देश्य न था ? सुचरिता अगर इस तरह संस्कार से बँधी रहेगी तो कैसे चलेगा ! विनय के ब्राह्म हुए बिना विवाह नहीं हो सकेगा, अगर यही सिद्धान्त ठहरेगा, तब तो आनन्दमयी ने पिछले दिनों में अत्यन्त दुःख के समय भी जो आशा की प्रतिमा गढ़कर खड़ी की है वह धूल में मिल जायेगी। आज ही विनय ने उससे यह प्रश्न पूछा था, कहा था, "माँ, क्या ब्राह्म-समाज में नाम लिखाना होगा ? वह भी क्या स्वीकार कर लूँगा ?"

आनन्दमयी ने कहा था, "नहीं-नहीं, उसकी तो कोई ज़रूरत नहीं दीखती।"

विनय ने पूछा था, "वे लोग अगर ज़ोर डालें तो ?"

आनन्दमयी ने बहुत देर तक चुप रहकर कहा था, "नहीं, इस जगह ज़ोर नहीं चलेगा।"

आनन्दमयी की बातों में सुचरिता ने कोई हिस्सा नहीं लिया, वह चुप ही

रही। आनन्दमयी समझ गई कि सुचरिता का मन अभी गवाही नहीं दे रहा है। वह मन-ही-मन सोचने लगीं, 'मेरा मन जो समाज के सारे संस्कार काट सका वह तो केवल उसी गोरा के स्नेह के कारण। तब क्या सुचरिता का मन गोरा की ओर आकृष्ट नहीं है ? लेकिन अगर होता तब तो इतनी छोटी-सी बात इतनी बड़ी न हो उठती।'

आनन्दमयी का मन कुछ उदास हो गया। गोरा के जेल से छूटने में और दो-एक दिन ही बाकी थे। वह मन-ही-मन सोच रही थीं कि उसके लिए एक सुख का क्षेत्र प्रस्तुत हो रहा है। इस बार जैसे भी हो गोरा को बाँध ही देना होगा, नहीं तो वह कहाँ किस मुश्किल में पड़ेगा इसका कोई ठिकाना नहीं है। लेकिन गोरा को बाँध लेना तो चाहे जिस लड़की के बस का नहीं है। इधर हिन्दू समाज की किसी लड़की से गोरा का विवाह करना भी अन्याय होगा—इसीलिए अब तक कितनी ही लड़कियों के अभिभावकों की दरखास्त वह नामंजूर कर चुकी है। गोरा कहता रहा है, 'मैं विवाह नहीं करूंगा'—माँ होकर भी उन्होंने कभी इसका प्रतिवाद नहीं किया। इस पर लोग अचरज करते रहे हैं। इस बार गोरा के दो-एक लक्षण देखकर वह मन-ही-मन प्रसन्न हुई थीं। इसीलिए सुचरिता के नीरव विरोध से उन्हें चोट पहुँची। लेकिन वह सहज ही पतवार छोड़ देने वाली नहीं हैं, उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'अच्छा देखा जायगा।'

५२.

परेश बाबू ने कहा, "विनय, ललिता को एक संकट से उबारने के लिए तुम कोई दुस्साहस का काम कर बैठो, ऐसा मैं नहीं चाहता। समाज की आलोचना का अधिक मूल्य नहीं है, आज जिसे लेकर इतनी हलचल है, दो दिन बाद वह किसी को याद भी न रहेगा।"

ललिता के प्रति कर्तव्य निबाहने के लिए ही विनय कमर कसकर आया था, इस विषय में स्वयं उसे ज़रा भी सन्देह नहीं था। वह जानता था कि ऐसे विवाह से समाज में कठिनाई होगी, और इससे भी अधिक गोरा बहुत ही नाराज़ होगा, लेकिन केवल कर्त्तव्य-बुद्धि के सहारे उसने इन सब अप्रिय कल्पनाओं को मन से खदेड़ दिया था। ऐसे मौके पर परेश बाबू ने जब सहसा उस कर्त्तव्य-बुद्धि को एक-बारगी बरखास्त कर देना चाहा तब विनय एकाएक उसे छोड़ न सका।

वह बोला, "आप लोगों का स्नेह-ऋण मैं कभी नहीं चुका सकूँगा। मेरी वजह से आपके परिवार में दो-एक दिन भी जरा-सी भी अशान्ति हो, यह भी मेरे लिए असह्य है।"

परेश बाबू ने कहा, "विनय, तुम मेरी बात ठीक नहीं समझ पा रहे हो। हम लोगों के प्रति तुम्हारी जो श्रद्धा है वह मेरे लिए बड़ी खुशी की बात है। लेकिन उस श्रद्धा का कर्त्तव्य पूरा करने के लिए ही तुम मेरी कन्या से विवाह करने को प्रस्तुत हुए हो, यह मेरी कन्या के लिए श्रद्धा की बात नहीं है। इसीलिए मैंने तुमसे कहा कि यह संकट ऐसा बड़ा नहीं है कि इसके लिए तुम्हारा त्याग स्वीकार करने की जरूरत हो।"

चलो, कर्त्तव्य के बोझ से तो विनय को छुट्टी मिल गई। लेकिन पिंजरे का द्वार खुला पाकर पंछी जैसे फड़फड़ाकर उड़ जाता है, विनय का मन तो छुटकारे के पथ पर वैसे नहीं दौड़ा। बल्कि वह तो हिलना ही नहीं चाहता। कर्त्तव्य-बुद्धि का आसरा लेकर उसने बहुत दिनों के संयम के बाँध को अनावश्यक कहकर तोड़ दिया था। जहाँ पहले मन डर-डरकर पैर रखता था, और अपराधी-सा सकुचाकर लौट आता था, वहाँ अब वह घर ही जमाकर बैठ गया है और अब उसे लौटा लाना कठिन हो गया है। जो कर्त्तव्य-बुद्धि उसे हाथ पकड़कर यहाँ तक लाई थी, वह अब कहती है, 'अब और आगे जाने की जरूरत नहीं है, भई, चलो लौट चलें,' पर मन कहता है, 'तुम्हें जरूरत न हो तो तुम लौट जाओ, मैं तो यहीं बस जाऊँगा।"

परेश ने जब कहीं कोई ओट नहीं छोड़ी, तब विनय ने कहा, "आप ऐसा कभी न सोचें कि मैं कर्त्तव्य की पुकार पर एक कष्ट स्वीकार करने जा रहा हूँ। आप लोगों की सम्मति मिल जाये इससे बड़ा सौभाग्य मेरे लिए कुछ नहीं हो सकता, मुझे इतना ही डर है कि कहीं···"

सत्य-प्रेमी परेश बाबू ने बिना संकोच के कह दिया, "तुम्हें जो डर है, उसका कोई कारण नहीं है। मैंने सुचरिता से सुना है, ललिता का मन तुम्हारे प्रति विमुख नहीं है।"

विनय के मन में आनन्द की बिजली-सी दौड़ गई। ललिता के मन का रहस्य सुचरिता जान गई है! उसने कब जाना, कैसे जाना? दो सखियों में इशारे और अनुमान से जो बातचीत हुई होगी, उसके तीव्र रहस्यमय सुख से विनय कंटकित हो उठा।

विनय ने कहा,"आप लोग मुझे इस योग्य समझें तो इससे बड़े आनन्द की बात मेरे लिए कुछ नहीं हो सकती।"

परेश बाबू ने कहा, "तुम जरा रुको—मैं एक बार ऊपर हो आऊँ।"

वह बरदासुन्दरी की राय लेने गये तो वरदासुन्दरी ने कहा, "विनय को तो दीक्षा लेनी होगी।"

परेश बाबू ने कहा, "वह तो लेनी ही होगी।"

वरदासुन्दरी ने कहा,"यह पहले तय हो जाये। विनय को यहीं बुलवा लो न!"

विनय के ऊपर आने पर वरदासुन्दरी ने कहा, "तब दीक्षा का दिन तो ठीक करना होगा।"

विनय ने कहा, "दीक्षा की क्या ज़रूरत है?"

वरदासुन्दरी ने कहा,"ज़रूरत नहीं है? क्या कह रहे हो तुम? नहीं तो ब्राह्म-समाज में तुम्हारा विवाह होगा कैसे?"

विनय चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा। वह उनके घर में विवाह करने को राज़ी हुआ है, यह सुनकर परेश बाबू ने मान लिया था कि वह दीक्षा लेकर ब्राह्म-समाज में प्रवेश करेगा।

विनय ने कहा, "ब्राह्म-समाज के धर्म-मत में तो मुझे श्रद्धा है और अब तक मेरा व्यवहार भी उनके विरुद्ध नहीं रहा है। तब भी क्या खास तौर से दीक्षा लेने की ज़रूरत है?"

वरदासुन्दरी ने कहा, "जब मत मिलता ही है तब दीक्षा लेने में ही क्या हर्ज है?"

विनय ने कहा, "मैं हिन्दू-समाज का कोई नहीं हूँ, यह बात तो मैं कभी नहीं कह सकता।"

वरदासुन्दरी बोलीं, "तब इस बारे में बात करना ही आपकी ज़्यादती है। आप क्या हम लोगों का उपकार करने के लिए दया करके मेरी लड़की से ब्याह करने को राजी हुए है?"

विनय को गहरी चोट पहुँची, उसे दीख गया कि उसका प्रस्ताव सचमुच इन लोगों के लिए अपमानजनक हो गया है।

कुछ ही समय पहले सिविल विवाह का कानून पास हुआ था। उस समय गोरा और विनय ने अखबारों में इस कानून के विरुद्ध बड़ी कड़ी आलोचना की थी। आज उसी सिविल विवाह को स्वीकार करके विनय घोषित करेगा कि 'मैं हिन्दू नहीं हूँ' यह तो उसके लिए बड़ा कठिन होगा।

विनय हिन्दू समाज में रहकर ललिता से विवाह करेगा, इस प्रस्ताव को परेश बाबू नहीं स्वीकार कर सके। विनय एक लम्बी साँस लेकर उठ खड़ा हुआ और दोनों को नमस्कार करके बोला, "मुझे क्षमा कर दीजिए, मैं अपना अपराध और

नहीं बढ़ाऊँगा।"

इतना कहकर विनय बाहर चला आया। सीढ़ी के पास आकर उसने देखा, सामने के बरामदे के एक कोने में एक छोटा डेस्क लिये ललिता अकेली बैठकर चिट्ठी लिख रही है। पैरों की आहट पाकर ललिता ने नज़र उठाकर विनय के चेहरे की ओर देखा। उसकी वह क्षण-भर की चितवन विनय के चित्त को व्यथित कर गई। विनय के साथ ललिता का परिचय नया नहीं था, कितनी ही बार वह उसके चेहरे की ओर आँखें उठाकर देख चुकी थी, लेकिन आज की इस चितवन में न जाने क्या रहस्य था! सुचरिता ने ललिता के मन का जो रहस्य जान लिया है वही रहस्य आज ललिता की काली आँखों की पलकों की छाया में करुणा से भर-कर एक सजल स्निग्ध मेघ-सा विनय को दिखाई दिया। विनय की भी पल-भर की दृष्टि में उसके हृदय की सारी वेदना बिजली-सी कौंध गई। ललिता को नमस्कार करके वह बिना बातचीत किये सीढ़ियाँ उतरकर चला गया।

५३

गोरा ने जेल से बाहर आते ही देखा, परेश बाबू और विनय फाटक के बाहर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

एक मास कोई लम्बा समय नहीं है। एक मास से भी अधिक गोरा बन्धु-बान्धवों से अलग होकर भ्रमण करता रहा है। लेकिन जेल के एक मास के विच्छेद के बाद बाहर आकर परेश और विनय को देखकर उसे ऐसा लगा मानो पुराने बान्धवों के परिचित संसार में उसने फिर से जन्म लिया हो। उसी राजपथ पर खुले आकाश के नीचे प्रभात के आलोक में परेश के शान्त, सौम्य, स्नेहपूर्ण चेहरे को देखकर उसने जिस भक्ति और आनन्द से उनकी चरण-धूलि ली वैसे पहले कभी नहीं ली थी। परेश ने उसे गले से लगा लिया।

विनय का हाथ पकड़कर गोरा ने हँसकर कहा, "विनय, स्कूल से लेकर बरा-बर तुम्हारे साथ ही शिक्षा पाता आया हूँ, लेकिन इस विद्यालय में तो चकमा देकर तुमसे आगे निकल गया।"

विनय हँस नहीं सका, कुछ कह भी न सका। जेल के अपरिचित दुःखों के भीतर से होकर उसका बन्धु उसके लिए बन्धु से मानो कुछ बड़ा होकर बाहर

आया है। एक गम्भीर सम्भ्रम में वह चुप ही रह गया। गोरा ने पूछा, "माँ कैसी है?"

विनय ने कहा, "अच्छी तरह है।"

परेश बाबू ने कहा, "चलो भई, तुम्हारे लिए गाड़ी इन्तज़ार कर रही है।" तीनों गाड़ी पर सवार हो रहे थे कि हाँफता हुआ अविनाश आ पहुँचा। उसके पीछे-पीछे लड़कों की टोली भी थी।

अविनाश को देखते ही गोरा जल्दी से गाड़ी पर सवार होने लगा था, लेकिन उससे पहले ही पहुँचकर अविनाश ने रास्ता रोकते हुए कहा, "गौरमोहन बाबू, ज़रा रुकिये।" उसके यह कहते न कहते लड़कों ने चिल्ला-चिल्लाकर गाना शुरू कर दिया :

'दुःख निशीथिनी हल आजि भोर
काटिल काटिल अधीनता-डोर!'

गोरा का चेहरा लाल हो उठा। उसने अपने वज्र-स्वर से गरजकर कहा, "चुप करो!"

लड़के अचकचाकर चुप हो गये। गोरा ने पूछा, "अविनाश, यह सब क्या मामला है?"

अविनाश ने अपनी शाल के भीतर से केले के पत्ते में लिपटा हुआ कुन्द क फूलों का मोटा हार निकाला और उसके अनुवर्ती एक किशोर लड़के ने सुनहली छपाई के एक कागज़ से चाभी से चलने वाले आर्गन बाजे की तरह बारीक आवाज़ में तेज़ी से कारामुक्ति का अभिनन्दन पढ़ना शुरू कर दिया।

अविनाश की माला को ज़ोर से एक ओर हटाते हुए गोरा ने दबे हुए गुस्से से कहा, "अब जान पड़ता है तुम्हारा नाटक शुरू हुआ। आज सड़क पर अपनी पार्टी के साथ मेरा स्वाँग सजाने के लिए ही तुम एक महीने से राह देख रहे थे?"

अविनाश ने कई दिन पहले से यह प्लान बना रखा था; उसने सोचा था कि सबको अचम्भे में डाल देगा। हम जिस समय की बात कह रहे हैं उस समय ऐसे उपद्रवों का चलन नहीं था। अविनाश ने अपनी मन्त्रणा मे विनय को भी शामिल नहीं किया था, इस अपूर्व काम की सारी वाह-वाही वही लेगा यही उसका विचार था। यहाँ तक कि अख़बारों के लिए इसका विवरण भी उसने स्वयं लिखकर तैयार रखा था, लौटते ही उसकी बाकी खानापूरी करके छपने भेज देगा।

गोरा के तिरस्कार से क्षुब्ध होकर अविनाश बोला, "आप ग़लत कह रहे हैं, आपने कारावास में जो दुःख भोगा है, हम लोगों ने उससे कुछ भी कम नहीं सहा। इस एक महीने बराबर हम लोगों का हृदय भी तुषाग्नि में जलता रहा है।"

गोरा ने कहा, "यह तुम्हारी ग़लती है, अविनाश ! ज़रा झाँककर देखने से पता चल जायेगा कि तुष ज्यों-का-त्यों पड़ा है और हृदय का भी कोई खास नुकसान नहीं हुआ है।"

अविनाश झेंपा नहीं, बोला, "राजपुरुष ने आपका अपमान किया है, लेकिन आज सारी भारत-भूमि के मुखपात्र होकर हम यह सम्मान का हार···"

गोरा ने कहा, "बस, और नहीं सहा जाता !" और अविनाश को तथा उसके दल को एक तरफ़ हटाता हुआ बोला, "परेश बाबू, गाड़ी पर सवार होइये।"

गाड़ी पर सवार होकर परेश बाबू की जान में जान आई। गोरा और विनय भी पीछे-पीछे सवार हो गये।

स्टीमर पर सवार होकर अगले दिन सवेरे गोरा घर पहुँच गया। बाहर ही उसने देखा, उसके दल के लोगों ने भीड़ कर रखी थी। किसी तरह उनसे छुटकारा पाकर गोरा भीतर आनन्दमयी के पास पहुँचा। वह आज सवेरे से ही नहा-धोकर तैयार बैठी थीं। गोरा के जाकर उनके चरण छूकर प्रणाम करते ही उनकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। इतने दिनों से जो आँसू उन्होंने रोक रखे थे आज किसी तरह नहीं रुके।

कृष्णदयाल के गंगा-स्नान करके लौटने पर गोरा उनसे मिलने गया। उसने दूर से ही उन्हें प्रणाम किया, उनके चरण नहीं छुए। कृष्णदयाल सकुचाकर दूर आसन पर बैठे। गोरा ने कहा, "बाबा, मैं एक प्रायश्चित करना चाहता हूँ।"

कृष्णदयाल ने कहा, "उसकी तो कोई ज़रूरत नहीं दीखती।"

गोरा ने कहा, "जेल में मुझे और तो कोई तकलीफ़ नहीं थी, पर यही लगता रहता था कि मैं अपवित्र हो गया हूँ। वह ग्लानि अब भी है, इसलिए प्रायश्चित करना ही होगा।"

कृष्णदयाल ने चिन्तित होकर कहा, "नहीं-नहीं, तुम्हारे इतना बढ़ने की ज़रूरत नहीं है। मैं तो इसकी सम्मति नहीं दे सकता।"

गोरा ने कहा, "अच्छा, तो मैं इस बारे में पंडितों की राय ले लूँ।"

कृष्णदयाल बोले, "किसी पंडित का मत नहीं लेना होगा। मैं ही तुम्हें विधान देता हूँ, तुम्हें प्रायश्चित की ज़रूरत नही है।"

कृष्णदयाल जैसे आचार-विचार और छूआछूत मानने वाले व्यक्ति भी गोरा के लिए किसी तरह का नियम-संयम स्वीकार करना नहीं चाहते—न केवल स्वीकार नहीं करते बल्कि एकबारगी उसके विरुद्ध अड़कर बैठ जाते हैं, इसका कारण गोरा आज तक नहीं समझ सका।

आनन्दमयी ने भोजन के लिए आज गोरा के साथ ही विनय का आसन

बिछाया था। गोरा ने कहा, "माँ, विनय के आसन को थोड़ा दूर कर दो।

आनन्दमयी ने अचकचाकर कहा, "क्यों, विनय ने क्या अपराध किया है?"

गोरा ने कहा, "विनय ने कुछ नहीं किया, मैंने ही किया है। मैं भ्रष्ट हूँ।"

आनन्दमयी ने कहा, "वह हुआ करे। विनय इतना शुद्ध-अशुद्ध नहीं मानता।"

गोरा ने कहा, "विनय नहीं मानता, मैं तो मानता हूँ।"

खाने के बाद दोनों बन्धु जब ऊपर के सूने कमरे में जाकर बैठ गये तब उन्हें एक-दूसरे को कहने को कोई बात ही नहीं मिली। इस एक महीने में जो एक बात विनय के लिए सबसे अधिक महत्त्व की हो उठी थी उसे वह कैसे गोरा के सामने छेड़े, यह वह सोच ही नहीं पा रहा था। परेश बाबू के घर के लोगों के बारे में गोरा के मन में भी एक जिज्ञासा थी, पर उसने भी कुछ न कहा, विनय ही बात छेड़ेगा, यह सोचकर प्रतीक्षा करता रहा। अवश्य ही उसने परेश बाबू से यह बात पूछी थी कि घर के सब लोग कैसे हैं, लेकिन वह तो केवल शिष्टाचार का सवाल था। वे सब अच्छी तरह हैं इतनी खबर से अधिक विस्तृत विवरण जानने के लिए उसका मन उत्सुक था।

इसी समय महिम कमरे में आये। बैठकर सीढ़ी चढ़ने के परिश्रम से कुछ देर हाँफते रहकर फिर बोले, "विनय, इतने दिन तो गोरा का इन्तज़ार रहा। अब तो और कोई बात नहीं है, अब दिन और मुहूर्त्त तय कर लिया जाये। क्या राय है, गोरा—क्या बात हो रही है, यह तो समझ रहे हो न?"

गोरा कुछ कहे बिना तनिक-सा हँस दिया।

महिम बोले, "हँसते हो? तुम सोच रहे होगे, दादा अभी तक वह बात नहीं भूले। लेकिन कन्या तो स्वप्न नहीं है—मैं स्पष्ट देख सकता हूँ, वह एक ठोस पदार्थ है—भूलने की गुंजाइश नहीं है, हँसने की बात नहीं है। गोरा, अब जैसा भी हो तय कर देना चाहिए।"

गोरा ने कहा, "तय करना जिनका काम है वह तो स्वयं मौजूद है।"

महिम ने कहा, "सत्यानाश! उनका अपना ही कुछ ठीक नहीं है—वह क्या ठीक करेंगे! तुम आ गये हो, अब सारा भार तुम्हारे ऊपर ही है।"

विनय आज गम्भीर होकर चुप हो रहा, अपने स्वभाव-सिद्ध विनोद से बात टालने की भी कोई कोई कोशिश उसने नहीं की।

गोरा समझ गया कि कहीं कोई अड़चन है। बोला, "मैं निमन्त्रण पहुँचाने के काम का भार ले सकता हूँ, मिठाई की फ़रमाइश करने का भार भी लिया जा सकता है, परोसने को भी राज़ी हूँ, लेकिन यह भार मैं नहीं ले सकता कि विनय

तुम्हारी कन्या से विवाह करेंगे ही। जिनके निर्देशन से ये सब काम दुनिया में होते हैं उनसे मेरी कोई खास जान-पहचान नहीं है, उन्हें मैं दूर से ही नमस्कार करता रहा हूँ।"

महिम बोले, "तुम्हारे दूर रहने से ही वह भी दूर ही रह जायेंगे यह मत सोचो। हठात् कब आकर चौंका देंगे, कुछ नहीं कहा जा सकता। तुम्हारे बारे में उनका क्या इरादा है यह तो ठीक नहीं कह सकता, लेकिन इनको लेकर तो एक विकट समस्या उठ खड़ी हुई है। सारी ज़िम्मेदारी अकेले प्रजापति ठाकुर पर न छोड़कर तुम खुद भी कुछ उद्योग न करोगे तो पछताना भी पड़ सकता है, यह मैं कहे देता हूँ।"

गोरा ने कहा, "जो भार मेरा नहीं है उसे न लेकर पछताने को मैं तैयार हूँ, लेकिन उसे लेकर पछताना तो और भी मुश्किल होगा, उसी से बचना चाहता हूँ।"

महिम ने कहा, "ब्राह्मण का लड़का जात, कुल, मान सब गँवा देगा और तुम बैठे देखते रहोगे? देश-भर के लोगों के हिन्दुत्व की रक्षा के लिए तुम्हें नींद नहीं आती। और इधर तुम्हारा अपना परम-बन्धु जात को नदी में बहाकर ब्राह्म-घर में विवाह कर बैठे तो लोगों को क्या मुँह दिखाओगे? विनय, तुम शायद नाराज़ हो रहे होगे, लेकिन बहुत-से लोग तुम्हारी पीठ पीछे ये सब बातें गोरा से कहते—बल्कि कहने को छटपटा रहे हैं—मैं सामने ही कह रहा हूँ—यह सभी के लिए अच्छा ही होगा। अफ़वाह अगर झूठी ही हो तो कह देने से ही खतम हो जायेगी, और अगर सच हो तो सोच-समझ लेना होगा।"

महिम चले गये, फिर भी विनय कुछ नहीं बोला। गोरा ने पूछा, "क्यों विनय, क्या मामला है?"

विनय ने कहा, "केवल थोड़ी-सी खबरें बता देने से सारी बात समझा सकना बहुत कठिन है, इसीलिए सोचा था कि धीरे-धीरे तुम्हें सारा मामला समझाकर कहूँगा, लेकिन दुनिया में कुछ भी हमारी सुविधा के अनुसार आराम से नहीं होना चाहता। घटनाएँ भी पहले शिकारी बाघ की तरह दबे पाँव बढ़ती रहती हैं और फिर हठात् एक ही छलाँग में गला धर दबाती हैं। फिर उनकी खबर भी आग की तरह पहले दबी ही दबी सुलगती है और फिर सहसा धधक कर जल उठती है तब उसे संभालना मुश्किल हो जाता है। इसीलिए कभी-कभी सोचता हूँ, कर्म-मात्र का त्याग करके बिलकुल जड़ होकर बैठने में ही इनसान की मुक्ति है।"

गोरा ने हँसकर कहा, "तुम्हारे अकेले जड़ होकर बैठने से भी कहाँ मुक्ति मिलेगी? जब तक सारी दुनिया ही साथ-साथ जड़ न हो जाये तब तक वह तुम्हें

स्थित क्यों रहने देगी ? इससे तो उलटे और मुश्किल हो जायेगी। दुनिया जब काम कर रही है तब तुम भी अगर काम न करोगे तो ठगे ही जाओगे। इसीलिए यही देखना होगा कि घटना तुम्हारी असावधानी में ही न हो जाय—ऐसा न हो जाय कि और सब आगे बढ़ जायँ और तुम तैयार भी न रहो।"

विनय ने कहा, "यही बात ठीक है। मैं ही तैयार नहीं रहता। इस बार भी मैं तैयार नहीं था। किस तरफ़ क्या हो रहा है, मैं समझ ही नहीं सका। लेकिन जब हो ही गया तो उसका दायित्व तो मानना ही होगा। जिसका शुरू में न होना ही अच्छा था, उसे आज अप्रिय होने पर भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"

गोरा ने कहा, "हुआ क्या है, यह जाने बिना उसके बारे में कोई सही राय दे सकना तो मेरे लिए कठिन है।"

विनय ने खड़े होकर कह ही डाला—"अनिवार्य घटनाओं के कारण ललिता के साथ मेरा सम्बन्ध ऐसे मौके पर आ पहुँचा है कि मैं उससे विवाह न करूँ तो समाज में उसे हमेशा के लिए अकारण अपमान और अन्याय सहते रहना पड़ेगा।"

गोरा ने कहा, "कैसा मौक़ा है, मैं भी तो समझूँ।"

विनय ने कहा, "वह लम्बी बात है। धीरे-धीरे सब बताऊँगा, लेकिन इतना तो तुम मान ही लो !"

गोरा ने कहा, "अच्छा मान ही लेता हूँ। इस बारे में मुझे इतना ही कहना है कि घटना अगर अनिवार्य हो तो उसका दुःख भी अनिवार्य ही है। समाज में अगर ललिता को अपमान भोगना ही हो तो उसका उपाय नहीं है।"

विनय ने कहा, "लेकिन उसका निवारण करना तो मेरे बस की बात है।"

गोरा ने कहा, "है, तब तो अच्छा ही है। लेकिन ज़बरदस्ती ऐसी बात कहने से तो नहीं चलेगा। ज़रूरत होने पर चोरी करना या खून करना भी इनसान के बस की बात होती है, लेकिन क्या सचमुच उसके बस की होती है ? ललिता से विवाह करके तुम ललिता के प्रति कर्तव्य करना चाहते हो, लेकिन वही क्या तुम्हारा सबसे बड़ा कर्तव्य है ? समाज के प्रति क्या कोई कर्तव्य नहीं है ?"

समाज के प्रति कर्तव्य स्मरण करके ही विनय ब्राह्म विवाह के लिए राज़ी नहीं हुआ, यह बात उसने नहीं कही। वह बहस पर तुल गया। बोला, "इस मामले में शायद तुमसे मेरी राय कभी नहीं मिलेगी। मैं तो व्यक्ति की ओर खिंचकर समाज के विरुद्ध कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं तो यह कह रहा हूँ कि व्यक्ति और समाज दोनों के ऊपर धर्म है—उसी पर नज़र रखकर चलना होगा। जैसे व्यक्ति को बचाना मेरा चरम कर्तव्य नहीं, वैसे ही समाज को बचाना भी मेरा चरम कर्तव्य नहीं है, एकमात्र धर्म को बचाना ही मेरा चरम श्रेय है।"

गोरा ने कहा, "व्यक्ति भी नहीं है और समाज भी नहीं है, और फिर भी धर्म है, ऐसे धर्म को मैं नहीं मानता।"

विनय को गुस्सा आ गया। बोला, "मैं मानता हूँ। व्यक्ति और समाज की भीति पर धर्म नहीं खड़ा है, धर्म की भीति पर ही व्यक्ति और समाज है। जिसे समाज चाहता है उसी को धर्म कहकर मानना पड़े तो समाज की ही मुसीबत हो जाय। समाज अगर मेरी किसी न्याय-संगत स्वाधीनता में बाधा दे तो उस अनुचित बाधा को काटकर ही समाज के प्रति कर्तव्य पूरा होता है। ललिता से विवाह करना अगर मेरा अन्याय न हो, बल्कि उचित हो, तब समाज के विरोध के कारण ही उससे हट जाना मेरे लिए अधर्म होगा।"

गोरा ने कहा, "न्याय और अन्याय क्या अकेले तुम्हीं में बँधे हैं? इस विवाह से तुम अपनी भावी सन्तान को किस स्थिति में डाल दोगे, यह नहीं सोचते?"

विनय ने कहा, "इस तरह सोचने जाकर ही तो मनुष्य सामाजिक अन्याय को चिरस्थायी बना देता है। तब फिर साहबों, अफ़सरों की लातें खाता हुआ जो किरानी बाबू हमेशा अपमान सहता चला जाता है, उसी को फिर क्यों दोष देते हो? वह भी तो सन्तान की ही बात सोचता है।"

गोरा से बहस में विनय जहाँ आ पहुँचा था इससे पहले उसकी वह स्थिति नहीं थी। कुछ पहले ही समाज से विच्छेद की सम्भावना से ही उसका चित्त व्याकुल हो उठा था। इस बारे में उसने अपने साथ किसी तरह की बहस नहीं की थी, और गोरा के साथ बहस न उठ खड़ी हुई होती तो विनय का मन अपने पुराने संस्कार के अनुसार उसकी वर्तमान प्रवृत्ति से उल्टी दिशा में ही चलता रहता। लेकिन बहस करते-करते उसको प्रवृत्ति कर्तव्य-बुद्धि का सहारा लेकर धीरे-धीरे ज़ोर पकड़ने लगी।

गोरा से ज़ोर की बहस छिड़ गई। ऐसी बहस में गोरा युक्तियाँ देने की ओर न जाकर बहुत ज़ोर-शोर से अपनी ही बात कहता था। इतने ज़ोर से कम ही लोग अपनी बात कहते होंगे। आज भी उसने इसी ज़ोर से ही विनय की सारी बातें ठेलकर गिरा देनी चाहीं, लेकिन आज उसे बाधा का सामना करना पड़ा। जब तक एक ओर गोरा और दूसरी ओर विनय का केवल मत था, तब तक विनय हार मानता आया, लेकिन आज दोनों तरफ़ दो वास्तविक मनुष्य थे; आज गोरा किसी वायव्य अस्त्र से किसी दूसरे वायव्य अस्त्र को नहीं काट रहा था, आज बाण जहाँ आकर गिरते थे, वहाँ वेदन-भरा मनुष्य का हृदय था।

अन्त में गोरा ने कहा, "मैं तुम से दलीलबाज़ी नहीं करना चाहता।

इसमें तर्क करने की खास कोई बात भी नहीं है, यह तो हृदय से समझने की बात है। ब्राह्म लड़की से विवाह करके तुम देश के साधारण लोगों से अपने को अलग कर लेना चाहते हो, यही मेरे लिए बड़े दुःख की बात है। ऐसा काम तुम कर सकते हो, मैं किसी तरह नहीं कर सकता—यहीं तुम में और मुझ में फरक है, ज्ञान में या बुद्धि में नहीं। मेरा प्रेम जहाँ है तुम्हारा प्रेम वहाँ नहीं है। तुम जहाँ छुरी मारकर अपने को मुक्त कर लेना चाहते हो वहाँ तुम्हें कोई दर्द नहीं होता, लेकिन मेरी ठीक वहीं पर धमनी है। मैं अपने भारतवर्ष को चाहता हूँ—उसे तुम चाहे जितना दोष दो, जितनी गालियाँ दो, मैं उसी को चाहता हूँ, उससे अधिक मैं अपने को या किसी भी मनुष्य को नहीं चाहता। मैं ऐसा ज़रा-सा भी कोई काम नहीं करना चाहता जिससे भारतवर्ष से मुझे एक बाल-भर भी दूर हटना पड़े।"

विनय कुछ जवाब देने की तैयारी कर ही रहा था कि गोरा ने कहा, "नहीं, विनय, तुम फ़िज़ूल मुझ से तर्क करते हो। सारी दुनिया ने जिस भारतवर्ष को त्याग दिया है, उसका अपमान किया है, मैं उसी के साथ उसी अपमान के आसन पर ही बैठना चाहता हूँ—मेरा यही जाति-भेद का भारतवर्ष, कु-संस्कारों का भारत, मूर्ति-पूजक भारतवर्ष ! तुम अगर इससे अलग होना चाहते हो तो तुम्हें मुझ से भी अलग होना होगा।

इतना कहकर गोरा उठकर कमरे से बाहर आकर छत पर टहलने लगा। विनय चुपचाप बैठा रहा। बैरा ने आकर गोरा को खबर दी कि बहुत से बाबू उससे मिलने के लिए नीचे प्रतीक्षा कर रहे हैं। भागने का एक रास्ता पाकर गोरा को तसल्ली हुई; वह नीचे चला गया।"

बाहर आकर उसने देखा, और बहुत-से लोगों के साथ अविनाश भी आया है। गोरा ने समझ लिया था कि अविनाश नाराज़ हो गया है लेकिन नाराज़ी के कोई लक्षण नहीं दीखे। वह और भी उच्छ्वसित प्रशंसा के साथ कल अपने हटा दिये जाने की बात सबको सुना रहा था। वह कह रहा था, "गौर-मोहन बाबू के प्रति मेरी श्रद्धा और भी बहुत बढ़ गई है। अब तक मैं मानता था कि वह असाधारण आदमी हैं, लेकिन कल मैं जान गया कि वह महापुरुष हैं। कल हम उन्हें सम्मान देने गये थे, उन्होंने जैसे खुले तौर पर उस सम्मान की उपेक्षा की वैसा आजकल कितने लोग कर सकते हैं ? यह क्या कोई मामूली बात है ?'

एक तो यों ही गोरा का मन बेकल था, उस पर अविनाश की इस भावुकता पर वह तिलमिला उठा। बिगड़कर बोला, "देखो अविनाश, तुम लोग अपनी

भक्ति के द्वारा ही आदमी का अपमान करते हो—खुलेआम तुम मेरा स्वाँग बनाकर मुझे नाच नचाना चाहते हो, उससे इनकार कर सकूँ इतनी हया-शर्म की भी आशा तुम लोग मुझ से नहीं करते ! और इसको तुम लोग कहते हो, महापुरुष के लक्षण ! हमारे इस देश को तुम लोगों ने क्या एक भाँड़ों का दल समझ रखा है ? सभी वाहवाही पाने के लिए नाचते फिर रहे हो —सच्च काम क्या कोई नहीं कर रहा है ? मेरे साथ चलना चाहते हो तो ठीक है, झगड़ा करना चाहते हो तो वह भी ठीक है, लेकिन ऐसी वाहवाही मुझे मत देना, यही मेरी विनती है।"

अविनाश की श्रद्धा और भी बढ़ चली। उसने खिले हुए चेहरे से उपस्थित व्यक्तियों की ओर देखते हुए गोरा की बात की चमत्कारिता की ओर सबका ध्यान आकर्षित करना चाहा। बोला, "आशीर्वाद दीजिए, आपकी तरह इसी निष्काम भाव से भारतवर्ष के सनातन गौरव की रक्षा करते हुए हम लोग भी अपना जीवन समर्पित कर सकें।"

अविनाश के यह कहकर गोरा के पैरों की धूल लेने के लिए हाथ बढ़ाने पर गोरा जल्दी से परे हट गया।

अविनाश बोला "गौरमोहन बाबू ! आप तो हम लोगों से किसी तरह का सम्मान ग्रहण नहीं करेंगे। लेकिन हम लोगों को आनन्द देने से तो विमुख न हों। हम लोगों ने यह सलाह की है कि आपके साथ हम सब एक दिन भोज करेंगे--इसके लिए तो आपको सम्मति देनी ही होगी।"

गोरा ने कहा, "मैं प्रायश्चित्त किये बिना तुम सबके साथ खाने नहीं बैठ सकूँगा।"

प्रायश्चित्त ! अविनाश की आँखें चमक उठीं। वह बोला, "यह बात हममें से किसी को नहीं सूझी थी, लेकिन हिन्दू-धर्म के किसी भी विधान की उपेक्षा गौरमोहन बाबू कभी नहीं कर सकते।"

सभी ने कहा, "यह तो बड़ी अच्छी बात है। प्रायश्चित्त के समय ही सब लोग एकत्र होंगे और तभी भोज होगा। उस दिन देश के बड़े-बड़े अध्यापक पंडितों को निमन्त्रित किया जायेगा, हिन्दू-धर्म आज भी कैसा जीवित है यह गौर बाबू के इस प्रायश्चित्त के निमन्त्रण से सबको विदित हो जायेगा।"

प्रायश्चित्त-सभा कब-कहाँ बुलाई जावे, यह सवाल भी उठा। गोरा ने कहा, "इस घर में उसकी सुविधा नहीं होगी।" इस पर एक भक्त ने गंगा के किनारे के अपने बाग में इसकी व्यवस्था करने का प्रस्ताव किया। यह भी तय हो गया कि इसका खर्चा भी दल के लोग सब मिलकर उठायेंगे।

विदा लेते समय अविनाश ने खड़े होकर व्याख्यान के ढंग से हाथ हिला-हिलाकर सबको सम्बोधन करते हुए कहा, "गौरमोहन बाबू नाराज़ हो सकते हैं, लेकिन आज, जब मेरा हृदय भर उठा है, तब मैं यह बात कहे बिना भी नहीं रह सकता —वेद का उद्धार करने के लिए हमारी इसी पुण्य-भूमि पर अवतार ने जन्म लिया था—वैसे ही आज हिन्दू-धर्म का उद्धार करने के लिए हमने फिर इस अवतार को पाया है। पृथ्वी पर केवल हमारे ही देश में छः ऋतुएँ होती हैं। हमारे ही इस देश में समय-समय पर अवतार हुए हैं और आगे भी होंगे। हम लोग धन्य हैं कि यह सत्य हमारे सामने प्रमाणित हो गया। सब भाई बोलो, गौरमोहन की जय !"

अविनाश की वाग्मिता से प्रभावित होकर सभी मिलकर गौरमोहन का जय-कार करने लगे। गोरा मर्माहत होकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

जेल से मुक्ति पाने के इस अवसर पर एक अवसाद गोरा के मन पर छा गया। जेल में रहता हुआ वह अनेक बार कल्पना करता रहा था कि देश के लिए नये उत्साह से काम करेगा। लेकिन आज वह बार-बार अपने आप से यही पूछने लगा कि, 'हाय, मेरा देश कहाँ है ? देश क्या केवल मुझ अकेले के पास है ? जीवन के सभी संकल्पों की जिस बचपन के बन्धु के साथ चर्चा करता रहा, वह आज इतने दिनों बाद केवल एक स्त्री से विवाह करने के लिए अपने देश के सारे अतीत और भविष्य से क्षण-भर में इस निर्मम भाव से अलग हो जाने को तैयार हो गया है। और जिनको सब मेरे दल के लोग कहते हैं, इतने दिन उन्हें इतना समझाने-बुझाने के बाद भी उन्होंने आज यही समझा है कि मैंने केवल हिन्दुत्व का उद्धार करने के लिए अवतार ग्रहण किया है, कि मैं केवल मूर्तिमान शास्त्र-वचन हूं ! और भारत-वर्ष को कहीं जगह नहीं मिली ! छः ऋतुएँ ! भारतवर्ष में छः ऋतुएं हैं ! षड्-ऋतुओं के षड्यन्त्र से अगर अविनाश जैसा ही फल फलने को था तो दो-चार ऋतुएँ कम होने से भी कोई हर्ज न होता।'

बेरा ने आकर खबर दी, माँ गोरा को बुला रही हैं। गोरा सहसा चौंक-सा उठा, वह मन-ही-मन कह उठा, 'माँ बुला रही हैं।' इस बात को उसने मानो एक नया अर्थ देकर सुना। उसने कहा, और जो हो, मेरी तो माँ हैं और उन्होंने ही मुझे बुलाया है। वही मुझे सबसे मिला देंगी, वह किसी से कोई भेद न रखेंगी, मैं देखूंगा कि जो भी मेरे अपने हैं वे उनके पास बैठे हैं। जेल में भी माँ ने मुझे बुलाया था, वहाँ भी उन्हें देख सकता था, जेल के बाहर भी माँ मुझे बुला रही हैं, वहाँ भी मैं उन्हें देखने निकल पड़ा हूँ।" कहते-कहते गोरा ने जाड़ों की इस दोपहर के आकाश की ओर आँखें उठाकर देखा। एक ओर विनय की और दूसरी ओर

अविनाश की तरफ से विरोध का जो स्वर उठा था वह कुछ मन्द पड़ गया। दोपहर की धूप में मानो भारतवर्ष ने अपनी बाहें उसकी ओर बढ़ा दीं। आसमुद्र फैली हुई उसकी नदियाँ, पहाड़ और जनता गोरा की आँखों के सामने झलक गईं, भीतर से उठकर एक मुक्त निर्मल आलोक इस भारतवर्ष को मानो ज्योतिर्मय करता हुआ दिखा गया। गोरा का हृदय भर उठा, उसकी आँखें चमकने लगीं, उसके मन में कहीं कोई नैराश्य न रहा। भारतवर्ष के उस अन्तहीन कार्य के लिए, जिसका फल कहीं दूर भविष्य में ही मिलेगा, वह आनन्दपूर्वक प्रस्तुत होने लगा। भारतवर्ष की जो महिमा उसने ध्यान में देखी है उसे वह प्रत्यक्ष नहीं देख सकेगा इसका कोई क्षोभ उसे न रहा। वह मन-ही-मन बार-बार दुहराने लगा, 'माँ मुझे बुला रही हैं—मैं वहीं जा रहा हूँ जहाँ अन्नपूर्णा हैं, जहाँ जगद्धात्री बैठी हैं, उसी सुदूर काल में लेकिन फिर भी इस निमिष में, वहीं मृत्यु के पास लेकिन फिर भी जीवन के बीच—जिस महिमा-मण्डित भविष्य ने मेरे आज के दीन-हीन वर्तमान को सार्थक करके उज्ज्वल कर दिया है, मैं उसी की ओर जा रहा हूँ—उसी अतिदूर की, अति निकट की ओर माँ मुझे बुला रही हैं।' इस आनन्द में गोरा ने मानो विनय और अविनाश को भी अपने साथ पा लिया—वे भी मानो उसके पराये न रहे—दूसरों के सभी छोटे-छोटे विरोध मानो एक विराट् चरितार्थता में विलीन हो गये।

गोरा ने जब आनन्दमयी के कमरे में प्रवेश किया तब उसका चेहरा आनन्द की आभा से दीप्त था, उसकी आँखें मानो सामने की सभी चीज़ों से परे एक दूसरी ही भव्य-मूर्ति को देख रही थीं। कमरे में आकर एकाएक वह थोड़ी देर तक यह पहचान ही नहीं सका कि कमरे में माँ के पास वह कौन बैठा है।

सुचरिता ने खड़े होकर गोरा को नमस्कार किया। गोरा ने कहा, "अरे, आप आई हैं, बैठिये।"

गोरा ने 'आप आई हैं, बैठिये' ऐसे ढंग से कहा मानो सुचरिता का आना कोई साधारण घटना नहीं है बल्कि एक विशेष आविर्भाव है।

एक दिन सुचरिता के सम्पर्क से गोरा पलायन कर गया था, जितने दिन वह तरह-तरह के कष्ट और काम में पड़ता हुआ भटकता रहा था, उतने दिन सुचरिता की बात को वह बहुत-कुछ अपने से दूर रख सका था। लेकिन जेल में बन्द हो जाने पर सुचरिता की स्मृति को वह किसी तरह हटा न सका था। एक समय ऐसा रहा, जब गोरा के मन में इस बात का उदय भी नहीं हुआ था कि भारतवर्ष में स्त्रियाँ भी हैं; इस सत्य को उसने इतने दिनों बाद सुचरिता में ही पहचाना। सहसा एक मुहूर्त्त में इतनी बड़ी और इतनी प्राचीन सच्चाई को सामने पाकर उसके आघात से मानो उसकी बलिष्ठ प्रकृति काँप उठी। बाहर की धूप और खुली

हवा की दुनिया की याद जब जेल में उसे सताने आयी, तब वह दुनिया केवल उसके कर्मक्षेत्र के रूप में नहीं दीखी, न वह निरा पुरुष-समाज ही नजर आई। वह चाहे जैसे ध्यान करने का यत्न करे, उसके सम्मुख बाहर के इस सुन्दर संसार की दो अधिष्ठात्री देवियों की ही मूर्ति आती; चाँद-सितारों का आलोक विशेष रूप से उन्हीं के चेहरे पर पड़ता, स्निग्ध नीलिमामय आकाश उन्हीं के चेहरे को घेरे रहता—एक चेहरा उसकी जन्म से परिचित माता का था, और दूसरे नम्र सुन्दर चेहरे से उसका परिचय नया ही था।

जेल की नीरस घुटन में गोरा उस चेहरे की स्मृति से विरोध का भाव न रख सका। इस ध्यान का पुलक जेल में भी एक गहरी मुक्ति उसके निकट ले आता, जेल के कठिन बन्धन उसके लिए मानो छायामय, झूठे सपने से हो जाते। स्पन्दित हृदय की सूक्ष्म तरंगें जेल की दीवारों को भेदकर आकाश में मिलकर वहाँ के फूल पत्तों में लहराती रहतीं और कर्मक्षेत्र में लीलायित होती रहतीं।

गोरा ने सोचा था, कल्पना-मूर्ति से डरने का कोई कारण नहीं है, इसलिए इस एक महीने तक उसने उसे खुली छूट दे रखी थी। वह समझता था कि केवल वास्तविक चीज़ों से ही डरने का कारण हो सकता है।

जेल से बाहर आते ही गोरा ने जब परेश बाबू को देखा तब उसका मन आनन्द से उच्छ्वसित हो उठा था। वह आनन्द केवल परेश बाबू के देखने का नहीं था। उसके साथ गोरा की पिछले दिनों की संगिनी कल्पना ने भी कहाँ तक अपनी माया मिला दी है, यह गोरा पहले नहीं समझ पाया। किन्तु धीरे-धीरे वह यह समझ गया। स्टीमर तक पहुँचते-पहुँचते उसने स्पष्ट अनुभव किया कि परेश बाबू उसे जो इतना आकृष्ट कर रहे हैं वह केवल अपने ही गुण से नहीं।

इतने दिन बाद गोरा ने फिर कमर कसी और बोला, "हार नहीं मानूँगा।" स्टीमर में बैठे-बैठे ही उसने फिर निश्चय कर लिया कि वह फिर कहीं दूर चला जाएगा, किसी तरह के सूक्ष्म बन्धन में भी अपने मन को नहीं बँधने देगा।

इसी बीच विनय से उसकी बहस छिड़ गई थी। विच्छेद के बाद बन्धु से पहली भेंट के समय ही बहस इतनी गरम न हो जाती यदि उसके भीतर ही भीतर गोरा अपने से भी बहस न कर रहा होता। इस बहस के सहारे गोरा अपने सामने अपनी प्रतिष्ठा-भूमि को भी स्पष्ट कर लेना चाहता था। इसीलिए वह इतना जोर देकर बात कह रहा था। उस ज़ोर की उसे अपने ही लिए विशेष आवश्यकता थी। जब उसके उस ज़ोर ने विनय के मन को उसी तरह जवाब देने के लिए उत्तेजित किया, और विनय मन-ही-मन गोरा की बातों का केवल खण्डन करने लगा और उन्हें निरा कठमुल्लापन मानकर उनके प्रति विद्रोही हो उठा, तब उसे ज़रा भी

यह ध्यान नहीं हुआ कि गोरा अगर स्वयं अपने पर वार न कर रहा होता तो विनय पर इतने प्रबल वार कभी न करता।

विनय के साथ बहस होने के बाद गोरा ने तय किया, 'युद्ध-क्षेत्र छोड़ देने से नहीं चलेगा। मैं अपने प्राणों के डर से विनय को छोड़ जाऊँ तो विनय कभी नहीं बचेगा।'

५४

गोरा का मन उस समय भावाविष्ट था। सुचरिता को वह उस समय एक व्यक्ति विशेष के रूप में नहीं देख रहा था, बल्कि एक भाव ही समझ रहा था। सुचरिता के रूप में भारत की नारी-प्रकृति ही उसके सामने प्रकट हो रही थी। भारतीय ग्रह को अपने पुण्य, सौन्दर्य और प्रेम से मधुर और पवित्र करने के लिए ही इसका आविर्भाव हुआ है। जो लक्ष्मी भारत के शिशु को पाल-पोसकर बड़ा करती है, रोगी की सेवा करती है, दुखी को सान्त्वना देती है, तुच्छ क. भी प्रेम का गौरव और प्रतिष्ठा देती है—जिसने दुःख और दुर्गति में भी हम में से दीनतम का भी त्याग नहीं किया, अवज्ञा नहीं की—जिसने हमारी पूजा की पात्र होकर भी हम में से अयोग्यतम को भी अपनी एकान्त पूजा दी, जिसके निपुण सुन्दर हाथ हमारे काम के लिए समर्पित हैं और जिसका चिर-सहिष्णु, क्षमा भरा प्रेम हमें ईश्वर से एक अक्षय दान के रूप में मिला है—उसी लक्ष्मी की एक प्रतिच्छवि को गोरा अपनी माता के पास प्रत्यक्ष बैठी देखकर आनन्द-विभोर हो उठा। उसे जान पड़ने लगा, इस लक्ष्मी की ओर हम लोगों ने ताका ही नहीं, इसे हमने सबसे पीछे ठेल रखा था, इससे बड़ी हमारी दुर्गति और क्या हो सकती है! उसे जान पड़ा, देश का मतलब यही है, सारे भारत के मर्मस्थान पर, प्राणों के निकेतन शतदल पद्म पर यही मूर्ति बैठी है, हम ही इसके सेवक हैं। देश की दुर्गति में इसी का अपमान है—इस अपमान के प्रति हम लोग उदासीन रहे हैं, इसीलिए हमारा पौरुष आज लज्जित है।

अपने ही विचारों पर गोरा स्वयं चकित हो गया। जब तक भारतवर्ष की नारी उसकी अनुभव गोचर नहीं हुई थी, तब तक उसकी भारतवर्ष की उपलब्धि कितनी अधूरी थी, यह वह इससे पहले नहीं जानता था। गोरा के लिए

नारी जब तक अत्यन्त छायामय थी, तब तक देश के सम्बन्ध में उसका कर्तव्य-बोध कितना अधूरा था ! मानो शक्ति थी किंतु उसमें प्राण नहीं थे, मानो पेशियां थीं किंतु स्नायु-तंतु नहीं थे। गोरा क्षण-भर में ही समझ गया कि नारी को हम जितना ही दूर करके, जितना ही क्षुद्र बनाकर रखते हैं उतना ही हमारा पौरुष भी जर्जर होता जाता है।

इसलिए गोरा ने जब सुचरिता से कहा, 'आप आई हैं' तब वह केवल एक चलती हुई शिष्टता की बात नहीं थी—इस अभिवादन में उसके जीवन का एक नया पाया हुआ आनन्द और विस्मय ही प्रकट हुआ था।

कारावास के कुछ चिह्न गोरा के शरीर पर अभी थे। वह पहले से कहीं दुबला हो गया था। जेल के भोजन से उसे अरुचि होने के कारण इस एक महीने-भर वह लगभग उपवास ही करता रहा था। उसका उज्ज्वल गोरा रंग भी पहले से कुछ मैला हो गया था। बाल बहुत छोटे कटवा देने से उसके चेहरे की कृषता और भी अधिक दीखने लगी थी।

गोरा के शरीर की इस क्षीणता से ही सुचरिता के मन में एक विशेष वेदना-मिश्रित चिंता जाग उठी। प्रणाम करके गोरा के पैरों की धूल लेने को उसका मन छटपटा उठा। गोरा उसे ऐसी उद्दीप्त आग की शुद्ध अग्नि-शिखा-सा प्रकाशमान दीखा जिसमें धुआं या लकड़ी कुछ भी न दीख रही हो। एक करुणा-मिश्रित भक्ति के आवेश से सुचरिता का हृदय कांपने लगा, उसके मुंह से कोई बात न निकल सकी।

आनन्दमयी ने कहा, "मेरी लड़की होती तो मुझे कितना सुख होता, यह मैं अब समझ सकती हूं, गोरा ! तू जितने दिन नहीं था, सुचरिता मुझे कितनी सांत्वना देती रही है मैं कह नहीं सकती। मेरे साथ पहले तो इनका परिचय नहीं था—लेकिन दुःख के समय दुनिया की बहुत-सी बड़ी और अच्छी चीज़ों से परिचय हो जाता है, दुःख का यह गौरव अब समझ सकी हूं। दुःख में ईश्वर कहां-कहां से सांत्वना पहुंचा सकते हैं, यह हम हमेशा जान नहीं पाते, इसीलिए कष्ट पाते हैं। बेटी, तुम शरमा रही हो, लेकिन मेरे दुःख के समय में तुमने मुझे कितना सुख दिया है, यह बात तुम्हारे सामने भी कहे बिना मैं कैसे रह सकती हूं ?"

सुचरिता के लजाते हुए चेहरे की ओर एक बार कृतज्ञता-भरी दृष्टि से देखकर गोरा आनन्दमयी से बोला, "मां, तुम्हारे दुःख के दिन वह तुम्हारे दुःख का भार लेने आई थीं और आज तुम्हारे सुख के दिन में भी तुम्हारे सुख को बढ़ाने आई हैं—जिनका दिल बड़ा होता है उन्हीं में ऐसी अकारण उदारता होती है।"

सुचरिता का संकोच देखकर विनय ने कहा, "दीदी, चोर पकड़ा जाने पर उसे

चारों ओर से मार पड़ती है। आज तुम इन सबके हाथों पड़ गई हो, उसी का फल भोग रही हो। अब भागकर कहाँ जाओगी ? मैं तो तुम्हें बहुत दिन से पहचानता हूँ। लेकिन मैंने कभी किसी के सामने भंडाफोड़ नहीं किया, चुप ही बैठा रहा हूँ। पर मन-ही-मन जानता रहा हूँ कि कोई भी बात बहुत दिन तक छिपी नहीं रह सकती।"

आनन्दमयी हँसकर बोलीं, "तुम तो जरूर ही चुप बैठे रहे हो ! बड़ा आया चुप बैठा रहनेवाला ! जिस दिन से इसने तुम लोगों को जाना है उसी दिन से तुम लोगों का गुणगान करते-करते वह मानो अघाता ही नहीं।"

विनय ने कहा, "यह सुन रक्खो, दीदी ! मैं गुणग्राही हूं, और अकृतज्ञ नहीं हूँ, इसका गवाह और सबूत सब हाज़िर है।"

सुचरिता ने कहा, "इससे तो आपके ही गुणों का परिचय मिलता है।"

विनय ने कहा, "मेरे गुणों का परिचय आपको मुझ से कभी नहीं मिलेगा। वह पाना चाहें तो माँ के पास आइयेगा, सुनकर अचम्भे में आ जायेंगी। उनके मुँह से सुनकर तो मैं ही चकित हो जाता हूँ। मेरा जीवन-चरित्र अगर माँ लिखें तो मैं जल्दी ही मर जाने को तैयार हूँ।"

आनन्दमयी ने कहा, "ज़रा सुनो इस इस लड़के की बात !"

गोरा बोला, "विनय, तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हारा नाम सार्थक ही रखा था।"

विनय ने कहा, "जान पड़ता है मुझ से उन्होंने और किसी गुण की कोई आशा ही नहीं की, इसलिए विनय के गुण की दुहाई दी, नहीं तो दुनिया में बड़ी हँसाई होती।"

इस प्रकार पहली भेंट का संकोच दूर हो गया।

विदा लेते समय सुचरिता ने विनय से कहा, "आप एक बार हमारी तरफ़ नहीं आयेंगे ?"

सुचरिता ने विनय को तो आने के लिए कहा, गोरा से नहीं कह सकी। गोरा ने इसका ठीक अर्थ नहीं समझा और उसके मन को कुछ चोट पहुँची। विनय सहज ही सबके बीच अपना स्थान बना लेता है और गोरा वैसा नहीं कर सकता, इसके लिए गोरा को इससे पहले कभी कोई खेद नहीं हुआ था, लेकिन आज अपनी प्रकृति की इस कमी को उसने कमी के रूप में पहचाना।

५५

विनय समझ गया था कि ललिता के साथ उसके विवाह की बातचीत करने के लिए ही सुचरिता ने विनय को बुलाया है। यह प्रस्ताव उसने अपनी तरफ से समाप्त कर दिया है, इतने ही से तो मामला समाप्त नहीं हो जायेगा। जब तक वह जीता रहेगा तब तक किसी पक्ष को छुटकारा नहीं मिलेगा। अब तक विनय की सबसे बड़ी चिन्ता यही थी कि 'गोरा को कैसे चोट पहुँचाऊँ ?' गोरा का मतलब केवल गोरा नाम का व्यक्ति ही नहीं था, जिस भाव, जिस विश्वास, जिस जीवन का सहारा गोरा ने लिया है वह सब भी था। बराबर इनके साथ मिलकर निबाहते चलना ही विनय का अभ्यास था और इसी में उसका आनन्द भी था, गोरा से किसी तरह का विरोध मानो अपने ही से विरोध था।

लेकिन उस आघात का पहला संकोच तो दूर हो गया था। ललिता के मामले को लेकर गोरा से एक बार साफ-साफ बात हो जाने से विनय को बल मिला था। फोड़ा काटने से पहले रोगी के डर और घबराहट की कोई सीमा नहीं होती, लेकिन नश्तर लगने पर रोगी देखता है कि दर्द तो है पर आराम भी है और मामला कल्पना में जितना सांघातिक जान पड़ता था वास्तव में उतना नहीं है।

अब तक विनय अपने मन के साथ भी तर्क नहीं कर पा रहा था, लेकिन अब उसके तर्क का द्वार भी खुल गया। अब मन-ही-मन गोरा के साथ उसका उत्तर-प्रत्युत्तर चलने लगा। गोरा की ओर से जो-जो युक्तियाँ दी जा सकती थीं उन्हें वह मन-ही-मन उठाकर कई ओर से उनका खण्डन करने लगा। गोरा के साथ अगर सामने-सामने ही बहस हो सकती तो जहाँ उत्तेजना होती वहाँ साथ-ही-साथ निवृत्ति भी हो जाती, लेकिन विनय ने देखा कि इस मामले में गोरा अन्त तक तर्क नहीं करेगा। इससे भी विनय के मन में एक खीझ उत्पन्न हुई, वह सोचने लगा, 'गोरा न समझेगा, न समझायेगा, केवल ज़बरदस्ती करेगा, ज़बरदस्ती ! ज़बरदस्ती के आगे कैसे सिर झुका सकता हूँ ?' उसने कहा, 'जो भी हो, मेरा पक्ष सत्य का है।' यह कहता हुआ वह सत्य नाम के एक शब्द को मानो हृदय से जकड़ लेना चाहने लगा। गोरा के विरुद्ध एक बहुत प्रबल पक्ष को खड़ा करने की ज़रूरत होगी, इसलिए विनय बार-बार अपने मन को समझाने लगा कि सत्य ही उसका सबसे बड़ा सहारा है। यहाँ तक कि उसके मन में इस बात से अपने ही प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई कि उसने सत्य को ही अपना आश्रय मान लिया है। इसीलिए

तीसरे पहर जब सुचरिता के घर की ओर चला तब उसका सिर काफी ऊँचा उठ रहा था। इस आत्मविश्वास का कारण उसका सत्य की ओर झुकाव है या और किसी चीज की ओर, वह सोचने-समझने की अवस्था उस समय विनय की नहीं थी।

हरिमोहिनी उस समय रसोई में लगी थीं। विनय रसोई के द्वार पर खड़े होकर एक ब्राह्मण-कुमार के मध्याह्न-भोजन का दावा मंजूर कराकर ऊपर चला गया।

सुचरिता ने कुछ सिलाई लिये बैठे-बैठे उसी की ओर आँखें झुकाये सुई चलाते चलाते बात शुरू की; बोली, "देखिये विनय बाबू, जहाँ भीतर की कोई बाधा नहीं है वहाँ बाहर के विरोध को क्या मानकर चलना होगा?"

जब गोरा से बहस हुई थी तब विनय ने उसके विरुद्ध युक्तियाँ दी थीं, अब जब सुचरिता से बहस होने लगी तब उसने उलटे पक्ष की युक्तियाँ देना शुरू किया। उस समय यह कोई नहीं सोच सकता था कि गोरा से उसका कोई मत-भेद है।

विनय ने कहा, "दीदी, बाहर की बाधा को तुम लोग भी तो कुछ छोड़ करके नहीं देखते।"

सुचरिता ने कहा, "उसका कारण है, विनय बाबू। हम लोगों की बाधा निरी बाहरी बाधा नहीं है। हमारा समाज हमारे धर्म-विश्वास पर ही प्रतिष्ठित है। लेकिन आप जिस समाज में हैं वहाँ आपका बन्धन केवल सामाजिक बन्धन है। इसलिए अगर ललिता को ब्राह्म-समाज छोड़कर जाना पड़े तो उसमें उसकी बहुत बड़ी क्षति होगी, आपके समाज छोड़ने से आपका उतना नुकसान नहीं होगा।"

विनय इस बात को लेकर बहस करने लगा कि धर्म मनुष्य की व्यक्तिगत साधना की चीज़ है, उसे किसी समाज के साथ बाँधना उचित नहीं है।

ठीक इसी समय सतीश एक चिट्ठी और एक अंग्रेज़ी अख़बार लेकर कमरे में आया। विनय को देखकर वह अत्यन्त उत्तेजित हो उठा, शुक्रवार को ही किसी तरह रविवार बना देने के लिए उसका मन अधीर हो गया। देखते ही देखते विनय और सतीश की सभा जुट गई और उधर सुचरिता ललिता की चिट्ठी और उसके साथ भेजा गया अखबार पढ़ने लग गयी।

इस ब्राह्म अखबार में एक खबर थी कि किसी प्रसिद्ध ब्राह्म परिवार और हिन्दू समाज के बीच विवाह-सम्बन्ध होने की जो आशंका हो रही थी, हिन्दू युवक की असम्मति के कारण वह टल गई है। इस बात को लेकर उस हिन्दू युवक की निष्ठा की तुलना में उस ब्राह्म परिवार की शोचनीय दुर्बलता पर टीका-टिप्पणी की गई थी।

सुचरिता ने मन-ही-मन कहा, 'जैसे भी हो ललिता के साथ विनय का विवाह होना ही होगा।' लेकिन वह इस युवक से तर्क करके तो होगा नहीं। सुचरिता ने ललिता को वहाँ आने के लिए पत्र लिख दिया, उसमें यह नहीं लिखा कि विनय भी वहीं है।

किसी भी पत्रे में किसी भी ग्रह-नक्षत्र के समावेश से शुक्रवार को रविवार पड़ने की व्यवस्था न होने के कारण सतीश को स्कूल की तैयारी के लिए उठना ही पड़ा। सुचरिता भी स्नान के लिए थोड़ी देर का अवकाश चाहकर चली गई।

तर्क की उत्तेजना चुक जाने पर अकेले सुचरिता के कमरे में बैठे-बैठे विनय के भीतर का युवा पुरुष जाग उठा। तब नौ-साढ़े नौ का समय था। गली में लोगों का कोलाहल नहीं था। सुचरिता की लिखने की मेज़ पर छोटी घड़ी टिक-टिक करती चल रही थी। कमरे का एक प्रभाव धीरे-धीरे विनय को आविष्ट करने लगा। चारों ओर का कमरे का छोटा-मोटा साज-सामान मानो विनय के साथ बातचीत करने लगा। मेज़ पर सजी हुई चीज़ें, कढ़े हुए कुर्सीपोश, कुर्सियों के नीचे पैरों की जगह बिछी हुई मृगछाला, दीवार से झूलते हुए दो-चार चित्र, पीछे लाल कपड़े वाले बेठन से मढ़ी हुई किताबों से सजी हुई छोटी शैल्फ़—सभी विनय के चित्त के भीतर मानो एक गम्भीर स्वर-लहरी उठाने लगीं। कमरे में मानो एक सुन्दर रहस्य संचित था, इसी कमरे में निर्जन दोपहरी में सखी-सखी के बीच की जिन बातों की चर्चा होती रही होगी उनकी सलज्ज सुन्दर सत्ता मानो अब भी जहाँ-तहाँ छिपी हुई है। बातचीत के समय कौन कहाँ बैठा होगा, कैसे बैठा होगा, यह विनय कल्पना के सहारे देखने लगा। उसने उस दिन परेश बाबू से जो सुना था, 'मैंने सुचरिता से सुना है कि ललिता का मन तुम्हारी ओर से विमुख नहीं है', वही बात अनेक रूपों में अनेक प्रकार की छवि-सी उसके सामने घूम गई। एक अनिर्वचनीय आवेग विनय के मन में एक अत्यन्त करुण उदास रागिनी-सा बजने लगा। जो सब चीज़ें ऐसे निविड़ गम्भीर रूप से एक भाषाहीन आभास-सी मन की गहराई में झलक जाती हैं, उन्हें प्रत्यक्ष कर देने की क्षमता न होने से, अर्थात् कवि या चित्रकार न होने के कारण, विनय का अन्तःकरण चंचल हो उठा। उसे ऐसा लगने लगा कि उसे कुछ न कुछ करना चाहिए, पर कुछ करने का कोई उपाय भी नहीं है। यह जो एक परदा उसके सामने झूल रहा है, जो उसके बिलकुल पास की चीज़ को इतनी दूर किये हुए है, उसे इसी क्षण उठ खड़े होकर फाड़ फेंकने की शक्ति काश उसमें होती!

हरिमोहिनी ने कमरे में आकर विनय से पूछा कि वह कुछ जलपान तो नहीं करना चाहता। विनय ने कहा, "नहीं।"

तब हरिमोहिनी वहीं बैठ गईं।

हरिमोहिनी जब तक परेश बाबू के घर में थीं तब तक विनय के प्रति उनका बहुत बड़ा आकर्षण था। किन्तु जब से सुचरिता को लेकर उन्होंने अलग गृहस्थी जमाई थी तब से इन लोगों का आना-जाना उसके लिए अत्यन्त अरुचिकर हो गया था। आजकल आचार-विचार के मामले में सुचरिता जो पूरी तरह उनकी बात पर नहीं चलती इसका कारण इन सब लोगों से मिलना-जुलना ही है, यही उन्होंने तय किया था। यद्यपि वह जानती थीं कि विनय ब्राह्म नहीं है, फिर भी इतना वह स्पष्ट अनुभव करती थीं कि विनय के मन में हिन्दू संस्कारों की कोई दृढ़ता नहीं है। इसीलिए अब वह पहले की भाँति उत्साह के साथ इस ब्राह्मण-कुमार को बुला ले जाकर उस पर देवता के प्रसाद का अपव्यय नहीं करती थीं।

आज बातचीत के सिलसिले में हरिमोहिनी ने विनय से पूछा, "अच्छा बेटा, तुम तो ब्राह्मण के लड़के हो, लेकिन सन्ध्या-अर्चना तो कुछ नहीं करते ?"

विनय ने कहा, "मौसी, दिन-रात पढ़ाई रटते-रटते गायत्री-सन्ध्या सब भूल गया हूँ।"

हरिमोहिनी ने कहा, "परेश बाबू भी ता पढ़े-लिखे हैं। लेकिन वह तो अपना धर्म मानकर साँझ-सवेरे कुछ न कुछ करते हैं।"

विनय ने कहा, "मौसी, वह जो करते हैं वह केवल मन्त्र कण्ठस्थ करके नहीं किया जाता। कभी उन जैसा हो सका तो मैं भी उन्हीं की तरह चलूँगा।"

हरिमोहिनी ने कुछ रुखाई से कहा, "तो उतने दिन बाप-दादों की तरह ही चलो न ? यह क्या अच्छा है कि न इधर न उधर ? मनुष्य का कुछ तो धर्म होता ही है। न राम, न गंगा—मैया री, यह कैसे हो सकता है !"

इसी समय कमरे में आकर ललिता विनय को देखकर चौंक उठी। उसने हरिमोहिनी से पूछा, "दीदी कहाँ हैं ?"

हरिमोहिनी ने कहा, "राधारानी नहाने गई है।"

ललिता ने मानो अनावश्यक रूप से सफाई देते हुए कहा, "दीदी ने मुझे बुला भेजा था।"

हरिमोहिनी ने कहा, "तो जरा बैठो न, वह अभी आ जायेगी।"

ललिता के प्रति भी हरिमोहिनी का मन कुछ अनुकूल न था। हरिमोहिनी अब सुचरिता को उसके पुराने सारे परिवेश से छुड़ाकर पूरी तरह अपने वश में करना चाहती थीं। परेश बाबू की दूसरी लड़कियाँ यहाँ इतनी बार नहीं आतीं, अकेली ललिता ही जब-तब आकर सुचरिता के साथ बातें करती रहती है, यह हरिमोहिनी को अच्छा नहीं लगता। अक्सर वह दोनों की बातों में बाधा देकर

सुचरिता को किसी न किसी काम के लिए बुला लेने की कोशिश करती हैं या फिर इसकी शिकायत करती हैं कि सुचरिता का लिखना-पढ़ना अब पहले की तरह बिना व्याघात के नहीं चलता। लेकिन जब सुचरिता पढ़ने-लिखने में मन लगाती है तब हरिमोहिनी यह कहने से भी नहीं चूकतीं कि अधिक पढ़ना-लिखना लड़कियों के लिए अनावश्यक और अनिष्टकर होता है। असल बात यह है कि वह जैसे भी हो सुचरिता को बिलकुल घेर लेना चाहती हैं और किसी तरह वह न कर पाने से कभी सुचरिता के संगियों पर और कभी उसकी शिक्षा पर उसका दोष मढ़ती रहती हैं।

ललिता और विनय के साथ बैठे रहना हरिमोहिनी के लिए सुखकर हो, यह बात नहीं थी। लेकिन उन दोनों पर गुस्सा करके ही वह बैठी रहीं। उन्होंने समझ लिया था कि विनय और ललिता के बीच एक रहस्यमय सम्बन्ध था। तभी उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'तुम लोगों के समाज में चाहे जैसी रीति हो, मेरे इस घर में यह सब निर्लज्ज मिलना-जुलना, यह सब खिस्तानी कारोबार नहीं चलेगा।'

इधर ललिता के मन में भी एक विरोध का भाव उभर रहा था। कल ही जब सुचरिता आनन्दमयी के घर गई थी तब ललिता ने भी साथ जाने का निश्चय किया था, लेकिन किसी तरह न जा सकी। गोरा के प्रति उसमें श्रद्धा बहुत थी, लेकिन विरोध का भाव भी उतना ही तीव्र था। यह बात वह किसी तरह अपने मन से नहीं हटा पाती थी कि गोरा सभी तरह उसके प्रतिकूल है। यहां तक कि जब गोरा जेल से छूटा उस दिन से विनय के प्रति भी ललिता के मनोभाव में थोड़ा परिवर्तन आ गया था। कुछ दिन पहले तक वह इस बात पर गर्व करती रही थी कि विनय पर उसका बड़ा गहरा प्रभाव है। लेकिन विनय गोरा के प्रभाव से किसी तरह भी निकलकर नहीं आ सकता, इस कल्पना मे ही विनय के विरुद्ध भी कमर कसकर तैयार हो रही थी।

ललिता को कमरे में आते देखकर विनय के मन में बड़ी हलचल मच गई। ललिता के बारे में विनय कभी भी सहज भाव नहीं रख सका था। जब से उन दोनों के विवाह की संभावना की अफ़वाहें समाज में फैल गई थीं तबसे ललिता को देखते ही विनय के मन की अवस्था तूफ़ान के समय इधर-उधर घूमने वाली कम्पास की सुई-सी हो जाती थी।

विनय को कमरे में बैठे देखकर ललिता को सुचरिता पर गुस्सा हो आया। वह समझ गई कि सुचरिता अनिच्छुक विनय के मन को अनुकूल बनाने के लिए ही दौड़-धूप कर रही है, और आज ललिता की पुकार इसीलिए हुई है कि टेढ़े को सीधा करने का प्रयत्न करे।

उसने हरिमोहिनी की ओर देखकर कहा, "दीदी से कह दीजिएगा मैं अभी नहीं ठहर सकती। फिर किसी वक्त आ जाऊँगी।"

वह कहकर विनय की ओर आँख उठाये बिना वह तेजी से चली गई। तब हरिमोहिनी भी विनय के पास और बैठे रहना अनावश्यक समझकर घर के काम-काज के लिए उठ गई।

ललिता का यह सुलगती आग का-सा चेहरा विनय के लिए अपरिचित न था। पर इधर कई दिनों से वैसा चेहरा देखने का अवसर नहीं हुआ था। एक समय ऐसा भी था जब विनय के मामले में ललिता हमेशा अपने अग्नि-बाण साधे रहती थी; वे बुरे दिन बिलकुल बीत गये हैं, यह सोचकर विनय निश्चिन्त हो चला था। आज उसने देखा कि वे ही पुराने बाण फिर अस्त्रशाला से निकाले गये हैं—उन पर मोर्चे का जरा-सा भी दाग़ नहीं पड़ा है। गुस्सा सह लिया जा सकता है, लेकिन घृणा सहना विनय जैसे व्यक्ति के लिए बड़ा कठिन होता है। ललिता ने एक दिन उसे गोरा नाम के ग्रह का उपग्रह-मात्र मानकर उसके प्रति कैसी तीखी अवज्ञा दिखाई थी, यह विनय को याद हो आया। आज भी उसकी दुविधा के कारण ललिता उसे बिलकुल कायर समझ रही होगी, इस कल्पना से वह व्याकुल हो उठा। उसकी कर्तव्य-बुद्धि से उत्पन्न संकोच को ललिता उसका डरपोकपन समझेगी, फिर भी इस बारे में अपनी ओर से दो बातें कहने का भी मौका उसे न मिलेगा, यह विनय को असह्य जान पड़ा। तर्क करने के अधिकार से वंचित कर दिया जाना विनय के लिए बहुत बड़ी सजा थी। क्योंकि वह जानता था कि वह तर्क बहुत अच्छा कर सकता है, सुलझाकर अपनी बात कहने और किसी एक पक्ष का समर्थन करने की उसमें असाधारण क्षमता है। लेकिन जब भी ललिता ने उससे लड़ाई की है, उसे दलीलें देने का मौका कभी नहीं दिया, आज भी उसे इसका मौका न मिलेगा।

वह अखबार अभी वहीं पड़ा हुआ था। अपनी बेचैनी में विनय ने उसे अपनी ओर खींचकर देखा कि उसमें एक जगह पेंसिल से निशान लगा हुआ था। उसने वह अंश पढ़ा और समझ लिया कि उस सारी चर्चा और नीति-उपदेश के लक्ष्य वही दोनों हैं। ललिता अपने समाज के लोगों से प्रतिदिन कितना अपमान पा रही है, यह वह स्पष्ट समझ सका। इस अपमान से उसकी रक्षा करने के लिए विनय कोई प्रयत्न नहीं कर रहा है और केवल समाज-तत्त्व को लेकर तर्क की बारीकियाँ ढूंढ़ने में व्यस्त है, ललिता जैसी तेजस्विनी नारी का इस पर उसे उपेक्षा का पात्र समझना उसे उचित ही जान पड़ा। समाज की सम्पूर्ण उपेक्षा करने का कितना साहस ललिता में है, यह याद करके और उस अभिमानिनी नारी के साथ अपनी

तुलना करके उसे शर्म आने लगी।

स्नान करके और सतीश को भोजन करा स्कूल भेजकर सुचरिता जब विनय के पास आई तब विनय उदास बैठा हुआ था। सुचरिता ने पहली बात फिर नहीं उठाई। विनय बिना मुंह-हाथ धोये और कुल्ला किये ही भोजन करने बैठ गया।

हरिमोहिनी ने कहा, "अच्छा, बेटा, तुम तो हिन्दुओं की कोई बात ही नहीं मानते हो—तब फिर तुम्हारे ब्राह्म हो जाने में ही क्या बुराई थी?"

विनय ने मन-ही-मन कुछ आहत होकर कहा, "जिस दिन समझ लूंगा कि हिन्दूपन का मतलब सिर्फ़ खान-पान और छुआछूत के निरर्थक नियम ही हैं, उस दिन चाहे ब्राह्म, चाहे ख़िस्तान, चाहे मुसलमान, कुछ न कुछ हो जाऊंगा। लेकिन अभी हिन्दुत्व पर इतनी अश्रद्धा नहीं हुई है।"

विनय जब सुचरिता के घर से चला तब उसका मन बहुत ही अशान्त था। वह मानो चारों ओर से धक्के खाता हुआ एक निराश्रय शून्य में आ गिरा था। इधर गोरा के निकट अपना पुराना स्थान पाना उसके लिए कठिन हो गया था, उधर ललिता भी उसे दूर ठेल दे रही थी—यहाँ तक कि हरिमोहिनी के साथ उसका अपनापे का सम्बन्ध भी इतने कम समय में ही विच्छिन्न होने लगा था। एक समय वरदासुन्दरी उससे आन्तरिक स्नेह करती थीं, परेश बाबू अब भी उससे स्नेह करते हैं, लेकिन स्नेह के बदले में उसने उनके घर में ऐसी अशान्ति ला दी है कि अब वहाँ भी उसके लिए जगह नहीं रही। जिनसे उसे प्रेम है उनकी श्रद्धा और प्यार के लिए विनय हमेशा लालायित रहता है, उसे कई तरह से अपनी ओर खींचने की शक्ति भी उसमें काफ़ी है। वही विनय आज अचानक प्रीति की अपनी चिर अभ्यस्त लीक से कैसे गिर गया, यही बात वह मन-ही-मन सोचने लगा। सुचरिता के घर से बाहर निकल कर अब वह कहाँ जाय, यही वह सोच नहीं पा रहा है। एक समय था। जब बिना कुछ सोचे वह सहज ही गोरा के घर की ओर चल पड़ता, लेकिन आज वहाँ जाना उसके लिए पहले जैसा सहज-स्वाभाविक नहीं रहा। अगर जायगा भी तो गोरा के सामने उपस्थित होकर उसे चुप ही रहना होगा—वह नीरवता उससे सही न जायेगी। इधर परेश बाबू के घर का रास्ता भी उसके लिए खुला नहीं है।

'यह मैं कैसे और क्यों ऐसी अस्वाभाविक स्थिति में आ पड़ा?'—सिर झुकाय यह सोचता हुआ विनय धीरे-धीरे चलता रहा। हेदुआ तालाब के पास आकर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। अब तक उसके जीवन में छोटी-बड़ी जो भी समस्या आ खड़ी हुई है उसने अपने बन्धु के साथ उसकी चर्चा करके उसका कुछ समाधान कर

लिया है, पर आज वह रास्ता खुला नहीं है, आज उसे अकेले ही सोचना होगा।

विनय के आत्म-विश्लेषण की शक्ति की कमी नहीं है। सारा दोष बाहर की घटनाओं पर मढ़ कर खुद छुट्टी पा लेना उसके लिए सहज नहीं है। अकेले बैठकर उसने अपने को ही उत्तरदायी ठहराया। मन-ही-मन उसने कहा, 'माल भी रखूंगा और उसका दाम भी न दूंगा, ऐसी चतुराई दुनिया में नहीं चल सकती। कोई एक चीज चुन लेना चाहते ही किसी दूसरे का त्याग करना ही होता है। जो व्यक्ति मन कड़ा करके किसी एक को छोड़ नहीं सकता है उसकी मेरे जैसी गति होती है— वह सभी कुछ खो देता है। दुनिया में जो लोग अपने जीवन का रास्ता कठोर होकर चुन ले सकते हैं, वे ही निश्चिन्त हो पाते हैं। जो अभागे यह मार्ग भी पकड़ना चाहते हैं और वह मार्ग भी छोड़ना नहीं चाहते, जो अपने को किसी से भी वंचित नहीं कर सकते वे अपनी मंज़िल से ही भटक जाते हैं—केवल राह के कुत्ते की तरह मारे-मारे फिरते हैं।'

रोग का निदान करना कठिन है, लेकिन निदान हो जाने से ही उसका इलाज सहज हो जाता हो, यह बात भी नहीं है। विनय की समझने की शक्ति बड़ी तेज थी, कुछ करने की शक्ति का ही उसमें अभाव था। इसीलिए वह अब तक अपने से अधिक प्रबल इच्छा-शक्ति वाले अपने बन्धु पर निर्भर करता आया था। अन्त में अत्यन्त संकट में पड़कर ही आज उसने सहसा पहचाना कि अपनी इच्छा-शक्ति न रहने पर भी छोटे-मोटे काम तो जैसे-तैसे उधार पर चला लिये जा सकते हैं, लेकिन असली जरूरत के समय दूसरे का हवाला देकर काम नहीं चलाया जा सकता।

सूर्य के ढल जाने से जहाँ अब तक छाया थी वहाँ धूप आ गई, तब वह पेड़ के नीचे से उठकर फिर सड़क पर हो लिया। थोड़ी दूर जाते ही उसने सहसा पुकार सुनी, "विनय बाबू, विनय बाबू!" और क्षण-भर बाद ही सतीश ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। वह उस समय स्कूल से घर लौट रहा था।

सतीश ने कहा, "चलिए विनय बाबू, मेरे साथ घर चलिए।"

विनय ने कहा, "यह कैसे हो सकता है, सतीश बाबू?"

सतीश ने कहा, "क्यों नहीं हो सकता?"

विनय बोला, "ऐसे बार-बार जाने से तुम्हारे घर के लोग मुझ से ऊब नहीं जायेंगे?"

सतीश ने विनय की इस दलील को जवाब देने लायक भी नहीं समझा। केवल बोला, "नहीं, चलिए।"

उसके परिवार के लोगों के साथ विनय का जो सम्बन्ध है उसमें कितनी बड़ी

क्रान्ति हो गई है, बालक सतीश गह सब कुछ नहीं जानता, वह केवल विनय से स्नेह करता है, यह बात सोचकर विनय का हृदय अत्यन्त विचलित हो उठा। परेश बाबू के परिवार ने उसके लिए जिस स्वर्गलोक की सृष्टि की थी, उसमें केवल इस बालक के आनन्द की ही सम्पूर्णता अक्षुण्ण है, इस प्रलय के दिन में भी उसके मन पर किसी सन्देह के बादल की छाया नहीं पड़ी है, समाज के किसी वार ने उसमें कोई दरार नहीं डाली है। सतीश के गले में बाँह डालते हुए विनय ने कहा, "चलो भाई, तुम्हें तुम्हारे घर के दरवाजे तक तो पहुँचा आऊँ!"

सतीश को बाँह से घेरकर विनय मानो सुचरिता और ललिता के उस स्नेह और दुलार के माधुर्य को स्पर्श कर सका जो सतीश के जीवन में शिशुकाल से ही संचित होता रहा होगा।

सारे रास्ते सतीश जो बहुत-सी बे-सिर-पैर की बातें करता रहा वे विनय के कानों को बहुत मीठी लगीं। उस बालक के चित्त की सरलता के सम्पर्क में वह अपने जीवन की जटिल समस्या को थोड़ी देर के लिए बिलकुल भुला दे सकने में समर्थ हुआ।

परेश बाबू के घर के सामने से ही सुचरिता के घर का रास्ता था। रास्ते से ही परेश बाबू के घर की निचली मंज़िल का बैठने का कमरा दीखता था। उस कमरे के सामने आते ही विनय बार उधर देखे बिना न रह सका। उसने देखा. मेज़ के सामने परेश बाबू बैठे हुए हैं; कुछ कह रहे हैं या नहीं, यह वह न पहचान सका। ललिता सड़क की ओर पीठ किये परेश बाबू की कुर्सी के पास बेंत के एक छोटे मूढ़े पर छात्रा-सी चुपचाप बैठी हुई थी।

सुचरिता के घर से लौटने पर जिस क्षोभ से ललिता का हृदय असह्य रूप से व्याकुल हो उठा था, उसका निवारण करने का कोई उपाय वह न जानती थी, इसीलिए ललिता धीरे-धीरे आकर परेश बाबू के पास बैठ गई थी। परेश बाबू में एक ऐसी शान्ति झलकती थी कि अधीर ललिता अपनी चंचलता का दमन करने के लिए बीच-बीच में उनके पास आकर चुपचाप बैठी रहती थी। परेश बाबू पूछ बैठते, 'क्या है, ललिता?' तो ललिता उत्तर देती 'कुछ नहीं, बाबा! तुम्हारा यह कमरा बड़ा ठंडा जो है।'

आज ललिता उनके पास आहत हृदय लेकर आई है, यह परेश बाबू स्पष्ट समझ गये थे। स्वयं उनके भीतर भी एक वेदना कसक रही थी। इसीलिए उन्होंने धीरे-धीरे ऐसी बातें छेड़ दी थीं जिनसे व्यक्तिगत जीवन के छोटे सुख-दुःख का भार हलका हो जाये।

बाप-बेटी की इस एकान्त बातचीत का दृश्य देखकर विनय क्षण-भर के लिए

ठिठक गया। सतीश क्या कह रहा था, यह मानो उसने सुना ही नहीं। सतीश ने उस समय उससे युद्ध-विद्या के बारे में एक बड़ा कठिन प्रश्न पूछा था। अगर बहुत से बाघ पकड़कर उन्हें बहुत दिनों तक सिखाया जाय और फिर अपनी सेना की अगली पंक्ति में रखकर युद्ध किया जाय तो क्या विजय निश्चित न होगी, यही उसका प्रश्न था। अब तक उन दोनों का प्रश्नोत्तर बिना बाधा के होता रहा था, अब सहसा बाधा का अनुभव करके सतीश ने विनय के चेहरे की ओर देखा। फिर विनय की दृष्टि का अनुसरण करते हुए परेश बाबू के कमरे की ओर देखते ही चिल्ला उठा, "ललिता दीदी, यह देखो, मैं विनय बाबू को रास्ते से पकड़ लाया हूँ।"

विनय पसीना-पसीना हो उठा। कमरे में क्षण-भर में ललिता मूढ़े से उठ खड़ी हुई और परेश बाबू ने रास्ते की ओर मुड़कर देखा। विनय बड़े असमंजस में पड़ गया।

सतीश को विदा देकर विनय ने परेश बाबू के घर में प्रवेश किया। उनके कमरे में पहुँचकर उसने देखा, ललिता चली गई थी। उन सबको वह शान्ति भंग करने वाले डाकू-सा लग रहा होगा, यह सोचकर वह सकुचाता हुआ कुर्सी पर बैठ गया।

स्वास्थ्य आदि साधारण शिष्टाचार के बाद विनय ने सहसा बात शुरू की, "मैं जब हिन्दू समाज के आचार-विचार में श्रद्धा नहीं रखता और रोज़-रोज़ उसे तोड़ता ही रहता हूँ, तब मैं समझता हूँ कि ब्राह्म-समाज में आश्रय लेना ही मेरे लिए उचित होगा। मेरी कामना है कि आप से ही दीक्षा लूँ।"

अभी पन्द्रह मिनट पहले भी इस संकल्प और इस कामना ने विनय के मन में स्पष्ट आकार नहीं लिया था। परेश बाबू थोड़ी देर स्तब्ध रहकर बोले, "अच्छी तरह सब बातें सोचकर देख ली हैं?"

विनय ने कहा, "इसमें और तो कुछ सोचने का नहीं है, इतना ही सोचना है कि क्या उचित है और क्या अनुचित? और वह बहुत सीधी बात है। हमने जो शिक्षा पाई है उससे मैं किसी तरह ईमानदारी से आचार-विचार को ही परम धर्म के रूप में नहीं स्वीकार कर सकता। इसीलिए मेरे व्यवहार में क़दम-क़दम पर विसंगति दीखती है, और जो हिन्दू-धर्म में पूरी श्रद्धा रखते हैं उनके साथ जुड़ा रहकर मैं उन्हें बराबर चोट ही पहुँचाता हूँ। यह मेरे लिए बिलकुल अनुचित है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। ऐसी हालत में और कोई बात न सोचकर इस अन्याय को दूर करने के लिए ही मुझे प्रस्तुत होना चाहिए। नहीं तो मेरा आत्म-सम्मान बना नहीं रह सकता।"

परेश बाबू को समझाने के लिए इतनी लम्बी बात की ज़रूरत नहीं थी, ये सब बातें स्वयं अपने को बल देने के लिए थीं। वह न्याय और अन्याय के एक युद्ध में पड़ा हुआ है जिसमें सब छोड़कर न्याय का पक्ष लेकर उसे जयी होना होगा, यह सोचकर उसकी छाती गर्व से फूल उठी। मनुष्यत्व की मर्यादा तो रखनी ही होगी।

परेश बाबू ने पूछा, "धर्म-विश्वास के बारे में ब्राह्म-समाज से तुम्हारा मंतव्य तो है न ?"

विनय थोड़ी देर चुप रहकर बोला, "आपसे सच कहूँ, पहले मैं सोचता था कि मेरा कुछ-न-कुछ धर्म-विश्वास है, इसे लेकर कई लोगों से मेरा काफ़ी झगड़ा भी होता रहा है, लेकिन आज मैं निश्चय जानता हूँ कि मेरे जीवन में अभी धर्म-विश्वास विकसित नहीं हुआ है। इतना भी समझ सका हूँ तो आपको देख कर। धर्म की मुझे अपने जीवन में सच्ची आवश्यकता नहीं हुई और उसमें सच्चा विश्वास नहीं उत्पन्न हुआ, इसीलिए मैं कल्पना और युक्ति-कौशल से अब तक अपने समाज में प्रचलित धर्म की ही तरह-तरह की सूक्ष्म व्याख्या करके केवल अपनी तर्क करने की निपुणता बढ़ाता रहा हूँ। कौन धर्म सच्चा है, यह सोचने की मुझे कोई ज़रूरत नहीं पड़ी। जिस धर्म को सच्चा कहने से अपनी जीत हो जाये उसी को सच्चा बताकर प्रमाणित करने में मैं जुट गया हूँ। प्रमाण देना जितना ही कठिन हुआ है उतना ही प्रमाण दे सकने पर मैंने अहंकार किया है। मेरे मन में धर्म-विश्वास कभी सम्पूर्ण सत्य और स्वाभाविक हो सकेगा या नहीं, यह मैं आज भी नहीं कह सकता, लेकिन अनुकूल अवस्था में रहने पर और दृष्टान्त सामने रहने पर मैं इधर बढ़ सकता हूँ, यह निश्चित है। कम-से-कम जो बातें भीतर-ही-भीतर मेरी बुद्धि को अखरती हैं, जीवन-भर उन्हीं का झंडा फहराते हुए घूमने की ग्लानि से तो उद्धार पा सकूंगा।"

परेश बाबू से बात करते-करते विनय अपनी वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल युक्तियों को रूप देने लगा। वह ऐसे उत्साह से बातें करने लगा मानो बहुत दिन के तर्क-वितर्क के बाद वह इस पक्के सिद्धान्त पर पहुँच सका है।

परेश बाबू ने फिर भी उसे कुछ दिन और सोच लेने के लिए आग्रह किया। इससे विनय ने समझा कि परेश बाबू को उसकी दृढ़ता पर सन्देह है, जिससे उसका हठ और भी प्रबल हो उठा। वह बार-बार यह जताने लगा कि उसका मन एक असन्दिग्ध बिन्दु पर आ पहुँचा है जहां से उसके ज़रा भी हिलने-डुलने की कोई सम्भावना नहीं है। ललिता से विवाह की बात दोनों पक्षों में से किसी की ओर से नहीं उठी।

इसी समय घर के किसी काम के बहाने वरदासुन्दरी वहाँ आयीं और विनय मानो वहाँ हो ही नहीं, इस ढंग से अपना काम करके जाने लगीं। विनय ने सोचा था कि परेश बाबू अवश्य वरदासुन्दरी को बुलाकर विनय का नया समाचार उन्हें देंगे। लेकिन परेश बाबू ने कुछ नहीं कहा। वास्तव में उन्होंने यह सोचा ही नहीं कि अभी बताने का समय हुआ है। इस बात को वह अभी सबसे छिपाये ही रखना चाहते थे। लेकिन वरदासुन्दरी जब विनय के प्रति स्पष्ट अवज्ञा और क्रोध प्रकट करके जाने लगीं तब विनय से और न रहा गया। उसने जाने को उद्यत वरदासुन्दरी के पैरों में सिर झुकाकर कहा, "मैं ब्राह्म-समाज में दीक्षा लेने का प्रस्ताव लेकर आप लोगों के पास आया हूँ। मैं अयोग्य हूँ, लेकिन आप लोग मुझे योग्य बना लेंगे इसका मुझे भरोसा है।"

यह सुनकर वरदासुन्दरी विस्मय से ठिठक गई और धीरे-धीरे मुड़कर कमरे में आकर बैठ गईं। उन्होंने जिज्ञासु दृष्टि से परेश बाबू के मुँह की ओर देखा।

परेश बाबू बोले, "विनय दीक्षा ग्रहण करने के लिए अनुरोध कर रहे हैं।"

यह सुनकर वरदासुन्दरी के मन में विजय का गर्व तो उदित हुआ, लेकिन सम्पूर्ण आनन्द नहीं हुआ। भीतर-ही-भीतर उनकी यह इच्छा थी कि अब की बार परेश बाबू को एक अच्छा सबक मिल जाय। स्वामी को भी भारी अनुताप भोगना होगा, यह भविष्यवाणी उन्होंने बार-बार बहुत बल देकर की थी, इसीलिए यह देखकर कि सामाजिक आन्दोलन से परेश बाबू काफ़ी विचलित नहीं हो रहे हैं, वह मन-ही-मन अधीर भी हो रही थीं। अब सारे संकट का ऐसे सुचारु रूप से समाधान हो जायगा, यह बात उनके लिए बहुत अधिक प्रीतिकर नहीं थी। उन्होंने गम्भीर चेहरा बनाकर कहा, "दीक्षा का यह प्रस्ताव कुछ दिन पहले ही आ गया होता तो हमें इतना दुःख और अपमान न सहना पड़ता।"

परेश बाबू ने कहा, "हमारे दुःख, कष्ट और अपमान की तो कोई बात नहीं हो रही है, विनय दीक्षा लेना चाहते हैं।"

वरदासुन्दरी बोल उठीं, "सिर्फ़ दीक्षा?"

विनय ने कहा, "अन्तर्यामी जानते है कि आपका दुःख-अपमान सब मेरा भी है।"

परेश बाबू ने कहा, "देखो विनय, तुम जो धर्म की दीक्षा लेना चाहते हो उसकी जिम्मेदारी दूसरों पर न डालो। मैं तुम्हें पहले भी कह चुका हूँ, हम लोग किसी सामाजिक संकट में पड़ रहे हैं, ऐसा सोच करके तुम कोई भारी जिम्मेदारी

अपने सिर पर न लेना।"

वरदासुन्दरी ने कहा, "सो तो ठीक है। लेकिन मैं यह भी कहूँ कि हम सबको जाल में फँसाकर चुप बैठे रहना भी उनका कर्त्तव्य नहीं है।"

परेश बाबू ने कहा, "चुप न बैठकर चंचल हो उठने से फन्दे में और भी गाँठें पड़ सकती हैं। कुछ करने को ही कर्त्तव्य कहा जाय यह जरूरी नहीं है, कई बार कुछ न करना ही सबसे बड़ा कर्त्तव्य होता है।"

वरदासुन्दरी ने कहा, "वह होगा। मैं तो बेवकूफ़ हूँ, सब बात अच्छी तरह नहीं समझ सकती। अब तय क्या हुआ, यह सुनकर चली जाना चाहती हूँ, मुझे बहुत काम है।"

विनय ने कहा, "परसों रविवार को ही मैं दीक्षा लूँगा। मेरी इच्छा है कि परेश बाबू..."

परेश बाबू ने कहा, "जिस दीक्षा से मेरे घर के लोग कुछ लाभ की आशा कर सकते हैं वैसी दीक्षा मैं नहीं दे सकूँगा। तुम्हें ब्राह्म-समाज में ही आवेदन करना होगा।"

विनय का मन एकाएक डूब गया। ब्राह्म-समाज में नियमानुसार आवेदन करने जैसी तो उसके मन की हालत नहीं थी—विशेषतया जिस ब्राह्म-समाज में ललिता की बात को लेकर उसकी इतनी चर्चा हो चुकी थी, वह किस मुँह से किन शब्दों में चिट्ठी में लिखेगा? वह चिट्ठी जब ब्राह्म-समाज पत्रिका में प्रकाशित होगी, तब वह कैसे सिर उठा सकेगा? वह चिट्ठी गोरा पढ़ेगा, आनन्दमयी पढ़ेंगी। उसके साथ और कोई इतिहास तो नहीं दिया जायेगा—उसमें केवल इतनी बात प्रकाशित की जायगी कि विनय का चित्त अचानक ब्राह्म-धर्म में दीक्षा लेने के लिए व्याकुल हो उठा है। सच बात उतनी ही तो नहीं है—उसे और बहुत कुछ के साथ मिलाकर न देखने से विनय के लिए तो कहीं मुँह छिपाने का ठौर न रहेगा।

विनय को चुप रहते देखकर वरदासुन्दरी डरीं। बोली, "वह ब्राह्म-समाज में तो किसी को पहचानते नहीं, हमको ही सब बन्दोबस्त कर देना होगा। मैं आज ही अभी पानू बाबू को बुला भेजती हूँ। और तो समय ही नहीं है, परसों ही तो रविवार है।"

इसी समय देखा गया कि सुधीर कमरे के सामने से ऊपर की मंजिल की ओर जा रहा है। वरदासुन्दरी ने उसे पुकारकर कहा, "सुधीर, विनय परसों हमारे समाज में दीक्षा लेंगे।"

सुधीर अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। मन-ही-मन वह विनय का बहुत भक्त था,

विनय को ब्राह्म-समाज में ले लिया जा सकेगा, यह सुनकर वह बहुत उत्साहित हुआ। विनय जैसी बढ़िया अंग्रेजी लिख सकता था, उसकी जैसी विद्या-बुद्धि थी, उसे देखते उसका ब्राह्म-समाज में शामिल न होना ही सुधीर को विनय के लिए असंगत जान पड़ता था। विनय जैसा व्यक्ति किसी तरह ब्राह्म-समाज के बाहर रह ही नहीं सकता, इसका प्रमाण पाकर उसकी छाती फूल उठी। उसने कहा, "लेकिन परसों रविवार तक ही कैसे हो सकेगा? बहुतों को तो खबर ही नहीं पहुँच सकेगी।"

सुधीर चाहता था कि विनय की इस दीक्षा को एक उदाहरण के रूप सर्व-साधारण के सम्मुख घोषित किया जाय।

वरदासुन्दरी ने कहा, "नहीं, नहीं, रविवार तक सब हो जायगा। सुधीर, तुम दौड़कर जाओ, पानू बाबू को फ़ौरन बुला लाओ।"

जिस अभागे के उदाहरण द्वारा सुधीर ब्राह्म-समाज की अजेय शक्ति का सर्वत्र प्रचार करने की कल्पना से उत्तेजित हो रहा था, वह मन-ही-मन अपने को बहुत छोटा अनुभव कर रहा था। जो चीज़ मन-ही-मन तर्क करते समय बिलकुल मामूली दीखती थी, बाहर उसका चेहरा देखकर विनय व्याकुल हो उठा।

पानू बाबू के बुलाये जाते ही विनय उठ खड़ा हुआ। वरदासुन्दरी ने कहा, "ज़रा बैठो, पानू बाबू अभी आ जायेंगे, देर नहीं लगेगी।"

विनय ने कहा, "नहीं---मुझे तो माफ़ कीजिए।"

वह किसी तरह इस वातावरण से निकलकर खुले में सारी बात शान्ति से सोचने का अवसर पा लेना चाहता था।

विनय के उठते ही परेश बाबू भी उठ खड़े हुए और उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए बोले, "विनय, जल्दी में कुछ मत करो --शान्ति से स्थिर होकर सारी बात सोचकर देख लो। अपने मन को ठीक-ठीक समझे बिना जीवन के इतने बड़े मामले में पैर मत बढ़ाओ।"

वरदासुन्दरी ने मन-ही-मन पति के प्रति अत्यन्त असन्तुष्ट होकर कहा, "शुरू में तो कोई सोच-समझकर काम करता नहीं, अनर्थ खड़ा कर देता है, फिर जब जान पर आती है तब कहता है, 'बैठकर सोचो।' तुम लोग आराम से बैठकर सोच सकते हो, लेकिन हमारी तो जान निकल रही है।"

विनय के साथ सुधीर भी सड़क पर आ लिया। ढंग से बैठकर खाने से पहले चखकर देखने की जैसी इच्छा होती है, कुछ उसी ढंग की उतावली सुधीर को हो रही थी। वह चाहता था, विनय को उसी समय अपने दोस्तों में ले जाकर उन्हें यह शुभ-संवाद सुनाकर खुशियाँ मनाना शुरू कर दे। लेकिन सुधीर के इस उच्छ्वसित

आनन्द को देखकर विनय का मन और भी संकुचित होता जा रहा था। सुधीर ने जब प्रस्ताव किया, "विनय बाबू, चलिए न, हम दोनों साथ-साथ पानू बाबू के पास चलें," तब उसकी बात अनसुनी करके झटककर अपना हाथ छुड़ाकर विनय चला गया।

थोडी दूर जाकर ही विनय ने देखा, अविनाश अपने दल के दो-एक लोगों को साथ लिये बड़ी तेजी से लपकता हुआ कहीं जा रहा है। विनय को देखते ही अविनाश बोला, "अरे, यह रहे विनय बाबू! बहुत अच्छा हुआ -चलिए हमारे साथ!"

विनय ने पूछा, "जा कहाँ रहे हो?"

अविनाश ने कहा, "काशीपुर का बगीचा ठीक करने जा रहे हैं, वहीं गौर मोहन बाबू के प्रायश्चित की सभा होगी।"

विनय ने कहा, "नहीं, मुझे अभी जाने की फ़ुर्सत नहीं है।"

अविनाश ने कहा, "यह कैसी बात है? यह कितनी बडी बात है, आप क्या समझ सकते हैं? नहीं तो गौरमोहन बाबू क्या ऐसा अनावश्यक प्रस्ताव करते। आजकल के जमाने में हिन्दू समाज को अपनी ताकत दिखानी होगी। गौरमोहन बाबू के उस प्रायश्चित से देश के लोगों के मन में क्या कोई मामूली हलचल मचेगी? हम लोग देश-विदेश के ब्राह्मण-पण्डित सभी को निमन्त्रित करेंगे। इससे सारे हिन्दू समाज पर बड़ा असर पड़ेगा। लोग समझ सकेंगे कि हम अभी जिन्दा हैं। समझ सकेंगे कि हिन्दू समाज मरने वाला नहीं है।"

अविनाश से किसी तरह छुकारा पाकर विनय आगे बढ़ गया।

५६

हारान बाबू को बुलाकर वरदासुन्दरी ने जब उनसे सारी बात कही तब वह थोड़ी देर गम्भीर होकर बैठे रहे और फिर बोले, "इस बारे में एक बार ललिता के साथ बातचीत कर लेना भी हमारा कर्त्तव्य है।"

ललिता के आने पर हारान बाबू ने अपनी गम्भीरता की मात्रा को अन्तिम सप्तक तक चढ़ाकर कहा, "देखो ललिता, तुम्हारे जीवन में एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी का समय आ पहुँचा है। एक तरफ़ तुम्हारा धर्म है, दूसरी तरफ़ तुम्हारी प्रवृत्ति। तुम्हें दोनों में से एक मार्ग चुन लेना होगा।"

इतना कहकर कुछ रुककर हारान बाबू ने ललिता के चेहरे पर आँखें गड़ा दी। हारान बाबू का खयाल था कि उनकी इस न्यायाग्नि से दीप्त दृष्टि के सामने भीरुता काँप जायगी, कपट राख हो जायगा --उनकी यह तेजस्वी आध्यात्मिक दृष्टि ब्राह्म-समाज की मूल्यवान सम्पत्ति है।

ललिता ने एक शब्द भी नहीं कहा, चुप हो रही।

हारान बाबू ने कहा, "तुमने सुना ही होगा, तुम्हारी अवस्था की ओर ध्यान देकर या जिस कारण से हो विनय बाबू आखिर हमारे समाज में दीक्षा लेने को राजी हो गये हैं।"

ललिता ने यह बात पहले नहीं सुनी थी। सुनकर उसके मन का क्या भाव हुआ, यह उसने नहीं प्रकट होने दिया। उसकी आँखें चमक उठी पर वह पत्थर की मूर्ति-सी स्थिर बैठी रही।

हारान बाबू कहते ही गये, "परेश बाबू निश्चय ही विनय की इस बाध्यता से बहुत प्रसन्न हुए हैं। लेकिन इसमें वास्तव में खुश होने की कोई बात है या नहीं, इसका निश्चय तो तुम्हीं को करना होगा। इसीलिए मैं आज ब्राह्म-समाज के नाम पर तुमसे अनुरोध करता हूँ, अपनी उन्मत्त प्रवृत्ति को एक तरफ़ हटा कर और केवल धर्म की ओर नजर रखकर अपने हृदय से यह प्रश्न पूछो कि क्या इसमे प्रसन्न होने का वास्तविक कारण है ?"

ललिता फिर भी चुप रही। हारान बाबू ने समझा कि उनकी बातों का बड़ा असर हो रहा है; उन्होंने दुगने उत्साह के साथ कहा, "दीक्षा ! दीक्षा जीवन का कितना पवित्र मुहूर्त है, यह क्या आज मुझे बताना होगा ! उस दीक्षा को कलुषित करना ! सुख-सुविधा या आसक्ति के लालच में पड़कर हम क्या ब्राह्म-समाज को असत्य के पथ पर छोड़ देंगे---पाखंड को आदरपूर्वक अपने बीच बुला लेंगे ? बोलो ललिता, ब्राह्म-समाज की इस दुर्गति का इतिहास क्या तुम्हारे जीवन के साथ हमेशा के लिए जुड़ जायगा ?"

ललिता ने अब भी कुछ नहीं कहा, कुर्सी के हत्थे कसकर पकड़े हुए चुपचाप बैठी रही। हारान बाबू बोले, "आसक्ति की सेंध से दुर्बलता मनुष्य पर कैसे दुर्निवार होकर हल्ला करती है यह मैंने कई बार देखा है। और मनुष्य की दुर्बलता को कैसे क्षमा करना होता है वह भी मैं जानता हूँ। लेकिन जो दुर्बलता केवल अपने जीवन को नहीं, सैकड़ों-हजारों लोगों के जीवन के सहारे की एकदम नींव पर जाकर चोट करे, उसे क्या क्षण-भर के लिए भी क्षमा किया जा सकता है --ललिता, तुम्ही बताओ। उसे क्षमा करने का अधिकार क्या ईश्वर ने हमें दिया है ?"

ललिता कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुई। बोली, "नहीं, नहीं, पानू बाबू, आप क्षमा न करें! सारी दुनिया के लोगों को आपके आक्रमण का ही अभ्यास हो गया है आपकी क्षमा शायद हम सबके लिए बिलकुल असह्य हो जायेगी।" यह कहकर ललिता कमरे से चली गई।

हारान बाबू की बातों से वरदासुन्दरी उद्विग्न हो उठीं। वह किसी तरह भी विनय को छोड़ देना नहीं चाहती थीं। उन्होंने हारान बाबू से बहुत अनुनय-विनय की, किन्तु सब व्यर्थ। अन्त में उन्होंने क्रुद्ध होकर उन्हें विदा किया। उनकी कठिनाई यह थी कि वह न तो परेश बाबू को अपने पक्ष में कर सकी और न हारान बाबू को ही। ऐसी अवस्था की उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। हारान बाबू के बारे मे एक बार फिर वरदासुन्दरी की राय बदलने का समय आ गया।

जब तक दीक्षा लेने का मामला विनय के सामने धुंधला-सा ही दीखता था तब तक वह बड़े ज़ोर-शोर से अपना संकल्प प्रकाशित कर रहा था। लेकिन जब उसने देखा कि इसके लिए उसे ब्राह्म-समाज म आवेदन करना होगा, और इसके बारे में हारान बाबू से सलाह ली जायेगी, तब इसे खुले प्रचार की विभीषिका से वह अत्यन्त कुण्ठित हो उठा। वह कहां जाकर किसके साथ सलाह करे, यह नहीं सोच सका, आनन्दमयी के पास जाना भी उसे असम्भव जान पड़ा। सड़क पर घूमने की शक्ति भी उसमे और न थी। वह अपने सूने घर में जाकर ऊपर के कमरे मे तख्तपोश पर लेट गया।

शाम हो गई थी। अंधेरे कमरे में नौकर बत्ती लेकर आया तो विनय उसे मना करने ही जा रहा था कि नीचे से उसने पुकार सुनी, "विनय बाबू, विनय बाबू!"

विनय की जान में जान आई। मानो मरुभूमि मे प्यासे को पानी मिल गया। इस मौक़े पर सतीश को छोड़कर दूसरा कोई उसे आराम न पहुँचा सकता। विनय की शिथिलता दूर हो गई। "कहो भाई सतीश," कहता हुआ वह लपककर बिस्तर से उठा और जूता पहने बिना ही तेज़ी से सीढ़ियां उतर गया।

विनय ने देखा, नीचे सीढ़ियों के सामने ही छोटे आंगन में सतीश के साथ वरदासुन्दरी भी खड़ी है। फिर वही समस्या, वही चख-चख! घबराया हुआ-सा विनय, सतीश और वरदासुन्दरी को ऊपर के कमरे में ले गया।

वरदासुन्दरी ने सतीश से कहा "सतीश, तू जा, थोड़ी देर जाकर वहां बरामदे में बैठ।"

सतीश के इस नीरस निर्वासन से दुःखी होकर विनय ने उसे तसवीरों वाली

कुछ पुस्तकें निकालकर दीं और साथ के कमरे में बत्ती जलाकर बिठा दिया।

वरदासुन्दरी ने जब कहा, "विनय, तुम तो ब्राह्म-समाज में किसी को जानते नहीं, तुम एक चिट्ठी लिखकर मुझे ही दे दो, मैं कल सबेरे स्वयं जाकर उसे मन्त्री महाशय को देकर सब प्रबन्ध कर दूंगी कि परसों रविवार को तुम्हारी दीक्षा हो जाय—तुम्हें और कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।"—तब विनय कुछ उत्तर ही न दे सका। उनके आदेश के अनुसार एक चिट्ठी लिखकर उसने वरदासुन्दरी को दे दी। उसे इस बात की ज़रूरत थी कि जो भी हो, किसी एक ऐसे रास्ते पर चल पड़े जिस पर लौटने या दुविधा करने का कोई उपाय ही न रहे।

चलते-चलते ललिता के साथ विवाह की बात का ज़िक्र भी वरदासुन्दरी ने कर दिया।

वरदासुन्दरी के चले जाने पर विनय के मन में एक भारी वितृष्णा जाग उठी। यहाँ तक कि ललिता की स्मृति से भी उसके मन में एक बेसुरा राग गूंज गया। उसे लगा कि वरदासुन्दरी की इस अशोभनीय हड़बड़ी में कहीं न कहीं ललिता का भी कुछ योग है। अपने प्रति श्रद्धा कम होने के साथ-साथ मानो सभी के प्रति उसकी श्रद्धा कम होने लगी।

उधर घर पहुँचते ही वरदासुन्दरी ने सोचा कि आज ललिता को वह खुश कर सकेंगी। यह उन्होंने निश्चयपूर्वक समझ लिया था कि ललिता विनय को चाहती है, इसीलिए तो उनके विवाह की बात को लेकर समाज में इतनी चर्चा थी। इसके लिए वरदासुन्दरी अपने को छोड़ और सभी को अपराधी मानती थीं। पिछले कुछ दिनों से उन्होंने ललिता से बोलना भी लगभग बन्द कर दिया था। इसीलिए आज जब बात कहीं किनारे लगती जान पड़ी तब ललिता को यह जताकर कि ऐसा उन्हीं के कारण सम्भव हो सका, वह सन्धि करने को व्यग्र हो उठीं। ललिता के बाप ने तो सब मिट्टी ही कर दिया था। ललिता खुद भी विनय को सीधा न कर सकी और पानू बाबू से भी तो कोई मदद नहीं मिली। अकेली वरदासुन्दरी ने ही सारी गुत्थी को सुलझा दिया। हाँ, हाँ! पाँच-पाँच पुरुष जो नहीं कर सकते, एक अकेली औरत कर दिखाती है।

लेकिन घर लौटकर वरदासुन्दरी ने सुना, ललिता जल्दी ही सोने चली गई थी, उसकी तबियत ठीक नहीं थी। वह मन-ही-मन हँसकर बोलीं, "मैं अभी तबियत ठीक किये देती हूँ।"

बत्ती हाथ में लिये अँधेरे शयनगृह में जाकर उन्होंने देखा, ललिता अभी सोई नहीं थी, एक तकिये के सहारे अध-लेटी हुई पड़ी थी।

ललिता फ़ौरन उठ बैठी और बोली, "माँ, तुम कहाँ गयीं थीं ?"

उसका स्वर तीखा था। उसे यह खबर मिल चुकी थी कि माँ सतीश को लेकर विनय के घर गई थीं।

वरदासुन्दरी ने कहा, "मैं विनय के यहाँ गई थी।"

"क्यों ?"

'क्यों !' वरदासुन्दरी को मन-ही-मन गुस्सा हो आया। ललिता समझती है कि मेरा उससे कोई बैर है। अकृतज्ञ कहीं की !

वह बोली, "यह देखो, क्यों !" कहते हुए उन्होंने विनय की वह चिट्ठी ललिता की आँखों के सामने कर दी। चिट्ठी पढ़कर ललिता का मुँह लाल हो उठा। वरदासुन्दरी ने अपनी बहादुरी जताने के लिए बढ़ा-चढ़ाकर कहा, यह चिट्ठी क्या विनय से सहज ही लिखायी जा सकी ! वह दावे के साथ कह सकती हैं, यह काम और किसी से नहीं सध सकता था।

ललिता दोनों हाथों से मुँह ढककर लेट गई। वरदासुन्दरी ने समझा, उनके सामने अपने हृदय का आवेग प्रकट करने में ललिता सकुचा रही है। वह कमरे से बाहर चली गईं।

दूसरे दिन सबेरे चिट्ठी लेकर ब्राह्म-समाज जाने के लिए तैयार होने पर उन्होंने देखा, किसी ने वह चिट्ठी फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करके रख दी है।

५७

तीसरे पहर सुचरिता परेश बाबू के पास जाने के लिए प्रस्तुत हो रही थी कि बैरा ने आकर खबर दी, "एक बाबू आये हैं।"

"कौन बाबू ? विनय बाबू हैं ?"

बैरा ने कहा, "नहीं, बहुत गोरे लम्बे-चौड़े एक बाबू हैं।"

सुचरिता ने चौंककर कहा, "बाबू को ऊपर कमरे में लाकर बिठाओ।"

सुचरिता ने आज क्या कपड़े पहन रखे थे, कैसे पहन रखे थे, इसकी ओर अब तक ध्यान नहीं दिया था। अब शीशे के सामने खड़ी होने पर उसे अपनी पोशाक बिलकुल पसन्द नहीं आई, लेकिन बदलने का समय भी नहीं था। काँपते हाथों से आँचल और बाल इधर-उधर से ठीक करके धड़कते हुए हृदय से सुचरिता बैठने के कमरे में पहुँची। उसकी मेज़ पर गोरा की रचनावली पड़ी हुई है, यह बात उसे

याद नहीं रही थी। और ठीक उसी मेज़ के सामने कुर्सी पर गोरा बैठा हुआ था। किताबें बेशरमी से ठीक गोरा की आँखों के सामने बिछा रही थीं--उन्हें ढकने या हटाने का कोई उपाय नहीं था।

"मौसी आपको देखने के लिए बहुत दिनों से उत्सुक हैं, मैं उन्हें खबर दे आऊँ।" कहकर सुचरिता उल्टे पाँव लौट आई-- अकेली गोरा से बातचीत करने का साहस उसमें न था।

थोड़ी देर बाद वह हरिमोहिनी को साथ लेकर आ गई। कुछ समय से हरिमोहिनी विनय से गोरा के मत, विश्वास और निष्ठा की और उसके जीवन की बातें सुनती आ रही थीं। बीच-बीच में उनके कहने पर सुचरिता दोपहर को उन्हें गोरा के लेख पढ़कर सुनाती भी रही थी। यद्यपि ये सब लेख ठीक-ठीक समझ नहीं पाती थीं और उनसे उन्हें नींद आने की भी सुविधा हो जाती थी, फिर भी मोटे तौर पर इतना वह समझ सकती थीं कि गोरा शास्त्र और लोकाचार का पक्ष लेकर आजकल की आचारहीनता के विरुद्ध लड़ रहा है। आधुनिक अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लड़के के लिए इससे अधिक अचरज और तारीफ़ की बात और क्या हो सकती है! जब उन्होंने ब्राह्म परिवार के बीच पहले-पहल विनय को देखा था तब विनय से ही उन्हें यथेष्ट तृप्ति मिली थी। लेकिन धीरे-धीरे उसका अभ्यास हो जाने के बाद जब उन्होंने अपने घर पर विनय को देखा तब उसके उसके अत्याचार की कमियाँ ही उन्हें अधिक अखरने लगी। विनय पर वह बहुत कुछ निर्भर करने लगी थीं इसीलिए उसके प्रति उनका धिक्कार भी प्रतिदिन और तीखा होता जाता था, और इसीलिए गोरा की प्रतीक्षा वह बड़ी उत्सुकता से कर रही थीं।

गोरा की ओर एक नजर देखकर ही हरिमोहिनी चकित हो गई। हाँ, यह होता है ब्राह्मण! मानो बिलकुल होम की अग्नि हो। मानो साक्षात् शुभ्रकाय महादेव! उनके मन में ऐसे भक्तिभाव का संचार हुआ कि जब गोरा उन्हें प्रणाम करने के लिए झुका तब उसे ग्रहण करते वह झिझक गई।

हरिमोहिनी ने कहा, "तुम्हारी बात बहुत सुनती रही हूँ, बेटा! तुम्हीं गौर हो। गौर ही तो हो! वह जो कीर्त्तन के बोल हैं

'चाँदेर अमिया सने चंदन बाँटिया गो
के माजिल गोरार देहखानि--'

वह आज आँखों देख लिया। तुम्हें कोई कैसे जेल में डाल सका मैं तो यही सोच रही हूँ।"

गोरा ने हँसकर कहा, "आप जैसे लोग अगर मजिस्ट्रेट होते तो जेल में सिर्फ़

चूहे और चमगादड़ ही रहते।"

हरिमोहिनी ने कहा, "नहीं बेटा, दुनिया में चोर-जुआरियों की क्या कमी है। लेकिन मजिस्ट्रेट की क्या आँखें नहीं थीं? तुम कोई ऐसे-वैसे आदमी नहीं हो, तुम तो भगवान् के आदमी हो, यह तो चेहरे की ओर देखने से ही पता लग जाता है। जेल है इसीलिए क्या किसी को उसमें भर देना होगा? बाप रे—यह कैसा न्याय है!"

गोरा ने कहा, "आदमी के चेहरे की ओर देखने से कहीं भगवान् का रूप न दीख जाय, इसलिए मजिस्ट्रेट लोग सिर्फ कानून की किताब की ओर देख कर ही काम करते है। नहीं तो लोगों को कोड़े, जेल, काला पानी, फाँसी की सज़ा देकर क्या उन्हें नींद आती या कुछ खाते बनता!"

हरिमोहिनी ने कहा, "मुझे तो जब फुर्सत मिलती है, राधारानी से तुम्हारी किताबें पढ़वाकर सुनती हूँ। कब तुम्हारे अपने मुंह से अच्छी-अच्छी बातें सुन सकूंगी, इतने दिनों से यही आस लगाये बैठी थी। मैं मूरख अनजान औरत हूँ, बड़ी दुखिया हूँ, सब बात समझ भी नहीं सकती और सब बातों में मन भी नहीं लगा सकती। पर बेटा, तुमसे कुछ ज्ञान पा सकूंगी, इसका मुझे पूरा विश्वास है।"

गोरा ने विनयवश उनकी बात का खंडन भी नहीं किया, चुप रह गया।

हरिमोहिनी बोली, "बेटा, तुम्हें कुछ खाकर जाना होगा। तुम जैसे ब्राह्मण लड़के को मैंने बहुत दिनों से नहीं खिलाया। आज जो कुछ है उसी से मुंह मीठा कर जाओ लेकिन और एक दिन के लिए तुम्हें मेरा निमन्त्रण पक्का रहा।"

इतना कहकर हरिमोहिनी कुछ खाने की व्यवस्था करने चली गई तो सुचरिता को फिर घबराहट होने लगी।

गोरा ने एकाएक बात शुरू कर दी, "विनय आपके यहाँ आया था?"

सुचरिता ने कहा, "हाँ।"

गोरा ने कहा, "उसके बाद विनय से मेरी भेंट तो नहीं हुई, लेकिन मैं जानता हूँ कि वह क्यों आया था।"

गोरा कुछ रुका। सुचरिता चुप रही।

गोरा ने कहा, "आप लोग ब्राह्म मत से विनय का विवाह करने की कोशिश कर रही हैं। यह क्या अच्छा कर रही हैं?"

इस ताने से सुचरिता के मन से लज्जा और संकोच की जड़ता एकाएक दूर हो गई। उसने गोरा के चेहरे की ओर आँखें उठाते हुए कहा, "ब्राह्म विवाह को मैं अच्छा न समझूं, आप क्या मुझसे यही आशा करते हैं?"

गोरा ने कहा, "आपसे मैं किसी छोटी बात की आशा नहीं करूँगा, यह आप ज़रूर जानती ही होंगी। सम्प्रदाय के लोगों से जितनी आशा की जा सकती है, मैं आपसे उससे कहीं अधिक की आशा करता हूँ। किसी एक दल की संख्या बढ़ा देना ही जिन ठेकेदारों का काम होता है आप उस श्रेणी की नहीं हैं यह मैं दावे से कह सकता हूँ। मेरी इच्छा यही है कि आप अपने-आपको सही-सही समझें, दूसरे चार-छः लोगों की बातों में आकर अपने को छोटा करके न देखें। आप केवल किसी एक दल की सदस्या-भर नहीं हैं, यही बात अपने आपको अपने मन में बहुत स्पष्ट करके समझ लेनी होगी।"

सुचरिता अपने मन की सारी शक्ति संचित करके संभलकर बैठ गई। वह बोली, "आप भी क्या किसी दल के ही व्यक्ति नहीं हैं?"

गोरा ने कहा, "मैं हिन्दू हूँ। हिन्दू तो कोई दल नहीं हुआ, हिन्दू तो एक जाति है। यह जाति इतनी बड़ी है कि इसका जातित्व किसमें है यह किसी परिभाषा में बाँधा ही नहीं जा सकता। समुद्र जैसे उसकी लहर नहीं है वैसे ही हिन्दू कोई दल नहीं है।"

सुचरिता ने कहा, "हिन्दू अगर दल नहीं है तो उसमें इतनी दलबन्दी क्यों होती है?"

गोरा ने कहा, "किसी आदमी को मारने जायँ तो वह अपना बचाव क्यों करता है? उसमें प्राण है इसीलिए तो। सब तरह के आघात सहकर पत्थर ही चुप पड़ा रह सकता है।"

सुचरिता ने कहा, "मैं जिसे धर्म कहकर जानती हूँ उसे अगर हिन्दू आक्रमण करना समझें तो ऐसी अवस्था में आप मुझे क्या करने को कहेंगे?"

गोरा ने कहा, "तब मैं आपसे कहूँगा कि जिसे आप कर्त्तव्य समझ रही है वह अगर हिन्दू जाति नाम की इतनी बडी विराट् सत्ता को एक कष्ट देने वाला आक्रमण जान पड़ता है, तो आपको अच्छी तरह सोचकर देखना चाहिए कि कहीं आप में कोई भ्रम, कोई अन्धता तो नहीं है, कि आपने सब तरफ़ से सब तरह का विचार कर लिया है कि नहीं। दल के लोगों के संस्कारों को केवल अभ्यास या आलस्य के कारण सत्य मानकर इतना बड़ा उत्पात करने को तैयार हो जाना ठीक नहीं है। चूहा जब जहाज की पेंदी में बिल खोदने लगता है तब चूहे की सुविधा और प्रवृत्ति की ही सोचता है—वह यह नहीं देखता कि इतने बड़े आश्रय में छेद करने से उसे जितनी सुविधा होगी उसकी तुलना में और सबका कितना बड़ा नुकसान होगा। इसी तरह आपको भी यह सोचकर देख लेना होगा कि आप क्या केवल अपने दल की बात सोच रही हैं या कि समूची मानवता की। समूची

मानवता का क्या अभिप्राय है, यह आप समझती हैं ? उसमें कितनी तरह की प्रकृतियाँ हैं —कैसी-कैसी प्रवृत्तियाँ, क्या-क्या जरूरतें ? सभी मनुष्य एक ही पथ पर एक स्थान पर खड़े नही हैं— किसी के सामने पहाड़ हैं, किसी के सामने समुद्र, किसी के सामने जंगल, फिर भी किसी के लिए बैठे रहने का मौका नहीं है, सभी को आगे बढ़ते ही जाना है। आप केवल अपने ही दल के नियमों को सभी पर लागू करना चाहती हैं ? आँखें बन्द करके सोच लेना चाहती हैं कि मनुष्यों के बीच कोई वैचित्र्य नहीं है, कि सभी ने केवल ब्राह्म-समाज की बही में नाम लिखाने के लिए ही संसार में जन्म लिया है ? तब फिर जो सब दस्यु जातियाँ दुनिया की सभी जातियों को युद्ध में हराकर अपना एकच्छत्र राजत्व फैलाने में ही दुनिया का कल्याण समझती हैं, जो अपनी ताकत के गर्व में यह नहीं मानती कि दूसरी जातियों की विशेषताएँ भी विश्व के हित के लिए मूल्यवान हैं, उनमें और आप में भेद ही क्या रह गया ?"

थोड़ी देर के लिए सुचरिता सब बहस और दलीलें भूल गई, गोरा के गम्भीर स्वर की आश्चर्यजनक प्रबलता ने उसके मारे अन्तःकरण को झनझना दिया। गोरा किसी एक बात को लेकर बहस करता रहा है यह मानो वह भूल ही गई, उसके सामने केवल इतना ही सत्य रह गया कि गोरा बोल रहा है।

गोरा कहता गया, "आपके समाज ने ही भारत के बीस करोड़ लोगों को नहीं बनाया। इन बीस करोड़ लोगों के लिए कौन-सा पथ उपयोगी है—कौन-सा विश्वास, कौन-सा आचार उनकी भूख मिटाएगा, उन्हें शक्ति देगा, यह तय करने का भार जबरदस्ती अपने ऊपर ओढ़कर इतने बड़े भारतवर्ष को आप क्यों एक-सा सपाट समतल कर देना चाहती हैं ? इस असम्भव काम में जितनी बाधा होती है, उतना ही आप लोगों को सारे देश पर गुस्सा आता है, अश्रद्धा होती है, उतना ही जिनका आप हित करना चाहते है उन्हीं से घृणा करके उन्हें पराया बना देते हैं। फिर भी आप यह मानना चाहते है जिस ईश्वर ने मनुष्य को विचित्र ही बनाया है और विचित्र ही रखना चाहा है, उसी की आप पूजा करते हैं। अगर सचमुच आप लोग उसी को मानते हैं, तो उसके विधान को आप लोग स्पष्ट देख क्यों नहीं पाते, अपनी बुद्धि और अपने दल के अहंकार में क्यों उसका अभिप्राय नहीं ग्रहण करते ?"

सुचरिता कुछ भी उत्तर देने की चेष्टा न करके चुपचाप गोरा की बात सुनती जा रही है, यह देखकर गोरा के मन में करुणा उपजी। थोड़ी देर रुककर उसने धीमे स्वर से कहा, "मेरी बातें आपको शायद कठोर जान पड़ेंगी—लेकिन मुझे एक विरोधी पक्ष का आदमी समझकर मन में विद्रोह का भाव न रक्खें। मैं अगर

आपको विरोधी पक्ष का समझता तो कोई बात ही न कहता। आपके मन में जो एक स्वाभाविक उदार शक्ति है, वह दल की सीमा में बँधी जा रही है इससे मुझे कष्ट होता है।"

सुचरिता के चेहरे पर लाली फैल गयी। वह बोली, "नहीं-नहीं, मेरी आप बिलकुल परवाह न करें। आप कहते जाइये, मैं समझने की कोशिश कर रही हूँ।"

गोरा ने कहा, "मुझे और कुछ नहीं कहना है - भारतवर्ष को आप अपनी सहज-बुद्धि से, सहज मन से देखें. उसे प्यार करें। भारतवर्ष के लोगों को आप केवल अब्राह्म मानकर देखेंगी तो उन्हें विकृत करके देखेंगी और उनकी अवज्ञा करेंगी, तब उन्हें बराबर ग़लत ही समझती रहेंगी। जहाँ से देखने पर उन्हें सम्पूर्ण देखा जा सकता है, वहाँ से आप उन्हें देखेंगी ही नहीं। ईश्वर ने उन्हें मनुष्य बनाया हैं, वह तरह-तरह चलते हैं, उनके तरह-तरह के विश्वास और संस्कार हैं—लेकिन सबके मूल में एक ही मनुष्यता है, सबके भीतर ऐसा कुछ है जो हमारी अपनी चीज़ है, जो हमारे इस भारतवर्ष की चीज़ है, जिसको सही सच्ची दृष्टि से देखने पर उसकी सारी क्षुद्रता और असम्पूर्णता का आवरण चीरकर एक आश्चर्यमय महान् सत्ता आँखों के सामने आती है। बहुत दिनों की अनेक साधनाएँ उसमें छिपी हुई हैं, उसकी राख में अब भी बहुत दिनों की होम की अग्नि जल रही है और यही आग एक दिन आपके क्षुद्र देश-काल के ऊपर उठकर सारी दुनिया में अपनी शिखा प्रज्वलित कर देगी इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। इसी भारतवर्ष के लोग बहुत दिनों से बहुत बड़ी बात कहते आये है, बहुत बड़े काम करते रहे हैं, वह सब एकाएक मिथ्या हो गया है ऐसी कल्पना करना भी सत्य के प्रति अश्रद्धा है—वही तो नास्तिकता है।"

सुचरिता सिर झुकाए सुन रही थी। अब चेहरा उठाकर बोली, "आप मुझे क्या करने को कहते है ?"

गोरा ने कहा, "और कुछ नहीं कहता- केवल इतना ही कहता हूँ कि आपको यह सोचकर देखना चाहिए कि हिन्दू धर्म माँ की तरह अनेक मत-विश्वासों के लोगों को अपनी गोद में लेने का यत्न करता रहा है, अर्थात् दुनिया में केवल हिन्दू धर्म ने मनुष्य को मनुष्य कहकर जाना है, केवल दल का व्यक्ति नहीं समझा। हिन्दू धर्म मूढ़ को भी मानता है, ज्ञानी को भी मानता है--और ज्ञान की भी केवल एक मूर्त्ति को नहीं मानता, उसके अनेक प्रकार के विकास को मानता है। ख्रिस्तान वैचित्र्य को स्वीकार करना नहीं चाहते; वे कहते हैं, एक तरफ़ ख्रिस्तान धर्म है और दूसरी तरफ़ अनन्त विनाश, और इनके बीच कोई

विचित्रता नहीं है। हम लोगों ने ऐसे ही ख्रिस्तान से शिक्षा पाई है, इसलिए हिन्दू धर्म की विचित्रता पर हम लज्जित होते है। इसी विचित्रता के भीतर से ही हिन्दू धर्म एकता को देखने की साधना करता है, यह हम देख नहीं पाते। मन के चारों ओर से इसी ख्रिस्तानी शिक्षा का फंदा काटकर निकले बिना हम किसी हिन्दू धर्म का सच्चा परिचय पाने के गौरव के अधिकारी नहीं होंगे।"

सुचरिता गोरा की बात केवल सुन ही नहीं रही थी, मानो प्रत्यक्ष देख रही थी। गोरा की आँखों में दूर भविष्य की जो ध्यान-मूर्ति बसी हुई थी, उसके वाक्यों से वही मानो सुचरिता के सामने प्रकट हो रही थी। लज्जा को भूलकर, स्वयं अपने को भूलकर, विचारों के उत्साह से दीप्त गोरा के चेहरे को सुचरिता एकटक देखती रही। उस चेहरे में सुचरिता को कुछ ऐसी शक्ति दीखी जो मानो योग-बल से दुनिया मे बड़े-बड़े संकल्पों को पूरा कर देती है। सुचरिता ने अपने समाज के कई विद्वान और बुद्धिमान लोगों से बहुत-सी तत्त्वालोचना सुनी है, लेकिन गोरा की तो आलोचना नहीं है, वह मानो सृष्टि है। वह कुछ ऐसा प्रत्यक्ष प्रभाव है, जो एक साथ ही सारे मन और शरीर पर अधिकार कर लेता है। सुचरिता आज मानो वज्रपाणि इन्द्र को देख रही थी—उसके वाक्य जब अपने प्रबल मन्द्र स्वर से कानों पर आघात करके उसके अन्तर को स्पन्दित कर रहे थे तब साथ-ही-साथ उसके रक्त में मानो बिजली की तीखी कौंध भी क्षण-क्षण पर नाच उठती थी। गोरा के मत से उसका मत कहाँ कितना मिलता है या नही मिलता, यह स्पष्ट करके देखने की शक्ति सुचरिता में न रही। इसी समय सतीश ने कमरे में प्रवेश किया। गोरा से उसे डर लगता था, इसीलिए उससे बचता हुआ वह अपनी दीदी से सटकर जा खड़ा हुआ और धीरे से बोला, "पानू बाबू आये है।"

सुचरिता चौक उठी—मानो उसे किसी ने मार दिया हो। उसके मन की अवस्था ऐसी थी कि पानू बाबू के आने को वह किसी तरह ठेलकर, कुचल कर मिटाकर रद्द कर दे सके तो उसे शान्ति मिले। सतीश की धीमी बात गोरा ने न सुनी होगी, ऐसा सोचकर सुचरिता जल्दी से उठ खड़ी हुई। सीधे सीढ़ियों से उतरकर हारान बाबू के सामने जाकर वह बोली, "मुझे माफ़ कीजिए, आज आपसे बातचीत नहीं हो सकेगी।"

हारान बाबू ने पूछा, "क्यों नहीं हो सकेगी ?"

सुचरिता ने प्रश्न का उत्तर न देकर कहा, "कल सबेरे आप उधर बाबा के यहाँ आ जायें तो मैं वहीं मिल जाऊँगी।"

हारान बाबू ने पूछा, "आज शायद तुम्हारे यहाँ कोई आया हुआ है ?"

इस प्रश्न को भी टालकर सुचरिता ने कहा, "आज मुझे सुविधा नहीं है, आज आप दया करके मुझे क्षमा कर दें।"

हारान बाबू, "लेकिन रास्ते से ही तो गौर मोहन बाबू की आवाज़ सुन पड़ी थी, वही हैं क्या ?"

इस प्रश्न को सुचरिता न टाल सकी, लाल होती हुई बोली, "हाँ, हैं !"

हारान बाबू ने कहा, "अच्छा ही हुआ, उनसे भी मुझे बात करनी थी। तुम कुछ और खास काम कर रही हो तो मैं तब तक गौर मोहन बाबू से बातचीत कर लूँगा।" यह कहकर सुचरिता की सम्मति की प्रतीक्षा किये बिना वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। कमरे में पहुँचकर सुचरिता ने पास खड़े हारान बाबू को लक्ष्य किये बिना गोरा से कहा, "मौसी आपके लिए कुछ नाश्ता तैयार करने गई हैं, मैं ज़रा उन्हें देख आऊँ।" और तेज़ी से चली गई। हारान बाबू गम्भीर चेहरा बनाकर एक कुर्सी पर बैठ गये।

हारान बाबू ने कहा, "कुछ दुबले दीख रहे हैं…"

गोरा ने कहा, "जी हाँ, कुछ दिन दुबले होने के लिए ही इलाज चल रहा था।"

हारान बाबू ने स्वर कुछ स्निग्ध करके कहा, "तभी तो। आपको बहुत कष्ट भोगना पड़ा।"

गोरा ने कहा, "जितनी आशा की गई थी, उससे अधिक तो नहीं।"

हारान बाबू बोले, "आपसे विनय बाबू के बारे में कुछ बात-चीत करनी है। आपने सुना होगा, वह अगले रविवार को ब्राह्म-समाज में दीक्षा लेने का आयोजन कर रहे हैं।"

गोरा ने कहा, "नहीं, मैंने नहीं सुना।"

हारान बाबू ने पूछा, "आपकी इसमें सम्मति है ?"

गोरा ने कहा, "विनय ने तो मेरी सम्मति नहीं माँगी।"

हारान बाबू ने कहा, "आप क्या समझते हैं, विनय बाबू सच्चे विश्वास के साथ यह दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए हैं ?"

गोरा ने कहा, "जब वह दीक्षा लेने को राज़ी हुए हैं, तब आपका यह प्रश्न बिलकुल अनावश्यक है।"

हारान बाबू बोले, "प्रवृत्ति जब प्रबल हो उठती है तब हम यह सोचकर देखने का अवसर ही नहीं पाते कि क्या हम विश्वास करते हैं और क्या नहीं करते। आप तो मानव-चरित्र जानते ही हैं।"

गोरा ने कहा, "नहीं, मैं मानव-चरित्र के बारे में अनावश्यक चर्चा नहीं करता।"

हारान बाबू ने कहा, "मेरा मत और समाज आपसे अलग है, लेकिन मैं आपका सम्मान करता हूँ, मैं निश्चय जानता हूँ कि आपका जो विश्वास है, वह सही हो या मिथ्या, उससे कोई प्रलोभन आपको डिगा नहीं सकता। लेकिन…"

गोरा ने बात काटकर कहा, "मेरे लिए आपने यह जो ज़रा-सा सम्मान बचा रक्खा है, उसका ऐसा क्या मूल्य है कि उससे वंचित होकर विनय का कोई भारी नुकसान हो जायगा ! दुनिया में अच्छाई-बुराई नाम की चीज़ अवश्य है, लेकिन उसका मूल्य आप अगर अपनी श्रद्धा और अश्रद्धा के आधार पर ही लगाना चाहें तो लगा लें, पर फिर सबको वही मानने को न कहें।"

हारान बाबू ने कहा, "अच्छा, ख़ैर, इस, इस बात का फैसला अभी न भी हो तो कोई बात नहीं। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ, विनय जो परेश बाबू के यहाँ विवाह करने की कोशिश कर रहे हैं, आप क्या उसमें बाधा नहीं देंगे ?"

गोरा ने लाल होते हुए कहा, "हारान बाबू, विनय के बारे में ये सब बातें क्या मैं आपके साथ कर सकता हूँ ? आप जब हमेशा मानव-चरित्र की बात लिये रहते हैं, तब आपको यह भी समझना चाहिए कि विनय मेरा बन्धु है और आपका बन्धु वह नहीं है।"

हारान बाबू बोले, "इस मामले से ब्राह्म-समाज का भी सम्बन्ध है इसीलिए मैंने यह बात उठाई है, नहीं तो…"

गोरा ने कहा, "लेकिन मैं तो ब्राह्म समाज का कोई नहीं हूँ, मेरे लिए आपकी इस दुश्चिंता का क्या मूल्य है ?"

इसी समय सुचरिता कमरे में आई। हारान बाबू ने उससे कहा, "सुचरिता, तुम से मुझे कुछ खास बात कहनी है।"

यह कहने की कोई जरूरत हो ऐसा नहीं था; हारान बाबू ने ख़ामख़्वाह गोरा को यही जताने के लिए यह बात कही कि सुचरिता से उनकी विशेष घनिष्ठता है। सुचरिता ने उन्हें कोई जवाब नहीं दिया, गोरा भी अपनी जगह अटल बैठा रहा। हारान बाबू को एकांत बातचीत का मौक़ा देने के लिए उठ खड़े होने का कोई लक्षण उसने नहीं दिखाया।

हारान बाबू ने फिर कहा, "सुचरिता, ज़रा उस कमरे में आना तो, तुमसे एक बात कहनी है।"

सुचरिता ने उन्हें कोई उत्तर दिये बिना गोरा की ओर देखकर पूछा, "आपकी माँ अच्छी तरह है ?"

गोरा ने कहा, "ऐसा तो कभी हुआ ही नहीं कि वह अच्छी तरह न हों।"

सुचरिता ने कहा, "अच्छी तरह रहने की शक्ति उनके लिए कितनी सहज

है. यह मैं देख आई हूँ।"

गोरा को याद आया कि जब वह जेल में था, तब सुचरिता आनन्दमयी को देखने गई थी। इस बीच हारान बाबू ने हठात् मेज पर से एक किताब उठाकर उसे खोलकर पहले लेखक का नाम देखा, फिर किताब को इधर-उधर पलट-पलटकर देखने लगे।

सुचरिता का चेहरा लाल हो उठा। पुस्तक क्या है, यह गोरा जानता था, इसलिए वह मन-ही-मन हँसा।

हारान बाबू ने पूछा, "गौरमोहन बाबू, यह सब शायद आपके बचपन की रचनाएँ हैं।"

गोरा हँसकर बोला, "वह बचपन अब भी चालू है। किसी-किसी प्राणी का बचपन जल्दी समाप्त हो जाता है, किसी-किसी का बहुत दिन तक रहता है।"

सुचरिता ने कुर्सी से उठते हुए कहा, "गौर मोहन बाबू, आपके लिए जलपान तो तैयार हो गया होगा। तो आप ज़रा उस कमरे में चलिए—मौसी पानू बाबू के सामने तो आएँगी नहीं, वह आपकी प्रतीक्षा कर रही होंगी।"

यह अन्तिम बात सुचरिता ने विशेष रूप से हारान बाबू को चोट पहुँचाने के लिए ही कही। वह आज बहुत सह चुकी थी, कुछ जवाब दिये बिना न रह सकी।

गोरा उठ खड़ा हुआ। हारान बाबू बिना परास्त हुए बोले, "तो मैं यहीं प्रतीक्षा करता रहूँ।"

सुचरिता ने कहा, "फिजूल प्रतीक्षा करके क्या होगा, आज समय होना मुश्किल ही है।"

लेकिन हारान बाबू नहीं उठे। सुचरिता और गोरा कमरे से चले गये।

गोरा को इस घर में देखकर और उसके प्रति सुचरिता का व्यवहार लक्ष्य करके हारान बाबू का मन अस्त्र संभालता हुआ सजग हो उठा। ब्राह्म-समाज से सुचरिता क्या ऐसे स्खलित हो जायेगी? उसकी रक्षा करनेवाला क्या कोई नहीं है? जैसे भी हो उसका प्रतिरोध करना ही होगा। हारान बाबू एक कागज़ खींचकर सुचरिता को चिट्ठी लिखने बैठ गये। हारान बाबू के कुछ-एक बँधे हुए विश्वास थे, जिनमें एक यह भी था कि सत्य का नाम लेकर जब वह किसी को फटकारते हैं तो उनके तेजस्वी वाक्य कभी निष्फल नहीं जा सकते। केवल वाक्य ही सब कुछ नहीं है, मनुष्य का मन नाम की भी एक चीज़ है, इसकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता था।

जलपान के बाद काफी देर तक हरिमोहिनी के साथ बातचीत करके गोरा जब अपनी छड़ी लेने के लिए सुचरिता के कमरे में आया तब साँझ हो गई थी।

सुचरिता की डेस्क पर बत्ती जल रही थी। हारान बाबू चले गये थे। सुचरिता के नाम एक चिट्ठी मेज़ पर ऐसे रक्खी थी कि कमरे में प्रवेश करते ही उस पर नज़र जा पड़े।

उस चिट्ठी को देखकर गोरा का हृदय भीतर ही भीतर कठोर हो आया। चिट्ठी हारान बाबू की लिखी हुई है, इसमें उसे संदेह न था। सुचरिता पर हारान बाबू का कुछ विशेष अधिकार है यह गोरा जानता था, उस अधिकार में कोई बाधा आ गई है यह वह नहीं जानता था। आज जब सतीश ने हारान बाबू के आने की बात सुचरिता के कान में कही और सुचरिता चकित होकर जल्दी से नीचे चली गई और तुरन्त उन्हें साथ लेकर लौट आई तब उसे कुछ बेतुका-सा लगा। फिर जब हारान बाबू को कमरे में अकेला छोड़कर सुचरिता गोरा को खिलाने ले गई, तब उसका यह व्यवहार गोरा को कुछ खटका था अवश्य, लेकिन जहाँ घनिष्ठता हो वहाँ ऐसा रूखा व्यवहार भी चल सकता है, यह सोचकर गोरा ने इसे आत्मीयता का ही लक्षण मान लिया था। इसके ऊपर मेज़ पर यह चिट्ठी देखकर गोरा को और धक्का लगा। चिट्ठी एक बड़ी रहस्यमय चीज़ है, बाहर केवल नाम दिखाकर वह सारी बात भीतर रख लेती है इससे वह किसी को बिलकुल बिना कारण व्याकुल कर दे सकती है।

गोरा ने सुचरिता के चेहरे की ओर देखकर कहा, "मैं कल आऊँगा।"

सुचरिता ने आँखें मिलाए बिना कहा, "अच्छा।'

विदा लेते समय सहसा गोरा ने ठिठककर कहा, "भारतवर्ष के सौर मंडल में ही तुम्हारा स्थान है—तुम मेरे अपने देश की हो—कोई धूमकेतु आकर तुम्हें अपनी पूँछ की लपेट में लेकर शून्य में चला जावे, यह किसी तरह नहीं हो सकेगा। जहाँ तुम्हारी प्रतिष्ठा है वहीं तुम्हें दृढ़ता से प्रतिष्ठित करके ही मैं छोड़ूँगा। ये लोग तुम्हें समझाते रहे हैं कि उस जगह तुम्हारा सत्य और तुम्हारा धर्म तुम्हारा परित्याग कर देगा। मैं तुम्हें स्पष्ट बता दूंगा कि तुम्हारा सत्य और तुम्हारा धर्म केवल तुम्हारा या और दो-चार जन का मत या वाक्य नहीं है, वह चारों ओर से असंख्य प्राणों के सूत्र से बँधा है, चाहने से ही उसे वन से उखाड़कर गमले में नहीं रोपा जा सकता—उसे अगर उज्ज्वल और सजीव रखना चाहती हो, उसे सर्वाङ्ग रूप से सार्थक करना चाहती हो तो तुम्हें लोक-समाज के हृदय में उस जगह आसन लेना ही होगा जो तुम्हारे लिए तुम्हारे जन्म के बहुत पहले से निर्दिष्ट है। तुम किसी तरह यह नहीं कह सकोगी कि 'ये मेरे पराये हैं, मैं इनकी कोई नहीं हूँ'। ऐसा कहोगी तो तुम्हारा सत्य, तुम्हारा धर्म, तुम्हारी शक्ति सब एकाएक छाया-सी धुंधली हो जाएँगी। भगवान ने तुम्हें जिस जगह भेज दिया है वह चाहे जैसी

हो, लेकिन तुम्हारा मत अगर तुम्हें वहाँ से खींचकर हटा ले जायेगा तो उससे कभी तुम्हारे मत की जय नहीं होगी, यह बात मैं तुम्हें अच्छी तरह समझा दूंगा। कल मैं फिर आऊँगा।"

इतना कहकर गोरा चला गया। कमरे की भीतर की हवा मानो बहुत देर तक कांपती रही। सुचरिता मूर्त्ति-सी स्तब्ध बैठी रही।

५८

विनय ने आनन्दमयी से कहा, "देखो माँ, मैं तुम्हे सच कहता हूँ, जब-जब मैं मूर्त्ति को प्रणाम करता रहा हूँ मुझे मन-ही-मन न जाने कैसी शर्म आती रही है। उस शर्म को मैंने छिपा रखा है—बल्कि उल्टे मूर्त्ति-पूजा के समर्थन में अच्छे-अच्छे प्रबन्ध लिखता रहा हूँ। लेकिन सच्ची बात तुम्हें बता दूं. जब भी मैंने प्रणाम किया है मेरे अन्त:करण ने गवाही नहीं दी।"

आनन्दमयी ने कहा, "तेरा मन क्या सीधा है! तू तो मोटी बात कोई समझ ही नहीं सकता—पर बात में कोई न कोई बारीकी सोचता है। इसीलिए तेरे मन का खटका कभी मिटता नहीं।"

विनय ने कहा, "ठीक यही बात है, मेरी बुद्धि ज्यादा सूक्ष्म है तभी मैं जो विश्वास नहीं करता वह भी बाल की खाल उतारने वाली दलीलों से प्रमाणित कर दे सकता हूँ। जैसी सुविधा होती है वैसे अपने को या दूसरे को बहला लेता हूँ। इतने दिन मैं धर्म के बारे में जो कुछ तर्क करता रहा हूँ वह धर्म की ओर से नहीं, दल की ओर से ही करता रहा हूँ।"

आनन्दमयी ने कहा, "जब धर्म की ओर सच्चा आकर्षण न हो तब वैसा ही होता है। तब धर्म भी वंश, मान, रुपये-पैसे की तरह अहंकार करने की सामग्री बन जाता है।"

विनय—"हाँ, तब हम यह बात नहीं सोचते कि यह धर्म है, यही सोचकर लड़ते-भिड़ते हैं कि यह हमारा धर्म है। मैंने भी अब तक यही किया है। फिर भी मैं अपने को बिलकुल भुलावे में डाल सका हूँ ऐसा नहीं है, जहाँ मेरा विश्वास नहीं पहुँचता वहाँ मैं भक्ति का ढोंग करता रहा हूँ इस पर मैं बराबर अपने सामने ही शर्मिन्दा होता रहा हूँ।"

आनन्दमयी बोलीं, "यह क्या मैं समझती नहीं। तुम लोग जो साधारण लोगों

से बहुत बढ़-चढ़कर बातें करते हो इसी से स्पष्ट समझ में आ जाता है कि मन के भीतर कहीं खाली जगह है जिसे भरने के लिए तुम्हें बहुत मसाला खर्च करना पड़ता है। भक्ति सहज हो तो इतने की क्या जरूरत नहीं होती ?"

विनय ने कहा, "तभी तो तुमसे पूछने आया हूँ, कि जो मैं विश्वास नहीं करता उसमें विश्वास दिखाना क्या ठीक है ?"

आनन्दमयी ने कहा, "सुनो जरा ! यह भी कोई पूछने की बात है ?"

विनय ने कहा, "माँ, मैं कल ब्राह्म समाज में दीक्षा लूंगा।"

आनन्दमयी ने विस्मत होकर कहा, "यह क्यों. विनय ? दीक्षा लेने की ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी ?"

विनय ने कहा, "क्यों जरूरत आ पड़ी, यही बात तो अब तक समझा रहा था !"

आनन्दमयी ने पूछा, "तेरे जो विश्वास हैं उन्हें लेकर क्या तू हम लोगों के समाज में नहीं रह सकता ?"

विनय ने कहा, "रहूँगा तो वह धोखा जो होगा।"

आनन्दमयी बोलीं, "धोखा किये बिना रहने का साहस नहीं है ? समाज के लोग सतायेंगे तो क्या उसे सहता हुआ नहीं रह सकेगा ?"

विनय ने कहा. "माँ, मैं अगर हिन्दू-समाज के मत पर नहीं चलता तो···"

आनन्दमयी ने कहा, 'हिन्दू-समाज में जहाँ तीन सौ तैंतीस करोड़ मत चलते हैं वहाँ तेरा भी मत क्यों न चलेगा ?"

विनय ने कहा, "लेकिन माँ, हमारे समाज के लोग अगर कहें कि 'तुम हिन्दू नहीं हो' तो मैं क्या जबरदस्ती कहूँगा कि मैं हिन्दू हूँ ?"

आनन्दमयी ने कहा, "मुझे तो हमारे समाज के लोग खि्स्तान कहते हैं—मैं तो उनके काज-कर्म में उनके साथ बैठती-खाती नहीं। फिर भी उनके मुझे खि्स्तान कहने से ही यह बात मुझे भी मान लेनी होगी, यह तो मेरी समझ में नहीं आता। जिसे मैं उचित मानती हूँ उसके लिए भागकर कहीं जा छिपना मैं ग़लत समझती हूँ।"

विनय कुछ उत्तर देने जा रहा था कि आनन्दमयी ने उसे मौका न देकर कहा. "विनय, मैं तुझे बहस करने नही दूंगी, यह बहस की बात नहीं है। तू मुझ से कुछ छिपा नहीं सकता। मुझे तो दीखता है कि तू मेरे साथ बहस करने के बहाने जबरदस्ती अपने को भुलाने की कोशिश कर रहा है। लेकिन इतने बड़े महत्त्व के मामले में यों अपनी आँखों में धूल डालने की कोशिश न कर।"

विनय ने सिर झुकाकर कहा, "लेकिन माँ, मैंने चिट्ठी लिखकर वचन दे दिया

है कि मैं कल दीक्षा लूंगा।"

आनन्दमयी ने कहा, "यह नहीं हो सकता। परेश बाबू को अगर समझाकर कहेगा तो वह कभी जोर नहीं डालेंगे।"

विनय ने कहा, "परेश बाबू का इस दीक्षा के लिए कोई उत्साह नहीं है। वह इस अनुष्ठान में योग नहीं देंगे।"

आनन्दमयी ने कहा, "तब तुझे कुछ सोचने की ज़रूरत नहीं है।"

विनय ने कहा, "नहीं माँ, बात पक्की हो गई है, अब वापस नहीं हो सकती—किसी तरह नही।"

आनन्दमयी ने पूछा, "गोरा को बताया है?"

विनय ने कहा, "गोरा से भेंट ही नहीं हुई।"

आनन्दमयी ने कहा, "क्यों—गोरा क्या अभी घर में नहीं है?"

विनय ने कहा, "नहीं, सुना है कि सुचरिता के घर गया है।"

आनन्दमयी ने विस्मित होकर कहा, "वहाँ तो वह कल गया था।"

विनय ने कहा, "आज भी गया है।"

इसी बीच आँगन में पालकी वालों की आवाज़ सुनाई दी। यह सोचकर कि आनन्दमयी के कुटुम्ब की कोई स्त्रियाँ आई होंगी विनय बाहर चला गया।

ललिता ने आकर आनन्दमयी को प्रणाम किया। आज आनन्दमयी ने ललिता के आने की बात कल्पना में भी नही सोची थी। विस्मित होकर ललिता के चेहरे की ओर देखते ही उन्होंने समझ लिया कि विनय की दीक्षा के मामले को लेकर किसी असमंजस में पड़कर वह उसके पास आई है।

बात करना आसान बनाने के खयाल से उन्होंने कहा, "बेटी, तुम आ गई यह बड़ा अच्छा हुआ। अभी-अभी विनय यहाँ थे. कल वह तुम लोगों के समाज मे दीक्षा लेंगे, मेरे साथ यही बात हो रही थी।"

ललिता ने कहा, "वह क्यों दीक्षा लेने जा रहे हैं, उन्हें क्या ज़रूरत है?"

आनन्दमयी ने अचंभे में आकर कहा, "ज़रूरत नहीं है, बेटी?"

ललिता ने कहा, "मुझे तो सोचकर भी कोई नहीं दीखती।"

ललिता का अभिप्राय न समझ पाकर आनन्दमयी चुपचाप उसके चेहरे की ओर देखती रहीं।

ललिता ने मुँह नीचा किये हुए कहा, "एकाएक इस ढंग से दीक्षा लेने आना उनके लिए अपमान की बात है। यह अपमान वह किस लिए स्वीकार करने चले हैं?"

किसलिए? यह क्या ललिता नहीं जानती? इसमे क्या ललिता के प्रसन्न

होने का कोई कारण नहीं है ?

आनन्दमयी ने कहा, "कल ही दीक्षा का दिन है, उसने पक्का वचन दिया है-- अब बदलने का समय नहीं है, विनय ने तो ऐसा ही कहा था।"

ललिता ने अपनी दीप्त दृष्टि आनन्दमयी के चेहरे पर टिकाकर कहा, "इन सब मामलों में वचन देने का कोई मतलब नहीं है, अगर परिवर्तन आवश्यक हो तो करना ही होगा।"

आनन्दमयी ने कहा, "बेटी, तुम मुझ से लज्जा न करो मैं तुम्हे सारी बात बताती हूँ। यही मैं अब तक विनय को समझा रही थी कि उसका धर्म-विश्वास चाहे जो हो, समाज को छोड़ना उसके लिए उचित नहीं है, जरूरी भी नही है। वह मुंह से चाहे जो कहता हो, वह खुद यह बात न समझता हो ऐसा भी नही लगता। लेकिन बेटी, उसके मन का भाव तुमसे तो छिपा नहीं है। वह जरूर यही समझता है कि समाज छोड़े बिना तुम लोगों से उसका सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। लज्जा न करो, बेटी, मुझे ठीक-ठीक बताओ, यह बात क्या सच नही ?"

ललिता ने आनन्दमयी के चेहरे की ओर आँखे उठाकर कहा, "माँ, तुम से मै कुछ भी नहीं छिपाऊँगी। मैं तुमसे कहती हूँ, मैं यह सब नहीं मानती। मैंने बहुत अच्छी तरह सोचकर देखा है, ऐसा कभी नहीं हो सकता कि मनुष्य का जो भी धर्म-विश्वास या समाज हो उसे बिलकुल छोड़कर ही मनुष्यों का परस्पर योग हो सकेगा। ऐसा हो तो हिन्दू और ख्रिस्तान में दोस्ती ही नहीं हो सकती। तब तो बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी करके एक-एक सम्प्रदाय को एक-एक बाड़े में बन्द कर देना ही उचित है।"

आनन्दमयी का चेहरा चमक उठा। उन्होंने कहा "अहा, तुम्हारी बातें सुनकर बड़ी खुशी हो रही है। मैं भी तो यही बात कहती हूँ. एक व्यक्ति से और एक व्यक्ति का रूप-गुण-स्वभाव कुछ न मिलने पर भी दोनों के मिलने में कोई बाधा नही होती—फिर मत लेकर ही क्यों बाधा हो ? बेटी. तुमने तो मुझे बचा लिया मैं विनय के लिए बड़ी चिन्तित थी। उसने अपना सारा मन तुम लोगो को सौप दिया न, यह मै जानती हूँ, तुम लोगों से उसके सम्बन्ध पर कहीं कोई चोट आई तो विनय उसे किसी तरह नही सह सकेगा। इसीलिए उसे रोकना मुझे कितना खटक रहा था, यह ईश्वर ही जानता है। लेकिन उसका कितना बड़ा सौभाग्य है कि उसका इतना बड़ा संकट इतनी आसानी से कट जाय। यह कोई छोटी बात नहीं है। अच्छा, एक बात पूछूं, परेश बाबू से इस बारे मे क्या कोई बात हुई है ?"

ललिता ने अपनी लज्जा दबाते हुए कहा, "नहीं, नही हुई। लेकिन मैं जानती हूँ, वह सब ठीक-ठीक समझेंगे।"

आनन्दमयी ने कहा, "वही न समझने वाले होते तो इतनी बुद्धि और मनोबल तुम और कहाँ से पातीं ? बेटी, मैं विनय को बुला लाऊँ, तुम्हारा उससे अपने मुँह से बातचीत कर लेना ठीक होगा। इस बीच में एक बात तुमसे कह लूँ—विनय को मैं छुटपन से देखती आ रही हूँ, वह ऐसा लड़का है कि उसके लिए तुम्हें चाहे जितना दु:ख स्वीकार करना पड़े वह उस सबको सार्थक कर देगा, यह मैं दावे के साथ कह सकती हूँ। मैंने कई बार सोचा है, वह कौन भाग्यवती होगी जो विनय को पावेगी। बीच-बीच में कई सम्बन्धों की बात आई है पर मुझे कोई पसन्द नहीं हुआ। लेकिन आज देख सकती हूँ कि वह भी कुछ कम भाग्यवान् नहीं है।"

इतना कहती हुई आनन्दमयी ने ललिता की ठोड़ी छूकर चुम्बन लिया और फिर विनय को बुलवा भेजा। फिर लछमिया को कमरे में छोड़ वह ललिता के लिए जलपान लाने की बात कहकर वहाँ से चली गईं।

आज ललिता और विनय के बीच संकोच की और गुंजाइश न थी। दोनों के जीवन पर जो समान संकट आ खड़ा हुआ था, उसी की चुनौती ने उनके परस्पर सम्बन्ध को सहज और गहरा कर दिया था। किसी आवेश का धुआँ उनके बीच कोई रंगीन आवरण नहीं खड़ा कर रहा था। बिना किसी चर्चा के विनीत गम्भीर भाव से चुपचाप और कुण्ठित हुए बिना उन्होंने यह बात स्वीकार कर ली थी कि दोनों के हृदय मिल गये हैं, और उनके जीवन की धाराएँ गंगा-यमुना की तरह एक पुण्य तीर्थ पर मिलने के लिए बढ़ रही हैं। समाज ने उन दोनों को नहीं बुलाया, किसी सम्प्रदाय ने उन दोनों को नहीं मिलाया, उन दोनों का बन्धन कोई कृत्रिम बन्धन नहीं है, यह स्मरण करके दोनों ने अपने मिलन को एक ऐसे धर्म-मिलन के रूप में अनुभव किया, जिसका धर्म अत्यन्त वृहत् भाव से सरल है, जो किसी छोटी बात को लेकर विवाद नहीं करता, जिसमें कोई पंचायती पण्डित अड़ंगा नहीं लगा सकते। ललिता ने दीप्त चेहरे और आँखों से कहा, "आप अपने को छोटा करके और हेठे होकर मुझे ग्रहण करने आयेंगे, यह अपमान मैं नहीं सह सकूँगी। आप जहाँ हैं वहीं अविचलित रहें, यही मैं चाहती हूँ।"

विनय ने कहा, "आप भी जहाँ आपकी प्रतिष्ठा है वहीं स्थिर रहें, आपको वहाँ से ज़रा भी हिलना न होगा। प्रीति अगर प्रभेदों को न सह सकती, तो फिर दुनिया में कोई प्रभेद होता ही क्यों ?"

दोनों में लगभग बीस मिनट तक जो कुछ बातचीत हुई उसका सार यही था। वे हिन्दू हैं या ब्राह्म, इस सवाल को वे भूल गये, उनके मन में निष्कम्प दीप-शिखा-सी यही बात जलने लगी कि वे दोनों मानव आत्माएँ हैं।

५६

परेश बाबू उपासना के बाद अपने कमरे के सामने के बरामदे में चुपचाप बैठे थे। सूर्य अभी-अभी अस्त हुआ था।

इसी समय ललिता को साथ लेकर विनय वहां पहुंचा। परेश बाबू को प्रणाम करके उसने उनकी चरण-धूलि ली।

दोनों को इस ढंग से प्रवेश करते देखकर परेश बाबू कुछ विस्मित हुए। वहां उन्हें बैठाने के लिए और कुर्सियां न थीं, इसलिए वह बोले, "चलो, कमरे में चलें।" विनय ने कहा, "नहीं, आप उठें नहीं।" और वहीं फर्श पर बैठ गया। ललिता भी उससे कुछ हटकर परेश बाबू के पैरों के पास बैठ गई।

विनय ने कहा, "हम दोनों एक साथ आपका आशीर्वाद लेने आए हैं। वही हमारे जीवन की सच्ची दीक्षा होगी।"

परेश बाबू विस्मित होकर उसके चेहरे की ओर ताकते रहे।

विनय बोला, "बँधे-बँधाये नियमों वाले समाज की प्रतिज्ञाएँ मैं नहीं ग्रहण करूंगा। हम दोनों के जीवन विनत होकर जिस दीक्षा के सच्चे बन्धन में बँध सकते हैं, वह दीक्षा आपका आशीर्वाद ही है। हम दोनों का हृदय भक्तिपूर्वक आप ही के चरणों में प्रणत हुआ है. हम लोगों के लिए जो भी मंगलमय है, वह ईश्वर आपके हाथों से ही दिलावेंगे।"

परेश बाबू थोड़ी देर बिना कुछ कहे बैठे रहे। फिर उन्होंने कहा, "विनय, तब तुम ब्राह्म नहीं होओगे ?"

विनय ने कहा, "नहीं।"

परेश बाबू ने पूछा, "तुम हिन्दू समाज में ही रहना चाहते हो ?"

विनय ने कहा, "हां।"

परेश बाबू ने ललिता के चेहरे की ओर देखा, ललिता ने उनके मन का भाव समझकर कहा, "बाबा, मेरा जो भी धर्म है वह मेरा है और बराबर रहेगा। मुझे असुविधा हो सकती है, कष्ट भी हो सकता है लेकिन मैं यह किसी तरह नहीं मान सकती कि जिससे मेरा मत या कि मेरा आचरण भी नहीं मिलता उन्हें पराया मानकर दूर रक्खे बिना मेरे धर्म में बाधा होगी।"

परेश बाबू चुप हो रहे। ललिता फिर बोली, "पहले मुझे लगता था कि ब्राह्म समाज ही एकमात्र दुनिया है और उसके बाहर जो कुछ है सब छाया है, ब्राह्म समाज से अलग होना मानो समूचे सत्य से ही अलग होना है। लेकिन इधर कुछ दिनों से मेरा यह विचार बिलकुल बदल गया है।"

परेश बाबू उदास भाव से तनिक मुस्करा दिये। ललिता कहती गई, "बाबा, मैं तुम्हें बता नहीं सकती कि मुझ में कितना बड़ा परिवर्त्तन हो गया है। ब्राह्म समाज में मैं जिन सब लोगों को देखती हूँ उनमें से बहुतों के साथ मेरा धर्ममत एक होने पर भी मैं तो उनके साथ किसी तरह भी एक नहीं हूँ। फिर भी ब्राह्म समाज के निरे नाम का सहारा लेकर मैं केवल उन्हीं को विशेष रूप से अपना कहूँ, और पृथ्वी के सब लोगों को दूर कर दूँ, यह अब मुझे किसी तरह ठीक नहीं जान पड़ता।"

परेश बाबू ने अपनी विद्रोही कन्या की पीठ धीरे-धीरे थपथपाते हुए कहा, "जिस समय मन व्यक्तिगत कारणों से उत्तेजित हो, उस समय क्या ठीक से विचार हो सकता है? पुरखों से लेकर आने वाली सन्तान तक मनुष्य की जो एक परम्परा है उसका मंगल चाहने पर ही समाज की जरूरत होती है, और वह जरूरत तो कृत्रिम जरूरत नहीं है। तुम्हारे भावी वंश में जो दूरव्यापी भविष्य निहित है, उसका भार जिस पर होगा वही तुम्हारा समाज है, उसकी बात क्या नहीं सोचनी चाहिए?"

विनय ने कहा, "हिन्दू समाज तो है।"

परेश बाबू ने कहा, "अगर हिन्दू समाज तुम लोगों का भार न ले—न स्वीकार करे?"

विनय ने आनन्दमयी की बात स्मरण करके कहा, "उसे स्वीकार कराने का भार हमें लेना होगा। हिन्दू समाज ने तो हमेशा नये-नये सम्प्रदायों को आश्रय दिया है, हिन्दू समाज सभी सम्प्रदायों का समाज हो सकता है।"

परेश बाबू ने कहा, "ज़बानी बहस में किसी चीज़ को एक ढंग से दिखाया जा सकता है, लेकिन व्यवहार में वैसा नहीं पाया जाता। नहीं तो क्या कोई जान-बूझ कर अपने पुराने समाज को छोड़ सकता है? जो समाज मनुष्य के धर्मबोध को बाहरी आचरण की बेड़ियाँ पहनाकर एक ही जगह बन्दी बनाकर रखना चाहता है, उसे मानने पर तो अपने को हमेशा के लिए कठपुतली बना रखना होगा।"

विनय ने कहा, "हिन्दू समाज की ऐसी ही संकीर्ण हालत हो गई हो तो उससे उसे मुक्त करने की ज़िम्मेदारी हमें लेनी होगी। हवा और रोशनी के लिए अगर घर की खिड़कियाँ-दरवाज़े बड़े कर देना काफी हो तो कोई यों ही गुस्से में आकर सारे पक्के मकान को क्यों गिराना चाहेगा?"

ललिता कह उठी, "बाबा, ये सब बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। किसी समाज की उन्नति का भार लेने का मेरा कोई संकल्प नहीं है। लेकिन चारों ओर से ऐसा अन्याय मुझे दबा रहा है कि मेरा दम घुटने लगा है। यह सब सहकर सिर

ऊँचा किये रहना मुझे किसी तरह या किसी भी कारण ठीक नहीं जान पड़ता। उचित-अनुचित भी मैं अच्छी तरह नहीं समझ सकती—लेकिन बाबा, यह मुझसे नहीं होता।"

परेश बाबू ने स्निग्ध स्वर से कहा, "और कुछ समय लेना क्या अच्छा न होगा? अभी तुम्हारा मन चंचल है।"

ललिता ने कहा, "समय लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन मैं निश्चय जानती हूँ कि झूठी बातें और अन्याय-अत्याचार बढ़ते ही जावेंगे। इसलिए मुझे बड़ा डर लगता है कि असह्य हो जाने पर कहीं मैं अचानक ऐसा कुछ न कर बैठूँ जिससे तुम्हें भी कष्ट हो। बाबा, तुम ऐसा न समझो कि मैंने कुछ सोच-विचार नहीं किया। मैंने अच्छी तरह सोचकर देख लिया है कि मेरे संस्कार और मेरी शिक्षा जैसी है उससे ब्राह्म समाज के बाहर शायद मुझे बहुत कष्ट और संकोच भी भोगना पड़ सकता है— लेकिन मेरा मन उससे ज़रा भी कुण्ठित हो बल्कि मन के भीतर एक शक्ति और आनन्द जाग रहा है। मुझे एक ही बात की सोच है, बाबा, कि कहीं मेरा कोई काम तुम्हें किसी तरह की तकलीफ़ न पहुँचावे।"

यह कहकर ललिता धीरे-धीरे परेश बाबू के पैरों पर हाथ फेरने लगी।

परेश बाबू ने थोड़ा मुस्कराकर कहा, "बेटी, मैं अगर अकेली अपनी बुद्धि पर ही निर्भर करता तो मेरी इच्छा और मेरे मत के विरुद्ध कोई काम होने पर मुझे दुःख होता। पर तुम लोगों के मन में जो आवेग उत्पन्न हुआ है वह सम्पूर्णतया अमंगल ही है, ऐसा मैं दावा करके नही कह सकता। मैं भी एक दिन विद्रोह करके घर छोड़कर चला आया था, किसी सुविधा-असुविधा की बात तब मैंने सोची ही नहीं। आजकल समाज पर बराबर यह जो घात-प्रतिघात हो रहे हैं इनसे समझा जा सकता है कि उसी (ईश्वर) की शक्ति अपना काम कर रही है। वह चारों ओर से तोड़-फोड़, सँवार-सुधारकर किस चीज़ को कैसा बनाना चाहता है, यह मैं कैसे जान सकता हूँ? उसके लिए क्या ब्राह्म समाज और क्या हिंदू समाज, वह तो मनुष्य को देखता है।"

इतना कहकर परेश बाबू थोड़ी देर आँखें बन्द करके मानो अपने अंतःकरण के एकांत में अपना समाधान करते रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "देखो विनय हमारे देश का समाज धर्म-विश्वासों के साथ संपूर्णतया बँधा हुआ है। इसीलिए हमारे सभी सामाजिक क्रिया-कर्म के साथ धार्मिक अनुष्ठान का योग है। जो लोग धर्म-विश्वास के घेरे के बाहर हैं उन्हें समाज के घेरे में किसी तरह नहीं लिया जा सकता, इसीलिए उसके लिए रास्ता नहीं रखा गया। इस बात को तुम लोग कैसे टालोगे, मैं तो यह सोच नहीं पाता।"

यह बात ललिता अच्छी तरह नहीं समझ सकी, क्योंकि दूसरे समाज की प्रथाओं से उसके समाज का भेद उसके लिए प्रत्यक्ष नहीं हुआ था। उसकी यही धारणा थी कि मोटे तौर पर दोनों के आचार-अनुष्ठान में बहुत अधिक अंतर नहीं है। जैसे उसने विनय के साथ अपने घर के लोगों का विशेष अंतर अनुभव नहीं किया था, वैसे ही वह दोनों समाजों की परस्पर स्थिति समझती थी। वह यह भी नहीं जानती थी कि उसके लिए हिन्दू पद्धति से विवाह-अनुष्ठान में कोई विशेष बाधा भी हो सकती है।

विनय ने कहा, "हम लोगों में विवाह शालग्राम स्थापित करके होता है, आप उसी की बात कह रहे हैं ?"

परेश बाबू ने एक बार ललिता की ओर देखकर कहा, "हां ! ललिता, क्या वह स्वीकार कर सकेगी ?"

विनय ने ललिता के चेहरे की ओर देखा। वह समझ सका कि ललिता का समस्त अन्तःकरण संकुचित हो उठा है।

ललिता के हृदय का आवेग एक ऐसे बिंदु पर आ पहुँचा था जो उसके लिए बिलकुल अपरिचित और संकटमय था। इससे विनय के मन में बड़ी करुणा उपजी। सारा आघात अपने पर लेकर इसे किसी तरह बचाना होगा। इतना बड़ा तेज हार-कर लौट जाय यह भी उतना ही असह्य है, और विजय के दुर्दम उत्साह मे वह मृत्युबाण छाती पर झेल ले यह भी उतना ही दारुण ! उसे विजयी भी बनाना होगा, उसकी रक्षा भी करनी होगी।···

ललिता थोड़ी देर सिर झुकाये बैठी रही। फिर विनय की ओर एक बार करुण दृष्टि से देखती हुई बोली, "आप क्या सचमुच शालग्राम को मानते हैं ?"

विनय ने फ़ौरन कहा, "नहीं, नहीं मानता। शालग्राम मेरे लिए देवता नहीं है, मेरे लिए केवल एक सामाजिक चिह्न है।"

ललिता ने कहा, "मन-ही-मन जिसे केवल चिह्न मानते हैं, बाहर से तो उसे देवता स्वीकार करना होगा ?"

विनय ने परेश की ओर देखकर कहा, "मैं शालग्राम नहीं रखूंगा।"

परेश बाबू कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए। बोले, "विनय, तुम लोग सारी बात अच्छी तरह सोचकर नही देख रहे हो। बात अकेले तुम्हारे या और किसी के मता-मत की नहीं है। विवाह तो केवल व्यक्तिगत कर्म नहीं है, वह सामाजिक कर्म है, यह भूल जाने से कैसे चलेगा ? तुम लोग थोड़े दिन और सोचकर देख लो, अभी एकाएक कुछ तय न कर लो।"

इतना कहकर परेश बाबू बाहर बगीचे में चले गये और वहीं अकेले टहलने लगे।

ललिता भी उठकर जाने को हुई पर कुछ रुककर विनय की ओर लौटकर बोली, "हम लोगों की इच्छा अगर अनुचित नहीं है तो उसके किसी एक समाज के विधान से पूरी तरह मेल न खाने के कारण ही हमें सिर नीचा करके वापस लौट जाना होगा, यह मेरी समझ में किसी तरह नहीं आता। समाज में मिथ्या आचरण के लिए जगह है, और सच्चाई के लिए नहीं है ?"

विनय ने धीरे-धीरे ललिता के पास आ खड़े होकर कहा, "मैं किसी समाज से नहीं डरता। हम दोनों मिलकर अगर सच्चाई का आसरा लें तो हमारे समाज के बराबर बड़ा समाज और कहाँ मिलेगा ?"

तभी आँधी की तरह वहाँ आकर वरदासुन्दरी ने कहा, "विनय, सुनती हूँ कि तुम दीक्षा नहीं लोगे ?"

विनय बोला, "मैं उपयुक्त गुरु से दीक्षा लूँगा, किसी समाज से नहीं।"

वरदासुन्दरी ने बहुत बिगड़कर कहा, "तुम्हारे इस सब षड्यन्त्र और धोखा-धड़ी का मतलब क्या है ? दीक्षा लेने का बहाना करके दो दिन तक मुझे और सारे ब्राह्म समाज को चक्कर में डालने का क्या मतलब था तुम्हारा ? ललिता का तुम कैसा सर्वनाश किये दे रहे हो, यह बात क्या तुमने एक बार भी नहीं सोची !"

ललिता ने कहा, "विनय बाबू के दीक्षा लेने पर तुम्हारे ब्राह्म समाज के सब लोग तो सहमत नहीं हैं। अखबार में तो पढ़कर देख ही लिया ! ऐसी दीक्षा लेने की ज़रूरत क्या है ?"

वरदासुन्दरी ने कहा, "दीक्षा लिये बिना विवाह कैसे होगा ?"

ललिता ने कहा, "क्यों नहीं होगा ?"

वरदासुन्दरी बोली, "क्या हिन्दू पद्धति से होगा ?"

विनय ने कहा, "वह भी हो सकता है। इसमें जो भी बाधा है वह दूर कर दूँगा।"

वरदासुन्दरी के मुँह से थोड़ी देर कोई बात ही नहीं निकली। फिर उन्होंने रुँधे गले से कहा, "विनय, तुम जाओ, यहाँ से चले जाओ ! इस घर में फिर कभी न आना !"

६०

सुचरिता जानती थी कि गोरा आज निश्चय ही आयेगा। सवेरे से ही उसका हृदय रह-रहकर काँप उठता था। गोरा के आने की आशा के साथ-साथ उसके

मन में एक डर भी बैठा हुआ था। कारण कि गोरा उसे जिधर खींच रहा था, और बचपन से ही उसके जीवन की जड़ें और डालें जिस दिशा में बढ़ती रही थीं, उनमें पग-पग पर जो संग्राम हो रहा था वह उसे विचलित किये दे रहा था।

इसीलिए कल जब गोरा ने मौसी के कमरे में देवता को प्रणाम किया तब सुचरिता के मन में तीर-सा चुभ गया। गोरा ने प्रणाम कर ही लिया तो क्या, और उसका ऐसा विश्वास हो ही तो क्या, यह कहकर वह अपने को किसी तरह शान्त न कर सकी।

गोरा के आचरण में जब कभी उसे ऐसा कुछ दीखता जिसके साथ उसके अपने धर्म-विश्वास का मूलगत विरोध हो, तब सुचरिता का मन आशंका से काँप उठता। यह किस झगड़े में विधाता उसे डाल रहे हैं!

नये मत की अभिमानिनी सुचरिता के सामने अच्छा उदाहरण रखने के लिए हरिमोहिनी आज भी गोरा को अपने पूजा-घर में ले गईं, और आज भी गोरा ने देवता को प्रणाम किया। गोरा के उतरकर सुचरिता के कमरे में आते ही सुचरिता ने उसे पूछा, "आप क्या इस देवता में श्रद्धा रखते हैं?"

गोरा ने मानो कुछ अस्वाभाविक आग्रह से कहा, "हाँ, ज़रूर रखता हूँ!"

यह उत्तर सुनकर सुचरिता सिर झुकाये बैठी रही। उसकी इस नम्र-नीरव वेदना से गोरा के मन को थोड़ी चोट पहुँची। उसने जल्दी से कहा, "देखो, मैं तुमसे सच बात कहूँ। मैं मूर्त्ति में श्रद्धा रखता हूँ या नहीं, यह ठीक-ठीक नहीं कह सकता, लेकिन मैं अपने देश की श्रद्धा में श्रद्धा रखता हूँ। इतने युगों से सारे देश की पूजा जहाँ पहुँचती रही है वह मेरे लिए पूजनीय है। मैं किसी तरह ख्रिस्तान मिशनरियों की तरह उसकी ओर विष-भरी दृष्टि से नहीं देख सकता।"

सुचरिता मन-ही-मन कुछ सोचती हुई गोरा के चेहरे की ओर ताकती रही। गोरा ने कहा, "मेरी बात ठीक-ठीक समझना तुम्हारे लिए बहुत कठिन है, यह मैं जानता हूँ। उसका कारण यही है कि सम्प्रदाय के भीतर रहते हुए इन सब चीजों की ओर मनुष्य होकर सहज दृष्टि से देखने की शक्ति तुम लोगों में नहीं रही। तुम जब अपनी मौसी के कमरे में मूर्त्ति को देखती हो तो केवल पत्थर को ही देखती हो जब कि मैं तुम्हारी मौसी के भक्ति-पूर्ण करुण हृदय को देखता हूँ। वह देखकर क्या मैं क्रोध या अवज्ञा कर सकता हूँ? तुम क्या समझती हो कि उस हृदय का देवता निरा पत्थर का देवता है?"

सुचरिता ने कहा, "श्रद्धा करना ही क्या काफ़ी है? किसमें श्रद्धा, यह क्या बिलकुल नहीं सोचना होगा?"

गोरा ने कुछ उत्तेजित होकर कहा, "मतलब यह कि तुम समझती हो, एक

सीमाबद्ध पदार्थ को ईश्वर कहकर पूजा करना भ्रम है। लेकिन सीमा का निर्णय क्या देश-काल की ओर से ही करना होगा ? सोचो कि ईश्वर के बारे में शास्त्र का कोई वाक्य याद करने से तुम्हारे मन से श्रद्धा जागती है, तब जिस पन्ने पर वह वाक्य लिखा है उसी को नापकर और उसके अक्षर गिनकर ही क्या तुम उस वाक्य का महत्त्व स्थिर करोगी ? भाव की असीमता तो विस्तार की असीमता से कहीं बड़ी चीज़ है। चन्द्र, सूर्य और तारों-भरे अनन्त आकाश की अपेक्षा यह छोटी-सी मूर्त्ति ही तुम्हारी मौसी के लिए वास्तव में असीम है। तुम परिमाण में असीम को ही असीम मानती हो, इसीलिए तुम्हें आँख बन्द करके असीम की बात सोचनी होती है। उससे कोई फल मिलता है कि नहीं, मैं नहीं जानता। लेकिन हृदय के असीम को आँखें खोलकर छोटी-सी चीज़ में भी पाया जा सकता है। यदि न पाया जा सकता तो संसार के सब सुख नष्ट हो जाने पर भी तुम्हारी मौसी उस एक मूर्त्ति को ऐसे जकड़कर थामे हुए कैसे रह सकतीं ? हृदय का इतना बड़ा सूनापन क्या खेल-ही-खेल में एक पत्थर के टुकड़े से भर दिया जा सकता ? बिना भाव की असीमता के मानव-हृदय का रिक्त भरा ही नहीं जा सकता।"

इस सब सूक्ष्म तर्कों का उत्तर देना सुचरिता के बस की बात नहीं थी, लेकिन इन्हें सत्य मान लेना भी उसके लिए बिलकुल असम्भव था। इसलिए एक भाषा-हीन निरुपाय वेदना मन को कचोटती रह जाती।

विरोधी पक्ष से तर्क करते समय गोरा के मन में कभी भी ज़रा-सी भी दया का संचार नहीं होता। बल्कि ऐसे मौकों पर उसके मन में किसी शिकारी जन्तु-सी कठोर हिंस्रता जाग उठती। लेकिन सुचरिता की निरुत्तर हार से आज उसका मन न जाने क्यों व्यथित होने लगा। उसने अपने स्वर को भरसक कोमल करते हुए कहा, "तुम लोगों के धर्म-मत के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कहना चाहता। मेरी बात केवल इतनी है कि तुम जिसे मूर्त्ति कहकर निन्दा कर रही हो वह मूर्त्ति क्या है, यह केवल आँखों से देखकर जाना ही नहीं जा सकता। उससे जिसके मन को शान्ति मिली है, जिसका हृदय तृप्त हुआ है, जिसके जीवन को सहारा मिला है, वही जानता है कि वह मूर्त्ति मृण्मय है कि चिन्मय, ससीम है कि असीम। मैं तुम से कहता हूँ, हमारे देश का कोई भी भक्त ससीम की पूजा नहीं करता। सीमा में ही सीमा को भुला देना— यही तो उनकी भक्ति का आनन्द है !"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन सभी तो भक्त नहीं होते।"

गोरा ने कहा, "जो भक्त नहीं हैं उनके किसी की भी पूजा करने से किसी का क्या आता-जाता है ? ब्राह्म समाज में भी जिनमें भक्ति नहीं है वे क्या करते

हैं ? उनकी सारी पूजा किसी अतल शून्य में जा गिरती है। नहीं, बल्कि वह तो शून्यता से भी अधिक भयानक है—क्योंकि दलबन्दी ही उनका देवता है और अहंकार उनका पुरोहित। इस रक्त-पिपासु देवता की पूजा क्या तुम लोगों के समाज में कभी नहीं होती ?"

इस बात का कोई उत्तर न देकर सुचरिता ने गोरा से पूछा, "धर्म के बारे में आप यह जो कुछ कह रहे हैं, वह क्या अपनी जानकारी से ही कह रहे हैं ?"

गोरा ने कुछ मुस्कराकर कहा, "यानी तुम यह जानना चाहती हो कि मैंने कभी ईश्वर को चाहा है या नहीं। नहीं, मेरा मन उधर नहीं गया।"

सुचरिता के लिए यह बात कोई खुश होने की नहीं थी, लेकिन फिर भी उसे मानो तसल्ली मिली। इस मामले में अधिकारपूर्वक कुछ कहने की स्थिति गोरा की नहीं है, इससे उसे एक प्रकार की निश्चिन्तता ही हुई।

गोरा ने कहा, "किसी को धर्म-शिक्षा दे सकने का मेरा कोई दावा नहीं है। लेकिन मेरे देश के लोगों की भक्ति का तुम लोग उपहास करो, यह भी मैं नहीं सह सकता। तुम अपने देश के लोगों को पुकारकर कहती हो, 'तुम लोग मूर्ख हो, तुम लोग मूर्तिपूजक हो।' मैं उन सबको पुकारकर कहना चाहता हूँ, 'नहीं, तुम लोग मूर्ख नहीं हो, तुम लोग मूर्तिपूजक भी नहीं हो, तुम लोग ज्ञानी हो, भक्त हो।' मैं अपनी श्रद्धा के द्वारा देश के हृदय को हमारे धर्म-तत्त्व की महत्ता और भक्ति-तत्त्व की गम्भीरता के प्रति जागृत करना चाहता हूँ, उनकी जो सम्पत्ति है उसमें उनका अभिमान जगाना चाहता हूँ। मैं उनका माथा झुकाना नहीं चाहता, न यही चाहता हूँ कि उनमें अपने प्रति धिक्कार का भाव पैदा हो और वे सत्य के प्रति अन्धे हो जाएं। यही मेरी प्रतिज्ञा है। तुम्हारे पास भी मैं आज इसीलिए आया हूँ। जब से मैंने तुम्हें देखा है तब से एक नयी बात दिन-रात मेरे मन में चक्कर काटती रहती है जो मैंने पहले कभी नहीं सोची थी। मैं बराबर सोच रहा हूँ कि सम्पूर्ण भारतवर्ष केवल पुरुषों की दृष्टि से तो प्रत्यक्ष नहीं हो सकेगा। जिस दिन हमारी स्त्रियों की आँखों के सामने भारतवर्ष का आविर्भाव होगा उसी दिन यह पूर्ण-प्रत्यक्ष हो सकेगा। मेरे मन में यही आकांक्षा धधक रही है कि मैं तुम्हारे साथ एक दृष्टि से और एक ही साथ अपने देश को अपने सामने प्रत्यक्ष कर सकूँ। अपने भारतवर्ष के लिए मैं पुरुष तो केवल मेहनत कर सकता हूँ या मर सकता हूँ, किन्तु दीप जलाकर उसकी अगवानी तुम्हारे सिवा कौन कर सकता है ? तुम अगर उससे दूर रहोगी तो भारतवर्ष की सेवा सुन्दर नहीं हो सकेगी।"

हाय, कहाँ था भारतवर्ष ! कहाँ कितनी दूर थी सुचरिता ! कहाँ से आ गया भारत का यह पुजारी, यह भावों में डूबा हुआ तापस ! सभी को हटाकर क्यों वह

उसी के पास आ खड़ा हुआ? सभी को छोड़कर उसने क्यों उस अकेली को पुकारा? उसने कोई बाधा नहीं मानी, कोई संशय नहीं किया, कहा, "तुम्हारे बिना नहीं चलेगा, तुम्हें लेने आया हूँ, तुम निर्वासित ही रहोगी तो यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सकेगा।" सुचरिता की आँखों से विवश आँसू झरने लगे; क्यों, यह वह स्वयं न समझ सकी।

गोरा ने सुचरिता के चेहरे की ओर देखा। उस दृष्टि के सामने सुचरिता ने अपनी-आँसू भरी आँखें झुकाई नहीं। वे आँखें मानो चिन्ता-युक्त ओस-भीगे फूल-सी अत्यन्त आत्मविस्मृत भाव से गोरा के चेहरे की ओर खिलती रहीं।

सुचरिता की उन संकोच-विहीन, संशय-विहीन आँसू-धुली आँखों के सामने गोरा की समस्त प्रकृति वैसे ही काँपने लगी जैसे भूकम्प में संगमरमर का महल काँपने लगता है। गोरा पूरा ज़ोर लगाकर अपने को संभालने के लिए फिरकर खिड़की से बाहर देखने लगा। तब सन्ध्या हो गई थी। गली की रेखा संकीर्ण होती हुई जहाँ सड़क से मिलती थी वहाँ खुले आकाश में काले पत्थर जैसे अन्धकार के ऊपर तारे दीखने लगे थे। आकाश का वह टुकड़ा और वे कुछ-एक तारे गोरा के मन को आज न जाने कहाँ खींच ले गये—संसार के सभी दावों से, इस अभ्यस्त दुनिया के प्रतिदिन के काम-काज से कितनी दूर! यह थोड़ा-सा आकाश और ये कुछ-एक तारे सम्पूर्ण निर्लिप्त होकर न जाने कितने साम्राज्यों के उत्थान-पतन, न जाने कितने युग-युगान्त के कितने प्रयासों और कितनी प्रार्थनाओं का अतिक्रमण करते आये हैं, फिर भी जब किसी अतल गहराई के बीच से एक हृदय एक दूसरे हृदय को पुकारता है तब विश्व के एकान्त में वह नीरव व्याकुलता मानो उस सुदूर आकाश और उन तारों को स्पन्दित कर देती है। क्षण-भर के लिए गोरा की आँखों के सामने काम-काजी कलकत्ता की सड़कों पर गाड़ी-घोड़ों और राह चलने वालों की चहल-पहल छाया-चित्र-सी अवास्तव हो गई, शहर का कोलाहल मानो उस तक पहुँच ही न सका। उसने अपने हृदय में झाँककर देखा—वहाँ भी उसी आकाश जैसा निस्तब्ध निभृत अन्धकार था जिसके भीतर से दो सरल, करुण, जल-भरी आँखें अनादिकाल से अपलक अनन्तकाल की ओर ताक रही थीं।

हरिमोहिनी की आवाज़ सुनकर गोरा चौंककर मुड़ा।

"भैया, कुछ मुँह मीठा कर जाओ।"

गोरा ने जल्दी से कहा, "आज नहीं। आज मुझे क्षमा कर दें—मुझे अभी जाना है।" और गोरा उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना तेज़ी से उतरकर चला गया।

हरिमोहिनी ने विस्मित होकर सुचरिता की ओर देखा। सुचरिता भी

कमरे से चली गई। हरिमोहिनी सिर हिला-हिलाकर सोचने लगीं—यह अब क्या मामला है ?

थोड़ी देर बाद ही परेश बाबू आ पहुँचे। सुचरिता के कमरे में उसे न पाकर उन्होंने हरिमोहिनी के पास जाकर पूछा, "राधारानी कहाँ हैं ?"

हरिमोहिनी ने कुछ खीझे हुए स्वर से कहा, "क्या पता ! अभी तक तो बैठक में गौर मोहन के साथ बातचीत हो रही थी, अब जान पड़ता है छत पर अकेले टहला जा रहा है।"

परेश ने आश्चर्य से पूछा, "इस ठंड में इतनी रात गये छत पर ?"

हरिमोहिनी ने कहा, "जरा ठंडी हो ले। आजकल की लड़कियों को ठंड से कोई नुकसान नहीं होता।"

हरिमोहिनी का मन खराब था, इसीलिए उन्होंने क्रोध के कारण सुचरिता को खाने भी नहीं बुलाया। उधर सुचरिता को भी समय का ज्ञान न था।

सहसा परेश बाबू को स्वयं छत पर आते देखकर सुचरिता अत्यन्त लज्जित हो उठी। बोली, "बाबा, चलो नीचे चलो—तुम्हें ठंड लग जायेगी।"

कमरे में आकर दीये के प्रकाश में परेश बाबू का उद्विग्न चेहरा देखकर सुचरिता के मन को धक्का लगा। इतने दिनों से जो उस पितृहीन के पिता थे, आज सुचरिता बचपन से बने हुए सब बन्धन तोड़कर उनसे दूर खींची जा रही थी। इसके लिए वह अपने को किसी तरह क्षमा नहीं कर सकती थी। परेश के क्लान्त भाव से कुर्सी पर बैठ जाने पर सुचरिता अपने बेबस आँसू छिपाने के लिए उनकी कुर्सी के पीछे खड़े होकर धीरे-धीरे उनके पके बालों में उँगलियाँ फेरने लगी।

परेश बाबू ने कहा, "विनय ने दीक्षा ग्रहण करने से इनकार कर दिया है।"

सुचरिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। परेश ने फिर कहा, "विनय के दीक्षा लेने के प्रस्ताव के बारे में मुझे यों भी काफ़ी संशय था, इसलिए इससे मुझे कोई खास क्षोभ नहीं हुआ—लेकिन ललिता की बात से मुझे लगता है कि विनय के दीक्षा न लेने पर भी उसके साथ विवाह में उसे कोई बाधा नहीं जान पड़ती।"

सुचरिता ने सहसा बड़े जोर से कहा, "नहीं बाबा, यह कभी नहीं हो सकता। किसी तरह नहीं !"

सुचरिता कभी इतनी अनावश्यक घबराहट दिखाकर बात नहीं करती, इसलिए उसके स्वर के इस आकस्मिक जोश पर परेश को मन-ही-मन अचरज हुआ। उन्होंने पूछा, "क्या नहीं हो सकता ?"

सुचरिता बोली, "विनय ब्राह्म न हुए तो ब्याह किस मत से होगा ?"

परेश बोले, "हिन्दू मत से।"

सुचरिता ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा, "नहीं-नहीं ! आज-कल ये सब कैसी बातें हो रही हैं ! ऐसी बात मन में भी न लानी चाहिए। इतना सब हो जाने पर ललिता का विवाह मूर्त्ति-पूजा के साथ होगा ! यह मैं किसी तरह न होने दे सकूँगी।"

गोरा ने सुचरिता के मन को आकृष्ट कर लिया था, शायद इसीलिए वह आज हिन्दू मत से विवाह होने की बात पर इतना आवेश प्रकट कर रही थी। उसकी आपत्ति का भीतरी अभिप्राय यही था कि सुचरिता कहीं गहरे-गहरे में दृढ़ होकर परेश बाबू को पकड़कर कहना चाहती थी, 'तुम्हें नहीं छोड़ूँगी, मैं अब भी तुम्हारे समाज की हूँ, तुम्हारे मत की हूँ, तुम्हारी शिक्षा का बन्धन कभी नहीं तोड़ूँगी।'

परेश बाबू ने कहा, "विनय इसके लिए राज़ी है कि विवाह के अनुष्ठान में शालग्राम को न लाया जाए।"

सुचरिता कुर्सी के पीछे से आकर परेश बाबू के सामने कुर्सी खींचकर बैठ गई। परेश बाबू ने उससे पूछा, "इसमें तुम्हारी क्या राय है ?"

सुचरिता ने थोड़ी देर चुपचाप रहकर कहा, "तो फिर ललिता को हमारे समाज से निकल जाना होगा।"

परेश बाबू ने कहा, "इसी बात को लेकर मुझे बहुत सोचना पड़ा है। जब समाज से किसी मनुष्य का विरोध उठ खड़ा होता है तब दो बातें सोचकर देखने की होती हैं। एक तो दोनों पक्षों में से न्याय किसकी ओर है और दूसरे प्रबल कौन है। इसमें तो सन्देह नहीं कि समाज प्रबल है, इसलिए विद्रोह को कष्ट भोगना ही होगा। ललिता ने बार-बार मुझसे कहा है, कष्ट स्वीकार करने के लिए वह केवल प्रस्तुत ही नहीं है, बल्कि उसमें आनन्द भी पा रही है। यदि यह बात सच है तो जब तक मुझे उसका काम अनुचित न लगे मैं उसमें बाधा कैसे दे सकता हूँ ?"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन, बाबा, यह होगा कैसे ?"

परेश बोले, "मैं जानता हूँ कि इसमें एक संकट उपस्थित होगा। लेकिन ललिता के साथ विनय के विवाह में अगर कोई दोष नहीं है, बल्कि वह उचित है, तब समाज अगर बाधा दे तो उसे मानना कर्त्तव्य नहीं है, ऐसा मेरा मन कहता है। समाज के लिए मनुष्य को संकुचित होकर रहना पड़े यह कभी ठीक नहीं हो सकता, समाज को ही मनुष्य के लिए अपने को बराबर प्रशस्त करते चलना होगा। इसलिए जो कष्ट स्वीकार करने को तैयार हैं मैं तो उन्हें बुरा नहीं कह सकता।"

सुचरिता ने कहा, "बाबा, इसमें तुम्हीं को सबसे अधिक कष्ट भुगतना होगा।"

परेश ने कहा, "वह बात कोई सोचने की बात नहीं है।"

सुचरिता ने पूछा, "बाबा, तुमने क्या सम्मति दे दी है ?"

परेश ने कहा, "नहीं, अभी नहीं दी। लेकिन देनी ही होगी। ललिता जिस रास्ते पर चल रही है उस पर मेरे सिवा और कौन उसे आशीर्वाद देगा, और ईश्वर के सिवा और कौन सहायक होगा ?"

परेश बाबू के चले जाने पर सुचरिता स्तब्ध होकर बैठी रही। परेश ललिता को मन-ही-मन कितना चाहते हैं, यह वह जानती थी। वही ललिता बँधी लीक छोड़कर इतने बड़े अज्ञात में प्रवेश करने जा रही है, इससे उनका मन कितना उद्विग्न होगा यह वह समझ सकती थी। फिर भी इस उम्र में वह इतने बड़े विप्लव में सहायता करने जा रहे हैं, और इस पर कितने कम विक्षुब्ध हैं ! अपना बल वह कभी नहीं प्रकट करते, किन्तु उनके भीतर कितना बड़ा बल अनायास ही अपने को छिपाये हुए बैठा है।

पहले होता तो परेश की प्रकृति का यह परिचय सुचरिता को विचित्र न जान पड़ता, क्योंकि वह परेश बाबू को बचपन से ही तो देखती आई है। लेकिन आज ही थोड़ी देर पहले ही तो उसके समूचे अन्तःकरण ने गोरा का आघात सहा था, इसलिए इन दोनों के स्वभाव की सम्पूर्ण भिन्नता का मन-ही-मन तीखा अनुभव किये बिना वह न रह सकी। गोरा के लिए उसकी अपनी इच्छा कितनी प्रबल है ! और अपनी इच्छा को जोरों से काम में लाकर वह दूसरे को कैसे अभिभूत कर डालता है। गोरा के साथ जो कोई व्यक्ति जो कोई सम्बन्ध स्वीकार करेगा, गोरा की इच्छा के सामने उसे झुकना ही पड़ेगा। सुचरिता भी आज झुकी है और झुक-कर उसने आनन्द भी पाया है, अपने को विसर्जित करके उसने ऐसा अनुभव किया है मानो उसने कोई बहुत बड़ी चीज़ पाई हो। फिर भी आज जब परेश उसके कमरे के दीये के प्रकाश से निकलकर चिन्ता से सिर झुकाये हुए धीरे-धीरे बाहर के अन्धकार में चले गये, तब सुचरिता ने यौवन के तेज से दीप्त गोरा के साथ विशेष रूप से उनकी तुलना करके अपनी भक्ति की पुष्पांजलि विशेष रूप से परेश के चरणों में चढ़ाई। दोनों हाथ जोड़कर गोद में रखे हुए वह बहुत देर तक चुपचाप चित्रलिखित-सी बैठी रही।

६१

सवेरे से ही गोरा के कमरे में बड़ी हलचल थी। पहले तो महिम ने हुक्के पर

कश लगाते-लगाते आकर गोरा से पूछा, "तो आखिर विनय ने अपनी जंजीर काट ही दी, क्यों ?"

गोरा सहसा उसकी बात न समझकर उनके चेहरे की ओर देखता रहा।

महिम बोले, "हमसे और छिपाने से क्या होगा भला ! तुम्हारे दोस्त की बात तो किसी से छिपी नहीं है—नगाड़े बज रहे हैं। यह देखो न !"

कहते-कहते महिम ने एक बंगला अख़बार गोरा की ओर बढ़ा दिया। उसमें उसी दिन रविवार को विनय के ब्राह्म समाज में दीक्षा लेने के संवाद पर तीखी टीका-टिप्पणी की गई थी। गोरा जब जेल में था तब ब्राह्म समाज के किसी कन्या-भार-ग्रस्त विशेष सदस्य ने इस दुर्बल-चित्त युवक को छिपा प्रलोभन देकर हिन्दू समाज से फोड़ लिया था, इसी अभियोग का लेखक ने अपनी रचना में बड़ी कटु भाषा में विस्तार किया था।

गोरा ने जब कहा कि यह खबर वह नहीं जानता था, तब पहले तो महिम को विश्वास नहीं हुआ, फिर विनय के इस भारी धोखे पर वह बार-बार विस्मय प्रकट करने लगे। वह जता गये कि एक बार स्पष्ट शब्दों में शशिमुखी से विवाह करने स्वीकृति देने के बाद भी जब विनय इधर-उधर करने लगा तभी उन्हें समझ लेना चाहिए था कि उसका सर्वनाश शुरू हो गया है।

फिर अविनाश ने हाँफते-हाँफते आकर कहा, "यह क्या हो गया, गौर मोहन बाबू ! यह तो हम लोगों ने सपने में भी नहीं सोचा था। विनय बाबू की आखिर···"

अविनाश बात पूरी ही नहीं कर सका। विनय की इस लांछना से उसे मन-ही-मन इतना आनन्द हो रहा था कि किसी तरह की चिन्ता का दिखावा करना भी उसके लिए असम्भव हो गया था। देखते-देखते गोरा के दल के मुख्य-मुख्य सभी लोग आ जुटे। विनय को लेकर उनके बीच एक बड़ी गरमागरम चर्चा छिड़ गई। अधिकतर लोगों ने एक ही बात कही—इस घटना में विस्मय की कोई खास बात नहीं थी, क्योंकि विनय के व्यवहार में वे बराबर एक दुर्बलता और दुविधा लक्षित करते आये थे, वास्तव में विनय कभी मन-वचन-कर्म से उनके दल का सदस्य हुआ ही नहीं था। किसी-किसी ने कहा—विनय शुरू से ही अपने को किसी-न-किसी तरह गौर मोहन के बराबर सिद्ध करने की कोशिश करता रहा था, जो उन्हें असह्य लगता था। जहाँ दूसरे सब भक्ति से संकोच के कारण गौर मोहन से यथोचित दूरी बनाये रहते थे, वहाँ विनय मानो जबरदस्ती गोरा के साथ ऐसे घुलता-मिलता था मानो वह सबसे अलग हो और गोरा के बिलकुल बराबर का हो। गोरा उससे स्नेह करते थे इसीलिए उसकी इस अद्भुत हेकड़ी को सह लेते थे। ऐसे

अबाध अहंकार का ऐसा ही शोचनीय परिणाम होता है।

कोई कह रहे थे, "हम लोग विनय बाबू सरीखे विद्वान् नहीं हैं, हमारी इतनी अधिक बुद्धि भी नहीं है, लेकिन, भाई साहब, हम लोग बराबर किसी एक प्रिंसिपल के सहारे चलते हैं; हमारे मन में कुछ और, मुँह पर कुछ और नहीं होता; आज ऐसे, कल वैसे, यह हमारे बस का नहीं है। अब इस पर हमें कोई चाहे भोला कहे, चाहे मूर्ख कहे, चाहे कुछ और कहे।"

गोरा ने इन सब बातों में से किसी में भी योग नहीं दिया, चुपचाप बैठा रहा।

काफ़ी देर हो जाने पर जब एक-एक करके सब चले गये तब गोरा ने देखा, विनय आकर उसके कमरे में प्रवेश न करके पास ही सीढ़ी से सीधा ऊपर चला जा रहा है। गोरा ने जल्दी से कमरे से निकलकर पुकारा, "विनय!"

विनय के सीढ़ियों से उतरकर कमरे में प्रवेश करते ही गोरा ने कहा, "विनय, मैंने अनजाने कोई अपराध कर दिया है क्या—तुमने तो मानो मुझसे नाता तोड़ लिया है?"

विनय पहले से ही यह सोच कर कि आज गोरा से झगड़ा हो जाएगा, मन को कड़ा करके ही आया था। पर अब गोरा का चेहरा उदास देखकर और उसके स्वर में आहत स्नेह की वेदना का अनुभव करके उसकी वह बलपूर्वक संचित की हुई कठोरता मुहूर्त-भर में उड़ गई। वह कह उठा, "भाई गोरा, मुझे ग़लत न समझो। जीवन में अनेक परिवर्तन होते हैं, बहुत-सी चीज़ें छोड़ देनी पड़ती हैं, लेकिन इससे दोस्ती का नाता थोड़े ही टूट जायेगा।"

गोरा ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, "विनय, तुमने क्या ब्राह्म समाज में दीक्षा ले ली है?"

विनय ने कहा, "नहीं गोरा, ली नहीं, और लूंगा भी नहीं, लेकिन इस पर मैं कोई ज़ोर भी नहीं देना चाहता।"

गोरा ने कहा, "इसका क्या मतलब?"

विनय ने कहा, "इसका मतलब यही कि मैंने ब्राह्म धर्म में दीक्षा ली या नहीं ली, इस बात को बहुत तूल देने का भाव अब मेरे मन का नहीं है।"

गोरा ने पूछा, "तो यह पूछूं कि मन का भाव पहले ही कैसा था और अब ही कैसा हो गया है?"

गोरा के बात कहने के ढंग से विनय का मन फिर भड़क उठा। लड़ने के लिए कमर कसते हुए उसने कहा, "पहले जब कभी सुनता था कि कोई ब्राह्म होने जा रहा है तब मन-ही-मन बहुत क्रोध होता था, इच्छा होती थी कि उसे कुछ विशेष

दण्ड मिले। लेकिन अब ऐसा नहीं होता। मुझे लगता है मत का जवाब मत से, युक्ति का जवाब युक्ति से दिया जा सकता है, लेकिन बुद्धि के मामले में क्रोध करके दण्ड देना बर्बरता है।"

गोरा ने कहा, "हिन्दू ब्राह्म होने जा रहा है, यह देखकर अब तुम्हें क्रोध नहीं होगा, लेकिन ब्राह्म प्रायश्चित करके हिन्दू होने जा रहा है यह देखकर तुम गुस्से से जल उठोगे—पहले से यही अन्तर तुममें आया है।"

विनय ने कहा, "यह बात तुम गुस्से से कह रहे हो, सोचकर नहीं कह रहे हो।"

गोरा बोला, "मैं तुम पर श्रद्धा रखता हुआ ही कह रहा हूं। ऐसा होना ही ठीक था और मैं भी होता तो ऐसा ही होता। जैसे गिरगिट रंग बदलता है, वैसे ही किसी धर्म को अपनाना या छोड़ना हमारी चमड़ी के ऊपर की चीज होती, तब तो कोई बात ही नहीं थी, लेकिन वह मर्म की बात है, इसीलिए उसे हल्के ढंग से नहीं लिया जा सकता। अगर किसी तरह की बाधा न होती, अगर किसी तरह का दण्ड न भरना पड़ता, तो ऐसे महत्त्वपूर्ण मामले में कोई एक मत अपनाते या बदलते समय मनुष्य अपनी समूची बुद्धि का आह्वान क्यों करता ? सत्य को वह यथार्थ सत्य मानकर ग्रहण कर रहा है या नहीं, इसकी परीक्षा तो मनुष्य को देनी ही होगी। दण्ड स्वीकार करना ही होगा। सत्य का व्यापार ऐसा शौकिया व्यापार नहीं है कि रत्न भी मिल जाये और दाम भी न चुकाना पड़े।"

इस पर बहस मानो बेलगाम हो उठी। बाणों के जवाब में बाण की तरह बातों पर बातें बरसने लगीं और उनकी टकराहट से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

बहुत देर तक वाग्युद्ध होने के बाद अन्त में विनय ने उठकर खड़े होते हुए कहा, "गोरा, तुम्हारी और मेरी प्रकृति में एक मूलगत भेद है। वह अभी तक किसी तरह दबा हुआ था, जब भी वह उभर कर आता था मैं स्वयं उसे दबा देता देता था, क्योंकि मैं जानता था, जहाँ भी तुम्हें कोई अलगाव दीखता है, तुम उससे सन्धि करना जानते ही नहीं—एकाएक तलवार उठाकर दौड़ते हो। इसीलिए तुम्हारी दोस्ती को निबाहते चलने के लिए मैं बराबर अपनी प्रकृति को कुचलता आया हूँ। आज समझ सकता हूँ कि इससे मंगल नहीं हुआ और हो भी नहीं सकता।"

गोरा ने कहा, "खैर, अब तुम्हारी क्या मंशा है यह साफ़-साफ़ कहो।"

विनय ने कहा, "आज मैं अकेला अपने पैरों पर खड़ा हुआ हूँ। समाज नाम के राक्षस को प्रतिदिन मनुष्य-बलि देकर उसे खुश रखना होगा और जैसे भी हो उसी के शासन की फाँसी गले में डाले रहना होगा, चाहे प्राण रहें या न रहें—यह मैं

किसी तरह नहीं स्वीकार कर सकूँगा।

गोरा ने पूछा, "तो महाभारत के उस ब्राह्मण शिशु की तरह तिनका लेकर बकासुर का वध करने निकल रहे हो क्या ?"

विनय ने कहा, "मेरे तिनके से बकासुर मरेगा या नहीं यह नहीं जानता, लेकिन मुझे कच्चा चबा जाने का अधिकार उसे है, यह बात मै किसी तरह नहीं मानूँगा। उसके चबाना शुरू कर देने पर भी नहीं।"

गोरा ने कहा,"अब तुम रूपक का सहारा लेकर बात करने लगे, अब समझना ही मुश्किल हो रहा है।"

विनय ने कहा, "समझना तुम्हारे लिए मुश्किल नहीं है, मानना ही मुश्किल है। मनुष्य जहाँ स्वभाव से स्वाधीन है, धर्म से स्वाधीन है, वहाँ उसके खाने-सोने-बैठने को भी हमारे समाज ने बिलकुल निरर्थक बन्धनों में बाँध रखा है, इस बात को तुम मुझसे कम जानते हो ऐसा नहीं है, लेकिन समाज की इस जबरदस्ती को तुम अपनी जबरदस्ती से मानना चाहते हो। लेकिन मैं आज कह रहा हूँ, इन मामलों में मैं अब किसी का ज़ोर नहीं मानूँगा। समाज का दावा मैं उसी समय तक मानूँगा जिस समय तक वह मेरे उचित अधिकारों की रक्षा करेगा। वह अगर मुझे मनुष्य नहीं समझता, मुझे मशीन का पुर्जा बना कर रखना चाहता है, तो मैं भी फूल-चन्दन से उसकी पूजा नहीं करूँगा, उसे लोहे की मशीन-भर मानूँगा।"

गोरा ने कहा, "यानी संक्षेप में तुम ब्राह्म हो जाओगे ?"

विनय ने कहा, "नहीं !"

गोरा ने कहा, "ललिता से विवाह करोगे ?"

विनय ने कहा, "हाँ !"

गोरा ने पूछा, "हिन्दू विवाह ?"

विनय ने कहा, "हाँ !"

"परेश बाबू इसके लिए राज़ी हैं ?"

"यह उनकी चिट्ठी है।"

गोरा ने परेश बाबू की चिट्ठी दो बार पढ़ी। उसका अन्तिम अंश था :

"मुझे अच्छा या बुरा लगने की कोई बात नहीं उठाऊँगा, तुम दोनों की सुविधा-असुविधा की भी चर्चा करना नहीं चाहता। मेरे मत-विश्वास क्या हैं, मेरा समाज क्या है, यह तुम लोग जानते हो। ललिता ने बचपन से क्या शिक्षा पाई है और किन संस्कारों में पली है यह भी तुम लोगों से छिपा नहीं है। यह सब जान-समझकर ही तुम लोगों ने अपना पथ चुना है। मुझे और कुछ कहना नहीं है। यह न समझना कि मैंने बिना कुछ

सोचे या कुछ सोच न पाकर पतवार छोड़ दी है। जहाँ तक मेरी शक्ति है, मैंने विचार किया है। मेरी समझ में यही आया है कि तुम लोगों के मिलन में बाधा देने का कोई धर्म-संगत कारण नहीं है, क्योंकि तुम पर मेरा पूरा विश्वास है। ऐसी स्थिति में समाज में कोई आपत्ति हो तो उसे मानने को तुम लोग बाध्य नहीं हो। मुझे केवल इतना कहना है कि तुम लोग अगर समाज का लंघन करना चाहते हो तो तुम्हे समाज से बड़ा होना होगा। तुम लोगों का प्रेम, तुम्हारा साझा जीवन केवल प्रलय-शक्ति का सूचक न हो, उसमें सृष्टि और स्थिति के तत्त्व भी रहें। केवल इस काम में अचानक एक दु:साहसिकता दिखा देने से नहीं चलेगा, इसके बाद तुम्हें जीवन के हर काम को बहादुरी के सूत्र में गूँथ देना होगा, नहीं तो तुम लोग बहुत नीचे चले जाओगे। क्यों कि समाज अब दूसरे आम लोगों की तरह तुम्हें बाहर से सहारा देता हुआ नहीं रहेगा—तुम लोग अपनी शक्ति से ही उन आम लोगों से बड़े न हुए तो तुम्हें उनसे भी नीचे जा पड़ना होगा। तुम लोगों के भविष्यत् शुभाशुभ के बारे में मुझे काफ़ी चिन्ता है। लेकिन उस चिन्ता के कारण तुम लोगों का रास्ता रोकने का कोई अधिकार मुझे नहीं है। कारण कि दुनिया में जो लोग साहस करके अपने जीवन के द्वारा नयी-नयी समस्याओं का हल निकालने को तैयार होते हैं वही समाज को ऊँचा उठाते हैं। जो केवल नियम मानते हुए चलते हैं वे समाज को केवल ढोते हैं, उसे आगे नहीं बढ़ाते। इसलिए अपनी भीरुता और चिन्ता को लेकर तुम्हारा रास्ता मैं नहीं रोकूँगा। तुम लोगों ने जो ठीक समझा है, सारी प्रतिकूलताओं के विरुद्ध उसी का पालन करो—ईश्वर तुम्हारे सहायक हों। ईश्वर अपनी सृष्टि को किसी एक अवस्था में साँकल से बाँधकर नहीं रखते, उसे नये-नये परिवर्तनों के बीच निरन्तर नवीन करते हुए सजग रखते हैं। तुम लोग उनके इसी उद्‌बोधन के दूत बनकर अपने जीवन को मशाल की तरह जलाकर दुर्गम पथ पर बढ़ रहे हो, जो विश्व के परिचालक हैं वह तुम्हें पथ दिखाते रहें—तुम लोगों को हमेशा मेरे ही पथ पर चलना होगा, ऐसा आदेश मैं कभी नहीं दे सकूँगा। तुम लोगों की उम्र में हम लोगों ने भी एक दिन घाट से डोर खोलकर नाव को तूफ़ान के मुँह में डाल दिया था, किसी का निषेध नहीं सुना था। और इसके लिए आज भी कोई अनुताप नहीं है। अनुताप करने का कोई कारण हुआ भी होता तो भी क्या था। मनुष्य भूल करता है, असफल भी होता है, दु:ख भी पाता है, लेकिन बैठा नहीं रहता, जो उचित समझता है उसके लिए आत्म-समर्पण करता है, ऐसे ही पुण्य-सलिला संसार-नदी की धारा निरन्तर बढ़ती हुई

निर्मल रह सकती है। इसमें बीच-बीच में कभी-कभी कगारें टूटने से नुकसान भी हो सकता है, इस डर से धार को हमेशा के लिए बाँध देना सड़ाँध और मृत्यु का आह्वान करना होगा, यह मैं निश्चय जानता हूँ। इसलिए जो शक्ति तुम लोगों को दुर्निवार वेग से समाज के नियम और सुख-स्वच्छन्दता के घेरे से बाहर खींचे लिये जा रही है, उसी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उसी के हाथों तुम दोनों को सौंप दे रहा हूँ। वही तुम्हारे जीवन की सारी निन्दा और ग्लानि को, आत्मीयों से विच्छेद को, सार्थकता प्रदान करे। उसी ने तुम्हें दुर्गम पथ पर बुलाया है, वही तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचा दे।"

गोरा चिट्ठी पढ़कर थोड़ी देर चुप हो रहा। फिर विनय ने कहा, "परेश बाबू ने जैसे उनकी ओर से सम्मति दे दी है, उसी तरह गोरा तुम्हें भी अपनी ओर से सम्मति देनी होगी।"

गोरा ने कहा, "परेश बाबू तो सम्मति दे सकते हैं, क्योंकि नदी की जो धारा कगार तोड़ रही है वह उन्हीं की धारा है। मैं सम्मति नहीं दे सकता, क्योंकि हमारी धारा किनारे की रक्षा करती है। हमारे किनारे पर कितने सैंकड़ों-हज़ारों बर्षों की अभ्र-भेदी कीर्तियाँ रहीं, यह हम बता ही नहीं सकते—वहाँ प्रकृति का नियम ही काम करता रहे। अपने किनारे को हम पत्थरों से बाँधकर ही रखेंगे—इसके लिए चाहे हमारी निन्दा करो और चाहे और कुछ। यह हमारी पवित्र प्राचीन पुरी है;—इस पर हर साल बाढ़ से मिट्टी की नयी पर्त पड़ती रहे और किसानों के दल उसमें हल चलाया करें, ऐसा हमारा इरादा नहीं है—इससे हमारा नुकसान होता है तो हो। यह हमारे रहने की जगह है, खेती करने की नहीं। इसलिए जब तुम लोगों का कृषि-विभाग हमारे इन पत्थरों को कड़े कहकर उनकी निन्दा करता है तो हम उस पर शर्म से मर नहीं जाते।"

विनय ने कहा, "यानी संक्षेप में यह कि तुम हम लोगों के इस विवाह को स्वीकार नहीं करोगे?"

गोरा ने कहा, "निश्चय ही नहीं करूंगा।"

विनय ने कहा, "और···"

गोरा बोला, "और तुम लोगों से नाता तोड़ लूंगा।"

विनय ने कहा, "मैं अगर तुम्हारा कोई मुसलमान दोस्त होता तो?"

गोरा ने कहा, "तब और बात होती। पेड़ की अपनी डाल टूटकर पराई हो जाय तो पेड़ उसे किसी तरह से अपनी नहीं बना ले सकता। लेकिन बाहर से जो लता बढ़ आती है उसे आश्रय दे सकता है, यहाँ तक कि आँधी में उसके गिर जाने

पर भी उसे फिर उठा देने में कोई दिक्कत नहीं होती। अपना जब पराया हो जाता है तब उससे बिलकुल नाता तोड़ लेने के सिवा कोई गति नहीं रहती। इसी-लिए तो इतने नियम-बन्धन होते हैं और खींच-तान में जान की बाज़ी लगा दी जाती है।"

विनय ने कहा, "इसीलिए तो नाता तोड़ने के कारण इतने घटिया और उसकी व्यवस्था इतनी आसान नहीं होनी चाहिए। बाँह टूट जाने से फिर जुड़ती नहीं यह तो ठीक है, लेकिन इसीलिए वह बात-बात में टूटती भी नहीं, उसकी हड्डियाँ बड़ी मजबूत होती हैं। जिस समाज में ज़रा-सा धक्का लगने से ही टूट आ जाती है और हमेशा के लिए रह जाती है, उस समाज में मनुष्य के लिए अपनी इच्छा से चलने-फिरने या काम-काज करने में कितनी कठिनाइयाँ हो जाती हैं, यह भी तो सोचना चाहिए।"

गोरा ने कहा, "यह सोचने का भार मुझ पर नहीं है। समाज ऐसी समग्रता से और इतने बड़े पैमाने पर सोचता है कि मुझे उसके सोचने का भान भी नहीं होता। हज़ारों बरसों से वह सोचता भी रहा है और अपनी रक्षा भी करता आया है, इसका मुझे भरोसा है। पृथ्वी सूरज के चारों ओर तिरछी घूमती है कि सीधी, भटकती है कि नहीं, जैसे मैं यह नहीं सोचता और न सोचने पर भी मुश्किल में नहीं पड़ता—समाज के बारे में भी मेरी वैसी ही धारणा है।"

विनय ने हँसकर कहा, "भाई गोरा, ठीक यही सब बातें मैं भी इतने दिनों से इसी ढंग से कहता आया हूँ—यह कौन जानता था कि आज मुझको ही ये सब बातें सुननी पड़ेंगी। बना-बनाकर बात कहने की सज़ा मुझे भोगनी पड़ेगी, यह मैं खूब समझ रहा हूँ। लेकिन बहस करने से कोई फ़ायदा नहीं है, क्योंकि एक बात जो मैं आज खूब नज़दीक से अच्छी तरह देख सका हूँ वह मैंने पहले नहीं देखी थी। मनुष्य के जीवन की गति एक महानदी-सी है, वह अपने वेग से अकल्पनीय ढंग से ऐसी नयी-नयी दिशाओं में रास्ता बना लेती है जिधर को पहले उसका प्रवाह नहीं था। उसकी गति की यह विचित्रता, उसके ये कल्पनातीत परिवर्तन ही विधाता का अभिप्राय होते हैं—वह कोई नहर नहीं है, उसे बँधे हुए रास्ते पर नहीं चलाया जा सकता। यह बात जब अपने जीवन में ही बिलकुल प्रत्यक्ष हो गई है तब हमें कभी कोई लच्छेदार बातों से बहका न सकेगा।"

गोरा ने कहा, "पतंगा जब आग की ओर दौड़ता है तब वह भी तुम्हारी तरह ठीक यही दलील देता है—इसलिए मैं भी आज तुम्हें समझाने की फ़िज़ूल कोशिश नहीं करूँगा।"

विनय ने कुर्सी से उठकर कहा, "वही अच्छा है। तो चलूं—एक बार माँ से मिल लूं।"

विनय चला गया तो महिम धीरे-धीरे चलते हुए आये। पान चबाते-चबाते उन्होंने पूछा, "शायद सुभीता नहीं हुआ? होगा भी नहीं। कब से कहता चला आ रहा हूँ, संभल जाओ, बिगड़ने के लक्षण दीख रहे हैं—मेरी बात पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। उसी समय किसी तरह जोर डालकर शशिमुखी के साथ उसका ब्याह कर देते तो कोई बात ही न रहती। लेकिन 'का कस्य परिवेदना!' कहूँ भी किसको? जिसे कोई जान-बूझकर न समझे वह तो माथा फोड़कर भी नहीं समझाया जा सकता। अब विनय जैसा लड़का तुम्हारे दल से अलग हो जाये, यह क्या कम अफ़सोस की बात है?"

गोरा ने कोई उत्तर नहीं दिया। महिम फिर बोले, "तो विनय को रोक नहीं सके? खैर, जाने दो। लेकिन शशिमुखी के साथ उसके विवाह की बात को लेकर कुछ ज्यादा ही गोलमाल हो गया। अब शशि के ब्याह में और देर करने से नहीं चलेगा। हमारे समाज के रंग-ढंग तो जानते ही हो—एक बार कोई उसकी पकड़ में आ जाये तो उसे रुलाकर ही छोड़ता है। इसीलिए एक पात्र—नहीं, नहीं, घबराओ मत, तुम्हें घटक नहीं बनना पड़ेगा—मैंने खुद ही सब ठीक-ठाक कर लिया है।"

गोरा ने पूछा, "पात्र कौन है?"

महिम बोले, "यही तुम्हारा अविनाश।"

गोरा ने पूछा, "वह राज़ी है?"

महिम बोले, "राज़ी नहीं होगा! उसे क्या विनय समझ रखा है? तुम जो कहो, यही तय पाया कि तुम्हारे दल में एक वही अविनाश ही तुम्हारा सच्चा भक्त है। तुम्हारे परिवार के साथ उसका सम्बन्ध होगा, यह बात सुनकर वह तो खुशी से नाच उठा। बोला, 'यह तो मेरा सौभाग्य है, मेरा गौरव है।' दहेज की रक़म की बात मैंने पूछी तो कानों पर हाथ रखकर बोला, 'माफ़ कीजिए, इसकी तो बात भी मुझसे न कीजिए।' मैंने कहा, 'अच्छा, वह सब बात तुम्हारे पिता के साथ होगी।' उसके बाप के पास भी गया था। बाप-बेटे में काफ़ी अन्तर देखने में आया। रुपये की बात पर बाप ने कानों को बिलकुल हाथ नहीं लगाया, बल्कि ऐसे ढंग से बात करना शुरू किया कि मुझको ही कानों पर हाथ धरना पड़ गया। यह भी देखा कि लड़का भी इन सब मामलों मे बड़ा पितृभक्त है, एकदम 'पिताहि परमं तपः'—उसे बीच में डालने से कोई नतीजा नहीं निकलेगा। अब कम्पनी बहादुर के कुछ कागज भुनाये बिना काम होता नहीं दीखता। खैर, वह जो हो,

अविनाश को तुम भी दो-एक बात कह लेना--- तुम्हारी ओर से बढ़ावा मिलने पर शायद···"

गोरा ने कहा, "उससे रक़म तो कुछ कम नहीं होने की।"

महिम ने कहा, "यह तो जानता हूँ। पितृभक्ति से जब फ़ायदा भी होता है, तब उसे संभालना मुश्किल होता है।"

गोरा ने पूछा, "बात पक्की हो गई है ?"

महिम बोले, "हाँ !"

"दिन, मुहुर्त्त सब एकदम तय ?"

"तय ही समझो माघ महीने की पूर्णिमा को। और बहुत दिन नहीं हैं। बाप ने कहा है, हीरे-पन्ने की ज़रूरत नहीं है लेकिन गहना खूब भारी सोने का होना चाहिए। अब कैसे सोने के दाम बढ़ाये बिना उसका भार बढ़ाया जा सकता है, कुछ दिन सुनार के साथ बैठकर इसी बारे में सोच-विचार करना होगा।"

गोरा ने कहा, "लेकिन इतनी जल्दी करने की क्या ज़रूरत है ? अविनाश भी जल्दी ही ब्राह्म समाज में जा मिलेगा, ऐसा तो कोई डर नहीं है !"

महिम ने कहा, "हाँ, वह तो नहीं है, लेकिन तुम लोगों ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया है कि बाबा के शरीर की हालत इधर दिन-दिन गिरती जा रही है। डाक्टर लोग जितना ही रोकते हैं उतना ही वह अपने नियमों को और कड़ा बनाते जाते हैं। आजकल जो संन्यासी उनके साथ है वह उन्हें तीन बार स्नान कराता है, उस पर ऐसा हठ-योग भी शुरू कराया है कि आँखों की पुतलियाँ-पलकें, निःश्वास-प्रश्वास, नाड़ी-धमनी सब एकदम उलट-पुलट हुई जा रही हैं। बाबा के रहते-रहते शशी का ब्याह हो जाने में ही सुभीता है, उनकी पेन्शन की जमा-पूँजी सब स्वामी ओमकारानन्द के हाथ में चले जाने से पहले ही काम सम्पन्न हो जाये तो मुझे बहुत फ़िकर न करनी पड़े। कल बाबा के सामने मैंने बात उठाई भी थी---देखा कि मामला इतना आसान नहीं है। मैंने सोचा है, उस बेटा संन्यासी को कुछ दिन कस के गाँजा पिलाकर के क़ाबू में करके उसी के द्वारा काम निकलवाना होगा। यह तुम निश्चय जान लो कि जो गृहस्थ हैं, जिनकी रुपये की ज़रूरत सबसे अधिक है, बाबा का रुपया उनके हिस्से नहीं आयेगा। मेरी मुश्किल यही है कि दूसरे का बाप तो कस के रुपया वसूल करना चाहता है और अपना बाप रुपया देने की बात सुनते ही प्राणायाम करने बैठ जाता है। अब मैं उस ग्यारह बरस की लड़की को गले से बाँधकर क्या डूब मरूँ ?"

६२

हरिमोहिनी ने पूछा, "राधारानी, कल रात को तुमने कुछ खाया क्यों नहीं ?"

सुचरिता ने विस्मित होकर कहा, "क्यों, खाया तो था।"

हरिमोहिनी ने रात से ज्यों का त्यों ढँका रखा खाना दिखाते हुए कहा, "कहाँ खाया ? सब तो पड़ा हुआ है !"

तभी सुचरिता ने जाना कि रात उसे खाना खाने का ध्यान ही नहीं रहा।

हरिमोहिनी ने रूखे स्वर से कहा, 'यह सब तो अच्छी बातें नहीं हैं। मैं तुम्हारे परेश बाबू को जहाँ तक जानती हूँ, उससे तो मुझे नहीं लगता कि उन्हें इतना आगे बढ़ना पसन्द होगा—उन्हें तो देखकर ही मन को शान्ति मिलती है। तुम्हारा आजकल का रवैय्या उन्हें पूरा मालूम होगा तो वह क्या कहेंगे भला ?"

हरिमोहिनी की बात का इशारा किधर है, यह समझने के लिए सुचरिता को कठिनाई नहीं हुई—पहले तो क्षण-भर के लिए वह मन-ही-मन सकुचा गई। उसने यह सोचा भी नहीं था कि गोरा के साथ उसके सम्बन्ध को बिलकुल साधारण स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध के बराबर मानकर उस पर ऐसा अपवाद लगाया जा सकता है। इसीलिए हरिमोहिनी के ताने से वह डर गई। लेकिन अगले क्षण ही हाथ का काम छोड़कर वह सीधी होकर बैठ गई और हरिमोहिनी के चेहरे की ओर एकटक देखने लगी। इसी क्षण से उसने स्थिर कर लिया कि गोरा की बात को लेकर वह किसी के सामने ज़रा भी लज्जित नहीं होगी। वह बोली, "मौसी, तुम तो जानती ही हो, कल गौर मोहन बाबू आये थे। उनसे जो चर्चा हुई उसके विषय में मेरा मन डूब गया था कि मैं खाने की बात भूल ही गई थी। तुम कल रात रहतीं तो बहुत-सी नई बातें सुन पातीं।"

हरिमोहिनी जैसी बातें सुनना चाहती थीं गोरा की बातें ठीक वैसी नहीं थीं। बस भक्ति की ही बातें सुनना चाहती थीं। गोरा के मुंह से भक्ति की बात ऐसी सहज और सरल नहीं जान पड़ती थी। गोरा के सामने मानो बराबर एक विरोधी पक्ष रहता था जिससे वह बराबर लड़ता रहता था। जो नहीं मानते उन्हें वह मनवाना चाहता था, लेकिन जो मानते हैं उन्हें कहने के लिए उसके पास क्या था ? जो बातें गोरा को उत्तेजित करती थीं उनके बारे में हरिमोहिनी बिलकुल उदासीन थीं। ब्राह्म समाज के लोग अगर हिन्दू समाज के साथ नहीं मिलते और अपने मत पर कायम रहते हैं तो इसमें हरिमोहिनी को कोई

आन्तरिक क्लेश नहीं होता था, अपने प्रियजनों से अपने विच्छेद का कोई कारण न उठ खड़ा हो तो उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं थी। इसीलिए गोरा से बातचीत करके उनके हृदय को ज़रा भी रस नहीं मिलता था। इस पर जबसे उन्होंने अनुभव किया था कि सुचरिता के मन पर गोरा का ही प्रभाव पड़ रहा है, तब से गोरा की बातचीत उन्हें और भी अरुचिकर जान पड़ने लगी थी। आर्थिक मामलों में सुचरिता पूरी तरह स्वाधीन थी और मत-विश्वास-आचरण के मामले में भी स्वतन्त्र थी, इसलिए हरिमोहिनी किसी भी दिशा में उसे पूरी तरह अपने वश में नहीं कर सकी थीं। लेकिन ढलती आयु में सुचरिता ही हरिमोहिनी का एकमात्र अवलम्बन थी—इसलिए सुचरिता पर परेश बाबू को छोड़कर और किसी का कोई अधिकार हरिमोहिनी को बहुत विचलित कर देता था। उन्हें एकाएक जान पड़ने लगा कि गोरा की बातें शुरू से आखिर तक बनावटी हैं और उसका असल उद्देश्य किसी न किसी तरह छल से सुचरिता के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेना है। यहाँ तक कि वह यह भी कल्पना करने लगीं कि गोरा की लालची दृष्टि मुख्यतया सुचरिता की सम्पत्ति पर है। उन्होंने मान लिया कि गोरा ही उनका प्रधान शत्रु है और मानो मन-ही-मन कमर कसकर उसका सामना करने को तैयार हो गईं।

आज सुचरिता के यहाँ गोरा के आने की कोई बात नहीं थी, कोई कारण भी नहीं था। लेकिन गोरा के स्वभाव में दुविधा नाम की चीज़ बहुत कम थी। वह जब जिस काम में प्रवृत्त होता था उसके बारे में अधिक सोचता नहीं था, तीर की तरह सीधा बढ़ता जाता था।

आज सवेरे ही जब गोरा सुचरिता के घर पहुँचा तब हरिमोहिनी पूजा कर रही थीं। सुचरिता बैठक में मेज़ पर कागज़-पत्र सँवारकर रख रही थी कि सतीश ने आकर खबर दी, गौर बाबू आये हैं। सुचरिता को विशेष विस्मय नहीं हुआ, वह मानो जानती थी कि गोरा आयेगा।

गोरा ने कुर्सी पर बैठकर कहा, "आखिर विनय ने हमें छोड़ दिया?"

सुचरिता ने कहा, "क्यों, छोड़ कैसे दिया? वह तो ब्राह्म-समाज में शामिल नहीं हुए।"

गोरा ने कहा, "वह ब्राह्म समाज में ही चले गये होते तो हमारे अधिक निकट रहते। उनका हिन्दू समाज से चिपटे रहना ही अधिक कष्ट देने वाला है। इससे तो वह हमारे समाज का बिलकुल छुटकारा कर देते तभी अच्छा होता।"

सुचरिता ने मन-ही-मन बहुत दुःख पाकर कहा, "आप समाज को यों एकान्त अलग करके क्यों देखते हैं? समाज के ऊपर आप जो इतना अधिक विश्वास रखते

हैं वह क्या आपके लिए स्वाभाविक है या कि आप अपने साथ जबरदस्ती करके वैसा करते हैं ?"

गोरा ने कहा, "इस समय की परिस्थिति में जबरदस्ती करना ही स्वाभाविक है। पैरों के नीचे धरती जब डगमगा उठती है तब प्रत्येक पग पर अधिक जोर देना ही होता है। इस समय क्योंकि चारों ओर विरोध ही दीखता है, इसलिए हमारी बातों और हमारे व्यवहार में एक अतिरंजना दीखती है, उसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।"

सुचरिता ने कहा, "चारों ओर जो विरोध दीखता है उसे आप बिलकुल अनुचित और अनावश्यक क्यों समझते हैं ? समाज अगर समय की गति में बाधा दे तो उसे चोट सहनी ही होगी।"

गोरा ने कहा, "समय की गति पानी की लहर की तरह है, उससे किनारे टूटते रहते हैं, लेकिन उस टूटने को स्वीकार कर लेना ही किनारे का कर्त्तव्य है, यह मैं नहीं मानता। तुम यह मत समझो कि मैं समाज का अच्छा-बुरा कुछ सोचता ही नहीं। वह सब सोचना तो इतना आसान है कि आजकल के सोलह बरस के लड़के भी विचारक बन बैठे हैं। लेकिन मुश्किल है तो समूची चीज को श्रद्धा की दृष्टि से समग्र भाव से देख सकना।"

सुचरिता ने कहा, "श्रद्धा के द्वारा हमें क्या सत्य ही मिलता है ? उसके द्वारा हम बिना सोचे-समझे मिथ्या को भी तो ग्रहण कर लेते हैं। मैं आपसे एक बात पूछती हूँ —क्या हम लोग मूर्ति-पूजा पर भी श्रद्धा कर सकते हैं ? आप क्या इस सबको सत्य मानकर उस पर विश्वास करते हैं ?"

गोरा थोड़ी देर चुप रहकर बोला, "मैं तुम्हें ठीक-ठीक सच्ची बात कहने की कोशिश करूँगा। मैंने शुरू से ही इस सबको सत्य मान लिया है। यूरोपीय संस्कार के साथ इसका विरोध है इसीलिए, या इसके विरुद्ध कई-एक सस्ती दलीलें दी जा सकती है, इसीलिए मैंने झटपट उन्हें रद्दी नही कर दिया। धर्म के बारे में मेरी अपनी विशेष साधना नहीं है, लेकिन मैं आँख बन्द करके रटी हुई बात की तरह यह नहीं कह सकता कि साकार-पूजा और मूर्ति-पूजा में कोई भेद नहीं है या कि भक्ति की एक चरम परिणति नहीं है। शिल्प में, साहित्य में, यहाँ तक कि विज्ञान और इतिहास में भी मनुष्य की कल्पना-वृत्ति की जगह है, तब एक अकेले धर्म में ही उसका कोई स्थान नहीं है यह बात मैं नहीं मानूँगा। मनुष्य की सभी वृत्तियों का चरम-प्रकाश धर्म में होता है। हमारे देश में मूर्ति-पूजा में ज्ञान और भक्ति के साथ कल्पना का सम्मिलन करने की जो चेष्टा हुई, क्या उसी के कारण ही हमारे देश का धर्म मनुष्य के लिए दूसरे देशों के धर्म से अधिक सम्पूर्ण नहीं हो

उठा

सुचरिता ने कहा, "ग्रीस और रोम में भी तो मूर्ति-पूजा होती थी।"

गोरा ने कहा, "वहाँ की मूर्तियों में मनुष्य की कल्पना ने जितना सौन्दर्य-बोध का आश्रय लिया था उतना ज्ञान-भक्ति का नहीं। हमारे देश में कल्पना ज्ञान और भक्ति के साथ गम्भीर रूप से जुड़ी हुई है। हमारे राधा-कृष्ण और हर-पार्वती केवल ऐतिहासिक पूजा के विषय नहीं है, उनमें मनुष्य के चिरन्तन तत्वज्ञान का रूप है। इसीलिए रामप्रसाद और चैतन्यदेव की भक्ति इन्हीं सब मूर्तियों का अवलम्बन करके प्रकट हुई। भक्ति का ऐसा एकान्त प्रकाश ग्रीस और रोम के इतिहास में कब देखा गया?"

सुचरिता ने कहा, "समय के परिवर्तन के साथ-साथ धर्म और समाज का कोई परिवर्तन ही आप स्वीकार करना नहीं चाहते?"

गोरा बोला, "क्यों नहीं चाहता? लेकिन वह परिवर्तन पागलपन हो तो नहीं चल सकता। मनुष्य का परिवर्तन मनुष्यत्व की राह पर ही होगा। बच्चा क्रम से बूढ़ा हो जाता है, लेकिन मनुष्य सहसा कुत्ता-बिल्ली तो नहीं हो जाता। भारतवर्ष का परिवर्तन भारतवर्ष के रास्ते पर ही होना चाहिए, एकाएक अंग्रेजी इतिहास का रास्ता पकड़ लेने से एक सिरे से दूसरे तक सब पंगु और निरर्थक हो जायेगा। देश की शक्ति, देश का ऐश्वर्य सब देश में ही संचित है यही तुम सबको बताने के लिए ही मैंने अपना जीवन सौंप दिया है। मेरी बात समझ तो रही हो?"

सुचरिता ने कहा, "हाँ, समझ रही हूँ। लेकिन ये सब बातें मैंने पहले कभी नहीं सुनी, और सोची भी नहीं। नई जगह पहुँच जाने से जैसे किसी स्पष्ट चीज से परिचित होते भी देर लगती है, वैसी ही हालत मेरी है। या शायद मैं स्त्री हूँ, इसीलिए मुझे पूरी उपलब्धि नहीं हो रही है।"

गोरा कह उठा, "बिलकुल नहीं। मैं तो बहुत-से पुरुषों को जानता हूँ यह सब चर्चा उनके साथ बहुत दिनों से करता आ रहा हूँ। वे लोग निःसंशय होकर यह तय किये बैठे हैं कि वह सब अच्छी तरह समझ गये हैं, लेकिन मैं तुमसे निश्चयपूर्वक कहता हूँ, तुम अपने मन के सामने जो देख पा रही हो उनमें से कोई जरा-सा भी नहीं देख पाया। तुम में वह गहरी दृष्टि-शक्ति है, यह मैंने तुम्हें देखते ही अनुभव किया था, इसीलिए मैं अपनी इतने दिनों की मन की सब बातें लेकर तुम्हारे पास आता रहा हूँ, अपना सारा जीवन मैंने तुम्हारे सामने खोलकर रख दिया है, जरा भी संकोच नहीं किया।"

सुचरिता ने कहा, "आप जब ऐसी बात करते हैं तब मेरा मन बहुत बेचैन हो उठता है। मुझसे आप क्या आशा करते हैं, मैं उसमें से क्या दे सकती हूँ, मुझ

क्या काम करना होगा, मेरे भीतर जो भाव उमड़ रहे हैं उन्हें कैसे प्रकट करूँ, मैं कुछ भी समझ नहीं पाती। यही डर लगता रहता है कि मुझ पर आपने जितना विश्वास किया है एक दिन कहीं आपको यही न लगे कि वह भूल थी।"

गोरा ने गम्भीर स्वर से कहा. "उसमें कहीं कोई भूल नहीं है। तुम्हारे भीतर कितनी बड़ी शक्ति है, यह मैं तुम्हें दिखा दूँगा। तुम ज़रा भी मत घबराओ— तुम्हारी जो योग्यता है उसे प्रकाश में ले आने का भार मुझ पर है, तुम मुझ पर भरोसा रक्खो।"

सुचरिता ने कुछ कहा नहीं, लेकिन बिना कहे भी यह बात व्यक्त हो गई कि भरोसा रखने में उसने कहीं कोई कसर नहीं रक्खी है। गोरा भी चुप हो रहा। कमरे में बहुत देर सन्नाटा रहा, बाहर गली में पुराने बर्तन वाला पीतल का बर्तन झनझनाता हुआ दरवाज़े पर हाँक लगाकर चला गया।

हरिमोहिनी अपनी पूजा समाप्त करके रसोई घर की ओर जा रही थीं। सुचरिता के निःशब्द कमरे में कोई है, इसका उन्हें ज्ञान भी नहीं था। लेकिन सहसा कमरे की ओर नज़र उठने पर उन्होंने जब देखा कि सुचरिता और गोरा चुप बैठे कुछ सोच रहे हैं, दोनों में से कोई शिष्टाचार की भी कोई बात नहीं कर रहा है, तब क्षण-भर के लिए उनके क्रोध की लपट बिजली-सी ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच गई। किसी तरह अपने को संभालकर उन्होंने दरवाज़े पर खड़े-खड़े पुकारा, "राधारानी!"

सुचरिता के उठकर उनके पास आने पर उन्होंने मृदु स्वर से कहा, "आज एकादशी है, मेरी तबियत ठीक नहीं है, तुम रसोई में जाकर ज़रा चूल्हा जलाओ, तब तक मैं ज़रा गौर बाबू के पास बैठूँ।"

मौसी का भाव देखकर सुचरिता चिन्तित-सी रसोई की ओर चली गई। हरिमोहिनी के कमरे में आने पर गोरा ने उन्हें प्रणाम किया। वह कुछ कहे बिना कुर्सी पर बैठ गईं। थोड़ी देर तक ओंठ भींचकर चुप बैठे रहने के बाद उन्होंने कहा, "तुम तो ब्राह्म नहीं हो न?"

गोरा ने कहा, "नहीं।"

हरिमोहिनी ने कहा, "हमारे हिन्दू समाज को तुम तो मानते हो?"

गोरा ने कहा, "ज़रूर मानता हूँ।"

हरिमोहिनी बोली, "तब तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है?"

हरिमोहिनी का अभियोग समझ न पाकर गोरा चुपचाप उनका मुँह ताकता रहा।

हरिमोहिनी ने कहा, "राधारानी सयानी हो गई है। तुम लोग तो उसके सगे

नहीं हो, उसके साथ तुम्हें इतनी क्या बात करनी है ? वह लड़की है, उसे घर का काम-काज भी करना होता है, उसे भी इतनी बातों में रहने की क्या जरूरत है ? इससे तो उसका मन दूसरी तरफ़ चला जायेगा। तुम तो ज्ञानी आदमी हो, सारा देश तुम्हारी प्रशंसा करता है—लेकिन हमारे देश में यह सब कब होता था, और किस शास्त्र में लिखा है ?"

गोरा को भारी धक्का लगा। सुचरिता के सम्बन्ध में इस तरह की बात कहीं से उठ सकती है यह उसने सोचा भी न था। थोड़ी देर चुप रहकर वह बोला, "वे ब्राह्म समाज में है, उन्हें बराबर इसी तरह सबसे मिलते-जुलते देखता रहा हूं, इसीलिए मुझे कुछ खयाल ही नही हुआ।"

हरिमोहिनी ने कहा, "अच्छा, वही ब्राह्म समाज मे सही, लेकिन तुम तो इस सबको कभी अच्छा नहीं कहते। तुम्हारी बातें सुनकर आजकल के कितने लोगों को होश आया है, तुम्हारा ही व्यवहार ऐसा होगा तो लोग तुम्हारी क्यों सुनेंगे ? अभी कल देर रात तक तुम उसके साथ बातें करते रहे, तब भी तुम्हारी बात नहीं चुकी, और आज फिर सबेरे से ही आ जुटे। सबेरे से वह न भंडारे में गई है, न रसोई में —आज एकादशी के दिन मेरी ही कुछ मदद कर दे, इसका भी ध्यान उसे नहीं आया, यह उसकी कैसी शिक्षा हो रही है ? तुम्हारे घर में भी तो लड़कियाँ हैं—उन्हें भी या तुम सब काम-काज छुड़ाकर ऐसी ही शिक्षा दे रहे हो, या और कोई दे तो तुम्हें अच्छा लगेगा ?"

गोरा की ओर से इन सब बातों का क्या उत्तर हो सकता था ! उसने केवल कहा, "उन्हें ऐसी ही शिक्षा मिलती रही है, इसीलिए मैंने इन सब बातों के बारे में विचार नहीं किया।"

हरिमोहिनी ने कहा, "उसे चाहे जैसी शिक्षा मिलती रही हो, जब तक वह मेरे पास है और जब तक मैं जीती हूँ तब तक यह सब नहीं चलेगा। उसे मैं बहुत कुछ रास्ते पर ले आई हूँ। वह जब परेश बाबू के यहाँ थी तभी यह शोर मचने लगा था कि मेरे साथ रहकर वह हिन्दू हो गई है। फिर इस घर में आकर तुम्हारे विनय के साथ न जाने क्या सब बातें होती रही कि फिर सब उलट गया। वह तो अब ब्राह्म घर में ब्याह करने चले हैं। खैर, मुश्किल से तो विनय से छुटकारा मिला। फिर एक कोई हारान बाबू आते थे, वह जब आता तब मैं राधारानी को लेकर ऊपर अपने कमरे में जा बैठती, इसलिए उसकी भी नहीं चली, इसी तरह बड़ी मुश्किल करके अब लगता है कि इसकी मति फिर कुछ सुधरने लगी है। इस घर में आकर उसने फिर सबका छुआ खाना शुरू कर दिया था, कल देखा वह फिर बन्द कर दिया है। कल रसोई से अपना खाना अपने आप ले गई, बैरा को

पानी लाने से मना कर दिया। अब, भैया तुम से हाथ जोड़कर बिनती करती हूँ, तुम उसे अब फिर मत बिगाड़ो। दुनिया में मेरे जो कोई थे सब मर गये, वही एक बची है, उसका भी मेरे सिवा कोई अपना नहीं है। उसे तुम लोग छोड़ दो। उनके घर में और भी तो बड़ी-बड़ी लड़कियाँ हैं—लावण्य है, लीला है, वे भी तो बुद्धि-मती हैं, पढ़ी-लिखी है, तुम्हें कुछ कहना हो तो उन्हें जाकर कहो, कोई तुम्हें मना नहीं करेगा।"

गोरा एकदम स्तम्भित होकर बैठा रहा। हरिमोहिनी थोड़ी रुककर फिर बोली, "तुम्हीं सोचो, उसे तो शादी-ब्याह भी करना होगा – उम्र तो काफ़ी हो गई है। तुम क्या समझते हो कि वह बुढ़ापे तक ऐसे ही बैठी रहेगी? लड़कियों को घर का काम-काज तो करना ही होता है।"

साधारणतया गोरा को इस बारे में कोई सन्देह नहीं था, उसकी भी तो यही राय थी, लेकिन सुचरिता के बारे में अपने मत को मन-ही-मन मानते हुए भी उसने कभी लागू करके नही देखा था। सुचरिता गृहिणी होकर किसी एक गृहस्थी के अन्तःपुर में घर के काम-काज में लगी हुई हो, यह उसने कभी कल्पना से भी नही देखा था। मानो सुचरिता अब जैसी है हमेशा वैसी ही रहेगी।

गोरा ने पूछा, "अपनी भानजी के विवाह के बारे मे आपने कुछ सोचा है क्या?"

हरिमोहिनी ने कहा, "सोचना तो होता ही है। मैं नहीं तो और कौन सोचेगा?"

गोरा ने फिर पूछा, "उनका विवाह क्या हिन्दू समाज में हो सकेगा?"

हरिमोहिनी ने कहा, "उसकी कोशिश तो करनी होगी। वही और गड़बड़ न करे और ठीक ढंग से रहे, तो काम अच्छी तरह चल जायेगा। वह सब मैंने मन-ही-मन ठीक कर रक्खा है। बीच में तो उसके जो ढंग थे उनको देखते हुए कोई पक्का फैसला करने का साहस नही हो रहा था। अब दो दिन से फिर देख रही हूँ कि उसका मन कुछ नरम पड़ गया है, इसलिए फिर भरोसा होता है।"

गोरा ने सोचा कि इस बारे में और अधिक कुछ पूछना उचित नहीं है, लेकिन पूछे बिना रह न सका। "पात्र क्या आपने मन में सोच रक्खा है?"

हरिमोहिनी ने कहा, "सोचा तो है। पात्र अच्छा ही है मेरा छोटा देवर कैलाश। उसकी बहू कुछ दिन हुए मर गई; मन की सयानी लड़की न मिलने से अब तक बैठा है, नहीं तो ऐसा लड़का क्या यों ही पड़ा रहता है? राधारानी के साथ ठीक जँचेगा।"

गोरा के मन मे ज्यों-ज्यों सूई-सी चुभने लगी त्यों-त्यों कैलाश के बारे में वह

और प्रश्न पूछता गया।

हरिमोहिनी के देवरों में एक कैलाश ने ही बहुत परिश्रम करके कुछ दूर तक पढ़ाई-लिखाई की थी- कहां तक, यह हरिमोहिनी नहीं बता सकती थी। कुनबे में उसी को विद्वान माना जाता था। गाँव के पोस्टमास्टर के विरुद्ध सदर में दरखास्त भेजते समय कैलाश ने ही ऐसी जबरदस्त अंग्रेजी में लिख दिया था कि पोस्ट आफ़िस के कोई एक बड़े बाबू स्वयं पड़ताल के लिए आये थे। इससे गाँव के सभी लोग कैलाश की योग्यता से बहुत प्रभावित हो गये थे। इतनी शिक्षा होने पर भी आचार और धर्म के मामले में कैलाश की निष्ठा ज़रा भी कम नहीं हुई थी।

कैलाश का पूरा परिचय सुन लेने के बाद गोरा उठ खड़ा हुआ। हरिमोहिनी को प्रणाम करके और कुछ कहे बिना वह घर से बाहर हो गया।

जब गोरा सीढ़ी से आँगन की ओर उतर रहा था तब सुचरिता आँगन की दूसरी ओर रसोई में काम में लगी थी। गोरा के पैरों की आहट सुनकर वह द्वार के पास आकर खड़ी हो गई। लेकिन गोरा किसी ओर देखे बिना बाहर चला गया। सुचरिता एक लम्बी साँस लेकर फिर रसोई के काम में आ जुटी।

गली के मोड़ पर ही गोरा की हारान बाबू से मुठभेड़ हो गई। हारान बाबू ने थोड़ा हँसकर कहा, "आज बड़े सवेरे निकल पड़े!"

गोरा ने कोई उत्तर नहीं दिया। हारान बाबू ने फिर थोड़ा हँसकर पूछा, "वहीं गये थे शायद! सुचरिता घर पर तो है?"

गोरा ने कहा, "हाँ" और दनदनाता हुआ आगे बढ़ गया।

हारान बाबू ने सुचरिता के घर में घुसते ही सामने रसोई के खुले द्वार से सुचरिता को देख लिया। सुचरिता को भाग जाने का रास्ता न था, मौसी भी पास में ही थी।

हारान बाबू ने पूछा, "गौर मोहन बाबू से अभी-अभी भेंट हुई। वह अब तक यहीं थे शायद?"

सुचरिता ने उन्हें कोई जवाब नहीं दिया, सहसा बर्तनों से इतनी व्यस्त हो उठी मानो उसे साँस लेने की भी फ़ुर्सत नहीं है। लेकिन हारान बाबू इससे हारने वाले नहीं थे। उन्होंने रसोई के बाहर ही आँगन में खड़े-खड़े बातचीत शुरू कर दी। हरिमोहिनी ने सीढ़ी के पास आकर दो-तीन बार खाँसा भी, लेकिन उसका कोई असर नहीं हुआ। हरिमोहिनी हारान बाबू के सामने भी आ सकती थीं, लेकिन उन्होंने समझ लिया था कि उनके एक बार हारान बाबू के सामने आ जाने पर इस घर में इस उद्यमी युवक के उत्साह से उनका या सुचरिता का बचना मुश्किल हो

जायेगा। इसीलिए हारान बाबू की छाया देखकर भी वह इतना लम्बा घूँघट काढ़ लेती थीं जो उनकी नव-वधू अवस्था में भी आवश्यकता से अधिक ही समझा जाता।

हारान बाबू बोले, "सुचरिता, तुम किधर जा रही हो ज़रा सोचो तो? कहाँ जाकर पहुँचोगी? यह तो तुमने सुन ही लिया होगा कि ललिता के साथ विनय बाबू का ब्याह हिन्दू पद्धति से होगा। इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है, जानती हो?"

सुचरिता की ओर से कोई उत्तर न पाकर हारान बाबू ने धीमे और गम्भीर स्वर से कहा, "ज़िम्मेदार तुम हो।"

हारान बाबू ने सोचा था, इतने बड़े और भयानक अभियोग की चोट सुचरिता कभी नहीं सह सकेगी। लेकिन वह बिना बोले अपना काम करती रही, यह देखकर उन्होंने स्वर और भी गम्भीर करके उँगली उठाकर सुचरिता की ओर हिलाते हुए कहा, "सुचरिता, मैं फिर कहता हूँ, ज़िम्मेदार तुम हो। तुम दिल पर हाथ रख-कर कह सकती हो कि इसके लिए तुम समूचे ब्राह्म-समाज के निकट अपराधी नहीं हो?"

सुचरिता ने चुपचाप कढ़ाई चूल्हे पर रख दी, उसमें तेल छनछनाने लगा।

हारान बाबू कहते रहे, "तुम्हीं विनय बाबू को और गौर मोहन बाबू को अपने घर में लायीं और तुम्हीं ने उनको इतना बढ़ावा दिया कि आज ये दोनों तुम्हारे ब्राह्म-समाज के सभी मान्य-बन्धुओं से भी बड़े हो गये हैं। इसका क्या नतीजा हुआ, देख रही हो। मैंने क्या शुरू से ही बार-बार सावधान नहीं किया? आज क्या हुआ है? अब ललिता को कौन रोकेगा? तुम सोचती हो कि ललिता के साथ ही मुसीबत टल गई, लेकिन वैसा नहीं है। मैं आज तुम्हें सावधान करने आया हूँ, अब तुम्हारी बारी है। आज ललिता की दुर्घटना से तुम्हें ज़रूर मन-ही-मन पछतावा हो रहा होगा, वह दिन दूर नहीं है जब अपने ही अधःपतन पर तुम्हें पछतावा तक न होगा। लेकिन सुचरिता, अब भी लौटने का समय है। एक बार सोचकर देखो; एक दिन कितनी बड़ी, कितनी महान् आशा के बीच हम दोनों मिले थे। हमारे सामने जीवन का कर्तव्य कैसा उज्ज्वल था, ब्राह्म समाज का भविष्य किस उदार भाव से खुल रहा था, हमारे कितने संकल्प थे और प्रतिदिन हम लोग कितना सम्बल जुटा रहे थे! तुम क्या समझती हो, वह सब नष्ट हो गया? कभी नहीं। हमारा वह आशा का क्षेत्र आज भी वैसा ही प्रस्तुत है—एक बार पलटकर देखो तो। एक बार लौट तो आओ।"

उस समय खौलते तेल में कई साग-तरकारियाँ ज़ोरों से छनछनाने लगी थीं और सुचरिता उन्हें कायदे से पलट रही थी। जब हारान बाबू अपने आह्वान का परिणाम जानने के लिए चुप हुए तो सुचरिता ने आग पर से कढ़ाही नीचे उतारकर उनकी ओर मुड़कर दृढ़ स्वर में कहा, "मैं हिन्दू हूँ।"

हारान बाबू ने बिलकुल हक्बुद्धि होकर कहा, "तुम हिन्दू हो ?"

सुचरिता ने दोहराया, "हाँ, मैं हिन्दू हूँ।" और कढ़ाही को फिर आग पर चढ़ाकर तरकारियों को चलाने लगी।

हारान बाबू ने क्षण-भर में संभलकर तीखे स्वर से कहा, "तभी शायद गौर मोहन बाबू सबेरा हो, सन्ध्या हो, तुम्हें दीक्षा देते रहते थे ?"

सुचरिता ने मुँह उधर मोड़े बिना ही कहा, "हाँ, मैंने उन्हीं से दीक्षा ली है, वही मेरे गुरु हैं।"

हारान बाबू एक समय से अपने को ही सुचरिता का गुरु समझते आ रहे थे। आज सुचरिता के मुँह से यह सुनकर कि वह गोरा से प्रेम करती है, उन्हें इतना कष्ट न होता जितना इस बात से हुआ। उनका गुरु का अधिकार आज गोरा ने छीन लिया है, सुचरिता की यह बात उन्हें तीर-सी लगी।

उन्होंने कहा, "तुम्हारे गुरु चाहे जितने बड़े हों, तुम क्या समझती हो कि हिन्दू समाज तुम्हें ग्रहण कर लेगा ?"

सुचरिता ने कहा, "वह सब मैं कुछ नहीं समझती। मैं समाज भी नहीं जानती। मैं इतना जानती हूँ कि मैं हिन्दू हूँ।"

हारान बाबू ने कहा, "तुम यह जानती हो कि तुम इतने दिनों तक अविवाहित रही हो केवल इसी बात पर तुम हिन्दू समाज से जातिच्युत कर दी जा सकती हो ?"

सुचरिता ने कहा, "इस बारे में आप व्यर्थ चिन्ता न करें, लेकिन मैं आपसे इतना कहती हूँ कि मैं हिन्दू हूँ।"

हारान बाबू ने कहा, "परेश बाबू से जो धर्म-शिक्षा मिली थी वह भी अपने इस नये गुरु के चरणों पर न्यौछावर कर दी ?"

सुचरिता ने कहा, "मेरा धर्म मेरे अन्तर्यामी जानते हैं, उसके बारे में मैं किसी के साथ कोई चर्चा नहीं करना चाहती। आप यही जानिए कि मैं हिन्दू हूँ।"

तब हारान बाबू बिलकुल तिलमिला उठे और बोले, "तुम चाहे कितनी बड़ी हिन्दू हो जाओ—उससे कोई नतीजा नहीं निकलेगा, यह मैं तुम्हें बता दूं। तुम्हारे गौर मोहन बाबू विनय बाबू नहीं हैं। तुम अपने को हिन्दू-हिन्दू पुकारकर गला फाड़

तो तब भी यह आशा न करना कि गौर बाबू तुम्हें ग्रहण कर लेंगे। चेले बनाकर गुरुगीरी करना आसान है, लेकिन इसी से वह तुम्हें घर ले जाकर गृहस्थी चलायेंगे, यह बात स्वप्न में भी मत सोचना !"

सुचरिता रसोई भूलकर बिजली की तरह तड़पकर खड़ी हो गई और बोली, "यह सब आप क्या कह रहे हैं ?"

"मैं कह रहा हूँ कि गौर मोहन बाबू कभी तुमसे विवाह नहीं करेंगे।"

सुचरिता की आँखें जल उठीं। वह बोली, "विवाह ? मैंने आपसे कहा नहीं कि वह मेरे गुरु है ?"

हारान बाबू ने कहा, "वह तो कहा है लेकिन जो नहीं कहा वह भी तो हम समझ ले सकते हैं।"

सुचरिता ने कहा, "आप यहाँ से चले जाइये। मेरा अपमान न कीजिए। मैं आप से कहे देती हूँ कि मैं आज से आपके सामने नहीं आऊँगी।"

हारान बाबू ने कहा, "हाँ, कैसे सामने आओगी ! अब से तो तुम जनाने में रहोगी। हिन्दू रमणी ! असूर्यम्पश्या ! परेश बाबू के पाप का प्याला अब भर गया। अब बुढापे में वह अपनी करनी का फल भोगते रहें हम तो विदा लेते हैं।"

सुचरिता ने धमाके से रसोई का दरवाजा बन्द कर दिया और फर्श पर बैठ गई। मुँह में आँचल ठूँसकर किसी तरह अपनी सिसकियों को दबाने का प्रयत्न करने लगी ; हारान बाबू मानो स्याही-पुता चेहरा लिये बाहर को चल दिये।

हरिमोहिनी ने दोनों की बात पूरी सुन ली थी। आज सुचरिता के मुँह से उन्होंने जो सुना वह उनकी आशा से परे था। उनकी छाती खुशी से फूल उठी। उन्होंने सोचा, 'क्यों न होता, मैं जो सच्चे मन से अपने गोपी-वल्लभ की पूजा करती आई वह क्या सब यों ही जायेगी ?'

हरिमोहिनी ने फौरन अपने पूजा-गृह में जाकर फर्श पर लेटकर देवता को साष्टांग प्रणाम किया और प्रतिज्ञा की कि आज से वह भोग और भी बढ़ा देगी। अब तक उनकी पूजा दुःख की सान्त्वना के लिए होने के कारण शान्त-भाव से होती थी, आज उसके स्वार्थ-साधन का रूप लेते ही वह अत्यन्त उग्र और क्षुधातुर हो उठी।

६३

सुचरिता से गोरा ने जिस ढंग से बात की थी, वैसे पहले कभी किसी से नहीं

की थी। अब तक वह अपने श्रोताओं के सामने केवल अपने वाक्य, मत और उपदेश ही रखता आया था, अब सुचरिता के सम्मुख उसने स्वयं अपने को निकालकर रख दिया था। इस आत्म-प्रकाश के आनन्द में उसके सारे मत और संकल्प न केवल एक शक्ति से बल्कि एक रस से भर उठे। एक सौन्दर्य श्री ने उसके जीवन को घेर लिया। उसकी तपस्या पर मानो सहसा देवताओं ने अमृत बरसा दिया था।

पिछले कुछ दिनों से गोरा प्रतिदिन इसी आनन्द के आवेश से भरकर कुछ सोचे बिना सुचरिता के पास आता था। लेकिन आज हरिमोहिनी की बात सुनकर एकाएक उसे ध्यान हुआ कि ऐसी ही मुग्धता के लिए एक दिन उसने विनय का कैसा मजाक उड़ाया था और तिरस्कार किया था। आज अनजाने ही उसी परिस्थिति में आकर वह चौंक उठा। अनजान जगह में बेहोश सोया हुआ व्यक्ति धक्का खाकर जैसे हड़बड़ाकर उठता है वैसे ही गोरा अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने को सजग करने लगा। वह बराबर यह प्रचार करता आया था कि पृथ्वी पर अनेक प्रबल जातियों का सम्पूर्ण विनाश हो गया--भारत ही केवल संयम और दृढ़ता से नियम पालन के कारण सदियों से प्रतिकूल शक्तियों के आघात सहता हुआ अपने को बचाये रख सका है। उस नियम में ज़रा-सी भी शिथिलता स्वीकार करने को वह तैयार नहीं था। उसका कहना था, भारतवर्ष का सभी कुछ लूटा जा रहा है, लेकिन अपने जिस प्राण पुरुष को उसने इस सब कड़े नियम संयम के भीतर छिपाकर रखा है उस तक किसी अत्याचारी राजा का वार पहुँच ही नहीं सकता। जब तक हम लोग दूसरी जाति के अधीन हैं तब तक हमें अपने नियम को और दृढ़तापूर्वक मानना होगा। अच्छे-बुरे के विवेचन का समय अभी नहीं है। जो व्यक्ति भँवर में फँसकर मृत्यु के मुँह की ओर बहा जा रहा हो वह जिस किसी चीज़ के सहारे अपने को बचा सकता हो उसी को पकड़ता है, यह नहीं सोचता कि वह चीज़ सुन्दर है या कुरूप। गोरा हमेशा से यही बात कहता आया था—आज भी उसके पास कहने को यही था। हरिमोहिनी ने जब गोरा के आचरण की निन्दा की, तब मानो अंकुश की चोट से गजराज तड़प उठा।

गोरा जब अपने घर पहुँचा तब दरवाज़े के सामने सड़क में बेंच डालकर महिम नंगे बदन बैठे तम्बाकू खा रहे थे। आज उनके ऑफ़िस की छुट्टी थी। गोरा को भीतर जाते देखकर उन्होंने भी उसके पीछे जाकर पुकार कर कहा, "गोरा, एक बात है, सुनते जाओ!"

गोरा को अपने कमरे में ले जाकर महिम ने पूछा, "बुरा मत मानना, भाई, पहले पूछ लूँ कि तुम्हें भी कहीं विनय की छूत तो नहीं लग गई? उस इलाके में

बार-बार आना-जाना जो होने लगा है।"

गोरा का चेहरा लाल हो उठा। वह बोला, "कोई डर नहीं है।"

महिमा ने कहा, "जैसे ढंग देखता हूँ, कुछ नहीं कहा जा सकता, तुम सोचते हो वह एक खाने की चीज़ है जिसे मज़े से निगलकर फिर लौटाया जा सकेगा। लेकिन उसी के भीतर बन्सी लगी है, यह अपने दोस्त की हालत देखकर ही समझ सकते हो। अरे, चले कहाँ—असल बात तो अभी मैंने की ही नहीं। उधर ब्राह्म लड़की के साथ विनय का ब्याह तो सुनता हूँ बिलकुल पक्का हो गया है। लेकिन उसके बाद उनके साथ हमारा किसी तरह का व्यवहार नहीं चल सकता. यह मैं तुम्हें पहले से ही कहे रखता हूँ।"

गोरा ने कहा, "वह तो नहीं ही चल सकता।"

महिम ने कहा, "लेकिन माँ अगर गोलमाल करेंगी तो मुश्किल होगी। हम लोग गृहस्थ हैं, यों ही बेटे-बेटियों के ब्याह में जान मुँह को आ जाती है, उसके ऊपर अगर घर में ही ब्राह्म-समाज बैठ जायेगा तब तो मुझे यहाँ से बोरिया-बिस्तर उठा लेना पड़ेगा।"

गोरा ने कहा, "नहीं, वह सब कुछ नहीं होगा।"

महिम ने कहा, "शशि के विवाह का प्रस्ताव तय हो चला है। हमारे समधी जितने वज़न की लड़की लेंगे उससे कुछ अधिक सोना लिये बिना नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि वह जानते हैं कि मनुष्य तो नश्वर पदार्थ है, सोना उससे अधिक दिन टिकता है। दवा की अपेक्षा अनुपान की तरफ़ ही उनका ध्यान अधिक है। उसे समधी कहना तो उसकी हेठी करना है—वह तो एकदम बेहया है! खैर, खर्च तो बहुत होगा, लेकिन उससे जो सीख पाई है वह लड़के के ब्याह के समय काम आयेगी। मेरा तो मन होता है, एक बार फिर इस ज़माने में जन्म लेकर बाबा को बीच में रखकर अपना ब्याह बाकायदा तय करूँ—अपने पुरुष जन्म को एकदम सोलह आने सार्थक करके दिखाऊँ! यही तो पौरुष है—लड़की के बाप को एकबारगी चित्त कर देना क्या मामूली बात है! तुमने जो कहा, तुम्हारे साथ मिलकर दिन-रात हिन्दू समाज की जयध्वनि करने लायक जोश किसी तरह नहीं जुट पाता, भाई, गले से आवाज़ ही नहीं निकलती। मेरी तीन कोड़ी की उमर होने में कुल चौदह महीने हैं—पहली लड़की को जन्म देने की भूल का सुधार करने में सहधर्मिणी ने लम्बा समय लिया—लेकिन जो हो उसके विवाह का समय होने तक सब लोग मिलकर हिन्दू समाज को ताज़ा रक्खो, फिर उसके बाद देश के लोग चाहे मुसलमान हों, चाहे खिरस्तान, मुझे कोई मतलब नहीं।"

गोरा के उठकर खड़े होते देख महिम बोले, "इसीलिए मैं कह रहा था, शशि

के विवाह पर विनय को निमन्त्रण देने से नहीं चलेगा। उस वक्त इस बात को लेकर फिर कोई हंगामा मचे, यह नहीं होने देना होगा। माँ को तुम अभी से सावधान कर रखना।"

माँ के कमरे में जाकर गोरा ने देखा, आनन्दमयी फर्श पर बैठी आँखों पर चश्मा चढ़ाये एक खाते में न जाने किस चीज़ की सूची बना रही है। गोरा को देखकर उन्होंने चश्मा उतारकर खाता बन्द करते हुए कहा, "बैठ।"

गोरा के बैठ जाने पर आनन्दमयी बोलीं, "तेरे साथ मुझे कुछ सलाह करनी है। विनय के ब्याह की खबर तो सुन ली है न ?"

गोरा चुप हो रहा। आनन्दमयी बोलीं, "विनय के चचा नाराज़ हैं, वे लोग कोई नहीं आवेंगे। उधर परेश बाबू के घर पर यह विवाह हो सकेगा इसमें भी सन्देह है। सब इन्तज़ाम विनय को ही करना होगा, इसीलिए मैं सोचती थी, हमारे घर के उत्तर वाले हिस्से में निचली मंज़िल तो किराये पर चढ़ी हुई है लेकिन ऊपर वाले किरायेदार चले गये हैं—वहीं दुमंजिले में अगर ब्याह का बन्दोबस्त कर दिया जाये तो ठीक रहेगा।"

गोरा ने पूछा, "क्या यह ठीक रहेगा ?"

आनन्दमयी बोलीं, "मैं न होऊँगी तो ब्याह में सब काम कौन संभालेगा ? वह तो बेचारा मुसीबत में पड़ जायेगा। वहाँ ब्याह की बात हो जाये तो मैं इस घर से ही सारा इन्तज़ाम कर दे सकूंगी, कोई दौड़-धूप नहीं करनी पड़ेगी।"

गोरा ने कहा, "वह नहीं हो सकेगा माँ!"

आनन्दमयी ने पूछा, "क्यों नहीं हो सकेगा ? उनसे तो मैंने पूछ लिया है।"

गोरा ने कहा, "नहीं, माँ, यह ब्याह नहीं हो सकेगा—मैं कहता हूँ, तुम मेरी बात मानो।"

आनन्दमयी ने कहा, "क्यों, विनय उनके मत से तो ब्याह नहीं कर रहा है।"

गोरा ने कहा, "यह सब बहस की बात है। समाज के सामने वकालत नहीं चलेगी। विनय की जो मर्ज़ी है करे, हम लोग तो इस ब्याह को नहीं मान सकते। कलकत्ता शहर में घरों की कोई कमी नहीं है—उसका अपना भी तो घर है।"

घर बहुत मिल सकते हैं, यह आनन्दमयी जानती थीं। लेकिन विनय सभी बन्धु-परिजनों से परित्यक्त होकर अनाथों की तरह किसी तरह किराये के घर

में विवाह-कर्म पूरा करे, यह उनके मन को अखर रहा था। इसीलिए उन्होंने मन-ही-मन सोच लिया था कि उनके मकान का हिस्सा जो किराये के लिए खाली है वहीं विनय के विवाह की व्यवस्था कर दी जाये। इससे समाज से कोई झगड़ा मोल लिये बिना वह अपने ही घर में शुभ-कर्म का अनुष्ठान करके तृप्त हो सकेंगी।

गोरा की दृढ़ आपत्ति जानकर उन्होंने लम्बी साँस लेकर कहा, "तुम इतने ही विरुद्ध हो तब तो कहीं और ही मकान किराये पर लेना होगा। लेकिन उससे मुझ पर बहुत बोझ पड़ेगा। खैर, यह जब हो ही नहीं सकता तब इसके बारे में और सोचकर क्या होगा!"

गोरा ने कहा, "माँ, इस ब्याह में तुम्हारे शामिल होने से नहीं चलेगा।"

आनन्दमयी ने कहा, "यह तू क्या कह रहा है, गोरा! अपने विनय के ब्याह में मैं शामिल न होऊँगी तो और कौन होगा!"

गोरा ने कहा, "वह किसी तरह नहीं हो सकेगा, माँ!"

आनन्दमयी ने कहा, "गोरा, विनय के साथ तेरा मन-भेद हो सकता है, लेकिन इसीलिए क्या तू उसका दुश्मन हो जायेगा?"

गोरा ने कुछ उत्तेजित होकर कहा, "माँ, यह कहना तुम्हारी ज्यादती है। आज विनय के ब्याह में मैं खुशी से शामिल नहीं हो पा रहा हूँ, यह मेरे लिए कोई सुख की बात नहीं है। विनय को मैं कितना प्यार करता हूँ यह और कोई चाहे न जाने, तुम तो जानती हो। लेकिन माँ, यह प्यार की बात नहीं है, इसमें दोस्ती-दुश्मनी कुछ नहीं है। विनय ने नतीजे की बात सोच-समझकर ही इधर कदम बढ़ाया है। हमने उसे नहीं छोड़ा, उसी ने हमें छोड़ दिया है, इसलिए अब जो विच्छेद हो रहा है उससे उसको ऐसी कोई चोट नहीं पहुँचेगी जिसके लिए वह तैयार न हो।"

आनन्दमयी ने कहा, "गोरा, यह बात तो ठीक है कि विनय जानता है कि उस विवाह के मामले में उसके साथ तुम्हारा किसी तरह का सहयोग नहीं होगा। लेकिन यह भी तो वह निश्चय जानता है कि इस शुभ कर्म में मैं किसी तरह उसका परित्याग नहीं कर सकूँगी। विनय अगर समझता है कि उसकी बहू को मैं आशीर्वाद-पूर्वक ग्रहण नहीं करूँगी तो मैं जानती हूँ कि वह प्राण जाने पर भी यह ब्याह न कर सकता। मैं क्या विनय के मन को जानती नहीं?" कहते-कहते आनन्दमयी ने आँखों के कोनों से आँसू पोंछ लिये। विनय की ओर से गोरा के मन में भी जो गहरी वेदना थी वह उमड़ आई। फिर भी उसने कहा, "माँ, तुम समाज में रहती हो और समाज की ऋणी हो, यह बात तुम्हें याद रखनी होगी।"

आनन्दमयी ने कहा, "गोरा, मैंने तो तुमसे बार-बार कहा है, समाज से मेरा नाता बहुत दिनों से टूट गया है। इसीलिए तो समाज मुझ से घृणा करता है और मैं भी उससे दूर रहती हूँ।"

गोरा ने कहा, "माँ, तुम्हारी इसी बात से मुझे सबसे ज्यादा तकलीफ होती है।"

आनन्दमयी ने अपनी छलछलाती हुई स्निग्ध दृष्टि से मानो गोरा का सर्वाङ्ग सहलाते हुए कहा, "बेटा, ईश्वर जानते हैं, तुझे इस तकलीफ से बचाना मेरे वश में नहीं है।"

गोरा ने उठते हुए कहा, "तब फिर मुझे क्या करना होगा, तुम्हें बता दूँ। मैं विनय के पास जाता हूँ, जाके उससे कहूँगा कि अपने विवाह के मामले में तुम्हें उलझाकर समाज से तुम्हारे विच्छेद को और बढ़ावा न दे—क्योंकि यह तो उसकी भज्ञ ज्यादती और स्वार्थपरता होगी।"

आनन्दमयी ने हँसकर कहा, "अच्छा, तू जो कर सके कर ले—उसे जा के कह दे, फिर मैं देख लूँगी।"

गोरा के चले जाने पर आनन्दमयी बहुत देर तक बैठकर सोचती रहीं। फिर धीरे-धीरे उठकर पति के कक्ष में चली गईं।

आज एकादशी थी, इसलिए कृष्णदयाल ने भोजन बनाने का कोई आयोजन नहीं किया था, उन्हें घेरण्ड-संहिता का एक नया बँगला अनुवाद मिल गया था, उसी को हाथ में लिये वह एक मृगछाला पर बैठे पाठ कर रहे थे।

आनन्दमयी को देखकर असमंजस में पड़ गये। आनन्दमयी उनसे काफी दूरी रखती हुई कमरे की देहरी पर ही बैठ गईं और बोलीं, "देखो, बड़ा अन्याय हो रहा है!"

कृष्णदयाल सांसारिक न्याय-अन्याय से परे जा पड़े थे, इसीलिए उन्होंने उदासीन भाव से पूछा, "कैसा अन्याय?"

आनन्दमयी ने कहा, "गोरा को और एक दिन भी धोखे में रखना ठीक नहीं है—मामले की हद होती जा रही है।"

गोरा ने जिस दिन प्रायश्चित की बात उठाई थी उस दिन कृष्णदयाल के मन में भी यह बात आई थी, लेकिन फिर योग-साधना की तरह-तरह की प्रक्रियाओं के बीच उन्हें इस बारे में सोचने का अवकाश ही नहीं मिला।

आनन्दमयी ने कहा, "शशिमुखी के ब्याह की बात हो रही है, शायद इसी फागुन के महीने होगा। इससे पहले घर में जब भी कोई सामाजिक कर्म हुआ है मैं किसी-न-किसी बहाने गोरा को साथ लेकर दूसरी जगह जाती रही हूँ। कोई

इतना बड़ा काम भी इस बीच नहीं हुआ। लेकिन अब शशि के विवाह में उसे कहाँ ले जाऊँगी? अन्याय रोज ही बढ़ता जा रहा है, मैं रोज दोनों वेला भगवान से हाथ जोड़कर यही माँगती हूँ कि उन्हें जो सजा देनी हो सब मुझको ही दें। लेकिन मुझे बड़ा डर लग रहा है—अब और छिपाकर नहीं रक्खा जा सकेगा। गोरा की मुसीबत होगी। अब मुझे अनुमति दे दो, मैं उसे सारी बात खोलकर कह दूँ—फिर मेरे भाग्य में जो होगा, होगा।"

कृष्णदयाल की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्रदेव ने यह क्या विघ्न भेजा! इधर उनकी तपस्या भी घोरतर हो उठी थी—साँस रोकने में वह असम्भव को सम्भव कर रहे थे, भोजन की मात्रा उन्होंने इतनी कम कर दी थी कि पेट को पीठ से मिला देने का उनका हठ पूरा होने में अधिक देर न थी। ऐसे समय यह क्या उत्पात हुआ!

कृष्णदयाल बोले, "तुम क्या पागल हुई हो? वह बात आज प्रकट होने पर मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊँगा—क्या सफाई दूँगा—पेंशन तो रुक ही जायेगी, शायद पुलिस भी तंग करेगी। जो हो गया सो हो गया, अब जितना संभलकर चल सको, चलो—न सको तो भी कोई दोष नहीं होगा।"

कृष्णदयाल ने सोच रक्खा था कि उनकी मृत्यु के बाद जो हो सो हो, पर तब तक वह स्वतन्त्र होकर रहना चाहते थे। फिर उनके अनजाने किसका क्या हो रहा है, इसकी अनदेखी करते रहने से ही किसी तरह काम चल जायेगा। क्या करना चाहिए, कुछ तय न कर पाकर आनन्दमयी उदास मुँह लिये उठ खड़ी हुईं। क्षण-भर खड़ी रहकर बोलीं, "तुम्हारा शरीर कैसा हुआ जा रहा है, नहीं देखते?"

आनन्दमयी की इस मूर्खता पर कृष्णदयाल जोर से हँसे और बोले, "शरीर!"

इस विषय की चर्चा किसी सन्तोषजनक परिणाम तक नहीं पहुँची, और कृष्णदयाल ने फिर घेरण्डसंहिता में मन लगाया। उधर बाहर के कमरे में उनके संन्यासी के साथ बैठे महिम ऊँचे स्वर से परमार्थ-तत्व की चर्चा में लगे हुए थे। गृहस्थ को मुक्ति मिल सकती है या नहीं, अत्यन्त विनीत व्याकुल स्वर से यह प्रश्न पूछकर वह हाथ जोड़कर ऐसे एकान्त आग्रह और भक्ति से इसका उत्तर सुनने बैठे थे मानो मुक्ति पाने के लिए उन्होंने अपना सब कुछ दाव पर लगा दिया हो। गृहस्थ से मुक्ति नहीं मिल सकती किन्तु स्वर्ग मिल सकता है, संन्यासी यही समझाकर महिम को किसी तरह शान्त करने की चेष्टा कर रहे थे, लेकिन महिम की तसल्ली ही न होती थी। उन्हें मुक्ति चाहिए ही चाहिए, स्वर्ग से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। किसी तरह कन्या का विवाह हो जाते ही वह संन्यासी की पद-सेवा

करते हुए मुक्ति की साधना में जुट जायेंगे, इससे उन्हें कोई रोक नहीं सकेगा। किन्तु कन्या का विवाह तो ऐसा आसान मामला नहीं है—हां, बाबा की दया हो जायें तो शायद बेड़ा पार हो सके !

६४

बीच में वह आत्म-विस्मृत हो गया था, यह स्मरण करके गोरा पहले से भी कठोर हो उठा। वह जो समाज को भूलकर एक प्रबल मोह से अभिभूत हो गया था, इसका कारण उसने नियम-पालन की शिथिलता को ही समझा।

प्रातःकाल सन्ध्या करके गोरा ने कमरे में आकर देखा, परेश बाबू बैठे हैं। उसके हृदय में मानो एक बिजली-सी दौड़ गई। परेश बाबू के साथ उसका जीवन किसी एक सूत्र से गहरी आत्मीयता में बँधा हुआ है, भीतर-ही-भीतर इसे स्वीकार किये बिना वह न रह सका। परेश बाबू को प्रणाम करके वह बैठ गया।

परेश बोले, "विनय के विवाह की बात तुमने जरूर सुनी होगी ?"

गोरा ने कहा, "हां !"

परेश बोले, "वह ब्राह्म मत से विवाह करने को तैयार नहीं है।"

गोरा ने कहा, "तब तो उसका यह विवाह करना ही उचित नहीं है।"

परेश बाबू ने तनिक हंस दिया, इस बात पर कोई बहस करने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। फिर बोले, "हमारे समाज में से कोई इस विवाह में योग नहीं देगा, विनय के घर के लोग भी कोई नहीं आयेंगे, ऐसा सुना है। अपनी कन्या की ओर से मैं अकेला हूँ—विनय की ओर से शायद तुम्हारे सिवा कोई नहीं होगा, इसीलिए इस बारे में तुमसे परामर्श करने आया हूँ।"

गोरा ने सिर हिलाकर कहा, "इस बारे में मुझसे क्या परामर्श होगा—मैं तो इसमें नहीं हूँ।"

परेश बाबू ने विस्मित होकर क्षण-भर गोरा के चेहरे पर नज़र टिकाकर पूछा, "तुम भी नहीं हो ?"

परेश के इस विस्मय से गोरा थोड़ा-सा लज्जित हुआ लेकिन इसी संकोच को छिपाने के लिए उससे दुगने ज़ोर से कहा, "मैं इसमें कैसे पड़ सकता हूँ ?"

परेश बाबू ने कहा, "मैं जानता हूँ ... तुम उसके बन्धु हो, बन्धु की जरूरत सबसे अधिक क्या इसी समय नहीं है ?"

गोरा ने कहा, "मैं उसका बन्धु हूँ, लेकिन संसार में वही तो एकमात्र बन्धन

या सबसे बड़ा बन्धन नहीं है ?"

परेश बाबू ने पूछा, "गौर, तुम क्या समझते हो कि विनय के आचरण से कोई अन्याय या अधर्म प्रकट होता है ?"

गोरा ने कहा, "धर्म के भी तो दो पक्ष होते हैं—एक नित्य पक्ष और एक लौकिक पक्ष। जहाँ धर्म समाज के नियम में प्रकाशित होता है वहाँ उसकी अव-हेलना नहीं की जा सकती—करने से समाज बिखर जाता है।"

परेश बाबू ने कहा- -"नियम तो असंख्य हैं। लेकिन सभी नियमों में धर्म ही प्रकाशित होता है, यह क्या निश्चित मान लेना होगा ?"

परेश बाबू ने गोरा के मन को एक ऐसे स्थल पर छुआ जहाँ उसमें पहले ही से एक मन्थन हो रहा था और उस मन्थन से एक सिद्धान्त भी उपलब्ध हो रहा था। इसलिए उसके भीतर जो बातें उमड़ रही थीं उन्हें परेश बाबू के सामने कह डालने मे कोई संकोच नहीं हुआ। उसकी मुख्य बात यह थी कि अगर हम स्वयं अपने को नियमों के द्वारा समाज के अधीन न कर लेते तो समाज के गहरे भीतरी उद्देश्यों मे बाधक हो जाते हैं, क्योंकि वे उद्देश्य गूढ़ होते है, उन्हें स्पष्ट देख सकना हर किसी के लिए सम्भव नहीं होता। इसीलिए हम में यह शक्ति होनी चाहिए कि बिना विचार किये भी समाज को मानते चल सकें।

परेश बाबू ने स्थिर होकर गोरा की बात अन्त तक सुनी। जब वह रुक गया और अपनी प्रगल्भता पर कुछ झेंप भी गया, तब परेश बाबू ने कहा, "तुम्हारी बात मोटे तौर पर तो मैं मानता हूँ। बात ठीक है कि प्रत्येक समाज में विधाता का एक विशेष अभिप्राय होता है। वह अभिप्राय सभी के सामने स्पष्ट हो ऐसा भी नहीं है। लेकिन उसे स्पष्ट देखने की कोशिश करना ही तो मनुष्य का काम है, पेड़-पौधों की तरह अचेतन भाव मे नियम को मानते जाना उसकी, सार्थकता नहीं है।"

गोरा ने कहा, "मेरा कहना यह है कि पहले समाज को सब तरफ से पूरी तरह मानकर चलने मे ही समाज के यथार्थ उद्देश्य के बारे मे हमारी चेतना निर्मल हो सकती है, उसका विरोध करने से हम केवल उसमें बाधा ही नहीं देते बल्कि उसे गलत भी समझते हैं।"

परेश बाबू ने कहा, "विरोध और बाधा के बिना तो सच्चाई की परीक्षा हो ही नही सकती। और सत्य की परीक्षा किसी एक प्राचीन काल में मनीषियों के एक दल के सामने होकर हमेशा के लिए समाप्त हो गई हो, ऐसा नहीं है। हर युग के सामने बाधाओं और विरोधों के बीच से सत्य को नया होकर प्रकट होना होगा। जो हो, इन सब बातों को लेकर बहस करना मैं नहीं चाहता। मैं मनुष्य

की व्यक्तिगत स्वाधीनता को मानता हूँ। उसी स्वाधीनता की चोट से हम ठीक-ठीक जान पाते हैं कि कौन-सा नित्य सत्य है और कौन-सी नश्वर कल्पना। इसी को जानने और जानने की चेष्टा करने पर ही समाज का हित निर्भर करता है।"

यह कहकर परेश बाबू उठे। गोरा भी उठ खड़ा हुआ। परेश ने कहा, "मैंने सोचा था ब्राह्म समाज के अनुरोध से मुझे शायद इस विवाह से थोड़ा-सा अलग रहना होगा, विनय के बन्धु के नाते तुम सारा काम अच्छी तरह सम्पन्न करा दोगे। यहीं पर तो आत्मीयों से बन्धु अच्छे रहते हैं—उन्हें समाज का आघात नहीं सहना पड़ता। लेकिन तुम भी जब विनय को त्याग देना ही कर्त्तव्य समझते हो तब सारा भार मुझ पर ही है, यह काम अकेले मुझको ही निबाहना होगा।"

परेश बाबू के अकेला रहने का मतलब कितना अकेला है, यह गोरा उस समय नहीं जानता था। वरदासुन्दरी उनके विरुद्ध खड़ी हुई थीं, घर की लड़कियाँ भी प्रसन्न नहीं थीं और हरिमोहिनी की आपत्ति के डर से सुचरिता को परेश बाबू ने विवाह के बारे में परामर्श करने के लिए बुलाया ही नहीं था। उधर ब्राह्म समाज के सभी लोग उनके विरुद्ध खड्ग-हस्त थे और विनय के चाचा से उन्हें जो दो-एक पत्र मिले थे उसमें उन्हें कुटिल, कुचक्री और लड़कों को बिगाड़ने वाला कहकर गालियाँ ही दी गई थीं।

परेश बाबू के घर से बाहर होते ही अविनाश और गोरा के दल के दो-एक दूसरे सदस्य कमरे में आ गये और परेश बाबू को लक्ष्य करके मज़ाक करने लगे। गोरा ने कहा, "वह श्रद्धा के पात्र हैं। श्रद्धा करने की क्षमता तुम लोगों में न हो तो कम-से-कम उनका उपहास करने के ओछेपन से तो बचो!"

गोरा को फिर अपने दल के लोगों के बीच आकर अपने पुराने अभ्यस्त कामों में फँसना पड़ा। लेकिन यह सब बेस्वाद है—कितना बेस्वाद! यह तो कुछ भी नही है, इसे काम ही नही कहा जा सकता, इसमें कहीं कोई प्राण नहीं है! इस तरह केवल लिख-पढ़कर, बातें करके, दल बाँधकर कोई काम नहीं होता बल्कि निकम्मेपन का ही विस्तार बढ़ता जाता है, यह बात गोरा के मन में कभी इतने ज़ोर से न आई थी जितनी इस समय आई। नई शक्ति से छलकता हुआ उसका जीवन अपने मुक्त बहने के लिए एक नया सत्य-पथ खोज रहा था। वह सब उसे बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था।

इधर प्रायश्चित्त सभा का आयाजन चल रहा था। इस आयोजन में ही गोरा को विशेष उत्साह था। वह प्रायश्चित्त केवल जेल की अशुचिता का प्रायश्चित्त नहीं था, इस प्रायश्चित्त के द्वारा सभी ओर से सम्पूर्ण निर्मल होकर मानो नई देह

पाकर वह अपने कर्मक्षेत्र में एक बार फिर नया जन्म लेना चाहता है। प्रायश्चित्त का विधान ले लिया गया था, दिन भी निश्चित हो गया था, पूर्व और पश्चिम बंग के विख्यात अध्यापकों-पंडितों को निमन्त्रण पत्र भेजे जा रहे थे—गोरा के दल में जो धनी थे उन्होंने रुपये भी जुटा दिये। दल के लोग सभी समझते थे कि देश में बहुत दिन बाद एक काम का काम होने जा रहा है। अविनाश ने अपने सम्प्रदाय के सभी लोगों से चुपके-चुपके सलाह करके तय किया है कि उस दिन सभा में सब पंडितों की ओर से गोरा को फूल-चन्दन, धान्य-दूर्वा आदि सब उपचारों के साथ 'हिन्दू-धर्म-प्रदीप' की उपाधि दी जायेगी। इस बारे में संस्कृत में कुछ श्लोक लिखकर, उसके नीचे सभी ब्राह्मण पंडितों के हस्ताक्षर कराकर, सुनहली स्याही से छपाकर चन्दन के बक्स में रखकर उसे उपहार दिये जायेंगे, साथ ही मैक्समूलर द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद के खण्ड को बहुमूल्य चमड़े की जिल्द बँधाकर सबसे प्राचीन और मान्य अध्यापक के हाथों से उसे भारतवर्ष के आशीर्वाद-स्वरूप भेंट कराया जायेगा। इससे यह भाव अत्यन्त सुन्दर रूप से प्रकट किया जा सकेगा कि धर्म-भ्रष्टता के आधुनिक युग में गोरा ही वेद-विहित सनातन-धर्म का सच्चा रक्षक है।

उस दिन की कार्यप्रणाली को अत्यन्त प्रीतिकर और फलप्रद बनाने के लिए गोरा से छिपकर उनके दल के लोगों की मन्त्रणा बराबर चल रही थी।

६५

हरिमोहिनी को अपने देवर कैलाश का एक पत्र मिला था। उसने लिखा था, "श्री चरणों में आशीर्वाद। यहाँ मंगल है। अपने कुशल-समाचार से हमारी चिंता दूर करें।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जब से हरिमोहिनी ने उनका घर छोड़ा था तभी से उन्हें इस चिन्ता का वहन करना पड़ता आ रहा था, लेकिन कुशल समाचार का अभाव मिटाने के लिए अभी तक तो उन्होंने कोई कोशिश नहीं की थी। खुदी, पटल, भजहरि आदि कई लोगों के समाचार देकर अन्त में कैलाश ने लिखा था, "आपने जिस पात्री की बात लिखी है उसकी पूरी जानकारी दीजिएगा। आपने लिखा है कि वह बारह-तेरह बरस की होगी लेकिन देखने में बहुत बड़ी दीखती है, इसमें तो कोई नुकसान नहीं है। उसकी जिस सम्पत्ति

की बात आपने लिखी है उस पर अधिकार जीवन-भर का है या कि चिर-स्थायी, इसकी पूरी पड़ताल करके लिखें तो बड़े भाइयों को बताकर उनकी सलाह ले सकूँगा। यों मैं समझता हूँ कि वे असहमत न होंगे। पात्री की हिन्दू धर्म में निष्ठा है, यह सुनकर निश्चिन्त हुआ लेकिन इतने दिन वह ब्राह्म-घर में पली है, यह बात किसी को पता न लगे इसकी कोशिश करनी होगी—इसलिए यह बात और किसी को न बताइयेगा। अगली पूर्णिमा को चन्द्र-ग्रहण है, गंगा-स्नान का योग है, सुविधा हुई तो उसी समय आकर कन्या देख जाऊँगा।"
इतने दिन हरिमोहिनी जैसे-तैसे कलकत्ता में दिन काटती रही थीं। लेकिन ससुराल लौट सकने की सम्भावना के अंकुरित होते ही उसका मन अधीर हो उठा। निर्वासन का एक-एक दिन उन्हें असह्य लगने लगा, इच्छा होने लगी कि फौरन सुचरिता को कहकर दिन ठीक करके काम सम्पन्न कर डालें। लेकिन बहुत जल्दी करने का भी उनका साहस न हुआ। सुचरिता को वह जितना ही निकट से देखती थीं उतना ही समझती जाती थीं कि वह उसे समझ नहीं सकी हैं।

हरिमोहिनी अवसर की ताक में रहने लगीं और सुचरिता के प्रति पहले से भी अधिक सतर्क रहने लगीं, यहाँ तक कि पूजा में भी वह पहले जितना समय लगाती थीं उसमें धीरे-धीरे कमी होने लगी। सुचरिता को वह मानो थोड़ी देर के लिए भी आँखों की ओट न होने देना चाहती थीं।

सुचरिता ने लक्ष्य किया कि गोरा का आना सहसा बन्द हो गया है। उसने समझ लिया कि हरिमोहिनी ने गोरा को कुछ कहा होगा। उसने मन-ही-मन कहा, "अच्छी बात है, ऐसे ही सही। वह न आवें, लेकिन वही मेरे गुरु हैं।"

जो गुरु आँखों के सामने रहता है उससे अप्रत्यक्ष गुरु का प्रभाव कहीं अधिक होता है क्योंकि उस स्थिति में गुरु की उपस्थिति की कमी मन अपने भीतर से ही पूरी कर लेता है। गोरा सामने होता तो सुचरिता उससे बहस करती, पर अब वह गोरा की रचनाएँ पढ़कर उसके वाक्यों को बिना प्रतिवाद स्वीकार कर लेती। जो समझ न आता उसके बारे में मन-ही-मन सोच लेती, 'गौर बाबू होते तो ज़रूर समझा देते।'

लेकिन गोरा की उस तेजस्वी मूर्ति के देखने और उसकी वज्र-गम्भीर वाणी सुनने की प्यास क्या किसी तरह मिट सकती थी? अपनी इस अतृप्त आन्तरिक उत्सुकता से सुचरिता मानो भीतर-ही-भीतर घुलने लगी। रह-रहकर एक तीखे दर्द के साथ उसे ध्यान आता, कितने लोग बिना किसी आयास के दिन-रात गोरा का दर्शन पा सकते हैं, लेकिन उस दर्शन का कोई मूल्य वह नहीं जानते।

एक दिन तीसरे पहर ललिता ने आकर सुचरिता के गले से लिपटकर कहा,

"सुचि दीदी !"

सुचरिता ने कहा, "क्यों ललिता ?"

ललिता ने कहा, "सब ठीक हो गया है।"

सुचरिता ने पूछा, "कबका निश्चय हुआ ?"

ललिता ने कहा, "अगले सोमवार को।"

सुचरिता ने पूछा, "कहाँ ?"

ललिता ने सिर हिलाकर कहा, "वह सब तो मैं नहीं जानती, बाबा जानते हैं।"

सुचरिता ने बाँह से ललिता को घेरते हुए कहा, "तू खुश है न ?"

ललिता ने कहा, "खुश क्यों न होऊँगी ?"

सुचरिता ने कहा, "जो तू चाहती थी सब तुझे मिल गया, अब किसी से झगड़ा करने को कुछ नहीं रहा—मुझे डर लगता है, कहीं इसी से अब तेरा उत्साह ठंडा न पड़ जाये।"

ललिता ने हँसकर कहा, "क्यों, झगड़ा करने के लिए किसी की कमी क्यों होगी ? अब तो बल्कि ढूंढ़ने घर से बाहर जाना न पड़ेगा।"

सुचरिता ने तर्जनी से ललिता का गाल दबाते हुए कहा, "यह बात है ! अभी से इस सबकी तैयारी हो रही है। मैं विनय से कह दूंगी, अब भी समय है, वह बेचारा संभल सकता है।"

ललिता ने कहा, "तुम्हारे बेचारे को अब संभलने का मौक़ा नहीं मिलने का। अब उसका छुटकारा नहीं है। जन्मपत्री में जो मुसीबत लिखी थी वह फल रही है, अब माथा पीटने के सिवा चारा नहीं है !"

सुचरिता ने गम्भीर होकर कहा, "मुझे कितनी खुशी हो रही है मैं कह नहीं सकती, ललिता ! तू विनय जैसे स्वामी के योग्य हो सके, यही मैं प्रार्थना करती हूँ।"

ललिता बोली, "वाह ! क्यों नहीं। जैसे मेरे योग्य तो किसी को होना ही नहीं होगा। इस बारे में एक बार उन्हीं से पूछकर देख लो न। एक बार उनकी राय सुन लो, फिर तुम्हें भी पछतावा होगा कि इतनी बड़ी अचरज-भरी हस्ती का स्नेह पाकर भी तुमने इतने दिनों तक अपना सौभाग्य नहीं पहचाना—कितनी अन्धी हो रही थीं।"

सुचरिता ने कहा, "चलो खैर, अब तो एक जौहरी मिल गया न। जब सही दाम लगाने वाला मिल गया तब किस बात का दुःख—अब हम जैसे अनाड़ियों से स्नेह माँगने की जरूरत ही नहीं होगी।"

ललिता ने कहा, "होगी कैसे नहीं ? बहुत होगी।" कहते-कहते उसने सुचरिता के गाल में इतने ज़ोर की चुटकी काट ली कि वह 'उफ' कर उठी। "तुम्हारे स्नेह की जरूरत मुझे बराबर रहेगी। मुझे धोखा देकर वह और किसी को देने से नहीं चलेगा।"

सुचरिता ने ललिता के गाल से गाल मिलाते हुए कहा, "किसी को नहीं दूंगी, किसी को नहीं दूंगी।"

ललिता ने पूछा, "किसी को नहीं ? बिलकुल किसी को नहीं ?"

सुचरिता ने केवल सिर हिला दिया। तब ललिता कुछ अलग हटकर बैठती बोली, "देखो भई सुचि दीदी, तुम तो जानती हो, तुम्हारा और किसी को प्यार करना मैं कभी नहीं सह सकती थी। मैंने अब तक तुमसे कहा नहीं, आज कहती हूँ जब गौर मोहन बाबू हमारे घर आते थे—नहीं दीदी, ऐसा करने से नहीं चलेगा, मुझे जो कहना है मैं कहकर ही रहूँगी—तुमसे मैंने कभी कुछ नहीं छिपाया, लेकिन न जाने क्यों यह एक बात तुमसे किसी तरह नहीं कह सकी और इसके लिए बराबर कष्ट पाती रही हूँ। यह बात कहे बिना मै तुमसे बिदा लेकर नहीं जा सकूंगी। जब गौर मोहन बाबू हमारे घर आते थे तब मुझे बड़ा गुस्सा आता था—क्यों आता था ? तुम सोचती थीं, कि मैं कुछ समझती नहीं। मैंने देखा था, तुम मेरे सामने उनका नाम भी नहीं लेती थीं। इससे मुझे और भी गुस्सा आता था। तुम उन्हें मुझसे भी ज्यादा प्यार करोगी यह मैं सह नहीं सकती थी—नहीं दीदी, मुझे कहने दे—और इससे मुझे कितना कष्ट होता यह मैं अब क्या बताऊँ, आज भी तुम मुझसे वह बात नहीं करोगी मैं जानती हूँ, न सही, अब मुझे उसका गुस्सा नही है—मुझे कितनी खुशी होगी अगर तुम्हारा..."

सुचरिता ने हड़बड़ाकर ललिता का मुंह बन्द करते हुए कहा, "ललिता, तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, वह बात ज़बान पर न ला। वह सुनकर मेरा धरती में समा जाने को मन हो उठता है।"

ललिता ने कहा, "क्यों भई, उन्होंने क्या...?"

सुचरिता ने छटपटाकर कहा, "नहीं-नहीं-नहीं। ललिता, पागलों की-सी बात मत कर। जो बात सोची भी नहीं जा सकती वह कहते नहीं।"

सुचरिता की इस झिझक पर बिगड़ते हुए ललिता ने कहा, "लेकिन, भई, यह तुम्हारी ज्यादती है। मैंने खूब देखा है और दावे से कह सकती हूँ कि..."

ललिता से हाथ छुड़ाकर सुचरिता कमरे से बाहर निकल गई। ललिता ने पीछे-पीछे दौड़ी जाकर उसे पकड़ लिया और वापस लाते हुए कहा "अच्छा-अच्छा, और मैं कुछ नहीं कहती।'

सुचरिता ने कहा, "फिर कभी मत कहना !"

ललिता ने कहा, "इतनी बड़ी प्रतिज्ञा तो नहीं कर सकती। कहने का दिन आयेगा तो कहूंगी, नहीं तो नहीं कहूंगी, बस इतना ही वायदा कर सकती हूं।"

उधर कुछ दिनों से हरिमोहिनी बराबर सुचरिता पर नजर रखती थीं और उसके पीछे-पीछे घूमती रहती थीं। सुचरिता यह समझती थी और हरिमोहिनी की यह सन्देहपूर्ण सतर्कता उसके मन पर बोझ-सी बनी रहती थी। वह भीतर-ही-भीतर छटपटाती रहती थी लेकिन कुछ कह भी न पाती थी। आज ललिता के चले जाने पर बहुत थका मन लेकर सुचरिता मेज पर दोनों हाथों के बीच सिर टेककर रोने लगी। बैरा कमरे में बत्ती जलाने आ रहा था, उसे इशारे से रोक दिया। वह समय हरिमोहिनी की सन्ध्या का था। लेकिन हरिमोहिनी ने ऊपर से ही ललिता को जाते हुए देखकर एकाएक नीचे उतरकर सुचरिता के कमरे में आकर पुकारा, "राधारानी !"

सुचरिता छिपाकर आंसू पोंछती हुई जल्दी से उठ खड़ी हुई।

हरिमोहिनी ने पूछा, "क्या हो रहा है ?"

सुचरिता ने कोई जवाब नहीं दिया।

हरिमोहिनी ने कठोर स्वर में पूछा,"यह सब क्या हो रहा है, मेरी कुछ समझ में नहीं आता।"

सुचरिता ने कहा, "मौसी ! क्यों तुम दिन-रात मुझ पर इस तरह निगरानी रखती हो ?"

हरिमोहिनी ने कहा, "क्यों निगरानी रखती हूं, यह क्या तुम नहीं समझतीं ? यह जो खाना-पीना छोड़ रखा है और रोती हो, ये किसके लच्छन हैं ? मैं बच्चा तो नहीं हूं, मैं क्या इतना भी नहीं समझती ?"

सुचरिता ने कहा, "मैं तुमसे कहती हूं, मौसी, तुम कुछ भी नहीं समझतीं। तुम इतना गलत समझती हो कि मेरे लिए पल-पल और असह्य होता जाता है।"

हरिमोहिनी ने कहा, "अच्छी बात है, मैं गलत ही समझती सही, तो तुम्हीं ठीक समझा दो न !"

सुचरिता ने पूरा जोर लगाकर अपना संकोच दूर करते हुए कहा, "अच्छा, तो मैं कहती हूं मैंने गुरु से एक ऐसी बात पाई है जो मेरे लिए नई है, उसे पूरी तरह ग्रहण करने के लिए बड़ी शक्ति चाहिए, उसी का अभाव मुझे खटकता है। आपसे झगड़ा करते-करते मैं ऊब गई हूं। लेकिन मौसी, हमारे सम्बन्ध को तुमने विकृत करके देखा है, तुमने उन्हें अपमान करके निकाल दिया है--तुमने उन्हें जो कुछ कहा है सब गलत है, मेरे बारे में सोचा है सब मिथ्या है। तुमने बड़ा अन्याय किया

है ! उन जैसे व्यक्ति को नीचे गिराना तो तुम्हारे वश की बात नहीं है, पर मुझ पर क्यों तुमने ऐसा अत्याचार किया—मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?" कहते-कहते सुचरिता का गला रुंध गया और वह दूसरे कमरे में चली गई।

हरिमोहिनी हतबुद्धि-सी खड़ी रही। मन-ही-मन उन्होंने कहा, 'बाप रे ऐसी बातें तो मैंने सात जन्म में नहीं सुनीं।'

सुचरिता को कुछ शान्त होने का समय देकर थोड़ी देर बाद वह भोजन के लिए बुला ले गईं। उसके खाने बैठने पर बोलीं, "देखो राधारानी, मेरी उम्र कोई ऐसी कम नहीं है। हिन्दू-धर्म में जो कुछ कहा गया है वह बचपन से करती आ रही हूँ, और विस्तार से सुन भी चुकी हूँ। तुम यह सब जानती नहीं, इसीलिए गौर मोहन तुम्हारा गुरु बनकर तुम्हें बहका रहा है। मैंने भी उसकी बातें कुछ सुनी हैं—उनमें बात असल में कुछ नहीं है, वह शास्त्र उसका निज का गढ़ा हुआ है। यह सब तो हम लोग समझ सकते हैं न, जिन्होंने गुरु से उपदेश पाया है ! राधारानी, मैं तुम से कहती हूँ, तुम्हें यह सब करने की कोई जरूरत नहीं है, जब समय होगा तो मेरे जो गुरु हैं तो ऐसे नकली नहीं हैं—वही तुम्हें मन्त्र देंगे। तुम डरो मत, मैं तुम्हें हिन्दू-समाज में खींच लाऊँगी। ब्राह्म-घर में थीं तो क्या हुआ ? वह बात जानेगा ही कौन ? तुम्हारी उम्र कुछ बड़ी हो गई है जरूर, लेकिन ऐसी तो बहुत लड़कियाँ होती हैं जो जल्दी ही बड़ी लगने लगती हैं. कोई तुम्हारी जन्म-पत्री देखने थोड़े जायेगा ? और फिर जब पैसा है तो कहीं कोई मुश्किल नहीं होगी, सब चल जाएगा ! केवट का बेटा कायस्थ बन गया. यह तो मैंने अपनी आँखों से देखा है। मैं हिन्दू समाज में ऐसे सद्ब्राह्मण के घर तुम्हें पहुँचा दूंगी कि किसी की कुछ कहने की हिम्मत न होगी, वही तो समाज के अगुआ हैं। इसलिए तुम्हें इस गरु की साधना में यों रो-रोकर-मरने की कोई जरूरत नहीं है।"

हरिमोहिनी जब ये बातें विस्तार से बखान कर रही थीं तब सुचरिता को कुछ खाने की रुचि कब की मर चुकी थी और उसके गले से मानो कौर नहीं उतर रहा था। फिर वह चुपचाप हठ करके खाती रही. क्योंकि वह जानती थी, उसके कम खाने की बात को लेकर जो टीका-टिप्पणी होगी उससे उसका कोई लाभ नहीं होगा।

हरिमोहिनी ने जब सुचरिता का ओर से कोई संकेत नहीं पाया तो मन-ही-मन बोलीं, 'मैं भर पाई इन लोगों ! इधर हिन्दू-हिन्दू की रट लगाकर रो रही है, उधर इतने बड़े सुयोग की बात सुनकर अनसुनी कर देती है ! प्रायश्चित्त नहीं

करना होगा, कोई सफ़ाई नहीं देनी होगी, केवल इधर-उधर दो-चार रुपये खर्च करके अनायास ही समाज में आ जायेगी—इस पर भी जिसे उत्साह न हो वह अपने को कहे हिन्दू।' गोरा कितना बड़ा धोखा है यह हरिमोहिनी पहले ही समझ चुकी थीं, फिर भी इस सब छलछन्द का उद्देश्य क्या हो सकता है, यह सोचने पर उन्हें यही लगा कि सारे मामले की जड़ में सुचरिता की सम्पत्ति और उसका रूप-यौवन ही होगा। कन्या का, और उसके साथ-साथ कम्पनी के कागज आदि का उद्धार करके उन सबको जल्दी-से-जल्दी ससुराल के दुर्ग में बन्द कर लेने में ही कल्याण है। लेकिन इसके लिए सुचरिता के मन को अभी थोड़ा और गलाना होगा, नहीं तो वह नहीं मानेगी। इसी के प्रयत्न में हरिमोहिनी दिन-रात सुचरिता के सामने अपनी ससुराल का बखान करने लगीं। उनका कितना असाधारण प्रभाव है, समाज में वे लोग कैसे असम्भव को सम्भव बना सकते हैं, अनेक दृष्टान्त देकर हरिमोहिनी यह बताने लगीं। उनका विरोध करने जाकर कितने निष्कलंक लोग भी समाज से अपमानित हुए हैं, और उनके शरणागत होकर कितने लोग मुसलमान के हाथ की मुर्गी खाकर भी हिन्दू समाज का दुर्गम पथ हँसी-खुशी पार हो गये है—इन सब घटनाओं को हरिमोहिनी ने नाम-धाम का ब्यौरा देकर बिलकुल विश्वसनीय बना दिया।

सुचरिता उनके घर न जाया करे, वरदासुन्दरी ने अपनी यह इच्छा उससे छिपाई नहीं थी, क्योंकि उन्हें अपनी स्पष्टवादिता पर गर्व था। जब भी किसी के प्रति वह बिना संकोच कठोरता का व्यवहार करती थीं तभी अपने इस गुण की घोषणा किया करती थी। इसलिए वरदासुन्दरी के घर में सुचरिता किसी तरह के सम्मान की आशा नहीं कर सकती, यह उन्होंने उसे बड़े स्पष्ट शब्दों में ही जता दिया था। सुचरिता जानती थी कि उसके उनके घर आने-जाने से परेश बाबू को बहुत कष्ट उठाना पड़ जायेगा। इसीलिए जब तक बहुत ही जरूरी न हो जाये वह उनके घर नहीं जाती थी, और इसीलिए परेश बाबू रोज़ दो-एक बार स्वयं सुचरिता के घर आकर उसे देख जाते थे।

कुछ दिन से कई चिन्ताओं और काम के बोझ के कारण परेश बाबू सुचरिता के घर नहीं आ सके थे। इन दिनों सुचरिता प्रतिदिन बड़ी व्यग्रता के साथ उनके आने की प्रतीक्षा कर रही थी. लेकिन मन-ही-मन संकुचित भी थी। परेश के साथ उसके गहरे मंगल का सम्बन्ध कभी छिन्न नहीं हो सकता, यह वह निश्चय जानती थी, लेकिन बाहर के दो-एक सूत्र जो उसे खींच रहे थे उनका कष्ट भी उसे चैन न लेने देता था। इधर हरिमोहिनी उसके जीवन को दिन-दिन असह्य बनाये दे रही थीं। अन्त में सुचरिता वरदासुन्दरी की नाराज़ी का सामना करके परेश

बाबू के घर चली ही गई। तीसरे पहर का सूर्य उस समय पश्चिम की ओर के तिमंजिले मकान की ओट होकर एक लम्बी छाया फैला रहा था, उसी छाया में परेश बाबू सिर झुकाए अपने बगीचे में धीरे-धीरे अकेले टहल रहे थे।

पास आकर सुचरिता भी उनके साथ-साथ चलने लगी। बोली, "बाबा, कैसे हो ?"

अपनी सोच मे यों एकाएक बाधा पाकर परेश बाबू थोड़ी देर ठिठककर एक-टक राधारानी के चेहरे की ओर देखते रहे और बोले, "अच्छा हूँ, राधे !"

दोनों फिर टहलने लगे। परेश बाबू ने कहा, 'सोमवार को ललिता का विवाह है।"

सुचरिता सोच रही थी, वह पूछेगी कि इस विवाह में उसे किसी भी सलाह या सहायता के लिए क्यों नहीं बुलाया गया, लेकिन झिझक रही थी क्योंकि अब उसकी ओर से भी कहीं कुछ बाधा आ खड़ी हुई थी। नहीं तो पहले तो वह बुलाये जाने के लिए बैठी भी न रहती !

सुचरिता मन-ही-मन जो सोच रही थी, उसकी चर्चा परेश बाबू ने स्वयं उठाई। बोले, "इस बार तुम्हें नहीं बुला सका, राधे ?"

सुचरिता ने पूछा, "क्यों, बाबा ?"

सुचरिता के इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर परेश उसके चेहरे की पड़ताल करते रहे। सुचरिता से और न रहा गया, उसने सिर झुकाकर कहा, "तुम सोच रहे होंगे कि मेरे मन में एक परिवर्तन आ गया है।"

परेश ने कहा, "हाँ, इसीलिए सोचा तुम से किसी तरह का अनुरोध करके तुम्हें मुश्किल मे नहीं डालना चाहिए।"

सुचरिता ने कहा, "बाबा, मैंने सोचा था कि तुम्हें सारी बात बताऊँगी, लेकिन इधर भेंट ही नहीं हुई। इसीलिए आज मैं खुद आई हूँ। अपने मन की बात तुम्हें बहुत अच्छी तरह समझा सकने की क्षमता मुझ में नहीं है—डर लगता है, कहीं कुछ बेठीक न कह जाऊँ !"

परेश बोले, "मैं जानता हूँ, ये सब बातें स्पष्ट करके कहना आसान नहीं है। तुमने कोई चीज़ केवल भाव के रूप में पाई है, उसका अनुभव करती हो लेकिन उसका आकार-प्रकार तुम्हारे सामने स्पष्ट नहीं हुआ है।"

सुचरिता ने कुछ आश्वस्त होकर कहा, "हाँ ठीक यही बात है। लेकिन मेरा अनुभव कितना प्रबल है, यह तुम्हें कैसे बताऊँ ! मैंने मानो एक नया जीवन पाया है, एक नई चेतना। मैंने अपने को इस ओर से इस ढंग से पहले कभी नहीं देखा। अब तक मेरे साथ मेरे देश के अतीत और भविष्य का कोई सम्बन्ध ही नहीं था।

लेकिन वह सम्बन्ध कितना बड़ा और कितना सच्चा है यह बात मैंने आज अपने हृदय में इतने आश्चर्यजनक रूप से पहचानी है कि किसी तरह भूल नहीं सकती। बाबा, मैं सच कहती हूँ, पहले मैं कभी यह नहीं कह सकती थी कि मैं हिंदू हूँ। लेकिन अब मेरा मन बिना संकोच के और जोर देकर कहता है, 'मैं हिंदू हूँ।' इससे मुझे एक भारी आनन्द भी होता है।"

परेश बाबू ने पूछा, "इस बात के हर अंश और पहलू पर विचार किया है?"

सुचरिता बोली, "सब पर विचार करने की शक्ति मुझ में कहाँ है? लेकिन इसके बारे में मैंने बहुत पढ़ा है और बहुत चर्चा भी की है। जब तक मैंने पूरी चीज़ को उसके सही बड़े रूप में देखना नहीं सीखा था, तब तक मैं जिसे हिन्दू कहा जाता है उसकी छोटी-छोटी बातों को ही बहुत बढ़ाकर देखती थी—उससे मेरे मन में समूची चीज के प्रति भारी घृणा जागती थी।"

परेश बाबू को उसकी बात सुनकर कुछ विस्मय हुआ। वह स्पष्ट समझ सके कि सुचरिता के मन में एक नये बोध का संचार हो रहा है, उसने कोई सत्य-वस्तु पाई है, इसीलिए उसमें आत्म-विश्वास जाग रहा है। ऐसी बात नहीं है कि वह कुछ समझे बिना मुग्ध-सी किसी अस्पष्ट आवेश की धारा में बही जा रही है।

सुचरिता ने कहा, "बाबा, मैं ऐसी बात क्यों कहूँ कि मैं अपने देश और जाति से विच्छिन्न एक क्षुद्र मनुष्य हूँ? यह क्यों न कहूँ कि 'मैं हिन्दू हूँ'।"

परेश ने हँसकर कहा, "यानी तुम मुझ से ही पूछ रही हो कि मैं क्यों अपने को हिन्दू नहीं कहता। सोचकर देखा जाय तो इसका कोई बहुत बड़ा कारण तो नहीं है। यों एक कारण यह है कि हिन्दू मुझे हिन्दू नहीं मानते, दूसरा कारण यह है कि मेरा धर्म-विश्वास जिन लोगों से मिलता है वे अपने को हिन्दू नहीं कहते।"

सुचरिता चुप होकर सोचने लगी। परेश बाबू बोले, "यह तो मैंने कहा ही कि ये कोई बड़े कारण नहीं हैं, ये तो केवल ऊपरी बातें हैं। ऐसी बाधाओं को नहीं भी माना जा सकता है। लेकिन एक गम्भीर कारण भीतर का भी है। हिन्दू समाज में प्रवेश पाने का कोई मार्ग नहीं है। कम-से-कम बड़ा दरवाजा नहीं है, खिड़कियाँ-झरोखे हो भी सकते हैं। हिन्दू समाज समूची मानव जाति का समाज नहीं है—केवल उन्हीं का समाज है जो दैवयोग से हिन्दू होकर जन्म लेते हैं।'

सुचरिता ने कहा, "ऐसे तो सभी समाज होते हैं।"

परेश बोले, "नहीं, कोई बड़ा समाज ऐसा नहीं है। मुसलमान समाज का सिंहद्वार मनुष्य-मात्र के लिए खुला है, ख्रिस्तान समाज भी सभी का स्वागत करता है। जो कई-एक समाज ख्रिस्तान समाज के अंग हैं, उन सबमें भी यही बात है। मैं अगर अंग्रेज़ होना चाहूँ तो यह एकदम असम्भव नहीं है—इंग्लैंड में रहकर

मैं उनके नियम से चलकर अंग्रेज समाज में शामिल होसकता हूँ यहाँ तक कि कि उसके लिए मुझे ख्रिस्तान होने की भी जरूरत नहीं है। अभिमन्यु व्यूह में केवल घुसना जानता था, उससे निकलना नहीं, हिन्दू उससे ठीक उल्टा है। उसके समाज में घुसने का रास्ता बिलकुल बन्द है, निकलने के रास्ते सैकड़ों-हज़ारों हैं।"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन बाबा, फिर भी तो अब तक हिन्दू का नाश नहीं हुआ—उनका समाज तो अभी बना हुआ है।"

परेश ने कहा, "समाज का क्षय होना पहचानने में समय लगता है। पुराने ज़माने में हिन्दू समाज की खिड़कियाँ खुली थी। उन दिनों इस देश की अनार्य जातियाँ हिन्दू समाज में प्रवेश पाकर एक गौरव का बोध करती थीं। इधर मुसलमानों के राज में भी देश में प्रायः सभी जगह हिन्दू राजों-रजवाड़ों का प्रभाव काफी था, इसलिए किसी के समाज से निकल जाने के विरुद्ध नियम-बन्धनों की कमी न थी। अब अंग्रेज के राज्य में सभी कानून के द्वारा रक्षित हैं, अब वैसे कृत्रिम उपायों से समाज के द्वार पर अर्गला लगाये रखने का उतना अवसर नहीं है—इसीलिए कुछ समय से यही देखा जा रहा है कि भारतवर्ष में हिन्दू कम हो रहे हैं और मुसलमान बढ़ रहे हैं। यही क्रम रहा तो धीरे-धीरे देश मुसलमान-प्रधान हो जायेगा, तब इसे हिन्दुस्तान कहना ही गलत होगा।"

सुचरिता ने व्यथित होकर कहा, "बाबा, क्या इसका निवारण करना ही हम सब का कर्तव्य नहीं है? हम लोग भी क्या हिन्दू समाज का परित्याग करके उसे और क्षीण कर दें? यही तो प्राणों की समूची शक्ति से उसे पकड़े रहने का समय है।"

परेश बाबू ने सुचरिता की पीठ स्नेह से थपथपाते हुए कहा, "हम लोग क्या इच्छा करने से ही किसी को पकड़कर जिलाये रख सकते हैं? रक्षा पाने का एक जगद्व्यापी नियम है—जो भी उस स्वाभाविक नियम को छोड़ता है उसे सभी स्वभावतया छोड़ देते है। हिन्दू समाज मनुष्य का अपमान करता है, निषेध करता है, इसलिए आजकल के ज़माने में उसके लिए आत्मरक्षा कर सकना प्रतिदिन कठिनतर होता जाता है, क्योंकि अब वह और ओट में नहीं रह सकता—अब दुनिया में चारों ओर रास्ते खुल गये हैं, चारों ओर से लोग उस पर चढ़े आ रहे है—अब शास्त्र-संहिता के बाँध बना कर या दीवारें खड़ी करके वह अपने को किसी तरह भी दूसरों के सम्पर्क मे अछूता नहीं रख सकता। अब भी अगर हिन्दू-समाज अपने भीतर संग्रह करने की शक्ति नही जगाता और क्षय-रोग को ही प्रश्रय देता चलता है, तो बाहर के लोगों का यह अबाध सम्पर्क उसके लिए एक सांघातिक चोट हो जायेगा।"

सुचरिता ने दुःखी स्वर से कहा, "मैं यह सब कुछ नहीं समझती, लेकिन अगर यही सच हो कि आज सभी उसे छोड़ रहे हैं, तो ऐसे मौके पर मैं तो उसे नहीं छोड़ूंगी। हम इसके दुर्दिन की सन्तान हैं, इसलिए तो हमें और भी उसके सिरहाने खड़े रहना होगा!"

परेश बाबू ने कहा, "बेटी, तुम्हारे मन में जो भाव जाग उठा है उसके विरुद्ध मैं कोई बात नहीं कहूँगा। तुम उपासना करके, मन को स्थिर करके, तुम्हारे भीतर जो सत्य है, श्रेय का जो आदर्श है उसी से मिलाकर सारी बात पर विचार करके देखो, तुम्हारे सामने अपने आप सब बातें धीरे-धीरे स्पष्ट हो जायेंगी। जो सबसे बड़े हैं उन्हें देश की या किसी मनुष्य की तुलना में छोटा न करो—वैसा करने में न तुम्हारा मंगल है, न देश का। मैं तो ऐसा ही मानकर एकान्त-भाव से उन्हीं के सामने आत्म-समर्पण करना चाहता हूँ, इसी से मैं देश के और प्रत्येक व्यक्ति के प्रति सहज ही सच्चा हो सकूंगा।"

इसी समय एक आदमी ने आकर एक चिट्ठी परेश बाबू के हाथ में दी। परेश बाबू बोले, "चश्मा नहीं है, रोशनी भी कम हो गयी है—तुम्हीं चिट्ठी पढ़कर सुना दो जरा।"

सुचरिता ने चिट्ठी पढ़कर सुना दी। चिट्ठी ब्राह्म-समाज की एक कमेटी की ओर से उन्हें आई थी, नीचे बहुत से ब्राह्म लोगों के हस्ताक्षर थे। पत्र का सार यही था कि परेश बाबू ने अब्राह्म-पद्धति से कन्या के विवाह की अनुमति दे दी है और उस विवाह में स्वयं भी योग देने को तैयार हुए हैं, ऐसी अवस्था में ब्राह्म-समाज उन्हें अपनी सदस्य-श्रेणी में किसी तरह नहीं रख सकता। उन्हें अपनी ओर से कुछ कहना हो तो आगामी रविवार से पहले उनका पत्र कमेटी के पास पहुँच जाना चाहिए—उस दिन विचार करके बहुमत से अन्तिम निर्णय कर लिया जायगा।

परेश बाबू ने चिट्ठी लेकर जेब में रख ली। सुचरिता उनका दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर चुपचाप उनके साथ-साथ टहलने लगी। धीरे-धीरे सांझ घनी हो गई और बगीचे के दाहिनी ओर गली में एक बत्ती जल गई। सुचरिता ने मृदु-स्वर से कहा, "बाबा, तुम्हारी उपासना का समय हो गया, आज मैं तुम्हारे साथ उपासना पर बैठूंगी।"

यह कहती हुई सुचरिता हाथ पकड़े-पकड़े उन्हें उपासना के अलग कमरे में ले गई, जहाँ आसन पहले से बिछा था और एक मोमबत्ती जल रही थी। परेश बाबू आज बहुत देर तक नीरव उपासना करते रहे। अन्त में एक छोटी प्रार्थना के बाद वह उठ खड़े हुए।

बाहर आते ही उन्होंने देखा, उपासना-गृह की देहरी के पास ही ललिता और विनय चुपचाप बैठे हैं। उन्हें देखते ही दोनों ने प्रणाम किया और उनकी चरण-धूलि ली। परेश बाबू ने उनके सिर पर हाथ रखकर मन-ही-मन आशीर्वाद दिया। सुचरिता से बोले, "बेटी, मैं कल तुम्हारे घर आऊँगा, आज अपना काम पूरा कर लूं।"

यह कहते हुए वह अपने कमरे में चले गये।

उस समय सुचरिता की आँखों से आँसू झर रहे थे।' निस्तब्ध प्रतिमा-सी वह चुपचाप बरामदे के अंधकार में खड़ी रही। ललिता और विनय भी बहुत देर तक कुछ नहीं बोले।

सुचरिता जब जाने लगी तब विनय ने उसके सामने आकर मृदु स्वर से कहा, "दीदी, तुम हमें आशीर्वाद नहीं दोगी?"

उसके यह कहते-कहते उसके साथ ललिता ने भी सुचरिता को प्रणाम किया। सुचरिता ने रुंधे हुए गले से जो कुछ कहा उसे केवल अंतर्यामी ही सुन सके।

अपने कमरे में आकर परेश बाबू ने ब्राह्म समाज की कमेटी को पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा—

"ललिता का विवाह मुझको ही सम्पन्न करना होगा। इसके लिए आप मेरा त्याग कर दें तो आपका यह निर्णय अन्यायपूर्ण नहीं होगा। इस समय ईश्वर से मेरी यही एकमात्र प्रार्थना है कि वह मुझे सभी समाजों के आश्रय से बाहर निकाल-कर केवल अपने चरणों में स्थान दें।"

६६

सुचरिता ने परेश बाबू से जो कुछ सुना था वह गोरा को बताने के लिए उसका मन अकुला उठा। जिस भारतवर्ष की ओर गोरा उसकी दृष्टि को खींचना चाहते थे, जिसकी ओर उसके चित्त को प्रबल प्रेम से आकृष्ट करना चाहते थे, वह भारतवर्ष इतने दिन बाद अब काल के हाथों में पड़ गया है और क्षय के मुंह में जा रहा है, यह बात क्या गोरा ने नहीं सोची? अब तक भारतवर्ष अपनी आभ्यन्तर व्यवस्था के बल पर ही बचा रहा है—इसके लिए भारतवासी को सतर्क होकर प्रयत्न नहीं करना पड़ा। लेकिन क्या यों निश्चिंत रहने का समय है? आज क्या पहले की तरह केवल पुरातन व्यवस्था के आसरे बैठा रहा जा सकता है?

सुचरिता सोचने लगी, 'इसमें कहीं मेरा भी तो कुछ कर्त्तव्य है—वह कर्त्तव्य क्या है ?' गोरा को चाहिए था कि इसी समय उसके सामने आकर उसे आदेश देता, उसे पथ दिखाता। सुचरिता ने मन-ही-मन कहा, 'यदि मेरी सारी बाधाओं और अज्ञान से मेरा उद्धार करके मुझे मेरे सही स्थान पर खड़ा कर देते तो क्या क्षुद्र लोक-लज्जा और निंदा-अपवाद से होने वाली कसर भी पूरी न हो जाती ?' उसका मन आत्म-गौरव से भर उठा। उसने पूछा, 'गोरा ने क्यों उसकी परीक्षा नहीं ली, क्यों उसे कोई असाध्य काम नहीं सौंपा ? गोरा के दल के इतने सब पुरुषों में ऐसा कौन है जो सुचरिता की तरह यों अनायास अपना सब-कुछ उत्सर्ग कर दे सके ? आत्म-त्याग की ऐसी आकांक्षा और शक्ति की कोई आवश्यकता गोरा ने नहीं देखी ! उसे लोक-लज्जा की बेड़ियों में बँधी हुई कर्म-हीनता में फेंक देने से क्या देश की ज़रा भी क्षति नहीं होगी ?' सुचरिता ने इस अवज्ञा को अस्वीकार करके दूर हटा दिया। उसने कहा, 'यह हो ही नहीं सकता कि वह मुझे ऐसे छोड़ दें। उन्हें मेरे पास आना ही होगा, मुझे खोजना ही होगा, उन्हें सब लज्जा और संकोच छोड़ना ही होगा—वह चाहे जितने बड़े, जितने शक्तिमान पुरुष हों, उन्हें मेरी ज़रूरत है, यह बात उन्होंने एक दिन अपने मुँह से कही थी—आज लोगों की थोड़ी-सी बकवास के कारण यह बात वह कैसे भुला सकते हैं ?'

सतीश ने दौड़ते हुए आकर सुचरिता से सटकर खड़े होते हुए कहा, "दीदी !"

सुचरिता ने उसके गले में बाँह डालते हुए पूछा, "क्यों भाई, बख़्त्यार !"

सतीश ने कहा, "सोमवार को ललिता दीदी का ब्याह है—मैं कुछ-एक दिन विनय बाबू के घर जाकर रहूँगा। उन्होंने मुझे बुलाया है।"

सुचरिता ने पूछा, "मौसी से कहा है ?"

सतीश ने कहा, "मौसी से कहा था, वह बिगड़कर बोलीं, 'मैं यह सब-कुछ नहीं जानती, जा अपनी दीदी से पूछ, वह जो ठीक समझेंगी वही होगा।' दीदी, तुम मना मत करना ! वहाँ मेरी पढ़ाई का ज़रा भी हर्ज नहीं होगा, मैं रोज पढ़ूँगा, विनय बाबू बता देंगे।"

सुचरिता ने पूछा, "काम-काज वाले घर में तू जाकर सबको तंग करेगा !"

सतीश ने छटपटाकर कहा, "नहीं दीदी, मैं ज़रा भी तंग नहीं करूँगा।"

सुचरिता ने फिर पूछा, "अपने कुत्ते खुदे को भी वहाँ ले जायगा क्या ?"

सतीश ने कहा, "हाँ, उसको भी ले जाना होगा, विनय बाबू ने ख़ासतौर से कहा है। उसके नाम लाल कागज पर छपा हुआ अलग निमंत्रण-पत्र आया है—इसमें लिखा है, उसे सपरिवार जल-पान करने आना होगा।"

सुचरिता ने पूछा, "उसका परिवार कौन है ?"

सतीश ने फ़ौरन कहा, "क्यों, विनय बाबू ने तो कहा है, मैं हूँ। उन्होंने वह आर्गन भी ले आने को कहा है, वह मुझे दे देना--मैं तोड़ूँगा नहीं।"

सुचरिता ने कहा, "तोड़ दे तो छुट्टी हो ! लेकिन अब समझ में आया---अपने ब्याह में आर्गन बजाने के लिए ही तेरे बन्धु ने तुझे बुलाया है ? मालूम होता है, शहनाई वालों को ठग लेना ही उनका मतलब है !"

सतीश ने उत्तेजित होकर कहा, "नहीं, कभी नहीं ! विनय बाबू ने कहा है, मुझे वह सीवाला बनायेंगे। अच्छा दीदी, सीवाले को क्या करना होता है ?"

सुचरिता ने कहा, "दिन-भर उपवास करना होता है।"

सतीश ने इस पर बिलकुल विश्वास नहीं किया। तब सुचरिता ने सतीश को गोद में खींचते हुए पूछा, "अच्छा, भई बख्तयार, तू बड़ा होकर क्या बनेगा, बता तो ?"

इसका जवाब सतीश के मन में तैयार था। उसकी क्लास के शिक्षक ही उसके लिए अबाध सत्ता और असाधारण पांडित्य के आदर्श थे—उसने पहले से ही मन-ही-मन तय कर रक्खा था कि वह बड़ा होकर मास्टर मोशाय बनेगा।

सुचरिता ने कहा, "भाई, बहुत काम करने को है। दोनों भाई-बहन का काम हम दोनों मिलकर करेंगे--क्या राय है, सतीश ! अपने देश को प्राण देकर भी बड़ा बनाना होगा। नहीं बड़ा तो क्या बनाना होगा—हमारे देश-जैसा बड़ा और कौन है ! हमें अपने प्रणों को ही बड़ा बनाना होगा। जानता है---समझा कुछ ?'

'नहीं समझा.' यह बात स्वीकार करने वाला सतीश नहीं है। उसने ज़ोर देकर कहा, "हाँ !"

सुचरिता ने कहा, 'हमारा देश, हमारी जाति कितनी बड़ी है, जानता है ? यह मैं तुझे कैसे समझाऊँ ? हमारा देश एक आश्चर्य है। कितने हज़ारों वर्षों से विधाता का आयोजन रहा है इस देश को दुनिया में सबसे ऊपर प्रतिष्ठित करने का, देश-विदेश के कितने लोगों ने आकर इस आयोजन में योग दिया है, देश में कितने महापुरुषों ने जन्म लिया है, कितने महायुद्ध हुए हैं, कितने महावाक्य यहाँ उच्चरित हुए हैं, कितनी महातपस्या यहाँ हुई है, इस देश ने कितनी दिशाओं से धर्म को देखा है और जीवन की समस्या के कितने समाधान इसने प्रस्तुत किये है ! ऐसा है हमारा यह भारतवर्ष ! तू इसे बहुत महान् मानना, भाई—कभी भूलकर भी इसकी अवज्ञा न करना। मुझे आज जो कह रही हूं वह तुझे एक दिन समझना ही होगा—आज भी मैं यह तो नहीं सोचती कि तू कुछ भी नहीं समझता,

यह बात तुझे याद रखनी होगी कि तू एक बहुत बड़े देश में जन्मा है, और तुझे सच्चे हृदय से इस देश पर श्रद्धा करनी है और अपना सारा जीवन लगाकर इस महान् देश का काम करना है।"

सतीश थोड़ी देर चुप रहकर बोला, "दीदी, तुम क्या करोगी ?'

सुचरिता ने कहा, "मैं भी यही काम करूँगी। तू मेरी मदद करेगा न ?"

सतीश ने फौरन छाती फुलाकर कहा, "हाँ, करूँगा !"

सुचरिता के मन में जो बातें उमड़ रही थीं उन्हें सुनने वाला घर में तो कोई था नहीं, इसीलिए अपने इस छोटे भाई को सामने पाकर उसी पर उसका सारा संचित आवेग उमड़ पड़ा। उसने जिस भाषा में और जो कुछ कहा वह एक बालक के लिए उपयुक्त नहीं था। लेकिन सुचरिता उससे संकुचित नहीं हुई। अपने मन की इस उत्तेजित अवस्था में उसने यह मान लिया था कि जो उसने स्वयं समझा है उसे पूरी तरह कह डालने से ही छोटे-बड़े सब अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उसकी बात जैसे-तैसे समझ ही लेंगे, उसे दूसरे के समझने लायक बनाने के लिए उसमें से कुछ रोक रखने से उसकी सचाई विकृत हो जायगी।

सतीश की कल्पना उत्तेजित हो उठी। वह बोला, "बड़े होकर जब मेरे पास बहुत-बहुत पैसा होगा तब···"

सुचरिता ने कहा, "नहीं-नहीं-नहीं ! पैसे की बात मत कर ! बख्त्यार, हम दोनों को पैसे की जरूरत नहीं है—हमें जो काम करना है उसके लिए भक्ति चाहिए, प्राण चाहिए।"

इसी समय आनन्दमयी आ पहुँचीं। उन्हें देखकर सुचरिता की धमनियों में रक्त मानो नाच उठा। उसने आनन्दमयी को प्रणाम किया। सतीश को ठीक से प्रणाम करना नहीं आता था, उसने झेंपते हुए किसी तरह काम निबटा लिया।

आनन्दमयी ने सतीश को गोद में खींचकर उसका माथा चूमा और सुचरिता से कहा, "तुम्हारे साथ कुछ परामर्श करने आई हूँ, बेटी—तुम्हारे सिवा और कोई नहीं दीखता। विनय कहता था कि ब्याह उसके घर में ही होगा, लेकिन मैंने कहा, वह किसी तरह नहीं हो सकेगा—वह क्या ऐसा ही बड़ा नवाब है कि हमारे घर की लड़की यों सीधी उसके घर आकर उससे ब्याह करेगी ? वह नहीं होगा। मैंने एक और घर ठीक किया है, वह तुम्हारे घर से ज्यादा दूर नहीं होगा। मैं अभी वहीं से आ रही हूँ। परेश बाबू को कहकर तुम राजी कर लेना !"

सुचरिता ने कहा, "बाबा राजी हो जायँगे।"

आनन्दमयी बोलीं, "उसके बाद बेटी, तुम्हें भी वहाँ जाना होगा। इसी

सोमवार को तो ब्याह है—इन्हीं दो-चार दिनों में हमें वहाँ सब ठीक-ठाक कर लेना होगा। समय तो अधिक नहीं है। मैं अकेली ही सब कर सकती हूँ, लेकिन तुम्हारे शामिल न होने से विनय को बड़ा दुःख होगा। वह अपने मुँह से तुमसे नहीं कह पा रहा है, यहाँ तक कि मेरे सामने भी उसने तुम्हारा नाम नहीं लिया—पर इसीसे मैं समझ सकती हूँ कि इस बात को लेकर उसके मन में बड़ा क्लेश है। तुम्हारे अलग रहने से नहीं चलेगा, बेटी ललिता को भी उससे बड़ा दुःख होगा।"

सुचरिता ने कुछ विस्मित होकर पूछा, "माँ, तुम क्या इस ब्याह में योग दे सकोगी?"

आनन्दमयी ने कहा, "यह क्या कह रही हो सुचरिता! योग देना कैसा? मैं क्या कोई पराई हूँ कि सिर्फ़ योग देने जाऊँगी? यह तो विनय का ब्याह है। यहाँ तो मुझको ही सब करना होगा। लेकिन मैंने विनय से कह दिया है कि इस ब्याह में मैं उसकी कोई नहीं हूँ, मैं कन्या-पक्ष की हूँ। वह ललिता से ब्याह करने मेरे घर आ रहा है।"

माँ के रहते भी इस शुभ कर्म में ललिता को उसकी माँ ने छोड़ दिया है, इससे आनन्दमयी का हृदय उसके प्रति करुणा से भर रहा था। इस कारण वह इसकी पूरी कोशिश कर रही थीं कि विवाह के समय अनादर या अवज्ञा का कोई लक्षण न दीखे। उनका यही संकल्प था कि वही ललिता की माँ का स्थान लेकर अपने हाथों से उसे सजा देंगी, वर के स्वागत की व्यवस्था करेंगी—निमन्त्रित किये गये दो-चार जन यदि आये तो उनके स्वागत-सत्कार में कोई त्रुटि नहीं होने देंगी, और उस नये घर को ऐसे सजा देंगी जिससे आत ही वह ललिता को एक बसे हुए घर-सा लगने लगे।

सुचरिता ने पूछा, "इस सबसे तुम्हें लेकर कोई हंगामा नहीं उठ खड़ा होगा?"

घर-घर महिम ने जो हाय-तोबा मचा रक्खी थी उसे याद करते हुए—आनन्दमयी ने कहा, "हो भी सकता है, पर उससे क्या? थोड़ा-बहुत हंगामा तो होता ही रहता है, चुपचाप सह लेने से थोड़े दिन में अपने-आप शान्त भी हो जाता है।"

गोरा विवाह में शामिल नहीं हो रहा है, यह सुचरिता जानती थी। वह यह जानने के लिए उत्सुक थी कि उसने आनन्दमयी को रोकने की भी कोई चेष्टा की या नहीं, लेकिन उनसे साफ़-साफ़ नहीं पूछ सकी। आनन्दमयी ने गोरा का नाम तक भी नहीं लिया।

हरिमोहिनी को खबर मिल गई थी। पर वह आराम से हाथ का काम पूरा करके ही कमरे में आई। आते ही बोलीं, "दीदी, अच्छी तो हो? आईं नहीं, खबर भी नहीं ली।"

आनन्दमयी ने अभियोग का उत्तर न देकर सीधे कहा, "तुम्हारी भानजी को लेने आई हूँ।"

अपना उद्देश्य उन्होंने स्पष्ट बता दिया। हरिमोहिनी अप्रसन्न चेहरा लिये थोड़ी देर चुप रहीं, फिर बोलीं, "मैं तो इसमें नहीं पड़ सकती।"

आनन्दमयी ने कहा, "नहीं बहन, तुम्हें मैं आने को नहीं कहती। सुचरिता के लिए तुम चिन्ता न करो---मैं तो बराबर उसके साथ ही रहूँगी।"

हरिमोहिनी ने कहा, "तो मैं साफ़ ही कहूँ! राधारानी तो सबसे कहती है कि वह हिन्दू है, अब उनकी मति-गति भी हिन्दूधर्म की ओर फिर रही है। तो अब उन्हें अगर हिन्दू-समाज में आना है तो सावधान होकर रहना होगा। यों भी तो कितनी बातें उठेंगी, उन्हें तो खैर मैं किसी तरह संभाल लूंगी, लेकिन अब से कुछ दिन उन्हें बहुत संभलकर पाँव रखना चाहिए। पहले ही लोग पूछते हैं, इतनी उम्र हो गई, उसका ब्याह क्यों नहीं हुआ---उसे किसी तरह टाल दिया जा सकता है---ऐसी बात तो नहीं है कि कोशिश करने से अच्छा पात्र नहीं मिल सकता---लेकिन वह अगर फिर अपना पुराना ढंग अपनायगी तो मैं किधर-किधर संभालूंगी, तुम्हीं बताओ। तुम तो खुद हिन्दू घर की लड़की हो, तुम तो सब समझती हो, तुम ही किस मुंह से ऐसी बात कह सकती हो भला? तुम्हारी अपनी लड़की होती तो क्या उसे इस विवाह में भेज सकतीं, तुम्हें भी तो सोचना पड़ता कि लड़की का ब्याह कैसे होगा?"

आनन्दमयी ने विस्मित होकर सुचरिता की ओर देखा। उसका चेहरा ज़ोर से तमतमा उठा था। आनन्दमयी ने कहा, "मैं कोई जोर डालना नहीं चाहती। सुचरिता को अगर आपत्ति हो तो मैं···"

हरिमोहिनी बोल उठीं, "मुझे तो तुम लोगों की बात कुछ भी समझ नहीं आती। तुम्हारा ही लड़का तो उन्हें हिन्दू-मत की ओर ले जाता रहा है, अब तुम एकाएक कौन-से आसमान से टपक पड़ीं?"

कहाँ गई वह हरिमोहिनी, जो परेश बाबू के घर में सर्वदा अपराधिनी-सी सकुचाई रहती थी, जो किसी को ज़रा भी अनुकूल पाकर बड़े आग्रह से उसीका अवलम्बन करने लगती थीं? आज वह अपने अधिकार की रक्षा के लिए बाघिन-सी उठ खड़ी हुई थी। यह सन्देह उन्हें हमेशा चौकन्ना किये रहता था कि उनकी सुचरिता को उनसे फोड़ लेने लिए के चारों ओर अनेक विरोधी शक्तियां काम

कर रही है। कौन पक्ष में है, कौन विपक्ष में, यह वह नहीं समझ पा रहा थीं और इसीलिए उनका मन आश्वस्त नहीं होता था। पहले सारे संसार को शून्य देखकर उन्होंने व्याकुल चित्त से जिस देवता का आश्रय लिया था उसकी पूजा में भी अब उनका चित्त स्थिर नहीं हो पाता था। एक दिन उनकी वृत्ति घोर संसारी थी, जब दारुण शोक से उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने सोचा भी नहीं था कि फिर किसी दिन उनमें रुपये-पैसे, घर-बार, आत्मीय परिजन के प्रति ज़रा भी आसक्ति हो सकेगी। लेकिन आज हृदय का घाव थोड़ा-सा भरते ही फिर उनके सम्मुख आकर उनके मन को खींचना आरम्भ कर दिया था एक बार फिर सभी आशाएँ-आकांक्षाएँ अपनी पुरानी भूख लेकर पहले-सी जाग उठी थीं जिनका वह त्याग कर आई थीं। उसीकी ओर लौटने का वेग इतना उग्र हो उठा था कि वह अपने गृहस्थी के दिनों से भी अधिक बेचैन हो उठी थीं। इतने थोड़े दिनों में ही हरिमोहिनी का चेहरा, आँखें, भाव-भंगी, बातचीत और व्यवहार में ऐसा अकल्पनीय परिवर्तन देखकर आनन्दमयी एकाएक चकित हो उठीं और उनका स्नेह-कोमल हृदय सुचरिता के लिए चिन्तित हो उठा। यदि वह जानतीं कि भीतर-ही-भीतर कैसा संकट छिपा हुआ है तो वह सुचरिता को बुलाने कदापि न आतीं। लेकिन अब कैसे सुचरिता को चोट से बचाया जा सकता है यही उनके लिए एक समस्या हो गई।

हरिमोहिनी ने गोरा को लक्ष्य करके जो बात कही उस पर सुचरिता सिर झुकाये चुपचाप उठकर कमरे से चली गई।

आनन्दमयी ने कहा, "डरो मत, बहन! मैं पहले नहीं जानती थी। खैर, और उस पर ज़ोर नहीं डालूँगी। तुम भी उसे और कुछ मत कहो! वह अब तक एक ढंग से रहती आई है, अब एकाएक उस पर अधिक दबाव डालने से वह नहीं, सह सकेगी।"

हरिमोहिनी ने कहा, "यह क्या मैं नहीं समझती---इतनी उम्र यों ही हो गई। वह तुम्हारे सामने ही कहे न? मैंने क्या उसे कभी कोई कष्ट दिया है। वह जो चाहती है वही तो करती है, मैं कभी कोई बात नहीं कहती। मैं तो यही कहती हूँ, भगवान् उसे बनाये रखें, मेरे लिए वही बहुत है। मेरा जैसा भाग्य है, कब क्या हो जायगा, इसीके डर से मुझे तो नींद नहीं आती।"

आनन्दमयी के जाने के समय सुचरिता ने अपने कमरे से निकलकर उन्हें प्रणाम किया। आनन्दमयी ने करुणा-भरे स्नेह से उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "मैं फिर आऊँगी, बेटी, तुम्हें सब खबर दे जाऊँगी---कोई विघ्न नहीं होगा, भगवान् के आशीर्वाद से शुभ कर्म सम्पन्न हो जायगा।"

सुचरिता कुछ नहीं बोली।

दूसरे दिन सबेरे आनन्दमयी लछमिया को साथ लेकर जब नये घर की बहुत दिनों की जमी हुई धूल झाड़-पोंछकर धो डालने के लिए जोरों से पानी बहा रही थीं तब सुचरिता एकाएक आ पहुँची। आनन्दमयी ने जल्दी से झाड़ू फेंककर उसे छाती से लगा लिया।

इसके बाद धोने-पोंछने, चीजें इधर-उधर हटाने और सजाने का काम जोरों से होने लगा। खर्चे के लिए परेश बाबू ने सुचरिता को यथोचित रुपया दे दिया था—इसी पूँजी को ध्यान में रखकर दोनों बार-बार सूचियाँ बनाकर उसमें काट-छाँट करने में लग गईं।

थोड़ी देर बाद ही परेश स्वयं ललिता को साथ लेकर आ पहुँचे। ललिता के लिए अपना घर असह्य हो उठा था। कोई उससे बात करने का साहस नहीं करता था, लेकिन सबकी चुप्पी ही उसे रह-रहकर चोट पहुँचाती थी। अन्त में वरदासुन्दरी के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए जब उनके बन्धु-बान्धवों के दल घर पर आने लगे, तब परेश ने ललिता को वहाँ से हटा ले जाना ही ठीक समझा। जाते समय ललिता वरदासुन्दरी को प्रणाम करने गई, वह मुँह फेरकर बैठी रहीं और उसके चले जाने पर आँसू बहाने लगीं। ललिता के विवाह के बारे में लावण्य और लीला भी मन-ही-मन काफ़ी उत्सुक थीं—उन्हें किसी तरह अनुमति मिल सकती तो वे पल-भर भी विलम्ब किये बिना दौड़ी आतीं। लेकिन ललिता जब विदा लेकर जाने लगी तब दोनों ब्राह्म-परिवार का कर्त्तव्य स्मरण करके गम्भीर चेहरा बनाये रहीं। ड्योढ़ी पर ललिता ने क्षण-भर के लिए सुधीर को भी देखा, लेकिन उसके पीछे ही उनके समाज के कुछ बुजुर्ग भी थे, इसलिए वह उससे कोई बात न कर सकी। गाड़ी पर सवार होकर उसने देखा, आसन पर एक कोने में काग़ज में लिपटा हुआ कुछ रखा था। उसने खोलकर देखा, जर्मन सिल्वर का एक फूलदान था, जिस पर अंग्रेजी में खुदा हुआ था 'आनन्दित दम्पत्ति को भगवान् आशीर्वाद दें' और एक कार्ड पर सुधीर के नाम का पहला अक्षर-मात्र उसके साथ रक्खा हुआ था। ललिता ने जी कड़ा करके प्रण किया था कि आँखों में आँसू नहीं आने देगी, किन्तु विदा के क्षण में अपने बाल्य-बन्धु का यह एकमात्र स्नेहोपहार हाथ में लिये-लिये उसकी आँखों से झर-झरकर आँसू गिरने लगे। परेश बाबू आँखें मूँद-कर चुपचाप बैठे रहे।

"आओ, आओ बेटी," कहती हुई आनन्दमयी ललिता को दोनों हाथों से पकड़कर कमरे में खींच लाईं, मानो अभी तक उसी की राह देख रही थीं।

परेश बाबू ने सुचरिता को बुलाकर कहा, "ललिता हमारे घर से बारगी विदा

लेकर आई है।" उनका स्वर काँप उठा।

सुचरिता ने परेश बाबू का हाथ पकड़ते हुए कहा, "बाबा, यहाँ उसे स्नेह की कोई कमी नहीं होगी।"

परेश जब जाने को उद्यत हुए तब आनन्दमयी ने आँचल माथे पर खींचकर उनके सामने आकर उन्हें नमस्कार किया। परेश बाबू ने हड़बड़ाकर प्रतिनमस्कार किया तो आनन्दमयी ने कहा, "ललिता की ओर से आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। आप जिसके हाथ उसे सौंप रहे हैं उससे उसे कभी कोई दुःख नहीं होगा। और भगवान ने इतने दिनों बाद मेरी भी एक साध पूरी कर दी—मेरी कोई बेटी नहीं थी, सो मुझे मिल गई। विनय की बहू आने से मेरी कन्या की कमी दूर हो जायगी, इसकी आस लगाये मैं बहुत दिन से बैठी थी—भगवान् ने मेरी यह कामना जितनी देर से पूरी की उतनी ही अच्छी बेटी मुझे दी, और ऐसे अद्भुत ढंग से दी कि मैं कभी सोच भी नहीं सकती थी कि मेरा इतना भाग्य होगा।"

ललिता के विवाह की हलचल आरम्भ होने के समय से परेश बाबू के मन को पहली बार संसार में कहीं एक किनारा दीखा और सच्ची सान्त्वना मिली।

६७

जेल से आने के बाद से गोरा के पास सारे दिन इतनी भीड़ जुटी रहने लगी कि उनकी स्तुति, प्रशंसा और चर्चा-आलोचना की अजस्र धारा में गोरा का दम घुटने लगा और उसके लिए घर में रहना असह्य हो गया। इसलिए गोरा ने फिर पहले की तरह गाँवों का भ्रमण आरम्भ कर दिया।

सबेरे ही कुछ खाकर वह घर से निकल जाता और देर रात में लौटता। रेल पर सवार होकर कलकत्ता के आस-पास के किसी स्टेशन पर उतरकर वह देहात में घूमता रहता, वहाँ भी कुम्हार, तेली-केवट आदि के मुहल्लों में आतिथ्य स्वीकार करता। यह विशालकाय गौर-वर्ण ब्राह्मण क्यों उनके घरों में यों भटकता है, उनका दुःख-सुख पूछता है, यह उनकी समझ में नहीं आता था, यहाँ तक कि उनके मन में तरह-तरह के संदेह भी उठते रहते थे। लेकिन गोरा उनके सब संकोच-सन्देह की उपेक्षा करके उसके बीच विचरण करता रहता, बीच-बीच में उसे कुछ खरी-खोटी भी सुननी पड़ जातीं, लेकिन उससे भी हतोत्साहित न होता।

ज्यों-ज्यों वह इन लोगों के भीतर प्रवेश पाता गया त्यों-त्यों एक ही बात उनके मन में चक्कर काटने लगी। उसने देखा, इन देहातों में समाज के बन्धन पढ़े-लिखे भद्र समाज से कहीं अधिक कड़े हैं। हर घर के खान-पान, उठने-बैठने और हर काम-काज पर समाज की अपलक आंखें मानो दिन-रात निगरानी रखती थीं। लोकाचार पर हर किसी का सहज विश्वास था और उसके बारे में किसी के मन में मानो कोई सवाल ही नहीं उठता था। लेकिन समाज के बन्धन और आचार-निष्ठा से किसी को कर्म-क्षेत्र में कोई बल मिलता भी नहीं जान पड़ता था। इन लोगों जैसा डरपोक, असहाय, अपना भला-बुरा सोचने में असमर्थ कोई दूसरा जीव भी दुनिया में कहीं हो सकता है, इसमें गोरा को संदेह होता था। ये लोग मानो लीक पीटते हुए चलने के सिवा कोई मंगल ही नहीं पहचानते थे, न समझाने पर समझते ही थे। उनके लिए दण्ड द्वारा और दलबन्दी द्वारा बँधे रहना ही सबसे बड़ी बात थी, क्या-क्या उन्हें नहीं करना है और करने पर उनके लिए कैसा दण्ड मिलेगा, इसीके विचार ने मानो उनकी प्रकृति को सिर से पैर तक जाल में बाँध रक्खा था। लेकिन यह जाल राजा का बन्धन का नहीं था; बल्कि महाजन का बन्धन था, ऋण का बन्धन था। इन लोगों में ऐसा कोई ऐक्य नहीं था जो सुख-दुःख और विपत्ति में उन्हें कन्धे-से-कन्धा मिलाकर खड़ा कर सके। गोरा यह देखे बिना न रह सका कि इसी आचार के अस्त्र से मानव मानव का रक्त चूस कर निठुरता से उसका सब-कुछ छीने ले रहा था। उसने बार-बार लक्ष्य किया कि सामाजिक कर्म में कोई किसी पर ज़रा भी दया नहीं करता। एक व्यक्ति का बाप बहुत लम्बी बीमारी से कष्ट भोग रहा था, बाप के इलाज और पथ्य की व्यवस्था में बेचारे का सब-कुछ लुट चुका था, पर इसके लिए किसी ने उसकी कोई मदद नहीं की—उलटे गाँव के लोगों ने फैसला किया कि बाप की लम्बी बीमारी किसी अज्ञात पाप का परिणाम थी जिसके लिए बेटे को प्रायश्चित्त करना होगा। उस अभागे की दरिद्रता और बेचारगी किसी से छिपी न थी, किन्तु उसे क्षमा न मिल सकी। सभी कर्मों में यही स्थिति थी। जैसे गाँव के लिए डकैती की अपेक्षा पुलिस की जाँच-पड़ताल अधिक बड़ी दुर्घटना थी, वैसे ही माँ-बाप की मृत्यु की अपेक्षा माँ-बाप का श्राद्ध ही सन्तान के लिए अधिक बड़ा दुर्भाग्य था। आय की अथवा सामर्थ्य की कमी की बात सुनने को कोई तैयार नहीं था—जैसे भी हो समाज की हृदयहीन माँग सोलहों आने पूरी करनी होगी। विवाह के अवसर पर लड़की के पिता का बोझ दुःसह हो उठे, उसके लिए वर-पक्ष से हर तरह की कोशिश की जाती थी और अभागे को कहीं से करुणा नहीं मिलती थी। गोरा ने देखा, यह समाज मनुष्य को ज़रूरत पड़ने पर सहायता नहीं देता था, विपत्ति आने पर सहारा नहीं देता था, केवल दण्ड

देकर उसे नीचा दिखाकर विपन्न ही करता था।

शिक्षित समाज के बीच रहता हुआ गोरा इस बात को भूल गया था, क्योंकि उस समाज में सबके मंगल के लिए एक होकर खड़े होने की प्रेरणा बाहर से मिलती रहती थी। इस समाज में एक जगह मिल सकने के तरह-तरह के उद्योग होते दीखते रहते थे। इनमें सोचने की बात यही थी कि ये सारे उद्योग कहीं इसीलिए व्यर्थ न हो जायें कि सभी एक-दूसरे की नकल कर रहे हैं।

लेकिन देहात में, जहाँ बाहर की शक्तियों का दबाव उतना नहीं पड़ रहा था, वहाँ की निश्चेष्टता में ही गोरा ने अपने देश की सबसे बड़ी दुर्बलता का बिलकुल उघड़ा रूप देखा। जो धर्म सेवा के रूप में, प्रेम के रूप में, करुणा के रूप में, आत्म-त्याग के रूप में और मानव के प्रति श्रद्धा के रूप में सबको शक्ति देता है, प्राण देता है, सबका कल्याण करता है, वह कहीं नहीं दीखता था—और जो आचार केवल रेखाएँ खींचता है, विभाजन करता है, पीड़ा देता है, बुद्धि की भी कोई परवाह नहीं करता और प्रीति को भी दूर ही रखता है, वही चलते-फिरते, उठते-बैठते, हर किसी के हर काम में अड़ंगा लगाता रहता है। मूढ़ता-भरी रूढ़ि-वादिता के भयानक दुष्परिणाम गोरा को इन देहातों में इतने स्पष्ट और इतने रूपों में दीखने लगे, वह देखने लगा कि मनुष्य के स्वास्थ्य, ज्ञान, धर्म-बुद्धि, कर्म, सभी पर इतनी ओर से इतने प्रकार का आक्रमण हो रहा है कि उसके लिए अपने को भावुकता के इन्द्रजाल में भुलाये रखना असम्भव हो गया।

गोरा ने आरम्भ में ही देखा कि गाँव की नीच जातियों में स्त्रियों की संख्या की कमी के कारण या अन्य किसी भी कारण एक बहुत बड़ी रकम देकर ही विवाह के लिए लड़की मिलती थी। अनेक पुरुषों को आजीवन और अनेकों को बड़ी उम्र तक अविवाहित रह जाना होता था। उधर, विधवा-विवाह का कड़ा निषेध था। इससे समाज का स्वास्थ्य घर-घर में दूषित हो रहा था और इससे होने वाली असुविधा और अनिष्ट को हर कोई अनुभव भी करता था। सभी हमेशा के लिए इस बुराई को सहते चलने के लिए लाचार थे, इसका इलाज या प्रतिकार करने का यत्न कोई नहीं कर रहा था। शिक्षित समाज में जो गोरा आचार के बन्धन को कहीं शिथिल होने देना नहीं चाहता था, वही यहाँ आचार का विरोध करने लगा। उसने इनके पुरोहितों को भी मना लिया लेकिन समाज के लोगों को किसी तरह राजी न कर सका। वे गोरा पर बिगड़ उठे। उन्होंने कहा, "ठीक है, जब ब्राह्मण विधवा-विवाह करने लगेंगे तब हम भी मान लेंगे।"

उनके क्रोध का मुख्य कारण यही था कि वे समझते थे, गोरा उन्हें हीन-जाति का समझकर उनकी अवज्ञा कर रहा है, और यही प्रचार करने आया है कि उन-

जैसे नीचे लोगों के लिए हीन आचार ही उपयुक्त है।

देहातों में घूमते हुए गोरा ने यह भी देखा कि मुसलमानों में वह चीज़ थी जिसके सहारे वे एक हो सकते थे। गोरा ने लक्ष्य किया था कि गांव पर कोई मुसीबत आने पर मुसलमान लोग जिस तरह कन्धे-से-कन्धा मिलाकर खड़े होते थे, हिन्दू नहीं हो पाते थे। गोरा बार-बार सोचता था, इन दोनों निकटतम पड़ोसी समाजों के बीच इतना बड़ा अन्तर क्यों होता है? इस प्रश्न का जो उत्तर उसके मन में उदित होता उसे वह किसी तरह नहीं मानना चाहता था। यह स्वीकार करने में उसे बड़ा कष्ट हो रहा था कि मुसलमान केवल आचार से नहीं धर्म से एक हैं। एक तरफ़ जहां आचार के बन्धनों ने उनके सारे कर्म को व्यर्थ बांधकर नहीं रखा था वहां दूसरी तरफ़ धर्म का बन्धन उनमें घनिष्ठ एकता बनाए रखता था। उन सबने मिलकर एक ऐसी चीज़ को अपनाया था जो केवल 'ना' नहीं थी. 'हां' भी थी, जो ऋणात्मक नहीं थी, धनात्मक थी, जिसके लिए मनुष्य एक ही पुकार पर क्षण-भर में एक पंक्ति में खड़े होकर अनायास प्राण तक न्यौछावर कर सकते थे

शिक्षित समाज में गोरा जब लेख लिखता था, व्याख्यान देता था, तर्क करता था, तब वह दूसरों को समझाने के लिए, अपनी राह पर लाने के लिए स्वभावत: अपनी बातों को कल्पना के मनोहर रंगों से रंग देता था। जो स्थूल था उसे वह सूक्ष्म व्याख्याओं से आवृत्त कर लेता था, जो निरा अनावश्यक भग्नावशेष-मात्र था उसे भी वह चांदनी से मढ़कर आकर्षक बनाकर दिखाता था। देश के लोगों का एक दल देश से विमुख था—देश की हर बात उसे घटिया दीखती थी—इसीलिए गोरा देश के प्रति प्रबल अनुराग से भरकर स्वदेश को इस ममत्व-हीन दृष्टि से बचाने के लिए, देश की हर बात उज्ज्वल आवरण से ढक देने की कोशिश करता रहा था। इसीका वह अभ्यस्त हो गया था। यह बात नहीं थी कि गोरा केवल वकील की भांति यह सिद्ध करना चाहता था कि उसके पक्ष का सभी कुछ अच्छा है, कि जो दोष दीखता है वह भी एक तरह से गुण ही है। गोरा इस पर सच्चे मन से विश्वास करता था। बिलकुल असम्भव स्थलों पर भी वह अपने इस विश्वास को हेकड़ी के साथ झंडे की तरह विरोधियों के सामने फहराता हुआ खड़ा हो जाता था। उसकी केवल एक टेक थी—कि पहले स्वदेश के प्रति स्वदेश-वासियों की श्रद्धा लौटा लानी होगी, और सब बातें पीछे होंगी।

लेकिन जब देहातों में आता तब उसके सम्मुख कोई श्रोता नहीं होता था, न सिद्ध करने को कुछ होता था, न विरोधी पक्ष की अवज्ञा को नीचा दिखाने के लिए ताक़त जुटाने का कोई प्रयोजन होता था। इसलिए वहां सत्य को किसी

तरह के आवरण के भीतर से देखने की ज़रूरत नहीं थी। देश के प्रति उसके अनुराग की प्रबलता ही उसकी सत्य दृष्टि को असाधारण रूप से तीक्ष्ण बना देती थी।

६८

टमर का कोट पहने, कमर में चादर लपेटे, हाथ में कैन्वेस का झोला लिये स्वयं कैलाश ने आकर हरिमोहिनी को प्रणाम किया। उम्र कोई पैंतीस के लगभग, नाटा और गाठा हुआ शरीर, रूखा और भारी चेहरा, कई दिनों से बढ़ी हुई दाढ़ी कुश के अंकुरों-सी झलक रही थी।

बहुत दिन के बाद ससुराल के आत्मीय को देखकर हरिमोहिनी खिल उठीं। 'अरे देवर आए हैं! बैठो, बैठो!" कहते-कहते उन्होंने जल्दी से चटाई बिछा दी। फिर पूछा, "हाथ-पाँव धोओगे?"

कैलाश ने कहा, "नहीं, कोई ज़रूरत नही है। अच्छा, तो तुम्हारा तो स्वास्थ्य अच्छा ही दीख पड़ना है।"

स्वास्थ्य अच्छा होने को मानो अपमान की वात मानकर हरिमोहिनी बोलीं, "कहाँ अच्छा है!" और बीमारियों की सूची गिनती हुई बोलीं, "किसी तरह पिंड छूटे तो चैन हो—मौत भी तो नहीं आती।"

जीवन के प्रति ऐसी उपेक्षा पर कैलाश ने आपत्ति प्रकट की। बड़े भाई नहीं रहे फिर भी हरिमोहिनी के रहने से उन सबको कितना बड़ा सहारा है, इसके प्रमाण में उसने कहा, "यह क्यों नहीं देखतीं कि तुम हो तभी तो कलकत्ता आना हो सका; कहीं खड़े होने की जगह तो मिली।"

घर के सब लोगों और गाँव-बिरादरी के समाचार पूरे ब्यौरे के साथ सुनाकर कैलाश ने सहसा चारों ओर नजर डालकर पूछा, "तो यह घर उसी का है?"

हरिमोहिनी ने कहा, "हाँ।"

कैलाश बोला, "घर तो पक्का है!"

हरिमोहिनी ने उसका उत्साह बढ़ाने के लिए कहा, "पक्का तो है ही। सब पक्का है।"

कैलाश ने पड़ताल करके देख लिया कि शहतीर सब मजबूत साल की लकड़ी

के हैं और खिड़कियाँ-दरवाजे भी आम की लकड़ी के ही हैं। दीवारें डेढ़ ईंट की हैं या दो ईंट की यह भी उसकी नज़र से नहीं बचा। ऊपर-नीचे सब मिलाकर कितने कमरे हैं, यह भी उसने पूछकर जान लिया। कुल मिलाकर यही जान पड़ा कि सारी बात से उसे सन्तोष ही हुआ है। मकान बनाने में कितना खर्च आया होगा, इसका अन्दाज करना उसके लिए कठिन था, क्योंकि इस तरह के सामान और मसाले की दर उसकी जानी हुई नहीं थी। बहुत सोचकर पैर-पर-पैर रखकर हिलाते-हिलाते अन्त मे उसने मन-ही-मन कहा, 'अधिक नहीं तो दस-पन्द्रह हजार तो लगा ही होगा।' लेकिन प्रकाश्य कुछ कम करके बोला, "क्या राय है भाभी, सात-आठ हज़ार रुपया तो होगा···?"

हरिमोहिनी ने कैलाश के गँवारपन पर विस्मय प्रकट करते हुए कहा, "क्या कहते हो देवर, सात-आठ हज़ार क्या होता है! बीस हज़ार से एक पैसा कम नहीं होगा।"

कैलाश चुपचाप बड़े मनोयोग से चारों ओर की चीज़ों का निरीक्षण करने लगा। यह सोचकर उसे अपने पर बड़ा सन्तोष हुआ कि अभी ज़रा-सा सम्मति-सूचक सिर हिला देने से ही साल की लकड़ी के शहतीरों और सागौन के खिड़की-दरवाज़ों समेत इस पक्की इमारत का एक-मात्र स्वामी बना जा सकता है। उसने पूछा, "और सब तो हुआ, लेकिन लड़की?"

हरिमोहिनी ने जल्दी से कहा, "उसकी बुआ के घर से अचानक उसका बुलावा आया था, वही गई है-- दो-चार दिन की देर हो सकती है।"

कैलाश बोला, "तब फिर देखने का कैसा होगा? मेरा तो एक मुकदमा भी है, कल ही जाना होगा।"

हरिमोहिनी बोलीं, "मुकदमा अभी रहने दो! यहाँ का काम निबटे बिना तुम नहीं जा सकते!"

कैलाश ने थोड़ी देर सोच-विचार करके अन्त में निश्चय किया, "बहुत होगा तो यही न कि मुकदमे में एकतरफ़ा डिगरी हो जायगी, मामला डिस्मिस हो जायगा?" वह होता रहे—उसकी क्षति-पूर्ति का पूरा आयोजन यहाँ पर है, यह उसने फिर एक बार चारों ओर नज़र दौड़ाकर निश्चय कर लिया। सहसा उसने देखा, हरिमोहिनी के पूजा के कमरे के एक कोने में थोड़ा-सा पानी जमा था। इस कमरे से पानी की निकासी के लिए नाली नहीं थी, फिर भी हरिमोहिनी सर्वदा उसे धोती-पोंछती रहती थीं, इसलिए कोने में ज़रा-सा पानी अक्सर रह जाता था। कैलाश ने व्यस्त भाव से कहा, "भाभी, यह तो ठीक नहीं है।"

हरिमोहिनी ने पूछा, "क्यों, क्या बात हुई?"

कैलाश बोला, "वह जो वहाँ पर पानी इकट्ठा हो रहा है, वह कभी नहीं होना चाहिए।"

हरिमोहिनी ने कहा, "लेकिन क्या करूँ, देवर!"

"न, न, यह नहीं चलेगा। इससे तो फ़र्श सील जायगा। इसीसे कहे देता हूँ, भाभी, इस कमरे मे पानी-वानी गिराने से नहीं चलेगा।"

हरिमोहिनी चुप रह गई तब कैलाश ने कन्या के रूप के बारे में जिज्ञासा की।

हरिमोहिनी ने कहा, "वह तो देखकर ही जानोगे। अभी तो इतना ही कह सकती हूँ कि तुम लोगों के घर में ऐसी सुन्दर बहू आज तक नहीं आई।"

कैलाश ने कहा, "क्यों-- हमारी मँझली भाभी?"

हरिमोहिनी बोल उठी, "कहाँ यह और कहाँ वह! तुम्हारी मँझली भाभी क्या उसके सामने ठहर सकती है!"

मँझली भाभी ससुराल में सुन्दरता का आदर्श मानी जायँ, यह हरिमोहिनी को विशेष अच्छा नहीं लगा, इसलिए उन्होंने यह और जोड़ दिया "तुम लोगों ने जो कहा, भैया, मुझे तो मँझली बहू से भी छोटी बहू कहीं ज़्यादा पसन्द है।"

कैलाश ने मँझली बहू और छोटी बहू के रूप की तुलना में कोई उत्साह नहीं दिखाया। वह मन-ही-मन किसी एक अदृश्य पूर्व मूर्ति की फूल की पंखुड़ी-सी आँखों, बाँसुरी-सी नासिका और कमर पर झूलते हुए केशों की कल्पना में अपने को भरमा रहा था।

हरिमोहिनी ने देखा, इस पक्ष की अवस्था तो पूरी तरह आशाजनक है। यहाँ तक कि उसने समझ लिया, कन्या में जो बहुत बड़ा सामाजिक दोष है वह भी शायद कोई ऐसा बड़ा विघ्न न समझा जायगा।

६९

आजकल गोरा बड़े सवेरे ही घर से निकल जाता है, यह विनय जानता था। इसीलिए सोमवार को सवेरे वह भोर होने से पहले ही गोरा के घर जा पहुँचा और सीधे ऊपर की मंज़िल में उसके सोने के कमरे में चला गया। वहाँ गोरा को न पाकर उसने नौकर से पूछा तो पता लगा कि गोरा पूजा-घर में है। इससे उसे मन-ही-मन कुछ आश्चर्य हुआ। पूजा-घर की देहरी पर पहुँचकर विनय ने देखा,

गोरा पूजा की मुद्रा में बैठा है। रेशमी धोती, कन्धे पर रेशमी चादर, किन्तु फिर भी उसकी विशाल देह का अधिकांश खुला ही था। गोरा को यों पूजा करते देखकर विनय को और भी आश्चर्य हुआ।

जूते का शब्द सुनकर गोरा ने फिरकर देखा। विनय को देखकर वह उठ खड़ा हुआ और घबराया-सा बोला, "इस कमरे में न आना।"

विनय ने कहा, "डरो मत, मैं नहीं आता। तुमसे मिलने ही आया था।"

गोरा ने बाहर आकर कपड़े बदले और फिर विनय को साथ लेकर तिमंज़िले वाले कमरे में चला गया।

विनय ने कहा, "आज सोमवार है।"

गोरा ने कहा, "ज़रूर सोमवार है, पंचांग में भूल हो सकती है, पर आज के बारे में तुमसे भूल नहीं हो सकती। कम-से-कम इतना तो तय है कि आज मंगलवार नहीं है।"

विनय ने कहा, "तुम शायद आओगे तो नहीं, यह जानता हूँ -- लेकिन आज तुम्हें एक बार बुलाये बिना मैं इस काम में प्रवृत्त नहीं हो सकता। इसीलिए आज सवेरे उठते ही सीधा तुम्हारे पास आया हूँ।"

गोरा कुछ कहे बिना निश्चल बैठा रहा। विनय ने फिर कहा, "तो तुम्हारा यही निश्चय है कि मेरे विवाह में नहीं आओगे?"

गोरा ने कहा, "नहीं, विनय, मैं नहीं जा सकूँगा।"

विनय चुप हो गया। गोरा ने अपने हृदय की वेदना को छिपाकर हँसते हुए कहा, "मैं नहीं भी गया तो क्या हुआ! जीत तो तुम्हारी ही हुई। माँ को तो तुम खींच ही ले गए। मैंने तो बड़ी कोशिश की, पर उन्हें किसी तरह रोक न सका। अन्त में अपनी माँ के बारे में भी मुझे तुमसे हार माननी पड़ी। विनय, यहाँ भी क्या एक-एक करके 'सब लाल हो जायगा।' अपने नक्शे में क्या मैं अकेला ही बचा रह जाऊँगा।"

विनय ने कहा, "भाई, लेकिन मुझे दोष न दो! मैंने उन्हें बहुत जोर देकर ही कहा था--'माँ, मेरे ब्याह में तुम किसी तरह नहीं जा सकतीं।" माँ बोलीं, 'देख बीनू, तेरे ब्याह में जो नहीं आयेंगे वे तो तेरा न्यौता पाकर भी नहीं आयेंगे--इसीलिए तुझसे कहती हूँ, तू किसी को न्यौता भी मत दे और मना भी मत कर, चुप हो रह।' गोरा, तुम मुझसे कहाँ हारे हो, तुम अपनी माँ से हारे हो, हज़ार बार हारे हो। ऐसी माँ और कहाँ मिलेगी?"

गोरा ने आनन्दमयी को रोकने की पूरी कोशिश की थी ज़रूर, लेकिन वह जब उसकी बात न मानकर, उसके क्रोध और कष्ट की परवाह न करके विनय के

विवाह में चली ही गई तब गोरा को इससे दुःख नहीं हुआ, बल्कि कुछ प्रसन्नता भी हुई। उसकी माँ के असीम स्नेह का जो अंश विनय को मिला है, गोरा से विनय का विच्छेद हो जाने पर भी उस गम्भीर स्नेह-सुधा से विनय को कोई वंचित न कर सकेगा, यह जानकर गोरा को मन-ही-मन तृप्ति और शान्ति मिली। और सब ओर से वह विनय से बड़ी दूर चला जा सकता है, किन्तु अक्षय मातृ स्नेह का यह बन्धन इन दोनों पुराने बन्धुओं को हमेशा निविड़ भाव से एक-दूसरे से बाँधे रहेगा।

विनय ने कहा, "भाई, तो मैं चलूँ, आना बिलकुल असम्भव हो तो न आना, लेकिन मन में गुस्सा न रखना, गोरा! इस मिलन से मेरे जीवन को कितनी बड़ी सार्थकता मिली है, यह अगर तुम अनुभव कर सको तो कभी हमारे इस विवाह को अपने सौहार्द के घेरे से निर्वासित न कर सकोगे, यह मैं दावे से कह सकता हूँ।"

यह कहकर विनय उठ खड़ा हुआ। गोरा ने कहा, "बैठो, विनय, लग्न तो रात को कहीं जाकर है, अभी से इतनी जल्दी क्यों?"

गोरा के इस अप्रत्याशित स्नेह-पूर्ण अनुरोध से पिघलकर विनय फिर बैठ गया।

तब बहुत दिनों के बाद फिर ये दोनों पहले की तरह सवेरे-सवेरे घुट-घुटकर बातें करने लगे। विनय के हृदय की वीणा का जो तार आजकल पंचम पर था, उसी को गोरा ने छू दिया। फिर तो मानो विनय की बात पूरी होने पर ही न आती थी। कितनी ही ऐसी छोटी-छोटी घटनाओं का इतिहास, जो लिखा जाने पर अत्यन्त साधारण बल्कि हास्यास्पद जान पड़तीं, यों सुनाने लगा मानो गाने की तान की तरह हर आवृत्ति पर उसमें नया माधुर्य भर उठता हो। विनय के हृदय में जो आश्चर्य-लीला हो रही थी, अपनी निपुण भाषा से वह उसके रस-वैचित्र्य का सूक्ष्म, किन्तु गम्भीर बखान करने लगा। कैसा अपूर्व था जीवन का यह अनुभव! जिस अनिर्वचनीय पदार्थ को विनय ने जी भरकर पाया है, वह क्या सभी पा सकते हैं—उसे ग्रहण करने की शक्ति ही क्या सबमें होती है? विनय कह रहा था, दुनिया में साधारणतया स्त्री-पुरुष का जैसा मिलन देखा जाता है, उसमें इस तार-स्वर की गूँज तो नहीं सुनाई देती! गोरा उन दोनों की तुलना और लोगों से न करे, यह विनय का आग्रह था। उसे लग रहा था कि ठीक ऐसी घटना और कभी नहीं घटी होगी—सभी से ऐसा घटित हो सकता होता तो सारा समाज ही प्राणों की हिल्लोल से चंचल हो उठता, जैसे वसन्त के एक झोंके से ही सारी वन-भूमि फूल-पल्लवों से पुलकित हो उठती है। वैसा होने पर लोग ऐसी आसानी से

यों खाने-सोने में जीवन न बिता देते ! जिसमें जितना सौन्दर्य, जितनी शक्ति होती, स्वभावतया अनेक रंग-रूप धरकर दिशा-दिशा में खिल उठती। यह तो जादू की छड़ी है—कौन इसके स्पर्श की उपेक्षा करके बेजान पड़ा रह सकता है ? यह तो साधारण व्यक्ति को भी असाधारण बना देती है। उस प्रबल असाधारणता का स्वाद जीवन में एक बार भी मिल जाय तो जीवन का सच्चा परिचय मिल जाता है।

विनय बोला,"गोरा, मैं तुम्हें निश्चयपूर्वक कहता हूँ, मनुष्य की समूची प्रकृति को पल-भर में जगा देने का उपाय यह प्रेम ही है। चाहे जिस कारण हो, हम लोगों में इस प्रेम का आविर्भाव दुर्बल होता है और इसीलिए हम सभी अपनी पूरी उपलब्धि से वंचित हो जाते हैं। हममें क्या है, यह हम नही जानते, जो भीतर छिपा हुआ है उसे प्रकाश में नहीं ला पाते, जो जमा-पूंजी है उसका व्यय करना हमारे लिए असम्भव होता है, इसीलिए चारों ओर ऐसा निरानन्द छाया रहता है—ऐसा निरानन्द ! इसीलिए यह भी तुम्हारे जैसे दो-एक व्यक्ति ही समझ पाते हैं कि हममें अपने में कोई महत्ता है, साधारण लोगों के मन में तो इसकी चेतना ही नहीं होती।"

महिम ज़ोर से जम्हाई लेते हुए बिस्तर से उठकर मुंह धोने जाने लगे तो उनके पैरों की आहट से ही विनय के उत्साह की धारा रुकी। गोरा से विदा लेकर वह चला गया।

गोरा ने छत पर खड़े होकर पूर्व के लाल आकाश की ओर देखकर एक लम्बी साँस ली। फ़िर वह बहुत देर तक छत पर ही टहलता रहा, देहात की ओर उसका जाना न हुआ।

गोरा इधर अपने हृदय के भीतर जिस आकांक्षा का, पूर्णता के जिस अभाव का अनुभव करता रहता था, उसे वह किसी भी काम से पूरा न कर पाता था। वह स्वयं ही नही, उसका प्रत्येक काम भी मानो आकाश की ओर हाथ बढ़ाकर माँग रहा था, 'प्रकाश चाहिए, एक उज्ज्वल प्रकाश, एक सुन्दर प्रकाश।' मानो और सभी उपकरण प्रस्तुत थे, सोना-चाँदी, हीरा-मोती कुछ भी महँगा नहीं था, मानो, वज्र-कवच भी दुर्लभ नही थे, केवल आशा और सान्त्वना से फूटा हुआ स्निग्ध, सुन्दर, अनुराग-रंजित प्रकाश कहीं नहीं था ! जो कुछ था, उसे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, केवल उसे चमकाने, लावण्यमय करके प्रकाशित करने की प्रतीक्षा थी।

विनय ने जब कहा कि किसी-किसी दिव्य क्षण में नर-नारी के प्रेम के द्वारा अनिर्वचनीय असाधारणता जगमगा उठती है, तब गोरा पहले की भाँति इस

बात को हँसी में नहीं उड़ा सका। उसने मन-ही-मन स्वीकार किया कि वह मिलन सामान्य मिलन नहीं होता, वह परिपूर्णता होती है, उसके संस्पर्श से सभी चीज़ों का मूल्य बढ़ जाता है, वह कल्पना को शरीर देता है और शरीर में प्राण भर देता है, वह प्राणों के भीतर प्राणन और मन के भीतर मनन को केवल दुगुना कर देते है, यह नहीं, उन्हें एक नए रस से अभिषिक्त भी कर देते हैं।

विनय के साथ सामाजिक सम्बन्ध-विच्छेद के दिन आज विनय का हृदय मानो गोरा के हृदय में एक अखण्ड संगीत के सुर जगा गया। विनय चला गया, दिन चढ़ आया, लेकिन वह संगीत बजता ही रहा। समुद्र की ओर जाती हुई दो नदियों के मिलने पर जैसा होता है, वैसे ही गोरा के प्रेम की धारा में विनय के प्रेम की धारा के गिरने पर उसमें तरंगों की टकराहट मुखर हो उठी; जिसे गोरा किसी तरह बाँधकर, छिपाकर, दबाकर अपनी आँखों से ओझल ही रखने की चेष्टा कर रहा था, वह आज कगार तोड़कर स्पष्ट और प्रबल रूप में प्रकट हो उठा। और आज गोरा में इतनी शक्ति न रही कि उसे अवैध कहकर उसकी निन्दा करे, या तुच्छ कहकर उसकी अवज्ञा कर सके।

सारा दिन ऐसे ही कट गया। अन्त में जब तीसरा पहर साँझ में ढला जा रहा था तब गोरा कन्धे पर चादर डालकर बाहर निकल पड़ा। अपने-आपसे बोला, 'जो मेरा ही है उसे मैं लूँगा। नहीं तो मैं पृथ्वी पर असम्पूर्ण ही रहूँगा, व्यर्थ ही हो जाऊँगा।'

सारी दुनिया में एक उसी के आह्वान के लिए सुचरिता प्रतीक्षा कर रही है, इसके बारे में गोरा के मन में ज़रा भी सन्देह न था। आज ही सन्ध्या को वह इस प्रतीक्षा को पूर्ण करेगा।

भीड़-भरे कलकत्ता शहर की सड़क पर गोरा तेज़ी से बढ़ता गया। उसका मन मानो उसके शरीर का अतिक्रमण करके एकाग्र होकर कहीं चला गया था, रास्ते-भर उसे मानो कोई किसी तरह छू ही न सका।

सुचरिता के घर के सामने आकर गोरा मानो एकाएक सचेत होकर ठिठक गया। वह इतनी बार वहाँ आया था, आज तक उसने द्वार कभी बन्द नहीं देखा था, लेकिन आज वह न केवल उढ़का था, बल्कि धक्का देने पर पता लगा कि भीतर से बन्द है। गोरा थोड़ी देर खड़ा सोचता रहा, फिर उसने दो-चार बार दरवाज़ा खटखटाया।

दरवाज़ा खोलकर बैरा बाहर आया। साँझ के धुँधले प्रकाश में गोरा को देखते ही उसने कुछ पूछे जाने से पहले ही बताया कि छोटी मालकिन घर पर नहीं है।

"कहाँ गई हैं ?"

"ललिता दीदी के ब्याह के प्रबन्ध में कुछ दिनों से दूसरे घर में ही हैं।"

क्षण-भर के लिए गोरा ने सोच लिया कि वह विनय के विवाह पर पहुँच जायगा। इसी बीच घर से एक अपरिचित बाबू निकल आए बोले, "क्यों महाशय, क्या चाहते हैं ?"

गोरा ने उसे सिर से पैर तक देखकर कहा, "नहीं, कुछ नहीं चाहता।"

कैलाश ने कहा, "आइये न, ज़रा बैठिए, तम्बाकू पीजिए ?"

कोई संगी न होने से कैलाश का समय नहीं कटता था। चाहे कोई हो, किसी एक व्यक्ति को घर के भीतर लिवाकर गप्प करने बैठ सके तो चैन मिले। दिन में तो हुक्का हाथ में लिये गली के मोड़ पर खड़े-खड़े राह चलते लोगों का आना-जाना देखते-देखते वक्त किसी तरह कट जाता है, लेकिन साँझ को कमरे के भीतर उसका दम घुटने लगता है। हरिमोहिनी के साथ जो कुछ बातचीत करनी थी वह तो सब हो चुकी—हरिमोहिनी की बात करने की शक्ति भी तो बहुत कम थी। इसलिए कैलाश निचली मंज़िल में ड्योढ़ी से लगे एक छोटे कमरे में तख्तपोश पर हुक्का लिये बैठे-बैठे बीच-बीच में बैरा को ही बुलाकर उसी के साथ बातें करके वक्त काटता था।

गोरा ने कहा, "नहीं, मैं अभी नहीं बैठ सकता।"

कैलाश फिर अनुरोध करने जा रहा था, लेकिन पलक मारते-न-मारते गोरा गली के पार निकल गया।

गोरा के मन में एक धारणा गहरी बैठी हुई थी कि उसके जीवन की अधिकांश घटनाएँ आकस्मिक नहीं होती रहीं, या कम-से-कम केवल उसकी व्यक्तिगत इच्छा से नहीं होती रहीं, उन सभी में स्वदेश-विधाता का कोई-न-कोई विशेष अभिप्राय रहा है, जिसे पूरा करने के लिए ही गोरा का जन्म हुआ है। इसीलिए वह अपने जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं में भी कोई विशेष अर्थ खोजने की कोशिश करता रहता था। आज जब उसने अपने मन की इतनी बड़ी और इतनी प्रबल आकांक्षा लिये आकर एकाएक देखा कि सुचरिता का दरवाज़ा बन्द है, और दरवाज़ा खुलवाने पर सुना कि सुचरिता घर पर नहीं है, तब उसने इसे भी एक विशेष अभिप्रायपूर्ण घटना माना। जो उसका मार्ग-निर्देश करते हैं उन्होंने आज अपना निषेध इस ढंग से गोरा को जता दिया है, इस जीवन में सुचरिता का द्वार उसके लिए बन्द है, सुचरिता उसके पक्ष में नहीं है। गोरा-जैसे मनुष्य का अपनी इच्छा में बह जाना उचित नहीं है, उसका अपना कोई सुख-दुःख नहीं है। वह भारतवर्ष का ब्राह्मण है, भारतवर्ष की ओर से उसे देवता की आराधना

करनी होगी, भारतवर्ष की ओर से तपस्या ही उसका काम है, आसक्ति-अनुरक्ति उसके लिए नहीं है। गोरा ने मन-ही-मन कहा, 'विधाता ने आसक्ति का सही रूप मुझे दिखा दिया है, बता दिया है कि वह शुभ्र नहीं है, शान्त नहीं है, वह मद की तरह लाल है, मद की तरह तीव्र है, वह बुद्धि को स्थिर नहीं रहने देता, वह एक चीज़ को दूसरी ही चीज़ करके दिखाता है। मैं संन्यासी हूँ, मेरी साधना में उसका स्थान नहीं है।

७०

बहुत दिन उत्पीड़न सहकर आनन्दमयी के पास बिताये हुए इन कुछ दिनों में सुचरिता को जैसी सान्त्वना मिली वैसी उसने कभी नहीं पाई थी। आनन्दमयी ने ऐसे सहज भाव से उसे इतना समीप खींच लिया कि सुचरिता यह सोच ही नहीं सकी कि वे कभी उससे दूर या अपरिचित थीं। उन्होंने न जाने कैसे सुचरिता के मन को पूरी तरह समझ लिया था और बिना बात किये भी वह सुचरिता को मानो एक गम्भीर सान्त्वना देती रहती थीं। सुचरिता ने आज तक कभी 'माँ' शब्द का इस तरह उसमें अपना पूरा हृदय उँडेलकर उच्चारण नहीं किया था। कोई काम न रहने पर भी वह आनन्दमयी को 'माँ' कहकर पुकारने के लिए ही तरह-तरह के बहाने खोजकर बुलाती रहती थी। ललिता के विवाह के सब कर्म सम्पन्न हो जाने पर थकी हुई बिस्तर पर लेटकर वह बार-बार केवल एक ही बात सोचने लगी, कि अब आनन्दमयी को छोड़कर वह कैसे जा सकेगी। वह अपने-आप ही से कहने लगी, 'माँ-माँ-माँ!' पुकारते-पुकारते उसका हृदय भर उठा और आँखों से आँसू झरने लगे। तभी एकाएक उसने देखा, मसहरी उठाकर आनन्दमयी उसके पास आ गई है और उसे थपथपाती हुई पूछ रही हैं, "मुझे बुलाया था?"

तब सुचरिता को ध्यान आया कि वह 'माँ-माँ' पुकारती रही थी। वह कुछ बोल नहीं सकी, आनन्दमयी की गोद में मुँह छिपाकर रोने लगी। आनन्दमयी भी कुछ बोले बिना धीरे-धीरे उसका बदन सहलाती रहीं। उस रात वे सुचरिता के पास ही सोईं।

विनय का विवाह हो जाने पर आनन्दमयी तत्काल विदा लेकर न जा सकीं। उन्होंने कहा, "ये तो दोनों अनाड़ी हैं— इनकी घर-गृहस्थी सँवारे बिना मैं कैसी चली जाऊँ?"

सुचरिता ने कहा, "माँ, तब उतने दिन मैं भी तुम्हारे पास रहूँगी।"

ललिता ने भी उत्साहित होकर कहा, "हाँ, माँ, कुछ दिन सुचि दीदी भी हमारे साथ रहें।"

यह प्रस्ताव सुनकर सतीश भी दौड़ा आया और सुचरिता के गले से लिपटकर उछलता-उछलता बोला, "हाँ, दीदी, मैं भी तुम लोगों के साथ रहूँगा।"

सुचरिता ने कहा, "तेरी तो पढ़ाई है, बख्त्यार।"

सतीश बोला, विनय बाबू मुझे पढ़ा देंगे।"

सुचरिता ने कहा, "विनय बाबू अब तेरी मास्टरी नहीं कर सकेंगे।"

विनय ने साथ के कमरे से ही पुकारकर कहा, "जरूर करूँगा। एक दिन में ऐसा क्या निकम्मा हो गया हूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता। अनेक रात जागकर लिखना-पढ़ना जितना कुछ सीखा था वह सब एक ही रात में भूल गया हूँगा, ऐसा तो नहीं लगता।"

आनन्दमयी ने सुचरिता से पूछा, "तुम्हारी मौसी क्या राजी होंगी?"

सुचरिता ने कहा, "मैं उन्हें चिट्ठी लिखकर पूछ लेती हूँ।"

आनन्दमयी ने कहा, "तुम मत लिखो, मैं ही लिखती हूँ।'

आनन्दमयी समझती थीं कि सुचरिता खुद वहाँ रहने की इच्छा प्रकट करेगी तो हरिमोहिनी को बुरा लगेगा। लेकिन उनके आग्रह पर हरिमोहिनी अगर नाराज भी होंगी तो उन्हीं पर होंगी—उसमें सुचरिता की कोई क्षति नहीं होगी।

आनन्दमयी ने चिट्ठी में यही लिखा था कि ललिता की नई गृहस्थी ठीक-ठाक कर देने के लिए उन्हें कुछ दिन और विनय के घर रहना होगा, उतने दिन सुचरिता को भी उनके साथ रहने की अनुमति मिल जाय तो बहुत सहायता हो जायगी।

आनन्दमयी का पत्र पाकर हरिमोहिनी केवल क्रुद्ध ही नहीं हुई बल्कि, उनके मन में एक विशेष सन्देह भी उत्पन्न हुआ। उन्होंने लड़के को घर आने से रोक दिया है, इसलिए अब माँ सुचरिता को फँसाने के लिए चालाकी से जाल फैला रही है। इसमें माँ-बेटे की साज़िश है, यह उन्होंने स्पष्ट देख लिया। अब उन्हें यह भी याद आया कि आरम्भ में ही आनन्दमयी के रंग-ढंग देखकर वह उन्हें अच्छी नहीं लगी थी।

और देर न करके जितनी जल्दी सम्भव हो सके सुचरिता को सुविख्यात राय-परिवार में शामिल करके उसकी सुरक्षा की व्यवस्था कर देने से ही हरिमोहिनी चैन पा सकेंगी। कैलाश को भी यों कितने दिन रोके रखा जा सकता है? वह बेचारा दिन-रात तम्बाकू पी-पीकर घर की दीवारें काली किये दे रहा था।

जिस दिन हरिमोहिनी को चिट्ठी मिली, उसके अगले दिन सवेरे ही वह पालकी पर सवार होकर और बैरे को साथ लेकर विनय के घर जा पहुँची। उस समय निचले कमरे में सुचरिता, ललिता और आनन्दमयी रसोई की तैयारी में लगी हुई थीं और ऊपर के कमरे से सतीश के अंग्रेजी शब्दों की वर्तनी और उनके बंगला पर्याय रटने का तीखा स्वर आकर सारे घर को गुंजा रहा था। घर पर उसके गले की ताकत का सही अनुमान न होता था—लेकिन यहाँ इस बात का पक्का सबूत देते रहने के लिए, कि वह अपनी पढ़ाई की अवहेलना बिलकुल नहीं करता, उसे अपने स्वर को और ऊंचा उठाने के लिए जोर लगाना पड़ता था।

आनन्दमयी ने हरिमोहिनी को बड़ी खातिर से बैठाया। लेकिन उस सब शिष्टाचार की ओर ध्यान न देकर उन्होंने एकाएक कहा, "मैं राधारानी को लेने आई हूँ।"

आनन्दमयी ने कहा, "तो ठीक है, ले जाना, जरा बैठो तो!"

हरिमोहिनी ने कहा, "नहीं, मेरी पूजा-अर्चना सब अभी यों ही पड़ी है, अभी प्रार्थना भी नहीं हुई, मैं अभी तो बिलकुल नहीं बैठ सकती।"

सुचरिता कुछ बातचीत किये बिना लौकी छीलने में लगी थी। हरिमोहिनी ने उसीको सम्बोधित करके कहा, "सुनती हो? देर हो रही है!

ललिता और आनन्दमयी चुप बैठी रहीं। सुचरिता काम छोड़कर उठ खड़ी हुई और बोली, "चलो, मौसी!"

हरिमोहिनी के पालकी की ओर मुड़ चलने पर सुचरिता ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "जरा इस कमरे में आओ!"

दूसरे कमरे में पहुँचकर सुचरिता ने दृढ़ स्वर से कहा "तुम मुझे लेने ही आई हो तो मैं सबके सामने तुम्हे यों ही नहीं लौटा सकती, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ, लेकिन आज ही दोपहर को मैं फिर यहाँ लौट आऊँगी।"

हरिमोहिनी ने बिगड़कर कहा, "यह कैसी बात है? तो फिर यही क्यों नहीं कहतीं कि हमेशा यहीं रहोगी!"

सुचरिता ने कहा, "हमेशा रहना तो नहीं मिलेगा। इसीलिए जितने दिन उनके पास रह सकती हूँ उन्हें नहीं छोड़ूंगी।"

इस बात से हरिमोहिनी का जी जल गया, लेकिन यह सोचकर कि अभी कुछ कहने का मौका नहीं है, वह चुप रहीं।

सुचरिता ने आनन्दमयी के पास आकर मुस्कराकर कहा, "माँ, तो मैं जरा घर हो आऊँ?"

आनन्दमयी ने कोई प्रश्न किये बिना कहा, "ठीक है, हो आओ।"

सुचरिता ने ललिता के कान में धीरे से कहा, "आज दोपहर को ही फिर आ जाऊँगी।"

पालकी के सामने रुककर सुचरिता ने कहा, "और सतीश?"

हरिमोहिनी बोलीं, "सतीश को रहने दो।"

'घर लौटकर सतीश विघ्न बन सकता है,' यह सोचकर हरिमोहिनी ने उसके दूर रहने को ही सुयोग माना।

दोनों के पालकी पर सवार हो जाने पर हरिमोहिनी ने भूमिका बाँधने की कोशिश की। बोलीं, "ललिता का तो ब्याह हो गया। चलो, अच्छा हुआ एक लड़की की ओर से तो परेश बाबू निश्चिन्त हुए।"

यों आरम्भ करके उन्होंने बताना शुरू किया कि घर में अविवाहित लड़की का होना कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी है और उसके कारण अभिभावकों को कितनी चिंता रहती है!

"तुम्हें क्या बताऊँ, मुझे और कोई सोच नहीं है। भगवान् का नाम लेते-लेते भी यही चिन्ता बीच में आ जाती है। सच कहती हूँ, ठाकुर की सेवा में मैं पहले की तरह मन लगा ही नहीं पाती। मैं कहती हूँ, गोपीवल्लभ, सब छीन लेने के बाद अब फिर तूने मुझे किस नये जाल में फँसा दिया।"

यह समस्या हरिमोहिनी के लिए केवल सांसारिक चिन्ता की नहीं थी, यह उनके मुक्ति के मार्ग में भी बाधा बन रही थी। उनके इतने बड़े संकट की बात सुनकर भी सुचरिता चुप ही रही, इससे उनके मन की प्रवृत्ति हरिमोहिनी ठीक-ठीक समझ नहीं सकीं। लेकिन यह जो कहा जाता है कि मौन सम्मति का लक्षण है, इसी कहावत का अपने अनुकूल अर्थ लगाकर उन्होंने सोच लिया कि सुचरिता कुछ-कुछ मान रही है।

हरिमोहिनी ने कुछ ऐसा आभास दिया कि उन्होंने सुचरिता-जैसी लड़की के हिन्दू-समाज में प्रवेश कराने के अत्यन्त कठिन व्यापार को आसान बना लिया है, अचानक एक ऐसा सुयोग आ गया है कि बड़े-बड़े कुलीन ब्राह्मणों के घर के न्यौते में उसके पंक्ति में बैठने पर भी कोई चूँ तक न कर सकेगा।

भूमिका के यहाँ पहुँचते-पहुँचते पालकी घर पर आ पहुँची। दोनों के द्वार पर उतरकर घर में प्रवेश करके ऊपर जाते समय सुचरिता ने देख लिया कि ड्योढ़ी के साथ वाले कमरे में कोई अपरिचित आदमी बैरे से बड़े ज़ोर-शोर के साथ तेल मालिश करवा रहा है। उन्हें देखकर भी वह झिझका नहीं, बल्कि विशेष कौतूहल के साथ सुचरिता की ओर ताकने लगा।

ऊपर जाकर हरिमोहिनी ने सुचरिता को अपने देवर के आने का सम्वाद दिया। इससे पहले जो भूमिका बाँधी गई थी, उसके साथ मिलाकर सुचरिता ने इस घटना का अर्थ ठीक-ठीक समझ लिया। हरिमोहिनी उसे समझाने लगीं कि घर में पाहुने हैं, ऐसी अवस्था में उन्हें छोड़कर सुचरिता का दोपहर को ही चले जाना भद्रता न होगी।

सुचरिता ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा, "नहीं मौसी, मुझे जाना ही होगा।"

हरिमोहिनी ने कहा, "तो ठीक है—आज के दिन रह जाओ, कल चली जाना!"

सुचरिता बोली, "मैं अभी स्नान करके ही बाबा क यहाँ खाने जाऊँगी, और वहीं से ललिता के घर चली जाऊँगी।"

तब हरिमोहिनी ने स्पष्ट करके ही कहा, "वह तुम्हीं को देखने तो आया है।"

सुचरिता ने लाल होते हुए कहा, "मुझे देखकर क्या होगा?"

हरिमोहिनी बोलीं, "ज़रा सुनो! आजकल के ज़माने में क्या बिना देखे ये सब काम हो सकते हैं! उस जमाने में ता हो भी जाते थे। तुम्हारे मौसा ने तो मुझे 'शुभ-दृष्टि' से पहले देखा ही नहीं था।" इतना स्पष्ट इशारा कर देने के बाद हरिमोहिनी ने एक साथ और भी कई बातें कह डालीं। विवाह से पहले लड़की को देखने के लिए कैसे प्रसिद्ध राय-परिवार से अनाथ बन्धु नाम का उनका खान-दानी नौकर और ठाकुरदासी नाम की बुढ़िया कहारिन, ये दोनों अपने साथ पगड़ी पहने और लाठी लिये दरबान को लेकर हरिमोहिनी के पीहर आये थे, और उस समय अभिभावक कैसे चिन्तित हो उठे थे, और राय-वंश के इन नौकरों को खिला-पिलाकर और खातिर से प्रसन्न करने के लिए घर-भर के लोग कैसे व्यस्त हो उठे थे—यह सब बखान करके हरिमोहिनी ने लम्बी साँस ली। अब सब-कुछ कितना बदल गया है!

हरिमोहिनी ने कहा, "विशेष कोई झंझट नहीं है, एक बार पाँच मिनट-भर के लिए मिल लेना!"

सुचरिता ने कहा, "नहीं।"

यह 'नहीं' इतना स्पष्ट और प्रबल था कि हरिमोहिनी सहम गईं। फिर बोलीं, "अच्छा खैर, न सही। देखने की कोई जरूरत तो नहीं है। यों कैलाश आजकल का लड़का है, पढ़ा-लिखा है, तुम लोगों की तरह ही वह भी कुछ नहीं मानता, कहता है 'पात्री को अपनी आँखों देखूँगा'। तो तुम तो सबके सामने आती-जाती हो

इसलिए मैंने कह दिया, 'देखेगा तो कौन बड़ी बात है, एक दिन दिखा दूंगी।' लेकिन खैर, तुम्हें शरम आती है तो न सही।"

इतना कहकर हरिमोहिनी पूरे विस्तार के साथ बताने लगीं कि कैलाश कैसा अद्भुत पढ़ा-लिखा है, कैसे उसने कलम के एक ही झटके से गांव के पोस्टमास्टर को मुश्किल में डाल दिया था—आस-पास के गांवों में जिस किसी को मुक़दमा लड़ना होता है या दरख्वास्त लिखानी होती है वह कैलाश की सलाह के बिना एक क़दम भी नहीं रख सकता। और कैलाश के स्वभाव और चरित्र की तो बात करना ही अनावश्यक है—स्त्री की मृत्यु के बाद वह तो विवाह करना ही नहीं चाहता था, सगे-सम्बन्धियों ने मिलकर बहुत अधिक ज़ोर डाला तो केवल बड़ों का आदेश पालन करने के लिए राज़ी हुआ और इस प्रस्ताव के लिए उसे मनाने के लिए हरिमोहिनी को क्या कम परिश्रम करना पड़ा! वह तो सुनना ही नहीं चाहता था। उसका इतना बड़ा खानदान है और समाज में उसका इतना मान है।

उस मान को कम करने के लिए सुचरिता तैयार नहीं हुई। अपने गौरव और स्वार्थ की ओर उसने बिलकुल ध्यान नहीं दिया। उसके रवैये से तो ऐसा जान पड़ा कि उसे हिन्दू-समाज में स्थान न भी मिला तो भी उसे कोई तकलीफ़ न होगी। इतनी मुश्किल के बाद कैलाश को विवाह के लिए राज़ी किया जा सका है, सुचरिता के लिए यह कितने बड़े गौरव की बात है, इसे वह मूढ़ समझ ही नहीं सकी, उलटे इसमें उसने अपना अपमान समझा! आजकल के इस ज़माने के उलटे चलन से हरिमोहिनी का मन खट्टा हो गया। तब अपना गुस्सा निकालने के लिए वह बार-बार गोरा को इंगित करके ताने देने लगीं, "गोरा अपने को हिन्दू कहकर चाहे बड़ाई करे, समाज में उसका क्या स्थान है—उसे कौन पूछता है? वह यदि लालच में पड़कर ब्राह्म-परिवार की किसी पैसे वाली लड़की से विवाह करेगा तो समाज के कोप से उसे कौन बचा सकेगा? तब दसियों लोगों का मुंह बन्द करने में ही सब रुपया फुक जायगा।..."

सुचरिता ने कहा मौसी, ये सब बातें तुम क्यों कह रही हो? तुम जानती हो कि इन सबका कोई आधार नहीं है।"

इस पर हरिमोहिनी ने कहा, "कि इस उम्र में उन्हें बातों में भुलाना किसी के लिए सम्भव नहीं है। वह आंख-कान खोलकर रहती हैं, सब-कुछ देखती-सुनती-समझती हैं। चुप रहती हैं तो केवल अचरज से। उन्होंने यह भी कहा कि उनका पक्का विश्वास है, गोरा अपनी मां से सलाह करके ही सुचरिता से विवाह करने की कोशिश कर रहा है, और उस विवाह का असली उद्देश्य भी कुछ बहुत शुद्ध

नहीं है, हरिमोहिनी राय-परिवार के सहयोग से सुचरिता की रक्षा न कर सकीं तो कल को वही सब होने वाला है।

सुचरिता सब सहती आई थी, अब और वह न सह सकी। बोली, "तुम जिनकी बात कह रही हो उन पर मेरी श्रद्धा है। उनके साथ मेरा जो सम्बन्ध है उसे जब तुम किसी तरह सही रूप में समझ ही नहीं सकतीं तब मेरे पास दूसरा रास्ता नहीं है, सिवा इसके कि मैं यहाँ से चली जाऊँ···तुम सब शान्त हो जाओगी और घर में तुम्हारे साथ अकेली रह सकूँगी तभी मैं लौटूँगी।"

हरिमोहिनी बोलीं, "तेरा मन अगर गौरमोहन की तरफ़ नहीं है, और उसके साथ तेरा ब्याह न होने की ही बात है, तब इस पात्र ने तेरा क्या बिगाड़ा है? तू हमेशा क्वारी तो नहीं रहेगी!"

सुचरिता ने कहा, "क्यों नहीं रहूँगी? मैं विवाह नहीं करूँगी।"

हरिमोहिनी ने आँखें फाड़कर कहा, "क्या बूढ़ी उम्र तक ऐसे ही···?"

सुचरिता ने कहा, "हाँ, मरने तक!"

७१

चोट खाकर गोरा के मन में एक परिवर्तन आ गया। सुचरिता कैसे उसके मन पर यों छा गई थी, उसके कारण का विचार करके गोरा ने यही ठीक किया कि वह उन लोगों से ज्यादा मिलता-जुलता रहा था, जिससे अपने अनजाने ही कहीं उसने अपने को उनके साथ उलझा लिया था। अहंकार से भरकर वह निषेध की सीमा को उलाँघ गया था। हमारे देश की यह पद्धति नहीं है। हर कोई अपनी मर्यादा की रक्षा स्वयं न करता रहे तो वह न केवल जाने-अनजाने अपना अनिष्ट कर बैठता है, बल्कि दूसरे का हित करने की अपनी शक्ति भी खो बैठता है। हिल-मिल जाने से कई प्रवृत्तियाँ प्रबल हो उठती हैं और ज्ञान को, निष्ठा को और शक्ति को धुंधला कर देती हैं।

इस सत्य को गोरा ने केवल ब्राह्म-परिवार की लड़कियों से मिल-जुलकर ही पहचाना हो, यह बात नहीं थी। साधारण लोगों से मिलने जाकर भी उसने अपने को एक भँवर मे फँसा दिया था और लगभग अपने को खो दिया था। क्योंकि पग-पग पर उसके मन में दया उपजती थी, इस दया के वश वह केवल यही सोचता रहता था कि यह बुरा है, यह अन्याय है, इसे दूर कर देना चाहिए, लेकिन यह दया-

वृत्ति ही अच्छे-बुरे की ठीक-ठीक पहचान करने की क्षमता को भी तो विकृत कर देती है। दया करने की झोंक में आकर हम सत्य को निर्विकार भाव से देखने की शक्ति खो बैठते हैं। करुणा के धूएँ से काले पड़कर हल्के रंग भी हमें गहरे दीखने लगते हैं।

गोरा ने सोचा, इसीलिए हमारे देश में यह विधि चली आई है कि जिन पर समग्र के हित का भार है उन्हें निर्लिप्त ही रहना चाहिए। यह बात बिलकुल ग़लत है कि राजा के लिए प्रजा-पालन करना तभी सम्भव है जब राजा प्रजा के साथ घनिष्ठ भाव से घुल-मिल जाय। प्रजा के बारे में राजा को जैसे ज्ञान की जरूरत होती है, बहुत मेल-जोल से वह कलुषित हो जाता है। इसीलिए तो प्रजा-जन अपने आप ही अपने राजा को एक दूरी मे मढकर रखते हैं। राजा के उनका सहचर हो जाते ही फिर राजा की कोई ज़रूरत ही नहीं रहती।

ब्राह्मण को भी वैसे ही दूर और निर्लिप्त रहना चाहिए। ब्राह्मण को भी बहुतों का मंगल साधना है, इसीलिए वह भी समूह के संसर्ग से वंचित है।

गोरा ने कहा, 'मैं भारतवर्ष का वही ब्राह्मण हूँ।' दस आदमियों से घिरकर, व्यवसाय के कीच में लथ-पथ होकर, धन के लोभ में पड़कर जो ब्राह्मण गले में शूद्रता का फन्दा डालकर अपने ही आप फाँसी चढ़ जाता है, उसे गोरा ने शूद्र से भी अधम जाना, बल्कि उसे जीवित मानने से भी इन्कार किया। जो शूद्र है वह अपनी शूद्रता के सहारे ही जीता है, लेकिन ऐसा ब्राह्मण तो ब्राह्मणत्व के अभाव के कारण मुर्दा है, और इसलिए अपवित्र है। ऐसों ही के कारण आज भारतवर्ष इस दीन भाव से ऐसी अशुभ अवस्था से गुज़र रहा है।

गोरा ने अपने मन को इसके लिए कड़ा किया कि वह अपने भीतर ही ब्राह्मण के इस संजीवन-मन्त्र की साधना करेगा। उसने मन-ही-मन कहा, 'मुझे सर्वथा पवित्र होना होगा। मैं उस तल पर नहीं खड़ा हूँ जिस पर सब साधारण लोग खड़े हैं। मेरे लिए बन्धुत्व आवश्यक सामग्री नही है। जिन लोगों के लिए नारी का साथ एकान्त आवश्यक होता है, उन साधारण लोगों की श्रेणी का मैं नहीं हूँ, और देश के साधारण इतर लोगों का घनिष्ठ सहवास मेरे लिए सम्पूर्ण वर्जित है। जैसे पृथ्वी वर्षा के लिए सुदूर आकाश की ओर ताकती रहती है, वैसे ही इन सबकी आँखें ब्राह्मण की ओर लगी रहती हैं। मैं भी इन्ही में आ मिलूँगा तो इन्हें बचायगा कौन ?'

अब तक गोरा ने कभी देव-पूजा की ओर ध्यान नहीं दिया था। लेकिन जब से उसका हृदय क्षुब्ध हो उठा था तब से वह अपने को किसी तरह रोक नहीं पा रहा था, अपना काम उसे सूना जान पड़ता था और जीवन ही मानो अधूरा होकर

तड़प रहा था। इसीलिए गोरा पूजा में मन लगाने की चेष्टा करने लगा था। प्रतिमा के सम्मुख स्थिर बैठकर गोरा अपने मन को पूरी तरह मूर्ति में निविष्ट करने की कोशिश करता, लेकिन किसी उपाय से भी अपने भीतर भक्ति को न जगा पाता। वह बुद्धि के द्वारा देवता की व्याख्या करना चाहता था। रूपक का आश्रय लिये बिना उसे किसी तरह ग्रहण न कर पाता था। किन्तु रूपक को हृदय की भक्ति नहीं दी जा सकती, आध्यात्मिक व्याख्या की पूजा नहीं की जाती। बल्कि गोरा जब मन्दिर में बैठकर पूजा करने की चेष्टा को छोड़कर कमरे में बैठकर मन-ही-मन अथवा किसी से बहस करते समय अपने मन और वचन को भावों की धारा में बह जाने देता, तभी उसके भीतर एक आनन्द और भक्ति के रस का संचार होता। फिर भी गोरा ने पूजा छोड़ी नहीं, वह यथा-नियम प्रतिदिन पूजा पर बैठता रहा और इसे उसने नियम ही मान लिया। मन को उसने यह कहकर समझाया कि जहाँ भाव के सूत्र द्वारा सबसे मिलने की शक्ति न हो, वहाँ नियम का सूत्र ही मेल बनाये रखता है। गोरा जब-जब किसी गाँव में जाता वहाँ के देव-मन्दिर में प्रवेश करके गम्भीर भाव से ध्यान करता हुआ मन-ही-मन कहता, 'यहीं मेरा विशेष स्थान है—एक ओर देवता और दूसरी ओर भक्त, दोनों के बीच सेतु-रूप ब्राह्मण दोनों को मिलाता है।' धीरे-धीरे गोरा को लगने लगा कि ब्राह्मण के लिए भक्ति आवश्यक नहीं है। भक्ति जन-साधारण की ही विशेष चीज़ है। भक्त और भक्ति के विषय के बीच में जो सेतु है वह ज्ञान का ही सेतु है। यह सेतु जैसे दोनों को मिलाता है वैसे ही दोनों की मर्यादा भी निर्दिष्ट कर देता है। भक्त और देवता के बीच विशुद्ध ज्ञान का व्यवधान न रहे तो सभी कुछ विकृत हो जाय। इसीलिए भक्ति-विफलता ब्राह्मण के उपयोग की चीज़ नहीं है, ब्राह्मण-ज्ञान के शिखर पर बैठकर इस भक्ति के रस को सर्वसाधारण के उपभोग के लिए, शुद्ध रखने के लिए तपस्या करता है। जैसे संसार में ब्राह्मण के लिए आराम का योग नहीं है, वैसे ही देवार्चना में भी ब्राह्मण के लिए भक्ति का योग नहीं है। इसीमें ब्राह्मण का गौरव है। संसार में ब्राह्मण के लिए नियम-संयम है, धर्म-साधना में ब्राह्मण के लिए ज्ञान है।

हृदय ने गोरा को हार दी थी, इस अपराध के लिए गोरा ने हृदय के लिए निर्वासन-दण्ड का विधान किया। लेकिन अपराधी को निर्वासन में ले कौन जायगा ? वैसा सैन्य कहाँ है ?

७२

गंगा के किनारे बगीचे में प्रायश्चित्त-सभा का आयोजन होने लगा।

अविनाश के मन में इस बात का खेद था कि इस अनुष्ठान के कलकत्ता से बाहर होने के कारण इसकी ओर लोगों का ध्यान उतना नहीं आयगा जितना आना चाहिए। अविनाश जानता था कि गोरा को अपने लिए प्रायश्चित्त करने की कोई जरूरत नहीं है, जरूरत देश के लोगों के लिए है— 'मॉरल इफ़ैक्ट' के लिए ! इसीलिए यह काम भीड़ में ही होना चाहिए था।

लेकिन उसके लिए गोरा राजी नहीं हुआ। वह जैसे बड़ा यज्ञ करके वेद-मंत्रों के पाठ के साथ यह काम करना चाहता था, वैसे काम के लिए कलकत्ता शहर ठीक जगह नहीं थी—उसके लिए तो तपोवन ही उपयुक्त होता। मन्त्र-मुखरित, होमाग्नि-दीप्त एकान्त गंगा-तीर पर गोरा उस प्राचीन भारतवर्ष का आह्वान करेगा जो सारे जगत् का गुरु रहा है, और स्नान करके पवित्र होकर उसी गुरु से नवजीवन की दीक्षा लेगा। 'मॉरल इफ़ैक्ट' की चिन्ता गोरा को नहीं थी। और कोई उपाय न देखकर अविनाश ने समाचार-पत्रों का आश्रय लिया। गोरा को बताये बिना ही उसने उस प्रायश्चित्त का समाचार सब अखबारों में भेज दिया। इतना ही नहीं, उसने सम्पादकीय स्तम्भों के लिए एक पूरा प्रबन्ध भी लिख भेजा, जिसमें उसने इस बात पर जोर दिया कि गोरा-जैसे पवित्र तेजस्वी ब्राह्मण को तो कोई दोष छू ही नहीं सकता, फिर भी वह आजकल के पतित भारतवर्ष का सारा पातक अपने कन्धों पर लेकर सारे देश की ओर से प्रायश्चित्त कर रहा है। अविनाश ने लिखा, 'जैसे हमारा देश अपने-अपने दुष्कर्मों के फल से विदेशियों के बन्दीगृह में दुःख भोग रहा है, वैसे ही गोरा ने भी अपने जीवन में स्वेच्छा से कारावास-दुःख स्वीकार किया। इस प्रकार जैसे उसने देश का दुःख अपने कन्धों पर ओट लिया, वैसे ही देश के अनाचार का प्रायश्चित्त भी वह स्वयं कर रहा है। इसलिए हे बंगाली भाइयो, भारत की पच्चीस करोड़ दुखी सन्तानों···' इत्यादि, इत्यादि।

ये सब लेख पढ़कर गोरा झल्ला उठा। लेकिन अविनाश को रोकना मुश्किल था। गोरा के उसे फटकारने पर भी वह टलता नहीं था, बल्कि और खुश होता था। मेरे गुरु भावों की बहुत ऊँची दुनिया में रहते है। इस मामूली दुनिया की बातें वह नहीं समझते। वह बैकुण्ठ-वासी नारद की तरह वीणा बजाकर विष्णु को पिघलाकर गंगा की सृष्टि करा रहे हैं, लेकिन उस गंगा को धरती पर लाकर

सगर-सन्तान की भस्म का उद्धार करने का काम इस दुनिया के भगीरथ का है—वह काम देवलोक के वासियों का नहीं है। ये दोनों काम बिलकुल अलग-अलग हैं। इसलिए अविनाश की हरकतों पर गोरा जब आग-बबूला हो उठता तब अविनाश मन-ही-मन हँसता, गोरा के प्रति उसकी भक्ति और बढ़ जाती। वह मन-ही-मन कहता, 'जैसे हमारे गुरु का चेहरा बिलकुल शिवजी-जैसा है, वैसे ही मन से भी वह निरे भोलानाथ हैं। न कुछ समझते है, न कुछ व्यवहार का ज्ञान रखते हैं, बात-बात में गुस्से से भड़क उठते हैं, पर फिर ठण्डे होते भी देर नहीं लगती।'

अविनाश की कोशिशों के कारण गोरा के प्रायश्चित की बात को लेकर चारों ओर एक बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। गोरा के घर पर उसे देखने और उससे बातचीत करने आने वाली जनता और भी बढ़ गई। रोज चारों ओर से इतनी चिट्ठियाँ भी आने लगीं कि गोरा ने डाक देखना ही छोड़ दिया। गोरा को जान पड़ने लगा कि इस देश-व्यापी चर्चा के कारण उसके प्रायश्चित्त की सात्विकता नष्ट हो गई है और वह एक राजसिक व्यापार हो गया है—काल की प्रवृत्ति ही ऐसी है।

कृष्णदयाल इधर अखबार छूते भी नहीं थे, लेकिन यह चर्चा उनके साधनाश्रम में भी पहुँच गई। उनका बेटा गोरा उनके योग्य ही है जो इतनी धूम-धाम से प्रायश्चित्त कर रहा है और अपने पिता के पवित्र पद-चिह्नों का अनुसरण करता हुआ वह भी एक दिन उन्हींकी तरह सिद्ध पुरुष बन जायगा। कृष्णदयाल के प्रसाद-जीवियों ने यह समाचार और यह आशा बड़े गौरव के साथ कृष्णदयाल तक पहुँचा दी।

कृष्णदयाल ने गोरा के कमरे में कब से पदार्पण नहीं किया था, यह कहना कठिन था। लेकिन आज वह अपने रेशमी कपड़े उतारकर सूती कपड़े पहने एका-एक उसके कमरे में जा पहुँचे। गोरा वहाँ नहीं दीखा तो उन्होंने नौकर से पूछा। नौकर ने बताया कि गोरा पूजा-घर में है।

"एँ! पूजा-घर में उसका क्या काम है?"

"वह पूजा करते हैं।"

कृष्णदयाल हड़बड़ाए हुए-से पूजा-घर में गये तो देखा, सचमुच गोरा पूजा में बैठा है।

कृष्णदयाल ने बाहर से ही पुकारा: "गोरा!"

गोरा पिता के आने से आश्चर्य-चकित होकर उठ खड़ा हुआ। कृष्णदयाल ने अपने साधनाश्रम में विशेष रूप से अपने इष्टदेवता की प्रतिष्ठा कर ली थी।

उनका परिवार वैष्णव था, किन्तु उन्होंने शक्ति-मन्त्र ले लिया था, इसलिए गृह-देवता के साथ उनका प्रत्यक्ष योग बहुत दिनों से नहीं था।

उन्होंने गोरा से कहा, "आओ-आओ, बाहर आओ!"

गोरा बाहर चला आया। कृष्णदयाल बोले, "यह सब क्या है! यहाँ तुम्हारा क्या काम है?"

गोरा ने कोई उत्तर न दिया। कृष्णदयाल बोले, "पुजारी ब्राह्मण तो है, वह तो रोज़ पूजा कर जाता है, उसी से घर के सब लोगों की ओर से पूजा हो जाती है—तुम क्यों इसमें पड़ते हो?"

गोरा ने कहा, "इसमें क्या बुराई है?"

कृष्णदयाल बोले, "बुराई! तुम क्या जानो! बहुत भारी बुराई है। जिसका जहाँ अधिकार नहीं है, उस काम में वह क्यों पड़े? उससे तो अपराध होता है। केवल तुम्हारा नहीं, घर-भर के लोगों का।"

गोरा ने कहा, "आन्तरिक भक्ति की दृष्टि से देखें तब तो देवता के सामने बैठने का अधिकार बहुत थोड़े लोगों का होगा। लेकिन आप क्या कहना चाहते हैं कि हमारे उन रामहरि ठाकुर का यहाँ पूजा करने का जितना अधिकार है, मेरा उतना भी अधिकार नहीं है?"

गोरा को क्या जवाब दें, कृष्णदयाल तत्काल न सोच सके। थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "देखो, राम हरि का तो धन्धा ही पूजा करना है। धन्धे में जो अपराध होता है उसकी ओर देवता ध्यान नहीं देते। वहाँ भूलें पकड़ने लगें तब तो धन्धा बन्द ही कर देना होगा—फिर समाज का काम नहीं चल सकता। लेकिन तुम तो यह दलील नहीं दे सकते। तुम्हारे यहाँ आने की क्या जरूरत है?"

गोरा-जैसे आचार-निष्ठ ब्राह्मण के भी पूजा-गृह में प्रवेश करने से अपराध होता है, कृष्णदयाल जैसे व्यक्ति के मुँह से यह बात नितान्त असंगत तो नहीं लगी। इसलिए गोरा कुछ बोला नहीं, बात को पी गया।

तब कृष्णदयाल ने कहा, "और भी एक बात सुनी है, गोरा! सुनता हूँ तुमने प्रायश्चित्त करने के लिए पण्डितों को बुलाया है?"

गोरा ने कहा, "हाँ।"

कृष्णदयाल ने एकाएक अत्यन्त उत्तेजित होकर कहा, "मेरे रहते यह किसी तरह नहीं हो सकता।"

गोरा के मन में विद्रोह उमड़ने लगा। वह बोला, "क्यों?"

कृष्णदयाल ने कहा, "क्यों क्या? मैंने तुम्हें पहले भी एक दिन कहा था कि तुम प्रायश्चित्त नहीं कर सकते।"

गोरा ने कहा, "कहा तो था। लेकिन कोई कारण तो नहीं बताया।"

कृष्णदयाल बोले, "कारण बताने की मैं कोई जरूरत नहीं समझता। हम तुम्हारे बड़े हैं, हमारी बात तुम्हें मान्य होनी चाहिए। हम लोगों की अनुमति के बाहर ये सब शास्त्रीय कर्म करने का कोई विधान ही नहीं है। प्रायश्चित्त में पितरों का श्राद्ध करना होता है यह जानते हो ?"

गोरा ने विस्मित होकर कहा, "तो उसमें कठिनाई क्या है ?"

कृष्णदयाल ने बिगड़कर कहा, "बिलकुल कठिनाई है। वह मैं कभी नहीं होने दे सकूँगा।"

गोरा ने चोट खाकर कहा, "देखिए, यह मेरा निजी मामला है। मैंने अपनी शुचिता के लिए ही यह आयोजन किया है—इसे लेकर व्यर्थ बहस करके आप क्यों कष्ट पाते है ?"

कृष्णदयाल ने कहा, "देखो गोरा, तुम हर बात में बहस मत किया करो। ये सब बातें बहस की नहीं हैं। ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो अभी तुम्हारी समझ में नहीं आ सकतीं। मैं तुम्हें फिर कहता हूँ—तुम जो समझते हो कि तुमने हिंदू धर्म में प्रवेश पा लिया है, यह तुम्हारी सरासर भूल है। वह तुम्हारे बस का ही नहीं है। तुम्हारे रक्त की हर बूंद, तुम्हारा सिर से पैर तक उसके प्रतिकूल है। हिंदू एकाएक नहीं हुआ जा सकता, उसके लिए जन्म-जन्मांतर का पुण्य चाहिए।"

गोरा का मुंह लाल हो उठा। वह बोला, "जन्मांतर की बात मैं नहीं जानता, लेकिन आपके वंश के रक्त से जो अधिकार मुझे मिलता है, क्या मैं उसका भी दावा नहीं कर सकता ?"

कृष्णदयाल ने कहा, "फिर बहस ? मेरे सामने मेरी बात का खंडन करते तुम्हें संकोच नहीं होता ? इसीको हिंदू कहते हैं ? आखिर विलायती झार जायेगी कहाँ ! मैं जो कहता हूँ, सुनो। यह सब बन्द कर दो !"

गोरा सिर झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद बोला, "अगर मैं प्रायश्चित्त न करूँ तो फिर शशिमुखी के विवाह में सबके साथ पंगत में बैठकर खा भी न सकूँगा।"

कृष्णदयाल ने सहारा पाकर कहा, "तो ठीक है—उसमें भी क्या बुराई है ? तुम्हारे लिए अलग ही आसन लगा दिया जायगा।"

गोरा ने कहा, "तब फिर मुझे समाज से भी अलग होकर ही रहना होगा।"

कृष्णदयाल ने कहा, "वह तो अच्छा ही है।"

उनके इस उत्साह पर गोरा को विस्मित होते देखकर उन्होंने फिर कहा, "अब यही देखो न, मैं ही किसी के साथ नहीं खाता, न्योता होने पर भी नहीं। समाज

के साथ मेरा ही क्या योग है भला ! तुम जैसे सात्त्विक भाव से जीवन बिताना चाहते हो उसके लिए तो तुम्हें भी ऐसा ही रास्ता अपनाना चाहिए। मैं तो समझता हूँ, इसीमें तुम्हारा कल्याण है !"

दोपहर में कृष्णदयाल ने अविनाश को बुलवा भेजा। उससे बोले, "तुम्हीं सब लोग मिलकर गोरा को ऐसा नाच नचा रहे हो।"

अविनाश ने कहा, "यह आप क्या कह रहे हैं ? आपका गोरा तो हम सब को नचाता है। बल्कि वह खुद ही बहुत कम नाचता है।"

कृष्णदयाल बोले, "लेकिन बाबा, मैं कहता हूँ, तुम लोगों का यह सब प्रायश्चित्त-प्रायश्चित्त नहीं हो सकेगा। मेरी उसमें बिलकुल राय नहीं है। वह सब फौरन बन्द कर दो !"

अविनाश ने सोचा, 'बूढ़े की यह कैसी ज़िद है !' लेकिन इतिहास में इसके दृष्टांत ढेरों मिल जायँगे कि बड़े-बड़े आदमियों के बाप स्वयं अपने लड़के का महत्त्व नहीं पहचान सके। कृष्णदयाल भी ऐसे ही बाप हैं। ऐसे ही दिन-रात ढोंगी-संन्यासियों के साथ न रहकर कृष्णदयाल अगर अपने लड़के से ही शिक्षा ग्रहण कर सकते तो उनके लिए कहीं अच्छा होता।

लेकिन अविनाश चतुर व्यक्ति था। जहाँ बहस-मुबाहसे का कोई नतीजा न हो, और 'मॉरल इफ़ैक्ट' की सम्भावना भी कम ही हो, वहाँ फ़िज़ूल का ज़बानी जमा-खर्च करने वाला वह नहीं था। इसलिए उसने कहा, "तो ठीक है महाशय, आपकी राय नहीं है तो नहीं होगा। लेकिन सारा आयोजन तो हो चुका है, निमंत्रण पत्र भी जा चुके हैं, इधर और देर भी नहीं है, इसलिए न हो तो यही उपाय किया जाय कि गोरा न जाय, उस दिन हम लोग ही प्रायश्चित्त कर लें, देश के लोगों में पाप की तो कोई कमी नहीं है !"

अविनाश के इस आश्वासन से कृष्णदयाल निश्चिन्त हो गए।

•

कृष्णदयाल की किसी भी बात पर गोरा की कभी विशेष श्रद्धा नहीं हुई। आज भी उसका मन उनका आदेश पालन करने की बात स्वीकार न कर सका। जो जीवन सांसारिक जीवन से भी बड़ा है, उसमें गोरा माता-पिता के निषेध को मानने के लिए अपने को बाध्य नहीं समझता था। फिर भी आज दिन-भर वह मन-ही-मन बहुत कष्ट पाता रहा। उसके मन में यह अस्पष्ट धारणा घर कर रही थी कि कृष्णदयाल की सारी बात में कहीं कोई छिपा हुआ सत्य है। मानो एक आकारहीन दु:स्वप्न उसे सताने लगा, जिसे वह किसी तरह भी तोड़ नहीं सका। उसे ऐसा लगने लगा मानो कोई एक साथ ही सभी ओर से ठेलकर उसे दूर फेंक

देना चाहता हो, अपना अकेलापन उसे आज बहुत बड़ा होकर दीखने लगा। उसके सामने विस्तृत कर्मक्षेत्र था और काम भी बहुत बड़ा था, किन्तु उसके पार्श्व में कोई नहीं खड़ा था।

प्रायश्चित्त-सभा अगले दिन होने वाली थी। यह तय हुआ था कि गोरा रात को ही बगीचे वाले घर में चला जायगा और वहीं रहेगा। जिस समय वह जाने की तैयारी कर रहा था उस समय एकाएक हरिमोहिनी आ खड़ी हुईं। उन्हें देखकर गोरा को कोई प्रसन्नता नहीं हुई। उसने कहा, "आप आई हैं—मुझे तो अभी-अभी जाना होगा— माँ भी कुछ दिन से घर नहीं हैं। उनसे मिलना हो तो···"

हरिमोहिनी ने कहा, "नहीं बाबा, मैं तुम्हारे ही पास आई हूँ। तुम्हें जरा देर बैठना ही होगा—ज्यादा देर नहीं करूँगी।"

गोरा बैठ गया। हरिमोहिनी ने सुचरिता की बात उठाई। बोली, "तुम्हारी शिक्षा से उसका बहुत उपकार हुआ है। यहाँ तक कि अब वह जिस-तिसके हाथ का छुआ पानी भी नहीं पीती, और सभी ओर से उसकी सुमति जाग रही है। बेटा, उसके लिए मुझे कितनी चिन्ता थी। उसे रास्ते पर लाकर तुमने मेरा कितना उपकार किया है, यह बताने के लिए मुझे शब्द नहीं मिलते। भगवान् तुम्हें राजराजेश्वर बनायें, कुलवन्ती लछमी बहू मिले, घर रोशन हो, धन-सम्पत्ति-सन्तान से भरा-पूरा रहे!"

फिर बातों-ही-बातों में उन्होंने कहा कि सुचरिता सयानी हो गई है, उसके विवाह मे और पल-भर भी देर करना ठीक नहीं है, हिन्दू घर में रहती तो अब तक उसकी गोद सन्तान से भर गई होती। विवाह में इतनी देर कर देना कितना अवैध काम हुआ है, निश्चय ही गोरा भी इस बारे में उनसे सहमत होंगे। हरिमोहिनी ने सुचरिता के विवाह की समस्या के कारण बहुत दिनों तक असह्य चिन्ता भोगकर अन्त में किसी तरह बड़ी खुशामद और विनती करके अपने देवर कैलाश को राजी करके कलकत्ता बुलाया है। जिन सब भारी कठिनाइयों की उन्हें आशंका थी ईश्वर की कृपा से वे सब दूर हो गई हैं, सारी बात पक्की हो गई है, वर-पक्ष एक पैसा भी नहीं लेगा और सुचरिता के पिछले इतिहास को लेकर भी कोई आपत्ति न की जायगी---हरिमोहिनी बड़े कौशल से ही इन सब कठिनाइयों का समाधान कर सकी है। पर अब इस मौके पर आकर—सुनकर सभी हैरान होंगे—सुचरिता बिलकुल अड़ गई है। उसके मन में क्या है हरिमोहिनी नहीं जानतीं, किसी ने उसे कुछ सिखा दिया है, या कि उसका मन किसी दूसरे की ओर है या नहीं, यह भगवान् ही जानते है।

"लेकिन बेटा, यह मैं तुम्हें साफ ही बता दूं, वह लड़की तुम्हारे योग्य नहीं है। गांव-देहात में उसका ब्याह होने से तो उसके बारे में कोई कुछ जान ही नहीं सकेगा, इसलिए किसी-न-किसी तरह काम चल जायगा। लेकिन तुम तो शहर में रहते हो, उससे ब्याह करोगे तो शहर के लोगों को मुंह न दिखा सकोगे।"

गोरा ने क्रुद्ध होकर कहा, "आप यह सब क्या कह रही हैं? आपसे किसने कहा है कि मैंने उनसे विवाह करने के लिए उन्हें कुछ समझाया-बुझाया है?"

हरिमोहिनी ने कहा, "मैं कैसे जानूंगी, बाबा! अखबार में निकल गया है, यही सुनकर तो लाज से गड़ी जा रही हूँ।"

गोरा समझ गया कि, हारान बाबू अथवा उनके दल के किसी ने इस बारे में अखबार में कुछ लिखा होगा। मुट्ठियाँ भींचते हुए बोला, "सब झूठी बात है!"

उसकी गरज से चौंकती हुई हरिमोहिनी बोलीं, "मैं भी तो वही समझती हूँ। तो मेरा एक अनुरोध तुम्हें मानना ही होगा। एक बार तुम राधारानी के पास चलो!"

गोरा ने पूछा, "क्यों?"

हरिमोहिनी ने कहा, "तुम एक बार उसे समझाकर कहना!"

गोरा का मन इसीको निमित्त बनाकर उसी समय सुचरिता से मिलने जाने को उद्यत हो उठा। उसके हृदय ने कहा, 'चलो, आज अन्तिम बार भेंट कर आऊँ। कल तुम्हारा प्रायश्चित्त है—उसके बाद से तुम तपस्वी हो। आज की रात-भर का ही समय है—उसमें भी केवल थोड़े से क्षणों के लिए। उसमें कोई अपराध नहीं होगा। हो भी तो कल सब भस्म हो जायगा।'

थोड़ी देर चुप रहकर गोरा ने पूछा, "उन्हें क्या समझाना होगा बताइये?"

"और कुछ नहीं—इतना ही कि हिन्दू आदर्श के अनुसार सुचरिता-जैसी सयानी उम्र की लड़की को फौरन विवाह करना चाहिए, और हिन्दू-समाज में कैलाश-जैसा सत्पात्र पा जाना सुचरिता की अवस्था की लड़की के लिए बहुत बड़ा सौभाग्य है।"

गोरा के हृदय में तीर-सा चुभने लगा। जिस व्यक्ति को वह सुचरिता के घर की ड्योढ़ी में देख आया था, उसकी याद बिच्छू के डंक-सी गोरा को डस गई। सुचरिता को वह आदमी पायगा, इस बात की कल्पना भी गोरा के लिए असह्य थी। उसके मन ने वज्र-सा कठोर होकर कहा, 'नहीं, यह कभी नहीं हो सकता...'

और किसी से सुचरिता का मिलन होना असम्भव है, बुद्धि और भावों की गम्भीरता से परिपूर्ण सुचरिता का हृदय गोरा के अलावा किसी दूसरे व्यक्ति पर यों प्रकाशित नहीं हुआ, न कभी किसी पर यों प्रकाशित हो सकेगा। कैसा आश्चर्यमय था वह! कितना सुन्दर! रहस्यों से भरे हुए उस अन्तर में उसे कैसी

अनिर्वचनीय सत्ता दीख गई थी। ऐसा कब-कब दीखता है, और दुनिया में कितनों को दीखता है! दैवयोग से ही जो व्यक्ति सुचरिता को इस गहरे सत्य रूप में देख सका, अपनी समूची प्रकृति से अनुभव कर सका, उसीने तो सुचरिता को पाया है। और कोई कभी उसे कैसे पा सकता है ?

हरिमोहिनी ने कहा, "राधारानी क्या हमेशा क्वारी ही रह जायगी ? यह भी कभी होता है ?"

यह भी तो ठीक है। गोरा तो कल पायश्चित्त करने जा रहा है। उसके बाद ही तो वह संपूर्ण पवित्र होकर ब्राह्मण होगा। तो सुचरिता क्या चिरकाल अविवाहित ही रहेगी ? उस पर यह जीवन-व्यापी भार लादने का अधिकार किसको है? स्त्री के लिए इससे बड़ा भार और क्या हो सकता है ?

हरिमोहिनी न जाने क्या-क्या बोलती ही चली गई, वह सब गोरा के कानों तक पहुँचा ही नहीं। वह सोचने लगा, 'बाबा जो इतने ज़ोर से मुझे प्रायश्चित्त करने से रोक रहे हैं, उनके निषेध का क्या कोई मूल्य नहीं है ? मैं अपने लिए जिस जीवन की कल्पना कर रहा हूँ वह शायद मेरी कल्पना ही है, वह मेरे लिए स्वाभाविक नहीं है। जैसा कृत्रिम बोझ ढोने जाकर तो मैं पंगु हो जाऊँगा-- उसके भार से दबकर मैं जीवन का कोई काम सहज ढंग से न निभा सकूँगा। अभी तो देख रहा हूँ, मेरा हृदय आकांक्षा में उलझ गया है! इस पत्थर को कैसे हटाऊँ! बाबा किसी तरह जान गए हैं कि मैं अपने अन्तर के भीतर ब्राह्मण नहीं हूँ, तपस्वी नहीं हूँ, इसीलिए उन्होंने इतने ज़ोर से मुझे मना किया है।'

गोरा ने सोचा, 'उन्हींके पास जाऊँ। आज, अभी, इसी साँझ को ही ज़ोर देकर उनसे पूछूं, उन्होंने मुझमें ऐसा क्या देखा है, क्यों उन्होंने मुझसे कहा है कि प्रायश्चित्त का रास्ता मेरे लिए बन्द है। मुझे वह समझा सकें तो मुझे उधर से छुटकारा मिले। छुटकारा!'

हरिमोहिनी से गोरा ने कहा, "आप ज़रा रुकें, मैं अभी आता हूँ।"

गोरा दौड़ा हुआ घर के पिता वाले खंड की ओर गया। उसका मन कहने लगा, 'कृष्णदयाल ऐसी कोई बात जानते है जिससे उसे तुरन्त छुटकारा मिल सकता है।'

साधनाश्रम का द्वार बन्द था। उसने दो-एक बार खटखटाया भी, लेकिन द्वार न खुला, न किसी ने जवाब ही दिया। भीतर से धूप जलने की गन्ध आ रही थी। आज कृष्णदयाल संन्यासी को साथ लेकर सब द्वार बन्द करके योग की किसी अत्यन्त गूढ़ और अत्यन्त दुरूह प्रणाली का अभ्यास कर रहे थे, आज रात-भर किसी को उधर प्रवेश करने का अधिकार नहीं था।

७४

गोरा ने कहा, 'नहीं, कल नहीं आज ही से मेरा प्रायश्चित्त आरम्भ हो गया है। कल जो आग जलेगी उससे बड़ी आग आज जल रही है। अपने नये जीवन के आरम्भ में मुझे कोई बहुत बड़ी आहुति देनी होगी, इसीलिए विधाता ने मेरे मन में इतनी बड़ी, इतनी प्रबल आकांक्षा जगा दी थी। नहीं तो ऐसी अनोखी बात क्यों हुई होती ? मैं कहाँ, किस क्षेत्र में था—उन लोगों से मेरे मिलने की कोई लौकिक संभावना न थी। और ऐसे विरुद्ध स्वभावों का मिलन भी दुनिया में साधारणतया कहाँ होता है ! फिर इसकी तो कल्पना भी कौन कर सकता कि उस मिलन से मुझ-जैसे उदासीन के चित्त में इतनी बड़ी, इतनी दुर्दम आकांक्षा जाग उठेगी ! ठीक आज के लिए ही मुझे इस आकांक्षा की ज़रूरत थी—आज तक मैंने देश को जो कुछ दिया है वह सब बड़ी आसानी से ही दे सकता हूँ—ऐसा कोई दावा नहीं करना पड़ा जिसे देते मुझे कोई तकलीफ़ हुई हो। मैं सोच ही नहीं पाता था कि देश के लिए किसी चीज का त्याग करने में लोग कंजूसी क्यों करते हैं। लेकिन महायज्ञ ऐसे सहज दान से नहीं पूरा होता। उसके लिए दुःख ही चाहिए, धमनी काटकर रक्त-दान करके ही मुझे नये जीवन में नया जन्म लेना होगा। कल सबेरे लोगों के सामने मेरा लौकिक प्रायश्चित्त होगा, उससे एक रात पहले ही मेरे जीवन-विधाता आकर मेरा द्वार खटखटा रहे हैं—अपने अन्तर के भीतर ही अन्तरतम प्रायश्चित्त किये बिना कल मैं क्या शुद्धि ग्रहण करूँगा ? जो दान मेरे लिए सबसे कठिन दान है, वही आज संपूर्णतया देवता को अर्पित करके ही मैं सच्चे और पवित्र रूप में निःस्व हो सकूँगा—तभी मैं ब्राह्मण हूँगा।

गोरा के हरिमोहिनी के पास लौटते ही उन्होंने कहा, "बेटा, एक बार तुम मेरे साथ चलो। तुम्हारे जाकर अपने मुँह से एक बात कह देने से ही सब ठीक हो जायगा।"

गोरा ने कहा, "मैं क्यों जाऊँ—उनसे मेरा क्या सम्बन्ध है ? कुछ नहीं।"

हरिमोहिनी ने कहा, "वह जो तुम्हें देवता की तरह मानती है, अपना गुरु समझती है।"

मानो एक तपी हुई सलाख गोरा के हृदय को बेध गई। उसने कहा, "मैं तो जाने की कोई ज़रूरत नहीं देखता। उनसे अब और भेंट होने की कोई सम्भावना नहीं है।"

हरिमोहिनी ने भीतर-ही-भीतर खुश होते हुए कहा, "सो तो ठीक ही है।

इतनी बड़ी लड़की से मिलना-जुलना तो अच्छा नहीं है। लेकिन बेटा, आज का मेरा यह काम किये बिना तो तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा। इसके बाद फिर कभी तुम्हें बुलाऊँ तो कहना !"

गोरा ने बड़े जोर से सिर हिला दिया। अब नहीं, किसी तरह नहीं। वह सब समाप्त हो चुका। वह देवता के आगे सब निछावर कर चुका है। अब उसकी शुचिता पर कोई धब्बा नही लगने देगा। वह सुचरिता से मिलने नहीं जायगा।

हरिमोहिनी ने जब समझ लिया कि गोरा अपनी बात से टलने वाला नहीं है, तब उन्होंने कहा, "अगर बिलकुल ही नहीं जा सकते, तो बेटा, एक काम करो। एक चिट्ठी लिख दो !"

गोरा ने फिर सिर हिलाया। वह नहीं हो सकेगा।—चिट्ठी-विट्ठी वह नही लिखेगा।

हरिमोहिनी ने कहा, "अच्छा, तुम मुझे ही दो लाइन लिख दो। तुम तो सब शास्त्र जानते हो, मैं तुमसे विधान लेने आई हूँ।"

हरिमोहिनी ने कहा, "यही कि हिन्दू घर की लड़की के लिए उपयुक्त समय पर विवाह करके गृह-धर्म पालन करना ही सबसे बड़ा धर्म है कि नहीं।"

गोरा ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, "देखिए, इन सब मामलों में मुझे न फँसाइये। मैं विधान दे सकने वाला पण्डित नहीं हूँ।"

तब हरिमोहिनी ने कुछ तीखेपन के साथ कहा, "तब फिर अपने मन की भीतरी इच्छा खोलकर ही कहो न ! पहले तो तुम्हीं ने फन्दा डाला, अब जब उसे खोलने की बात आई तो कहते हो कि मुझे न फँसाइये ! इसका क्या मतलब होता है ? असल में तुम चाहते ही नहीं कि उसका मन साफ हो जाय।"

और कोई समय होता तो गोरा आग-बबूला हो उठता—यह सच्चा अभियोग वह भी सह न सकता। लेकिन आज से उसका प्रायश्चित्त आरम्भ हो गया था, उसने क्रोध नहीं किया। अपने ही मन में डूबकर उसने पहचाना कि हरिमोहिनी सच्ची बात ही कह रही है। सुचरिता के साथ बड़ा बन्धन काट देने के लिए तो वह निर्मल हो उठा है. लेकिन एक बहुत महीन सूत्र वह न दीखने का बहाना करके बनाये रखना चाहता है। सुचरिता के साथ अपने सम्बन्ध को एकबारगी छोड़ देने के लिए वह अब भी प्रस्तुत नहीं है।

लेकिन यह कंजूसी छोड़नी होगी। एक हाथ से दान करके दूसरे हाथ से पकड़े रहना नहीं हो सकता !

गोरा ने कागज निकालकर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा, "विवाह ही नारी जीवन की साधना का पथ है, गृह-धर्म ही उसका मुख्य धर्म है। विवाह इच्छा पूरी

करने के लिए नहीं, कल्याण-साधन के लिए। गृहस्थी में सुख हो अथवा दुख, पूरे मन से उसका वरण करती हुई नारी सती-साध्वी रहकर धर्म को घर में मूर्तिमान किये रहे, यही उसका व्रत है।"

हरिमोहिनी ने कहा, "इसी के साथ हमारे कैलाश के बारे में भी थोड़ा-सा लिख देते तो बड़ा अच्छा होता।"

गोरा ने कहा, "नहीं, मैं तो उन्हें जानता ही नहीं, उनके बारे में नहीं लिख सकूंगा।"

हरिमोहिनी ने कागज सावधानी से तह करके आँचल में बाँध लिया और अपने घर लौट गई। सुचरिता तब भी आनन्दमयी के पास ललिता के घर में ही थी। वहाँ बातचीत का सुभीता नहीं होगा, और ललिता या आनन्दमयी से विरोधी बात सुनकर सुचरिता के मन में दुविधा ही हो सकती है, इस आशंका से उन्होंने सुचरिता को कहला भेजा कि अगले दिन दोपहर को वह आकर उन्हीं के साथ भोजन करे, बहुत जरूरी बात है—वह चाहे तो तीसरे पहर फिर लौट जा सकेगी।

अगले दिन दोपहर को सुचरिता मन कड़ा करके आई। वह जानती थी कि मौसी इसी विवाह की बात फिर उठायेंगी। उसने तय कर लिया था कि आज उन्हें कड़ा उत्तर देकर सारी बात को अन्तिम रूप से समाप्त कर देगी।

सुचरिता के भोजन कर लेने पर हरिमोहिनी ने कहा, "कल सन्ध्या समय मैं तुम्हारे गुरु के पास गई थी।"

सुचरिता भीतर-ही-भीतर घबरा उठी। मौसी क्या फिर उसकी बात लेकर उनका अपमान कर आई हैं?

हरिमोहिनी ने कहा, "डरो मत, राधारानी, मैं उनसे झगड़ा करने नहीं गई थी। अकेली थी, मैंने सोचा, चलूँ, उनसे दो-एक अच्छी-अच्छी बातें सुन आऊँ। बातों-बातों में तुम्हारी बात उठी। तो देखा, उनकी भी यही राय है। लड़की अधिक दिन क्वारी रहे, इसे वह अच्छा नहीं समझते। वह कहते हैं, शास्त्रों के अनुसार वह अधर्म है। वह सब साहबों के यहाँ चलता है, हिन्दुओं के घर नहीं। मैंने अपने कैलाश की बात भी उन्हें पूरी बता दी। देखती हूँ, वह सचमुच ज्ञानी आदमी है।"

लज्जा और व्यथा से सुचरिता तिलमिला उठी। हरिमोहिनी ने कहा, "तुम तो उन्हें गुरु कहकर मानती हो। उनकी बात तो माननी होगी।"

सुचरिता चुप रही। हरिमोहिनी कहती गई, "मैंने उनसे कहा, 'बेटा तुम एक बार खुद आकर उसे समझा दो, हमारी बात तो वह मानती नहीं।' वह बोले, 'नहीं उससे अब मेरा मिलना ठीक नहीं होगा, वह हमारे हिन्दू समाज में मना है।'

मैंने पूछा, 'तो फिर क्या उपाय किया जाय ?' तब उन्होंने अपने हाथ से ही मुझे लिखकर दे दिया। यह देखो न !"

कहते-कहते हरिमोहिनी ने धीरे-धीरे आँचल से कागज़ खोलकर उसकी तह खोलकर उसे सुचरिता के सामने कर दिया।

सुचरिता ने पढ़ा। उसका दम घुटने लगा, कठपुतली-सी निश्चेष्ट होकर वह बैठी रह गई।

उस लिखे हुए में ऐसा कुछ नहीं था जो नया या असंगत हो। ऐसा भी नहीं था कि उन बातों से सुचरिता की राय न मिलती हो। लेकिन हरिमोहिनी के हाथ खास तौर से उसके पास यह लिख भेजने का जो अर्थ होता है उसी से सुचरिता को बड़ा कष्ट हो रहा था। गोरा की ओर से ऐसा आदेश आज क्यों ? यह ठीक है कि सुचरिता का समय कभी आयगा ही—उसे भी एक दिन विवाह करना ही होगा—लेकिन उसके लिए गोरा के इतनी जल्दी मचाने का क्या कारण हुआ है ? "उसके सम्बन्ध में गोरा को जो कुछ करना है वह क्या समाप्त हो गया ? गोरा के कर्त्तव्य में उसने क्या कोई बाधा पहुँचाई है या उसके जीवन-पथ में कोई रोड़े अटकाये है ? क्या गोरा के पास उसे दान करने के लिए या उससे चाहने को और कुछ नहीं रह गया है ? लेकिन वह तो ऐसा नहीं सोचती थी, वह तो अब भी राह देख रही थी। अपने भीतर के इस दुःसह कष्ट से लड़ने के लिए सुचरिता प्राणपण से चेष्टा करने लगी, लेकिन उसे कहीं से कोई सान्त्वना न मिली।

हरिमोहिनी ने सुचरिता को सोचने के लिए काफी समय दिया। बल्कि उन्होंने अपने दैनिक नियम के अनुसार एक नींद भी ले ली। नींद खुलने पर सुचरिता के कमरे में आकर उन्होंने देखा, वह अब भी चुपचाप ज्यों-की-त्यों बैठी हुई थी।

उन्होंने कहा, "राधू, इतना सोच क्या रही है भला ! इसमें इतना सोचने की बात ही कौन-सी है ? गौरमोहन बाबू ने कुछ गलत लिखा है क्या ?"

सुचरिता ने शान्त स्वर से कहा, "नहीं, उन्होंने ठीक ही लिखा है।"

हरिमोहिनी अत्यन्त आश्वस्त होकर कह उठीं, "तो फिर और देर करके क्या होगा, बिटिया ?"

सुचरिता ने कहा, "नहीं, देर करना नही चाहती। मैं एक बार बाबा के घर जाऊँगी।"

हरिमोहिनी ने कहा, "देख राधू, तुम्हारे बाबा तो कभी यह नहीं चाहेंगे कि तुम्हारा हिन्दू-समाज में विवाह हो। लेकिन तुम्हारे जो गुरु है उन्होंने तो···"

सुचरिता ने अधीर होकर कहा, "मौसी, क्यों तुम बार-बार वही एक बात दोहरा रही हो ! मैं बाबा से विवाह के बारे में कोई बात करने नही जा रही हूँ।

मैं यों ही एक बार उनसे मिलना चाहती हूँ।"

सुचरिता के लिए परेश बाबू का सान्निध्य ही एकमात्र सहारा रह गया था। उनके घर जाकर सुचरिता ने देखा, वह एक सन्दूक में कपड़े भर रहे हैं।

सुचरिता ने पूछा, "यह क्या हो रहा है, बाबा ?"

परेश बाबू ज़रा-सा हँसकर बोले, "बेटी, मैं शिमला पहाड़ की सैर करने जा रहा हूँ, कल सवेरे की गाड़ी से चलूंगा।"

परेश बाबू की इस हँसी में विप्लव का इतिहास छिपा हुआ है, यह समझते सुचरिता को देर न लगी। घर में पत्नी और कन्या, और बाहर उनके बन्धु-बान्धव परेश बाबू को ज़रा-सी भी शान्ति का अवसर नहीं दे रहे थे। वह कुछ दिन के लिए कहीं और न चले गए तो उन्हें केन्द्र बनाकर घर में एक तूफान उठता ही रहेगा। कल वह बाहर जा रहे हैं, फिर भी आज घर का कोई भी उनके कपड़े सँवार देने नहीं आया है, उन्हें यह सब स्वयं करना पड़ रहा है, यह देखकर सुचरिता के मन को चोट पहुँची। परेश बाबू को रोककर पहले तो उसने बक्स को बिलकुल खाली कर दिया, फिर एक-एक कपड़े को कुशल हाथों से यत्नपूर्वक फिर से तह करके बक्से में सजाने लगी। उनके नित्य पढ़ने की पुस्तकों को उसने यों संभालकर रख दिया कि हिलने-डुलने से कोई नुकसान न हो। सामान सजाते-सजाते सुचरिता ने धीरे से पूछा, "बाबा, तुम क्या अकेले ही जाओगे ?"

सुचरिता के इस प्रश्न में वेदना का आभास पाकर परेश बाबू ने कहा, "उसमें मुझे कोई कष्ट नहीं होगा, राधे !'

सुचरिता ने कहा, "नहीं बाबा, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।"

परेश सुचरिता के मुंह की ओर देखने लगे। सुचरिता ने कहा, "बाबा, मैं तुम्हें ज़रा-सी तंग नहीं करूंगी।"

परेश बोले, "ऐसा क्यों कहती हो—मुझे तुमने कब तंग किया है, बेटी ?"

सुचरिता ने कहा, "तुम्हारे पास रहे बिना मेरा भला नहीं होगा, बाबा ! बहुत-सी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं— तुम नहीं समझा दोगे तो मैं पार न पा सकूंगी। तुम जो मुझे अपनी बुद्धि पर भरोसा करने को कहते हो, उतनी मेरी बुद्धि ही नहीं है, और मेरे मन में उतनी ताक़त भी नहीं है। तुम मुझे अपने साथ ले चलो, बाबा !"

कहते-कहते सुचरिता परेश की ओर पीठ फेरकर' बक्स पर झुककर कपड़े इधर-उधर करने लगी। उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

७५

गोरा ने जब अपनी लिखत हरिमोहिनी के हाथों में दे दी, तब उसे ऐसा लगा कि उसने सुचरिता के सम्बन्ध में अपना त्याग-पत्र लिख दिया है। लेकिन लिख देने से ही तत्काल काम समाप्त नहीं हो जाता! उसके हृदय ने तो यह अर्जी बिलकुल नामंजूर कर दी। उस अर्जी पर केवल गोरा की इच्छा-शक्ति ने जबरदस्ती कलम पकड़कर नाम लिख दिया था, उसके हृदय के हस्ताक्षर तो उस पर नहीं हुए थे। इसलिए उसका हृदय उससे मुक्त था। बल्कि इतना मुक्त कि उसी शाम को गोरा को सुचरिता के घर की ओर दौड़ाये दे रहा था। लेकिन ठीक समय गिरजाघर की घड़ी ने दस बजाये और गोरा को खयाल आया कि यह किसी के मिलने जाने का समय नहीं है। फिर लगभग सारी रात गोरा गिरजाघर के घण्टे ही गिनता रहा। गंगा-तट के बगीचे वाले घर में उसका जाना उस रात नहीं हुआ। उसने कहला भेजा कि वह अगले दिन सवेरे ही पहुँच जायगा।

सवेरे-सवेरे ही वह पहुँच गया। लेकिन जैसा निर्मल और दृढ़ मन लेकर प्रायश्चित्त करने का निश्चय उसने किया था, वैसी उसके मन की अवस्था कहाँ थी!

पण्डित और अध्यापक अनेक आ गए थे। और भी अनेकों के आने की बात थी। गोरा ने सभी से मिलकर उनकी अभ्यर्थना की। उन्होंने भी सनातन धर्म के प्रति गोरा की अचल निष्ठा की चर्चा करके उसे बार-बार साधुवाद दिया।

धीरे-धीरे बगीचा कोलाहल से भर गया। गोरा देख-भाल करता हुआ चारों ओर घूमता रहा। लेकिन सारे कोलाहल और काम की व्यस्तता के बीच भी गोरा के हृदय की गहराई में रह-रहकर एक ही बात गूँज रही थी—कोई मानो कह रहा था, 'तुमने अन्याय किया है, तुमने अन्याय किया है।' अन्याय ठीक से कहाँ हुआ है, इस पर सोच-विचार करने का समय तब नहीं था, लेकिन वह हृदय की गहराई से आते हुए इस स्वर को किसी तरह चुप नहीं करा सका। प्रायश्चित्त-यज्ञ के लम्बे-चौड़े आयोजन के बीच उसके हृदय में बसा ही कोई घर का भेदी उसके विरुद्ध गवाही दे रहा था, कह रहा था, 'अन्याय तो बना ही रह गया।' यह अन्याय किसी नियम में त्रुटि नहीं थी, मन्त्र में भूल नहीं थी, शास्त्र के विरुद्ध जाना भी नहीं था, यह अन्याय उसकी प्रकृति के भीतर हो रहा था—इसीलिए गोरा का समूचा अन्तःकरण इस अनुष्ठान के विरुद्ध छटपटा रहा था।

समय हो चला। चारों ओर बाँस की बल्लियाँ गाड़कर ऊपर चन्दोबा तान-कर सब स्थान तैयार किया जा चुका था। गोरा गंगा-स्नान करके कपड़े बदल रहा था कि एकाएक जनता में कुछ हलचल जान पड़ी। मानो एक उद्वेग चारों ओर फैला जा रहा था। अन्त में घबराया हुआ चेहरा लिये अविनाश ने आकर कहा, "आपके घर से खबर आई है, कृष्णदयाल बाबू के मुँह से रक्त जा रहा है--आपको फौरन ले आने के लिए उन्होंने गाड़ी के साथ आदमी भेजा है।"

गोरा फौरन चला गया। अविनाश भी उसके साथ जाने को तैयार हुआ तो गोरा ने कहा, "नहीं, तुम सबकी देख-भाल करो--तुम्हारे चले जाने से कैसे होगा?"

कृष्णदयाल के कमरे में पहुँचकर गोरा ने देखा, वह बिस्तर पर लेटे हुए हैं और आनन्दमयी उनके पैरों के पास बैठी पाँव सहला रही है। गोरा ने घबराये हुए-से दोनों के चेहरे की ओर देखा। कृष्णदयाल ने इशारे से उसे पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठने को कहा। गोरा बैठ गया।

माँ की ओर उन्मुख होकर उसने पूछा, "अब कैसे हैं?"

आनन्दमयी ने कहा, "अब तो कुछ ठीक हैं। साहब डॉक्टर को बुला भेजा है।"

कमरे में शशिमुखी और नौकर भी था। कृष्णदयाल ने हाथ हिलाकर उन्हें बाहर भेज दिया। जब सब चले गए तब उन्होंने चुपचाप एक बार आनन्दमयी के चेहरे की ओर देखा और फिर मृदु स्वर से गोरा से कहा, "मेरा समय आ गया है। अब तक तुमसे जो छिपा रखा था वह आज तुम्हें बताये बिना मुझे मुक्ति न मिलेगी।"

गोरा का चेहरा पीला पड़ गया। चुपचाप बैठा रहा। बहुत देर तक कोई नहीं बोला।

कृष्णदयाल ने कहा, 'गोरा, तब मैं कुछ नहीं मानता था, इसीलिए मैंने इतनी बड़ी भूल की। फिर उसके बाद भूल सुधारने का रास्ता नहीं था।"

इतना कहकर वह फिर चुप हो गए। गोरा भी कुछ न पूछकर निश्चल बैठा रहा।

कृष्णदयाल फिर बोले, "मैंने सोचा था तुम्हें बताने की कोई जरूरत नहीं होगी, जैसे चलता आया ऐसे ही चला जायगा। लेकिन देखता हूँ, वैसा नहीं हो सकेगा। मेरी मृत्यु के बाद तुम मेरा श्राद्ध कैसे करोगे?"

मानो ऐसी गड़बड़ की सम्भावना से ही कृष्णदयाल सिहर उठे। असल बात

क्या है यह जानने के लिए गोरा अधीर हो उठा। आनन्दमयी की ओर देखकर वह बोला, "माँ, तुम बताओ, बात क्या है, क्या मुझे श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है?"

आनन्दमयी अब तक सिर झुकाये हुए स्तब्ध बैठी थीं। गोरा का प्रश्न सुनकर उन्होंने सिर उठाकर गोरा के चेहरे पर नजर टिकाते हुए कहा, "नहीं, बेटा!"

गोरा ने चकित होकर पूछा, "मैं उनका पुत्र नहीं?"

आनन्दमयी ने कहा, "नहीं।

ज्वालामुखी से आग के उच्छ्वास की तरह गोरा के मुंह से निकला, "माँ, तुम मेरी माँ नहीं हो?"

आन्दमयी की छाती फटने लगी। बिना आँसुओं के रोते हुए स्वर से उन्होंने कहा, "बेटा, गोरा, तू तो मुझ पुत्र-हीन का पुत्र है, तू तो अपने पेट के लडके से भी कहीं अधिक है, बेटा!'"

तब गोरा ने कृष्णदयाल के चेहरे की ओर देखते हुए पूछा, "तब मुझे तुम लोगों ने कहाँ पाया?"

कृष्णदयाल ने कहा, "तब ग़दर था। हम लोग इटावा में थे। तुम्हारी माँ ने सिपाहियों के डर से भागकर रात को हमारे यहाँ आकर शरण ली थी। तुम्हारे बाप उससे पहले दिन ही लड़ाई में मारे गए थे। उनका नाम था—"

गोरा ने गरजकर कहा, "रहने दीजिए उनका नाम! मैं नहीं जानना चाहता।"

गोरा की उत्तेजना से चौंककर कृष्णदयाल रुक गए। फिर बोले, "वह आयरिश-मैन थे। उसी रात तुम्हारी माँ तुम्हें जन्म देकर मर गई। तब से तुम्हारा पालन-पोषण हमारे ही घर हुआ।"

पल-भर में ही गोरा का सारा जीवन उसके लिए एक बड़ा अद्‌भुत सपना-सा हो गया। शैशव से इतने बरसों तक उसका जीवन जिस भित्ति पर खडा रहा था वह एकाएक विलीन हो गई। वह क्या है, कहाँ है, मानो वह कुछ भी न समझ सका। मानो उसके पीछे अतीत नाम की कोई चीज ही नहीं रही, और उसके सामने भी इतने दिनों से जो स्पष्ट भविष्य उसका एकान्त लक्ष्य रहा था वह भी एकाएक गायब हो गया। मानो वह इसी एक क्षण की कमल की पंखुड़ी में ओस की बूंद-सा कांप रहा हो। उसकी न माँ है, न बाप है, न देश है, न जाति है, न नाम, न गोत्र, न देवता—वह मानो एक सम्पूर्ण नकार है। वह किसे पकड़े, क्या

करे, फिर कहाँ से आरम्भ करे, किधर अपना लक्ष्य स्थिर करे, फिर दिन-रात क्रम से अपने काम के उपकरण कहाँ से कैसे जुटाये ? इस दिशाहीन अद्भुत शून्य के बीच में गोरा हतवाक् बैठा रह गया। उसका चेहरा देखकर और किसी को भी कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

इसी समय परिवार के बंगाली चिकित्सक के साथ अंग्रेज डॉक्टर भी आ पहुँचा। डॉक्टर ने जैसे रोगी की ओर देखा वैसे ही गोरा की ओर देखे बिना भी न रह सका, सोचने लगा, 'यह आदमी कौन है !' गोरा के माथे पर उस समय भी गंगा की मिट्टी का तिलक था, और उसने स्थान करके जो रेशमी कपड़े पहने थे अब भी वही पहने था। गले में कुर्ता नहीं था, उत्तरीय के बीच में से उसकी विशाल देह दीख रही थी।

पहले कभी होता तो अंग्रेज डॉक्टर को देखते ही गोरा के मन में अपने-आप एक विद्वेष का भाव जाग उठता। लेकिन अब जितनी देर डॉक्टर रोगी को देख रहा था गोरा एक विशेष उत्सुकता से ही उसकी ओर ताकता रहा। मन-ही-मन वह अपने-आपसे बार-बार पूछता रहा, 'तो यहाँ पर मेरा सबसे अधिक अपना क्या यही आदमी है ?'

जाँच के बाद पूछ-ताछ कर चुकने पर डॉक्टर ने कहा, "नहीं, चिन्ता के तो कोई लक्षण नही देखता। नाड़ी अभी ठीक ही है और शरीर-यन्त्र में भी कोई बिकार नहीं आया है। जो भी तकलीफ़ हुई है थोड़ी सावधानी बरतने से दुबारा नहीं होगी।"

डॉक्टर के विदा लेकर चले जाने पर गोरा भी बिना कहे कुर्सी से उठकर जाने लगा।

डॉक्टर के आने पर आनन्दमयी साथ के कमरे में चली गई थीं, तब दौड़कर गोरा का हाथ पकड़ती हुई बोलीं, "बेटा गोरा, मुझ पर नाराज़ मत होना, नहीं तो मैं जी नहीं सकूँगी !"

गोरा ने कहा, "तुमने अब तक मुझे बताया क्यों नहीं ? बता देतीं तो क्या बुराई थी ?"

आनन्दमयी ने सारा दोष अपने ऊपर लेते हुए कहा, "बेटा, तुझे कहीं खो न बैठूं इसी डर से मैंने इतना पाप किया है। फिर भी अगर वही हो जाय, तू आज मुझे छोड़कर चला जाय, तो मैं किसी को दोष नहीं दे सकूंगी—लेकिन वह मेरे लिए मृत्यु-दण्ड होगा, बेटा !"

गोरा ने केवल कहा, "माँ !"

उसके मुंह से यह सम्बोधन सुनकर आनन्दमयी के रुंधे हुए आँसू फूट पड़े।

गोरा ने कहा, "माँ, अब मैं ज़रा एक बार परेश बाबू के घर हो आऊँ।"

आनन्दमयी की छाती का बोझ कुछ हल्का हो गया। उन्होंने कहा, "हो आओ, बेटा!"

उनके जल्दी मरने की कोई आशंका नहीं है, फिर भी सारी बात गोरा के सामने खुल गई, इससे कृष्णदयाल बहुत घबरा उठे। गोरा से बोले, "देखो, गोरा, यह बात किसी को बताने की कोई ज़रूरत नहीं है। बस, तुम्हीं ज़रा समझ-बूझकर संभलकर चलो तो जैसा चल रहा था वैसा ही चलता रहेगा, किसी को भनक भी नहीं पड़ेगी।"

गोरा कोई उत्तर दिये बिना बाहर चला गया। कृष्णदयाल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह स्मरण करके उसे तसल्ली ही हुई।

महिम के लिए एकाएक दफ़्तर न जाकर घर ही रह जाना सम्भव न था, इसलिए डॉक्टर वगैरा का सब बन्दोबस्त करके वह एक बार साहब को कहकर छुट्टी लेने के लिए दफ़्तर गये थे। गोरा जब घर से निकल रहा था तभी वह लौटकर आ पहुँचे। गोरा को देखकर बोले, "गोरा, तुम जा कहाँ रहे हो?"

गोरा ने कहा, "खबर अच्छी है। डॉक्टर आया था। कह गया है कि कोई चिन्ता की बात नहीं है।"

महिम ने अत्यन्त आश्वस्त होकर कहा, "जान बची। परसों ही का दिन है, उसी दिन शशिमुखी का ब्याह कर दूंगा। गोरा, तुम्हें थोड़ी दौड़-धूप करनी होगी। और देखो, विनय को लेकिन पहले से खबरदार कर देना, कहीं उस दिन आ ही न जाय। अविनाश पक्का हिन्दू है, उसने खास तौर से कहा है कि उसके ब्याह में वैसे लोग नहीं आने चाहिएँ। और एक बात भी तुमसे कह रखूँ भाई, उस दिन अपने ऑफ़िस के बड़े साहबों को भी न्योता दे रहा हूँ, तुम कहीं उन्हे मारकर भगा मत देना। और कुछ नहीं, सिर्फ़ ज़रा-सा सिर हिलाकर, 'गुड ईवनिंग सर' कह देना—उतने से तुम्हारे हिन्दू-शास्त्र का कुछ बिगड़ नहीं जायगा—बल्कि तुम चाहे पण्डितों से विधान ले लेना। समझे भाई? वे लोग राजा की जात हैं, उनके सामने अपना अहंकार थोड़ा सिकोड़ लेने में कोई अपमान नहीं है।"

महिम की बात का कोई उत्तर न देकर गोरा आगे बढ़ गया।

७६

सुचरिता जिस समय अपने आँसू छिपाने के लिए बक्स पर झुककर कपड़े

सँवार रही थी, उसी समय खबर मिली, गौरमोहन बाबू आए हैं।

सुचरिता जल्दी से आँखें पोंछकर अपना काम छोड़कर उठ खड़ी हुई। इतने में ही गोरा ने कमरे में प्रवेश किया।

गोरा के माथे पर तिलक अभी लगा ही हुआ है, और कपड़े भी उसने वही पहन रखे हैं, इस ओर उनका ध्यान ही न रहा था। ऐसे वेष में कोई किसी के घर मिलने नहीं जाता है। सुचरिता को एकाएक उस दिन की बात याद आ गई जिस दिन उसने गोरा को पहले-पहल देखा था। सुचरिता जानती थी, उस दिन गोरा खास तौर से युद्ध-वेष में आया था। तो क्या आज भी यह युद्ध-सज्जा है!

गोरा ने आते ही भूमि पर माथा टेककर परेश बाबू को प्रणाम किया और उनकी चरण-धूलि ली। परेश बाबू ने हड़बड़ाकर उसे उठाते हुए कहा, "आओ-आओ, बेटा, बैठो?"

गोरा बोल उठा, "परेश बाबू, मुझ पर कोई बन्धन नहीं है।'

परेश बाबू ने अचरज में आकर कहा, "कैसा बन्धन?"

गोरा ने कहा, "मैं हिन्दू नहीं हूँ।"

परेश बाबू ने दोहराया, "हिन्दू नही हो?"

गोरा ने कहा, "नहीं, मैं हिन्दू नहीं हूँ। आज ही मुझे पता लगा है, मैं म्यूटिनी के समय पाया गया था, मेरा बाप आइरिशमैन था। आज भारतवर्ष के उत्तर से दक्षिण तक सब देव-मन्दिरों के द्वार मेरे लिए बन्द हो गए है—सारे देश में आज किसी समाज में किसी पंगत में मेरे बैठने के लिए जगह नहीं है।"

परेश और सुचरिता सन्नाटे में आकर बैठे रह गए। क्या कहें, यह परेश बाबू सोच ही नहीं सके।

गोरा ने कहा, "आज मैं मुक्त हूँ, परेश बाबू! अब मुझे यह याद नहीं है कि मैं पतित हो जाऊँगा या व्रात्य हो जाऊँगा। अब मुझे पग-पग पर धरती की ओर देखते हुए अपनी शुचिता की रक्षा करते हुए नहीं चलना होगा।"

सुचरिता गोरा के तमतमाये हुए चेहरे की ओर एकटक देखती रही।

गोरा कहता गया, "परेश बाबू, इतने दिन से भारतवर्ष को पाने के लिए अपने प्राण लगाकर साधना करता रहा, कहीं-न-कही बाधा होती रही, मैं उस बाधा के साथ अपनी श्रद्धा का समझौता कराने के लिए जीवन-भर दिन-रात कोशिश ही करता रहा—श्रद्धा की नींव को पक्का करने की कोशिश में मैं और कोई काम ही नहीं कर सका, वही मेरी एकमात्र साधना थी। इसीलिए वास्तविक भारतवर्ष से आँखें मिलकर उसकी सच्ची सेवा करने से मैं बारबार डरकर लौटता ही रहा हूँ। मैंने एक निष्कंटक निर्विकार भारतवर्ष गढ़कर उसके अभेद्य दुर्ग के भीतर अपनी

भक्ति को सुरक्षित कर लेने के लिए अब तक क्या-क्या लड़ाइयाँ नहीं लड़ीं ! लेकिन आजतक मेरी कल्पना का वह दुर्ग पल-भर में स्वप्न की तरह उड़ गया है। मैं एकाएक छुटकारा पाकर एक बहुत बड़े सत्य के बीच आ गिरा हूँ। समूचे भारतवर्ष का अच्छा-बुरा, सुख-दुःख, ज्ञान-अज्ञान सब बिलकुल मेरे हृदय के पास पहुँच गया है। आज मैं सचमुच सेवा का अधिकारी हुआ हूँ, सच्चा कर्म-क्षेत्र मेरे सामने आ गया है—वह मेरी कल्पना का क्षेत्र नहीं है, वह बाहर की इस पच्चीस करोड़ जनता के सच्चे कल्याण का क्षेत्र है।"

गोरा की इस नई पाई हुई अनुभूति के प्रबल उत्साह की धारा ने मानो परेश बाबू को भी आन्दोलित कर दिया। वह और बैठे न रह सके, कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए।

गोरा बोला, "मेरी बात आप ठीक समझ रहे हैं न ? मैं दिन-रात जो होना चाह रहा था, पर हो नहीं पा रहा था, आज मैं वही हो गया हूँ। आज मैं सारे भारतवर्ष का हूँ। मेरे भीतर हिन्दू, मुसलमान, ख्रिस्तान किसी समाज के प्रति कोई विरोध नहीं है। आज इस भारतवर्ष में सबकी जात मेरी जात है, सबका अन्न, मेरा अन्न है। देखिए, मैं बंगाल के अनेक ज़िलों में घूमा हूँ, बड़े नीच घरों में भी मैंने आतिथ्य ग्रहण किया है—आप यह न समझें कि मैं केवल शहरों की सभाओं में वक्तृता झाड़ता रहा हूँ—लेकिन कभी किसी तरह सबके बराबर होकर नहीं बैठ सका, अब तक मैं अपने साथ बराबर एक अदृश्य व्यवधान लिये हुए ही घूमता रहा हूँ, उसे किसी तरह पार नही कर सका। इसीलिए मेरे मन के भीतर एक बड़ा गहरा शून्य था। इसी सूनेपन को मैं तरह-तरह से अस्वीकार करने की ही कोशिश करता रहा, बल्कि उस सूनेपन को ही तरह-तरह की नक्काशी करके और भी सुन्दर बनाने की चेष्टा करता रहा। क्योंकि मैं भारतवर्ष को प्राणों से भी प्यारा समझता था, इसलिए उसके जितने अंश को मैं देख पाता था उस अंश में कहीं किसी शिकायत की गुंजाइश मुझे सहन नहीं होती थी। आज नक्काशी करने की उस व्यर्थ कोशिश से छुट्टी पाकर मैं फिर से जी उठा हूँ, परेश बाबू !"

परेश बाबू ने कहा, "जब हम सत्य को पाते है तब वह अपने सारे अभाव और अपूर्णता के बावजूद हमारी आत्मा को तृप्त करता है, उसे झूठे उपकरणों से सजाने की इच्छा तक नही होती।"

गोरा ने कहा, "देखिए परेश बाबू, कल रात को मैंने ईश्वर से प्रार्थना की थी कि आज सवेरे मुझे नया जीवन प्राप्त हो—बचपन से अब तक जो कुछ झूठ या जो कुछ अपवित्र मुझे घेरे रहा हो आज वह सब नष्ट हो जाय और मुझे नया जीवन मिले। मैंने जो कल्पना करके प्रार्थना की थी उसकी ओर ईश्वर ने ध्यान

नहीं दिया—उन्होंने एकाएक अपना ही सत्य सहसा मेरे हाथ में देकर मुझे चौंका दिया है। वह यों एकाएक मेरी सारी अपवित्रता को समूल मिटा देंगे, यह मैं स्वप्न में भी नहीं जानता था। आज मैं ऐसा पवित्र हो गया हूँ कि चंडाल के घर भी अब मुझे अपवित्रता का डर न रहा। परेश बाबू, आज सवेरे ही बिलकुल खुले मन से मैं ठीक भारतवर्ष की गोद में आ बैठा हूँ—माँ की गोद किसे कहते हैं, यह आज इतने दिन बाद मैं पूरी तरह अनुभव कर सका हूँ।"

परेश बोले,"गौर, अपनी माँ की गोद में तुम्हें जो अधिकार मिला है उसमें हमें भी शामिल कर लो।"

गोरा ने कहा, "आज मुक्ति पाकर मैं सबसे पहले आपके पास क्यों आया हूँ जानते हैं?"

"क्यों?"

गोरा ने कहा, "आपके पास ही इस मुक्ति का मन्त्र है। इसीलिए आज आपको किसी समाज में स्थान नहीं मिल रहा है। आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। आप आज मुझे उसी देवता का मन्त्र दीजिए जो हिन्दू-मुसलमान, ख्रिस्तान-ब्राह्म सबका है, जिसके मन्दिर का द्वार किसी जाति, किसी व्यक्ति के लिए कभी बन्द नहीं होता—जो केवल हिन्दू का देवता नहीं है बल्कि सारे भारत-वर्ष का देवता है।"

परेश बाबू के चेहरे पर भक्ति की एक गहरी मधुर दीप्ति छा गई, आँख झुकाकर वह थोड़ी देर नीरव खड़े रहे।

इतनी देर बाद अब गोरा सुचरिता की ओर मुड़ा। वह अपनी कुर्सी पर स्तब्ध बैठी थी।

गोरा ने हँसकर कहा, "सुचरिता, अब मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। मैं तुमसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरा हाथ पकड़कर तुम मुझे इन गुरु के पास ले चलो!"

यों कहते-कहते गोरा ने अपना दाहिना हाथ सुचरिता की ओर बढ़ा दिया। सुचरिता ने खड़े होकर अपना हाथ गोरा के हाथ में रख दिया। तब गोरा ने सुचरिता के साथ परेश बाबू को प्रणाम किया।

परिशिष्ट

सांझ को घर लौटकर गोरा ने देखा आनन्दमयी उसके कमरे के सामने के बरामदे में चुपचाप बैठी है। गोरा ने आते ही उनके दोनों पैर पकड़कर उन पर अपना सिर टेक दिया। आनन्दमयी ने दोनों हाथों से उसे उठाते हुए उसका माथा चूम लिया।

गोरा ने कहा, "माँ, तुम्हीं मेरी माँ हो। जिस माँ को मैं खोजता फिर रहा था वह तो यहीं मेरे कमरे में बैठी हुई थीं। तुम्हारी जात नहीं है, तुम ऊँच-नीच का विचार नहीं करतीं, घृणा नहीं करतीं—तुम केवल कल्याण की प्रतिमा हो। तुम मेरा भारतवर्ष हो!—माँ, अब तुम अपनी लछमिया को बुलाओ—उसे कहो, मुझे पानी पिला दे।"

तब आनन्दमयी ने रुंधे हुए गले से मीठे स्वर से गोरा के कान में कहा, "गोरा, अब एक बार विनय को बुला लूं।"

• • •